आमुख

गत पच्चीस वर्षो से लेखक की 'Textbook of Deductive Logic' तथा 'Textbook of Inductive Logic' नामक पुस्तके भारतीय विश्वविद्यालयो के इन्टरमिडिएट कक्षा के विद्यार्थियो एव शिक्षकों द्वारा अपनाई जाती रही है। कुछ वर्षो से शिक्षण का माध्यम हिन्दी हो जाने से लेखक की बहुत समय से यह इच्छा थी कि उन पुस्तको का हिन्दी रूपान्तर विद्यार्थियो के हितार्थ प्रस्तुत किया जा सके। अत आज 'तर्कविद्या प्रवेशिका' के रूप मे उन पुस्तको को प्रस्तुत करते समय लेखक को अतीव हर्ष हो रहा है।

पुस्तक का पाठ्य विषय मूल अग्रेजी पुस्तक के समान ही रक्खा गया है। साथ ही भारतीय न्याय के कुछ अश भी यथास्थान जोड दिए गये है। इस प्रकार इसमे सभी भारतीय विश्वविद्यालयो तथा शिक्षा-परिषदो द्वारा इन्टर-मिडिएट परीक्षा के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम का समावेश है। भाषा को सरल तथा सुबोध बनाने का भरसक प्रयत्न रहा है।

पारिभाषिक शब्दो का हिन्दी रूपान्तर करते समय विशेष सावधानी रक्खी गई है और जो शब्द अब प्रचलित से हो गये है, उन्ही का उपयोग किया गया है। साथ ही उनके अंग्रेजी पर्याय भी दे दिये गये है, जिनसे विषय को समझने मे विद्यार्थियो को कोई कठिनाई नही होगी। पारिभाषिक शब्द एव उनके पर्यायवाची शब्दो की एक तालिका भी दे दी गई है, जो उपयोगी सिद्ध होगी।

प्रत्येक प्रकरण के अन्त मे पर्याप्त सख्या मे अभ्यासार्थ प्रश्नो का सकलन कर दिया गया है, जो कि मुख्यत. विभिन्न विश्वविद्यालयो की इन्टरमिडिएट परीक्षा के प्रश्नपत्रो से छाँटे गए है। परिशिष्ट मे, उत्तर प्रदेश की इन्टर-मिडिएट परीक्षा के प्रश्नपत्रो का सचय भी, विद्यार्थियो के लिए समुचित लाभ-कारी होगा। जटिल बातो का स्मरण करने के लिए प्रभूत चित्र, तालिकाये

तथा सकेत दे दिए गये है। तर्क के आभासो की विवेचना प्रचुर उदाहरणो के द्वारा सुस्पष्ट रीति से की गई है। ऐसा प्रयास रहा है कि पुस्तक सर्वांगपूर्ण हो। आशा है कि लेखक की अंग्रेजी मे लिखित मूल पुस्तक की भाँति यह भी उपयोगी सिद्ध होगी।

पुस्तक को प्रस्तुत रूप मे लाने मे लेखक को प्रोफेसर कुमार चन्द्र पन्त, एम० ए०, गवर्नमेंट कालेज मुरादावाद से जो अमूल्य सहयोग प्राप्त हुआ है, उसके लिए वह उनका आभारी है।

पुस्तक को और अधिक उपयोगी वनाने के सम्वन्ध मे हितैषी शिक्षक अपने सुझाव प्रदान कर कृतार्थ करेगे, ऐसी आशा है।

कलकत्ता
१५ अगस्त, १९५४

—श्री भोलानाथ राय

प्रकाशकीय वक्तव्य

पता चला है कि एक अन्य प्रकाशक ने श्री भोलानाथ राय के लाजिक का हिन्दी अनुवाद विना उनकी अनुमति, स्वीकृति और अधिकार के प्रकाशित किया है, जो कि पुराने सस्करण का अनुवाद है, जिसके छपे कम से कम आज दस साल हो चुके है। यह प्रस्तुत संस्करण १९५४ के अंग्रेजी के नवीन सस्करण के अनुसार है। इस प्रस्तुत सस्करण मे बहुत से सशोधन, परिवर्तन व परिवर्द्धन भी किए गये है, जिनका कि आज के दस साल पहलेवाले संस्करण मे नामोनिशान भी नही है। इसके अलावा हमारा जो प्रकाशन है वह अनुवाद मात्र ही नही है, वल्कि एक असली रूप-रेखा के साथ है।

उन विश्वविद्यालयो मे जहाँ कि हिन्दी माध्यम द्वारा शिक्षा दी जा रही है वहाँ के छात्रो के लिये विशेष ज्ञातव्य वाते वढा दी गई है।

एस० सी० सरकार एण्ड सन्स लि०

पारिभाषिक शब्दावली

१. सामान्य :

Abstraction पृथक्करण
Amplification विस्तार
Appearance प्रतीति
Argument युक्ति
Assumption स्वयसिद्धि
Authority शब्द
Classification वर्गीकरण
Comparison तुलना
Concept साधारण धारणा
Conception निर्धारण
Conceptualism धारणावाद
Data आश्रय
Deductive निगमन-मूलक
Etymology व्युत्पत्ति
Explication व्याख्या
Feeling सवेदन
Form आकार
General Idea सामान्य भाव
Generalisation सामान्यीकरण
Immediate Apprehension प्रत्यक्ष
Inductive उद्गमन (आगमन)-मूलक
Inference अनुमान
Introspection अन्तःप्रत्यक्ष, अन्तर्दर्शन
Judgment निर्णय
Knowledge ज्ञान
Knowledge, Direct प्रत्यक्ष ज्ञान
Knowledge, Indirect परोक्ष ज्ञान
Knowledge, Immediate प्रत्यक्ष ज्ञान
Knowledge, Mediate परोक्ष ज्ञान
Knowledge, General सामान्य ज्ञान
Knowledge, Particular विशेष ज्ञान
Knowledge, Popular साधारण ज्ञान
Language भाषा
Law, General व्यापक नियम
Matter विषय-वस्तु
Metaphysics तत्वज्ञान, दर्शन
Naming नामकरण

Negative निषेधात्मक
Particular Idea विशिष्ट भाव
Perception, External वाह्य-प्रत्यक्ष
Perception, Internal अन्तःप्रत्यक्ष
Positive स्वीकारात्मक
Premise आश्रय
Psychology मनोविज्ञान
Realism वस्तुवाद
Reasoning तर्क, तर्क-पद्धति
Science विज्ञान
Syllogism न्याय-वाक्य, सिलोजिज्म
Testimony आप्त वाक्य
Thinking, Process of विचार-प्रक्रिया
Thinking, Product of विचार-परिणाम
Truth सत्य, यथार्थ
Truth, Formal आकार-गत सत्य
Truth, Material वस्तु-गत सत्य, वास्तविक सत्य
Truth, Ultimate चरम सत्य
Verbal Consistency शब्द-संगति

२. विचार के नियम :

Contradictory विरोधी
Contradictory, Disjunction, Principle of विरोधी-विकल्प-नियम
Contrary विपरीत
Fundamental Principle मूल-नियम
Law, of Identity तादात्म्य-नियम
Law, of Contradiction विरोध-वाधक-नियम
Law, of Excluded Middle निर्मध्यम-नियम
Law, of Sufficient Reason पर्याप्त-हेतु-नियम
Postulate स्वय-सिद्धि
Primary Truth आद्य-सत्य

३. पद :

Absolute निरपेक्ष
Abstract भाव-वाचक
A-categorematic पदायोग्य शब्द
Attributive गुणात्मक
Categorematic पद-योग्य शब्द
Collective समूह-वाचक
Collective use समष्ट्यर्थ
Composite अनेक शब्दात्मक
Comprehension सामर्थ्य

Concrete वस्तु-वाचक
Connotation गुण
Connotative गुण-वाचक
Copula संयोजक
Correlative सह-सम्बन्धी
Denotation निर्देश
Distributive व्याप्त
Distributive use व्यष्ट्यर्थ
Domain विषय
Equivocal अनेकार्थक
Exclusive term व्यावर्तक पद
Extension विस्तार
Fundamentum Relationis सम्बन्धाधार
General सामान्य
Infinite term अपरिमित पद
Intent पदत्व
Intension स्वभाव
Inverse Variation प्रतिलोम अनुपात
Non-collective असमूह-वाचक
Non-connotative अगुण-वाचक
Non-significant निरर्थक
Predicate विधेय
Privative अभावात्मक
Proper names व्यक्ति-वाचक नाम
Relative सापेक्ष
Scope क्षेत्र
Significant सार्थक
Simple एक शब्दात्मक
Singular विशिष्ट
Subject उद्देश्य
Syncategorematic पद-सयोज्य-शब्द
Term पद
Unitary term ऐकिक पद
Univocal एकार्थक

४. वाच्य :

Accidens आकस्मिक गुण
Accidens, Inseparable अवियोज्य आकस्मिक गुण
Accidens, Separable वियोज्य आकस्मिक गुण
Cognate समवर्गीय
Differentia व्यावर्तक गुण
Generic जातिगत
Infima Species अपरतम जाति
Predicables वाच्य
Proprium सहजगुण
Specific व्यक्तिगत
Subaltern अवर

५. परिभाषा तथा विभाग :

Definition परिभाषा
Definition, Redundant
अतिरिक्त परिभाषा
Definition, Accidental
आकस्मिक परिभाषा
Definition, Too narrow
अव्याप्त परिभाषा
Definition, Too wide
अतिव्याप्त परिभाषा
Definition, Figurative
आलंकारिक परिभाषा
Definition, Obscure
दुर्बोध परिभाषा
Definition Synonymosu
पर्यायोक्ति परिभाषा
Definition Circle in
चक्रक परिभाषा
Definition, Negative
निषेधात्मक परिभाषा
Division विभाग
Division. Logical तार्किक विभाग
Division. Physical
भौतिक विभाग
Division Metaphysical
अतिभौतिक विभाग
Division, Cross संकर विभाग
Division, Too narrow
अतिसंकीर्ण विभाग
Division, Too wide
अतिविस्तीर्ण विभाग
Division, Overlapping
परस्पर व्याप्त विभाग
Division, Continued
क्रमिक विभाग
Division, by Dichotomy
द्विवर्गाश्रित विभाग
Fundamentum Divisionis
विभाग का मूल सिद्धान्त
Proximate Genus आसन्न जाति

६. तर्कवाक्य :

'A'-Prop. 'आ'-तर्कवाक्य
'E'-Prop. 'ए'-तर्कवाक्य
'I'-Prop. 'ई'-तर्कवाक्य
'O'-Prop. 'ओ'-तर्कवाक्य
Affirmative स्वीकारात्मक
Antecedent पूर्वाङ्ग
Compound मिश्रित. मिश्र
Comprehensive View
समन्वयवाद
Connotative (Attributive)
View गुणात्मक मत

Consequent उत्तराङ्ग
Denotative View निर्देशात्मक मत
Denotative-Connotative View निर्देशगुणात्मक मत
Distributed व्याप्त
Distribution व्याप्ति
Modality विधि
Predicative View विधानात्मक मत
Proposition तर्कवाक्य
Proposition, Categorical निरपेक्ष तर्कवाक्य
Proposition, Conditional सापेक्ष तर्कवाक्य
Proposition, Disjunctive वैकल्पिक तर्कवाक्य
Proposition, Hypothetical हेतुफलाश्रित तर्कवाक्य
Proposition, Infinite अपरिमित तर्कवाक्य
Proposition, Indesignate अनिश्चित तर्कवाक्य
Proposition, Predesignate निश्चित तर्कवाक्य
Proposition, Singular विशिष्ट तर्कवाक्य
Proposition, Necessary आवश्यक तर्कवाक्य
Proposition, Assertory प्रतिज्ञात तर्कवाक्य
Proposition, Problematic संदिग्ध तर्कवाक्य
Proposition, Analytic विश्लेषणात्मक तर्कवाक्य
Proposition, Verbal शाब्दिक तर्कवाक्य
Proposition, Essential अनिवार्य तर्कवाक्य
Proposition, Explicative व्याख्यानात्मक तर्कवाक्य
Proposition, Synthetic संश्लेषणात्मक तर्कवाक्य
Proposition, Real वास्तविक तर्कवाक्य
Proposition, Accidental आकस्मिक तर्कवाक्य
Proposition, Ampliative विस्तारक तर्कवाक्य
Proposition, Universal Affirmative सार्वलौकिक स्वीकारात्मक
Proposition, Universal Negative सार्वलौकिक निषेधात्मक

Proposition, Particular Affirmative विशेष स्वीकारात्मक तर्कवाक्य
Proposition, Particular Negative विशेष निषेधात्मक तर्कवाक्य
Proposition, Exclusive ऐकान्तिक वाक्य
Proposition, Exceptive अपवादात्मक वाक्य
Proposition, Interrogative प्रश्नवाचक वाक्य
Quantification of Predicate विधेय का परिमाण ज्ञात करना
Relation सम्बन्ध
Significant Singular Name सार्थक-विशिष्ट नाम
Simple शुद्ध
Theories of Predication विधान के सिद्धान्त
Undistributed अव्याप्त

७. अनन्तरानुमान :

An Inference अनुमिति
Change of Relation सम्बन्ध विलोमात्मक अनुमान
Conclusion निष्कर्ष
Contradiction विरुद्धता
Contraposition परिवर्तित-प्रतिवर्तन
Contrariety वैपरीत्य
Converse परिवर्तित
Conversion परिवर्तन
Conversion, Simple सरल परिवर्तन
Conversion, per accidens असरल परिवर्तन
Conversion, by Negation निषेध द्वारा परिवर्तन
Convertend परिवर्त्य
Eduction पृथक्-भाव
Inference अनुमान
Inference, Immediate अनन्तरानुमान
Inference, Mediate सान्तरानुमान
Inference, by Added Determinants विशेषण संयोगानुमान
Inference, by Complex Conception मिश्र धारणानुमान
Inverse विपर्यस्त
Inversion विपर्यय
Invertend विपर्येय

Modal Consequence विध्याश्रित अनुमान
Obverse प्रतिवर्तित
Obversion प्रतिवर्तन
Obversion, Material भौतिक प्रतिवर्तन
Obvertend प्रतिवर्त्य
Obverted Converse प्रतिवर्तित परिवर्तन
Opposition विरोध
Subalternant उपाश्रय
Subalternate उपाश्रित
Subalternation उपाश्रितता

८. न्यायवाक्य :

Alternatives विकल्प
Canons मूल सिद्धान्त
Constructive विधायक
Dictum de omni et nullo अरस्तू का सिद्धान्त
Dictum de diverso भेद का सिद्धान्त
Dictum de exemplo निदर्शन का सिद्धान्त
Dictum de reciproco परस्पर-सम्बन्ध का सिद्धान्त
Destructive विघातक
Dilemma उभयतोपाश
Dilemma, taking the d by horns शृङ्ग-निग्रह-विधि
Dilemma, escaping between the horns of a d. शृङ्गो के बीच से बच निकलना
Enthymeme संक्षिप्त न्यायवाक्य
Fallacy दोष, आभास
Fallacy, of Four terms चतुष्पदी आभास
Fallacy, of Equivocation अनेकार्थक आभास
Fallacy, of Ambiguous Major अनेकार्थक साध्य ; संदिग्ध साध्य
Fallacy, of Ambiguous Minor अनेकार्थक पक्ष , संदिग्ध पक्ष
Fallacy, of Ambiguous Middle अनेकार्थक हेतु , संदिग्ध हेतु
Fallacy, of Undistributed Middle अव्याप्त हेतु का आभास
Fallacy, of Illicit Major अवैध-साध्य दोष
Fallacy, of Illicit Minor अवैध-पक्ष दोष

Fallacy, of Negative Premises निषेधात्मक आश्रय का दोष

Fallacy, of Denying the Antecedent पूर्वाङ्ग की अस्वीकृति का दोष

Fallacy, of Affirming the Consequent उत्तराङ्ग की स्वीकृति का दोष

Figure आकार

Hypothetical-Categorical हेतुफलाश्रित निरपेक्ष

Induction आगमन, उद्गमन

Invariable Concomitance अनन्य सहचार

Major Term साध्य

Major Premise साध्यवाक्य

Minor Term पक्ष

Minor Premise पक्षवाक्य

Middle Term हेतु

Modus Ponens विधि प्रकार

Modus Tollens निषेध प्रकार

Mnemonic Verse स्मृतिसहायक छन्द

Mood; संयोग—

Barbara बार्बारा

Celarent केलारेन्ट

Darii दारीई

Ferio फेरीओ

Cesare केसारे

Camestres कामेस्ट्रेस

Festino फेस्तीनो

Baroco बारोको

Darapti दाराप्ती

Disamis दीसामीस

Datisi दातीसी

Felapton फेलाप्तोन

Bocardo बोकार्दो

Ferison फेरीसोन

Bramantip ब्रामान्तीप

Camenes कामेनेस

Dimaris दीमारीस

Fesapo फेसापो

Fresison फ्रेसीसोन

Faksoko फाक्सोको

Barbari बार्बारी

Celaront केलारोन्ट

Camestros कामेस्ट्रोस

Cesaro केसारो

Rebutting प्रतिक्षेप

Reductio ad absurdum मूर्खतापूर्ण आकारान्तरण

Reduction आकारान्तरण

Reduction, Direct अनुलोम आकारान्तरण

Reduction, Indirect प्रतिलोम आकारान्तरण

Syllogism न्यायवाक्य

Syllogism, Pure शुद्ध न्यायवाक्य

Syllogism, Mixed मिश्र न्यायवाक्य

Syllogism, Fundamental मूल न्यायवाक्य

Syllogism, Weakened निर्बल न्यायवाक्य

Syllogism, Strengthened सबल न्यायवाक्य

९. युक्तिमाला

Epicheirema संक्षिप्त प्रतीयगामी युक्तिमाला

Epicheirema, Simple शुद्ध–

Epicheirema, Mixed मिश्र–

Epicheirema, Single एकनिष्ठ–

Epicheirema, Double उभयनिष्ठ

Episyllogism उत्तर-न्यायवाक्य

Progressive प्रगामी

Prosyllogism पूर्व-न्यायवाक्य

Regressive प्रतीयगामी

Sorites संक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला

Train of Syllogisms युक्तिमाला

१०. आभास

Fallacy आभास, दोष

Fallacy, Deductive निगमनमूलक दोष

Fallacy, Semi-logical अर्द्धतार्किक दोष

Fallacy, of Amphibology वाक्य-छल

Fallacy, of Accent भ्रामकोच्चारण-दोष

Fallacy, of Equivocation अनेकार्थक दोष

Fallacy, of Figure of Speech अनुप्रास-दोष

Fallacy, of Accident उपाधि-भेद-दोष

Fallacy, of Accident, direct अनुलोम उपाधि-भेद-दोष

Fallacy, of Accident, Converse प्रतिलोम उपाधि-भेद-दोष

Fallacy, of Division विभाग का दोष

Fallacy, of Composition रचना का दोष

Fallacy, of Ignoratio Elenchi प्रतिवाद के अज्ञान का दोष

Fallacy, of Petitio Principii आत्माश्रय का दोष

Fallacy, of Negative Premises निपेधात्मक आश्रय का दोष
Fallacy, of Denying the Antecedent पूर्वाङ्ग की अस्वीकृति का दोप
Fallacy, of Affirming the Consequent उत्तराङ्ग की स्वीकृति का दोप
Figure आकार
Hypothetical-Categorical हेतुफलाश्रित निरपेक्ष
Induction आगमन, उद्गमन
Invariable Concomitance अनन्य सहचार
Major Term साध्य
Major Premise साध्यवाक्य
Minor Term पक्ष
Minor Premise पक्षवाक्य
Middle Term हेतु
Modus Ponens विधि प्रकार
Modus Tollens निपेध प्रकार
Mnemonic Verse स्मृतिसहायक छन्द
Mood: संयोग—
Barbara बार्बारा
Celarent केलारेन्ट
Darii दारीई
Ferio फेरीओ
Cesare केसारे
Camestres कामेस्ट्रेस
Festino फेस्तीनो
Baroco बारोको
Darapti दाराप्ती
Disamis दीसामीस
Datisi दातीसी
Felapton फेलाप्तोन
Bocardo बोकार्दो
Ferison फेरीसोन
Bramantip ब्रामान्तीप
Camenes कामेनेस
Dimaris दीमारीस
Fesapo फेसापो
Fresison फ्रेसीसोन
Faksoko फाक्सोको
Barbari बार्बारी
Celaront केलारोन्ट
Camestros कामेस्ट्रोस
Cesaro केसारो
Rebutting प्रतिक्षेप
Reductio ad absurdum मूर्खतापूर्ण आकारान्तरण
Reduction आकारान्तरण
Reduction, Direct अनुलोम आकारान्तरण

Reduction, Indirect प्रतिलोम आकारान्तरण

Syllogism न्यायवाक्य

Syllogism, Pure शुद्ध न्यायवाक्य

Syllogism, Mixed मिश्र न्यायवाक्य

Syllogism, Fundamental मूल न्यायवाक्य

Syllogism, Weakened निर्बल न्यायवाक्य

Syllogism, Strengthened सबल न्यायवाक्य

९. युक्तिमाला

Epicheirema संक्षिप्त प्रतीयगामी युक्तिमाला

Epicheirema, Simple शुद्ध–

Epicheirema, Mixed मिश्र–

Epicheirema, Single एकनिष्ठ–

Epicheirema, Double उभयनिष्ठ

Episyllogism उत्तर-न्यायवाक्य

Progressive प्रगामी

Prosyllogism पूर्व-न्यायवाक्य

Regressive प्रतीयगामी

Sorites संक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला

Train of Syllogisms युक्तिमाला

१०. आभास

Fallacy आभास, दोष

Fallacy, Deductive निगमनमूलक दोष

Fallacy, Semi-logical अर्द्धतार्किक दोष

Fallacy, of Amphibology वाक्य-छल

Fallacy, of Accent भ्रामकोच्चारण-दोष

Fallacy, of Equivocation अनेकार्थक दोष

Fallacy, of Figure of Speech अनुप्रास-दोष

Fallacy, of Accident उपाधि-भेद-दोष

Fallacy, of Accident, direct अनुलोम उपाधि-भेद-दोष

Fallacy, of Accident, Converse प्रतिलोम उपाधि-भेद-दोष

Fallacy, of Division विभाग का दोष

Fallacy, of Composition रचना का दोष

Fallacy, of Ignoratio Elenchi प्रतिवाद के अज्ञान का दोष

Fallacy, of Petitio Principii आत्माश्रय का दोष

विषय-सूची

प्रथम प्रकरण

तर्कशास्त्र की परिभाषा एवं उसका क्षेत्र

§ १. भूमिका : तर्कशास्त्र का स्वरूप।
§ २. ज्ञान तथा उसके साधन।
§ ३. ज्ञान का स्वरूप : प्रत्यक्ष तथा परोक्ष ज्ञान।
क्या तर्कशास्त्र का सम्बन्ध प्रत्यक्ष ज्ञान से है ?
§ ४. विचार
टिप्पणी १ : साधारण धारणा का निर्माण
टिप्पणी २ : धारणा का स्वरूप : वस्तुवाद, धारणावाद तथा नामवाद।
§ ५. विचार तथा भाषा : तर्कशास्त्र तथा व्याकरण।
§ ६. विचार का आकार तथा विषयवस्तु।
§ ७. आकारगत एव वस्तुगत सत्य।
§ ८. विज्ञान।
टिप्पणी : विज्ञान—वर्णनमूलक एव आदर्श मूलक।
§ ९. विज्ञान तथा कला।
§ १०. तर्कशास्त्र की परिभाषा।
§ ११. तर्कशास्त्र का वैज्ञानिक एव कलात्मक स्वरूप।
§ १२. तर्कशास्त्र की विभिन्न परिभाषाएँ।
§ १३. तर्कशास्त्र की उपयोगिता।
§ १४. तर्कशास्त्र और मनोविज्ञान।
§ १५ तर्कशास्त्र एव दर्शन (तत्वज्ञान)।
प्रश्नमाला १.

§ १ भूमिका—तर्कशास्त्र का स्वरूप।

किसी भी विज्ञान का अध्ययन करने से पूर्व प्रत्येक छात्र को यह जिज्ञासा होना स्वाभाविक है कि उसके अध्ययन का विषय क्या है ? वह जानना चाहता है कि तर्कशास्त्र (Logic)

प्रारम्भ में ही विषय की निश्चित परिभाषा देने में कठिनाई।

क्या है? उसका पाठ्य विषय क्या है? उसके अध्ययन की विधि क्या है? और उसके विपय का अन्य विपयो से क्या सम्वन्ध है? निस्सदेह ऐसा कौतूहल होना उचित ही है, परन्तु प्रारम्भ मे ही इन प्रश्नो का उत्तर देना वडा कठिन है। यह कठिनाई केवल तर्कशास्त्र के विषय मे ही नही है। जव कभी भी हम किसी नवीन बात को सीखना प्रारम्भ करते है, तव इसी प्रकार की कठिनाई का सामना करना पड़ता है। जब एक अवोध वालक अपने पिता के सामने लगातार प्रश्नो की झडी लगा देता है, तो उसका पिता वडे असमजस मे पड जाता है। वह चाहता अवश्य है कि किसी प्रकार अपने वच्चे की जिज्ञासा शात कर दे, परन्तु ऐसा करने मे वह अपने को असमर्थ पाता है। बच्चे का मानसिक-स्तर इतना नीचा होता है कि अपने प्रश्नो का उत्तर समझना उसकी सामर्थ्य के वाहर होता है। एक अकुशल पिता कदाचित् झुंझलाहट मे कह बैठे कि 'बिना ज्ञान प्राप्त किये तुम कैसे जान सकते हो!' और यह समझे कि उसका उत्तर वड़ा चातुर्यपूर्ण है। यदि वह अधिक समझदार हुआ तो कदाचित् कहेगा कि 'पढो और तुम जान जाओगे।" उपर्युक्त दोनो प्रकार की बाते वालक के प्रश्नो का सतोषजनक उत्तर दे सकने की असमर्थता का प्रकाशन-मात्र है! तर्कशास्त्र की पुस्तक के लेखक एव शिक्षक के सामने भी इसी प्रकार की कठिनाई उपस्थित हो जाती है। प्रारम्भ मे ही, जव कि विद्यार्थी विषय से पूर्णतया अनभिज्ञ हो, विषय की परिभाषा कैसे दी जा सकती है? इस सम्वन्ध मे विद्यार्थी भी बडे असमजस मे पड जाता है। अत. प्रारम्भ मे विषय का सामान्य-सा परिचय-मात्र दिया जा सकता है। जैसे-जैसे विषय का ज्ञान परिपक्व होता जायेगा, वैसे-वैसे उसकी पूर्ण परिभापा से भी परिचित करा दिया जायेगा।

तर्कशास्त्र को अँगरेज़ी मे लॉजिक (Logic) कहते है। इस शब्द की व्युत्पत्ति (Etymology) ग्रीक-भापा के

विशेषण 'Logike' से है, जिसकी सगत-सज्ञा Logos है। इसका अर्थ 'विचार' (Thought) अथवा शब्द (Word) अर्थात् 'विचारो की भाषाभिव्यक्ति' है। एक ही शब्द 'Logos' का उपयोग 'विचार' एव 'शब्द' दोनो अर्थों मे होने के कारण 'विचार' एव उसकी भाषाभिव्यक्ति मे घनिष्ठ सम्बन्ध का सकेत मिलता है। अत. व्युत्पत्ति के अनुसार **तर्कशास्त्र भाषाभिव्यक्त विचारों का विज्ञान है।** 'विचार' (Thought) शब्द से प्राय सभी परिचित है और 'विचार करने' (Thinking) से जो तात्पर्य है, उसे सभी समझते है। इस शब्द एव उसके तात्पर्य का ज्ञान होते हुए भी उसे उचित प्रकार से भाषा मे व्यक्त करना सरल नही है जैसा कि हमे बाद मे पता चलेगा (देखिए §४)। सामान्य विवरण के लिए उससे अधिक सरल शब्द 'तर्क' (Reasoning) का उपयोग किया जा सकता है। अतः यह कहा जा सकता है कि **तर्कशास्त्र का सम्बन्ध भाषाभिव्यक्त तर्क एवं कुछ अन्य गौण-क्रियाओं** (Subsidiary processes) **से है।** अव हम इस संभावित परिभाषा पर विचार करेगे।

नाम की व्युत्पत्ति

तर्कशास्त्र विचारो का विज्ञान है।

तर्कशास्त्र तर्कपद्धति का विज्ञान है।

तर्क (Reasoning) से तात्पर्य ज्ञात से अज्ञात की ओर अग्रसर होना है। 'ज्ञात तथ्य' हमारे तर्क की सामग्री अथवा आश्रय (Data) है और 'अज्ञात तथ्य' वह निष्कर्ष (Conclusion) होता है, जिस पर हम तर्क के द्वारा पहुँचते है। एक बालक का जन्म हुआ। हम तर्क करते है और इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि वह मर जायेगा। हो सकता है कि वह काफी आयु तक जीवित रहे, परन्तु कभी न कभी तो उसकी मृत्यु होगी ही। बच्चे का जन्म एव यह तथ्य कि 'मनुष्य मरणशील है' हमारे तर्क करने के आश्रय है और इन आश्रयो के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि 'बच्चा मरणशील है'। यदि इस तर्क-पद्धति को पूर्णतया व्यक्त करे तो वह इस प्रकार होगा :

तर्क का अर्थ ज्ञात से अज्ञात की ओर अग्रसर होना है।

सब मनुष्य मरणशील है।
बालक एक मनुष्य है।
∴ बालक मरणशील है।

एक अन्य उदाहरण देखिए। एक यात्री देखता है कि आकाश मे घने बादल घिरे हुए है। बिजली की चमक भी दिखलाई पड़ रही है। इतना देखकर वह तर्क करता है कि उसे अवश्यभावी वर्षा से बचने के निमित्त किसी सुरक्षित स्थान पर पहुँच जाना चाहिए। अतः तर्क एक प्रकार का परोक्ष ज्ञान (Indirect knowledge) है जो कि किसी प्रत्यक्ष ज्ञान (Direct knowledge) पर आधारित है। तर्क का पूर्ण अर्थ समझने के लिए यह जान लेना आवश्यक है कि 'ज्ञान' (Knowledge) प्रत्यक्ष ज्ञान (Direct knowledge) तथा परोक्ष ज्ञान (Indirect knowledge) से क्या तात्पर्य है। इस प्रकरण के §२ तथा §३ मे हम इसपर विचार करेंगे।

तर्क शुद्ध हो सकता है अथवा अशुद्ध। अतः तर्कशास्त्र सत्य अर्थात् यथार्थ का अध्ययन करता है।

हमारा तर्क **शुद्ध** भी हो सकता है और **अशुद्ध** भी। अज्ञात बात अनिश्चित-सी होती है। उपर्युक्त उदाहरण मे ऐसा भी हो सकता है कि तेज़ हवा का झोका आकर बादलो को उड़ा ले जाये और संभावित-वर्षा न हो सके। तब हमारा तर्क अशुद्ध अथवा अयथार्थ (false) हो जायेगा। अतः तर्क के सम्बन्ध की सबसे अनिवार्य समस्या **सत्य (यथार्थ)** (Truth) अथवा **असत्य (अयथार्थ)** (Falsity) की है। तर्कशास्त्र का पाठ्य-विषय तर्क होने के कारण उसका क्षेत्र सत्य अर्थात् यथार्थ (Truth) के स्वरूप एवं दशाओ का निरूपण करना होता है।

साथ ही, जब हम किसी तर्क-पद्धति का विश्लेषण करते है, तो हमे पता चलता है कि उसमे '**तर्क-वाक्य** (Propositions) होते है, जो कि साधारण दृष्टि मे व्याकरण के वाक्यो के समान होते है। उपरिलिखित प्रथम उदाहरण मे तीन तर्क-वाक्य

(Propositions) है, यथा—(१) सब मनुष्य मरणशील है; (२) बालक एक मनुष्य है और (३) बालक मरणशील है। अत: तर्क का अध्ययन करते समय **तर्क-वाक्यों** (Propositions) का अध्ययन भी तर्कशास्त्र मे हो जाता है। तर्क वाक्य पुन: **पदों** (Terms) मे विश्लेषित किये जा सकते है। पद (Terms) व्याकरण के शब्दो के समान होते है। इस तर्क-वाक्य 'सब मनुष्य मरणशील है' मे 'मनुष्य' तथा 'मरणशील' पद है। अत: तर्कशास्त्र मे तर्क के साथ-साथ तर्क-वाक्यों (Propositions) एव पदो (Terms) का भी वर्णन कर दिया जाता है। यह सच है कि तर्कशास्त्र का मुख्य पाठ्य-विषय तर्क ही है। परन्तु तर्कवाक्य एव पद तर्क के ही घटक अवयव होने के कारण तर्कशास्त्र के क्षेत्र मे आ जाते है। यही कारण है कि तर्कशास्त्र के सिद्धान्तो की प्राय· तीन स्तम्भो मे व्याख्या की जाती है, यथा—पद-सिद्धान्त (Doctrine of Terms), तर्क वाक्य-सिद्धान्त (Doctrine of Propositions) तथा तर्क-सिद्धान्त (Doctrine of Reasoning)।

तर्क शास्त्र पद, तर्क-वाक्य एवं तर्क का अध्ययन करता है।

इनके अतिरिक्त तर्कशास्त्र तर्क के अन्तर्गत आनेवाली कुछ अन्य गौण-पद्धतियो का भी अध्ययन करता है, यथा—**परिभाषा** (Definition), **विभाग** (Division), **नामकरण** (Naming) **वर्गीकरण** (Classification) इत्यादि। इनका विवरण यथास्थान दिया जायेगा।

कुछ अन्य गौण-पद्धतियाँ भी उसके क्षेत्र में आती है।

§२ ज्ञान तथा उसके साधन।

ज्ञान (Knowledge) क्या है? ज्ञान मनोभावो की उस व्यवस्था को कहते है, जो कि वस्तुओं की किसी व्यवस्था के अनुरूप हो तथा जिसमें इस अनुरूपता के प्रति विश्वास उत्पन्न करने की क्षमता हो। अत: ज्ञान के तीन अवयव हुए, यथा—

ज्ञान क्या है।

(१) हमारे मन मे **भावों** की एक व्यवस्था है, (२) ये भाव **वास्तविक जगत् की वस्तुओं** के अनुरूप है तथा (३). इस अनुरूपता मे हमे **विश्वास** है। एक साधारण उदाहरण देखिए। जब हम कहते है कि हमे 'सूर्य' का ज्ञान है, तो हमारा तात्पर्य होता है कि हमारे मन मे एक बडे वृहत् आकार की आकाश-स्थित वस्तु का भाव है, जिसमे चकाचौंध उत्पन्न करनेवाली ज्योति है तथा ग्रह जिसकी परिक्रमा करते है। और इस भाव के अनुरूप सूर्य है जो कि वास्तव मे सत् है और हमे उसकी वास्तविकता मे विश्वास है। यदि इन बातो मे से किसी एक का भी अभाव हो तो हमे उसका ज्ञान प्राप्त नही हो सकेगा।

प्रतिदिन के दृष्टांत।

'ज्ञान' का तात्पर्य हम सब सामान्यतया जानते है। हम तडित की चमक देखते है और हमे ज्ञान होता है कि वहा प्रकाश है। हम बादलो का गर्जन सुनते है और हमे ध्वनि का ज्ञान होता है। हम एक आम को चखते है और हमे ज्ञान होता है कि वह मीठा है। हम एक गुलाब को सूँघते है और हमे ज्ञान होता है कि वह सुरभिमय है। इसी प्रकार हिम का स्पर्श करने पर हमे उसकी शीतलता का ज्ञान होता है। अतः देखने, सुनने, चखने, स्पर्श करने तथा सूँघने से हमे ज्ञान प्राप्त होता है। इनके अतिरिक्त, हमें इस बात का भी ज्ञान रहता है कि किसी समय हमारे मन की दशा कैसी है। हमे ज्ञात हो जाता है कि हम प्रसन्न है, हम दुःखी है, हम क्रोधित है अथवा हममे ईर्ष्या का भाव है। इन सब बातो का ज्ञान हमे प्रत्यक्ष हो जाता है। इतना ही नही, किसी दिन हम प्रातः अपने विस्तर से उठते है, तो पता चलता है कि धरती भीगी हुई है, आकाश मेघाच्छन्न है और पेडो की पत्तियो से पानी की बूँदे झर रही है, तो हमे ज्ञान हो जाता है कि रात्रि को जब हम सो रहे थे, वर्षा हुई थी। हम दूर पर धूम्र देखते है और हमे ज्ञान हो जाता है कि वहां पर अग्नि है। हम किसी व्यक्ति का मुस्कुराहट-भरा चेहरा देखते है और हमें ज्ञान हो जाता है कि वह उस समय प्रसन्न है। हम कुत्ते को अपनी पूँछ हिलाते हुए देखते है और हमे ज्ञान हो जाता है कि वह प्रसन्नता से भरा हुआ है। इतना ही नही, वरन हमे यह भी ज्ञान हो जाता है कि पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा

कर रही है, यद्यपि वह स्थिर प्रतीत होती है। हमें इस बात का भी ज्ञान रहता है कि आइसलैण्ड नामक एक स्थान है, यद्यपि हम कभी वहाँ गये नही। हमे इस वात का ज्ञान रहता है कि बहुत पहले, जब हम पैदा भी नही हुए थे, ग्रीस देश मे एक महान् दार्शनिक हुआ था जिसका नाम सुकरात (Sociates) था। अत हमे केवल उन्ही बातो का ज्ञान प्राप्त नही होता जिनसे कि हमारा प्रत्यक्ष साक्षात्कार हो, परन्तु उन वातो का भी ज्ञान प्राप्त हो जाता है जिनका हम अपने तर्क (Reasoning) या दूसरो के आप्तवाक्य (Testimony) तथा शब्द (Authority) के आधार पर विश्वास करने लगते है।

ज्ञान के साधन (Sources)

साधन :

ज्ञान के साधन **प्रत्यक्ष** (Immediate Apprehension), **अनुमान** (Inference), **आप्तवाक्य** (Testimony) और **शब्द** (Authority) हैं।।

(क) बाह्य-वस्तुओं तथा मानसिक दशाओं का प्रत्यक्ष।

(क) **प्रत्यक्ष** (Immediate Apprehension) — मस्तिष्क की जिस क्रिया से हम किसी वस्तु का साक्षात अनुभव प्राप्त कर लेते है, उसे प्रत्यक्ष कहते है। प्रत्यक्ष-ज्ञान (Direct knowledge) **वाह्य-प्रत्यक्ष,** (External Perception) अथवा अन्त -प्रत्यक्ष (Internal Peiception) के द्वारा प्राप्त होता है। वाह्य-प्रत्यक्ष मे हम अपनी ज्ञानेन्द्रियो (आँख, कान आदि) के द्वारा जान जाते है कि ससार की वस्तुएँ हमसे वाहर स्थित है तथा उनके अपने गुण है। हम सूर्य को देखते है और हमे प्रत्यक्ष-ज्ञान हो जाता है कि वह सत् है तथा उसमे चमकने का गुण है। **अन्तः-प्रत्यक्ष,** (जिसे **अन्तर्दर्शन,** (introspection) भी कहते है) से हम साक्षात-रूप मे अपनी मनोदशा (यथा अपने सुख अथवा दुख) को जान जाते है। इस प्रकार वाह्य-प्रत्यक्ष एव अन्त -प्रत्यक्ष हमारे **साक्षात ज्ञान** के साधन है।

(ख) प्रत्यक्ष पर आधारित अनुमान।

(ख) अनुमान, (Inference) हमारी ज्ञान-प्राप्ति का दूसरा साधन है। अनुमान मे कुछ विदित ज्ञान के आधार पर अविदित ज्ञान पर पहुँच जाते है। अनुमान करने की सामग्री अथवा आश्रय (data) प्रत्यक्ष (Immediate Apprehension) के द्वारा प्राप्त होती है। यथा—हम धूम्र देखते है और हमे ज्ञान हो जाता है कि वहाँ अग्नि है, हम एक मनुष्य को मुस्कराते हुए देखते है और हमे ज्ञान हो जाता है कि वह प्रसन्न है।

(ग) आप्त-वाक्य अथवा विश्वसनीय व्यक्तियों द्वारा कही हुई बात।

(ग) आप्तवाक्य (Testimony) तथा शब्द (Authority) : विश्वसनीय व्यक्तियो द्वारा कही हुई बात को आप्तवाक्य कहते है। हमारे व्यक्तिगत अनुभव एव उन अनुभवो के द्वारा प्राप्त अनुमानो की सख्या बहुत ही सीमित होती है। हम अपने दैनिक जीवन मे भी प्राय. उन सीमाओ को लाँघ जाते है तथा विश्वसनीय व्यक्तियो द्वारा कही गई बात को सच मान लेते है,यद्यपि ऐसा करते समय बहुत सावधानी का उपयोग करना पड़ता है। हम प्रत्येक व्यक्ति द्वारा कही गई बात पर विश्वास नही कर लेते। हम उसकी परीक्षा करते है, उसकी सच्चाई के सम्बन्ध मे अपनी सतुष्टि कर लेते है, उसकी खोज के बारे मे उससे प्रश्न करके अथवा अन्य अनेको विधियो से उसके द्वारा कही हुई बात की सच्चाई की परख कर लेने पर ही उस पर विश्वास करते है। शब्द (Authority) मे दूसरो को प्रभावित कर सकने की क्षमता एव विश्वास उत्पन्न कर सकने की शक्ति होती है। यह शक्ति किसी ऐसे व्यक्ति, वस्तु अथवा सस्था मे हो सकती है, जो कि आदर तथा श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता हो; यथा—माता-पिता तथा गुरु, धार्मिक ग्रथ तथा धार्मिक सस्थाये। आप्तवाक्य (Testimony) के द्वारा प्राप्त ज्ञान की परख कर लेना जितना आवश्यक है, उससे भी अधिक इस बात की आवश्यकता है कि शब्द (Authority) द्वारा प्राप्त ज्ञान को अगीकार करने मे सावधानी से

'शब्द' अथवा विश्वास उत्पन्न करने की क्षमता।

काम लिया जाय, क्योकि इस बात का भय बना रहता है कि कही हम इतने श्रद्धाध न हो जायँ कि हमारा निर्णय सत्य के मार्ग से भटक जाय।

§३ ज्ञान का स्वरूप : प्रत्यक्ष तथा परोक्ष ज्ञान

ज्ञान के स्वरूप :

ज्ञान के दो स्वरूप हो सकते है, यथा **प्रत्यक्ष** (Immediate) तथा **परोक्ष** (Mediate)। **प्रत्यक्ष-ज्ञान** (Immediate knowledge) उस ज्ञान को कहते है जो कि प्रत्यक्ष Immediate apprehension) अर्थात् वाह्य प्रत्यक्ष (External perception) तथा अन्तः-प्रत्यक्ष (Internal Perception) के द्वारा प्राप्त होता है। वाह्य-प्रत्यक्ष से बाहर की वस्तुओ, यथा सूर्य, चन्द्र आदि का ज्ञान प्राप्त होता है तथा अन्त -प्रत्यक्ष के द्वारा अपनी मनोदशाओ यथा सुख, दुख आदि का ज्ञान होता है। प्रत्यक्ष ज्ञान को **साक्षात-ज्ञान** (Direct knowledge) भी कहते है।

(क) प्रत्यक्ष वाहर की वस्तुओ तथा मन की दशाओ के साक्षात्कार से प्राप्त होता है। और---

परोक्ष-ज्ञान (Mediate knowledge) अनेक प्रकार से प्राप्त होता है, यथा अनुमान (Inference), आप्तवाक्य (Testimony) एव शब्द (Authority) के द्वारा। **अनुमान** भी परोक्ष ज्ञान है क्योकि उसके द्वारा किसी वस्तु का ज्ञान साक्षात रूप मे नही होता प्रत्युत किसी विदित ज्ञान की मध्यस्थता से प्राप्त हो पाता है। अत जब हम धूम्र की उपस्थिति से अग्नि का ज्ञान प्राप्त करते है तो हमारा अग्नि-विषयक ज्ञान धूम्र की मध्यस्थता से प्राप्त होता है। आप्तवाक्य एव शब्द द्वारा प्राप्त ज्ञान भी परोक्ष-ज्ञान है, क्योकि वह किसी अन्य वस्तु व्यक्ति अथवा सस्था के द्वारा प्राप्त होता है। ऐतिहासिक-तथ्यो का ज्ञान उन विश्वसनीय व्यक्तियो के आप्तवाक्यो से प्राप्त होता है, जो कि उस काल मे स्वय जीवित थे तथा जो उन समय का विवरण लिख गये है। इसी प्रकार धर्माचार्य

(ख) परोक्ष-ज्ञान, अनुमान, आप्त-वचन तथा शब्द के द्वारा प्राप्त होता है।

अपना परमात्मा-विषयक ज्ञान धर्म-ग्रथो के शव्दो पर आधारित करते है।

आप्त वचन एव शब्द द्वारा प्राप्त ज्ञान भी वास्तव मे अनुमान द्वारा प्राप्त ज्ञान ही है, क्योकि हम विश्वसनीय व्यक्तियो द्वारा कथित वात की यथार्थता का अनुमान इसी आश्रय पर लगाते है कि वे विश्वसनीय व्यक्ति है। हमारी मानसिक पृष्ठ-भूमि मे यह भावना रहती है कि आप्तवचन की यथार्थता इसलिए स्वीकार की जा सकती है कि यदि हमारे पास पर्याप्त समय, अवसर, शक्ति तथा सामर्थ्य होती तो हम भी उसी निष्कर्ष पर पहुँचते। जीवन की अवधि वडी सीमित है और क्रियाये असीम है। अत. ज्ञान की खोज अनेको व्यक्तियो के सहकार से ही सभव हो सकती है। प्रत्येक तथ्य की जॉच स्वय नही की जा सकती, चाहे जॉच करनेवाला व्यक्ति कितना ही योग्य तथा कुशल क्यो न हो। हममे से प्रत्येक व्यक्ति रसायनशास्त्र, भौतिकशास्त्र, जीवशास्त्र, भूगर्भशास्त्र, नक्षत्रशास्त्र आदि अनेकों शास्त्रो का वेत्ता नही हो सकता। अतः विभिन्न-विज्ञान-सम्बन्धी ज्ञान अपने-अपने क्षेत्र के दक्ष वैज्ञानिको की खोज के फलस्वरूप ही हमे अगीकार करना पडता है। अत. आप्तवचन एव शब्द द्वारा प्राप्त ज्ञान को अनुमान मे शामिल किया जा सकता है।

प्रत्यक्ष-ज्ञान नहीं, अपितु परोक्षज्ञान ही तर्कशास्त्र का पाठ्य-विषय है।

क्या तर्कशास्त्र का सम्बन्ध प्रत्यक्ष ज्ञान से है? प्रायः यह प्रश्न पूछा जाता है कि क्या तर्कशास्त्र का पाठ्य-विषय परोक्ष-ज्ञान के साथ-साथ प्रत्यक्ष-ज्ञान भी है। इस वात पर न्यायशास्त्रियो मे काफी मतभेद रहा है, परन्तु उनमे से अधिकाश इस बात से सहमत है कि तर्कशास्त्र का सम्बन्ध प्रत्यक्ष-ज्ञान से न होकर केवल परोक्ष-ज्ञान से ही है। उनके विचार मे, तर्कशास्त्र का मुख्य पाठ्य-विषय सत्य की समस्या है, अर्थात तर्कशास्त्र मे हम किसी वात की यथार्थता को सिद्ध करना चाहते है। जहॉ तक प्रत्यक्ष-ज्ञान का सम्बन्ध है, साधारण परिस्थितियो मे उनके सत्य के वारे मे कोई सन्देह नही होता। यदि किसी व्यक्ति की दृष्टि ठीक हो तो उसके द्वारा देखी गई वस्तु सत्य ही होती है। इसी प्रकार सामान्य मनुष्यो का अन्त. प्रत्यक्ष द्वारा अपनी मनोदशा का ज्ञान भी सत्य ही होता है। अत. इनमे सिद्धि का प्रश्न ही नही उठता। "इस प्रकार के सत्य पर विश्वास की जॉच करने के

लिए न तो किसी विज्ञान की सहायता पडती है और न किसी अन्य कला से हमारा ज्ञान अधिक सत्य हो सकता है।" परन्तु ज्योही हम प्रत्यक्ष ज्ञान की परिधि को पार करते है और अनुमान, आप्त-वचन या शब्द के द्वारा ज्ञानोपार्जन करते है तो अशुद्धि की सभावना उपस्थित हो जाती है। गीली धरती को देखकर हम विगत वर्पा का अनुमान लगाते हैं। यह सत्य भी हो सकता है और असत्य भी। अतः सत्यासत्य की समस्या उपस्थित हो जाती है। अतएव यह दृष्टिकोण कि तर्कशास्त्र का सम्बन्ध प्रत्यक्ष-ज्ञान से न होकर केवल परोक्ष-ज्ञान से है, अधिक सगत प्रतीत होता है।

§४ विचार (Thought)

तर्कशास्त्र को 'भापाभिव्यक्त विचारो का विज्ञान' कहा जाता है। **'विचार'** (Thought) शब्द वडा सदिग्ध है। यह भिन्न-भिन्न अर्थो मे प्रयुक्त होता है। कभी-कभी 'विचार' (Thought) तथा ज्ञान (Knowledge) समानार्थी पदो की भाँति उपयुक्त किये जाते हैं। परन्तु तर्कशास्त्र मे 'विचार' शब्द साधारण या **सामान्य ज्ञान** (General knowledge) के अर्थ मे प्रयुक्त होता है। अत· विचार ज्ञान का ही एक उप-भाग हुआ। ज्ञान विशिष्ट (particular) अथवा सामान्य (general) हो सकता है, और 'विचार' सामान्य-ज्ञान है।

'विचार' सामान्य-ज्ञान है।

'विचार' अथवा 'सामान्य ज्ञान' का अर्थ कभी-कभी तो **विचार-प्रक्रियाये** (processes of thinking) यथा—निर्धारण (Conception), निर्णय-प्रक्रिया (Judgment) तथा तर्क-प्रक्रिया (Reasoning) समझा जाता है और कभी-कभी उससे तात्पर्य **'विचार-परिणाम'** (Products of thinking), यथा—एक धारणा, एक निर्णय और एक तर्क होता है।

'विचार' का अर्थ 'विचार-प्रक्रियायें' अथवा 'विचार-परिणाम होता है।

'साधारण धारणा' (Concept) का अर्थ एक **'सामान्य भाव'**, (general idea) होता है। 'मनुष्य' और 'एक मनुष्य' पदो द्वारा व्यक्त अर्थो का अन्तर हम समझते हैं। 'एक मनुष्य' पद किसी एक व्यक्ति-विशेप के लिए प्रयुक्त होता है, परन्तु 'मनुष्य' पद किसी व्यक्ति-विशेप के लिए नही अपितु मनुष्य-

साधारण धारणा।

वर्ग के प्रत्येक व्यक्ति के लिए प्रयुक्त किया जाता है। 'मनुष्य' पद का उपयोग समस्त मनुष्य-वर्ग के लिए इस कारण होता है कि अनेको मनुष्यो की तुलना (Comparison) करने पर हमे पता चलता है कि उन सब मे समान रूप से कुछ अनिवार्य गुण (essential attributes) वर्तमान है। इन समान तथा अनिवार्य गुणो पर, जो कि उस वर्ग के प्रत्येक व्यक्ति मे पाये जाते है, एक साधारण धारणा (Concept) का निर्माण होता है। धारणा के निर्माण करने की क्रिया को **निर्धारण** (Conception) कहते है तथा उसके परिणाम को **'एक धारणा'** (a concept) का नाम दिया जाता है। **भाषा में व्यक्त करने पर एक धारणा को पद** (Term) **कहते है।**

निर्णय। दो धारणाओ की परस्पर तुलना करने की क्रिया **निर्णय** कहलाती है तथा इस तुलना के परिणाम को **एक निर्णय** (a judgment) कहते है। उदाहरण के लिए, दो धारणाये (अथवा सामान्य भाव) 'मनुष्य' एव 'मरणशील' की परस्पर तुलना की जा सकती है, तथा ऐसी तुलना का परिणाम **'मनुष्य मरणशील है'** होता है। **एक निर्णय जब भाषा में व्यक्त किया जाता है, तो उसे तर्कवाक्य** (Proposition) **कहते है।**

तर्क-पद्धति। एक या अनेक निर्णयो से एक ऐसे निर्णय पर, जिसकी उनसे पुष्टि होती हो, पहुँच जाने की क्रिया **तर्क-पद्धति** (Reasoning) कहलाती है तथा उसके परिणाम को **एक तर्क** कहते है। अतः तर्क-पद्धति मे एक से अधिक निर्णयो की आवश्यकता पड़ती है। **जब किसी तर्क को भाषा में व्यक्त करते है तो उसे एक युक्ति** (argument) कहते है। अतः प्रत्येक युक्ति मे एक से अधिक तर्कवाक्य होते है। यथा—

आश्रय. सब मनुष्य मरणशील है।
निष्कर्ष: कुछ मरणशील मनुष्य है।

अत प्रत्येक युक्ति मे हम एक या अनेक दिये हुए तर्कवाक्यो से एक अन्य तर्कवाक्य की ओर अग्रसर होते है। दिये हुए तर्कवाक्य (Proposition) को हम **आश्रय** (Premise) कहते है और जिस तर्कवाक्य पर हम पहुँचते है, वह निष्कर्ष (Con-

clusion) कहलाता है। आश्रय नाम इसलिए दिया जाता है क्योकि वह तर्कवाक्य प्रारम्भ मे ही विदित होता है और निष्कर्ष उसका अनुगामी होने के कारण उन्ही के द्वारा प्राप्त होता है।

जब हम यह कहते है कि तर्कशास्त्र का पाठ्य-विषय 'विचार' है, तो 'विचार' से तात्पर्य 'विचार-क्रिया' एव 'विचार-परिणाम' दोनों होता है।

टिप्पणी १:—धारणा (Concept) का निर्माण

धारणा का निर्माण।

धारणा किस प्रकार निर्मित होती है, यह प्रश्न तर्कशास्त्र का न होकर मनोविज्ञान (Psychology) का है। सक्षेप मे धारणा (Concept) का निर्माण निम्नलिखित क्रियाओ के द्वारा होता है:—

विभिन्न व्यक्तियो की तुलना करने से।

(१) **तुलना** (Comparison): विभिन्न व्यक्तियो अथवा वस्तुओ की तुलना यह पता चलाने के उद्देश्य से की जाती है कि उनमे कौन-कौन से अनिवार्य गुण (essential attributes) समान है तथा किन बातो मे उनमे भेद है। यथा—जब हम भिन्न-भिन्न व्यक्तियो की परस्पर तुलना करते है तो हमे पता चलता है कि वे परस्पर इस बात मे समान है कि उन सबमे सजीवता (animality) तथा विचारशीलता (Rationality) के गुण है, तथा अन्य गुण यथा ऊँचाई, रगरूप, ईमानदारी, चतुराई आदि मे वे एक दूसरे से भिन्न है। अतः तुलना के द्वारा यह पता चल जाता है कि उनमे कौन-से गुण समान तथा अनिवार्य है। इस प्रकार अननिवार्य (Non-essential) तथा सायोगिक (accidental) गुणो को छोड दिया जाता है।

उनके समान व अनिवार्य गुणो को पृथक करने से

(२) **पृथक्-करण** (Abstraction): अगले सोपान मे समान तथा अनिवार्य गुणो को असमान तथा सायोगिक गुणो से पृथक कर दिया जाता है। हम अपना ध्यान सायोगिक गुणों से हटा कर केवल अनिवार्य गुणो मे केंद्रित करते हैं। अत मनुष्य के अनिवार्य तथा समान गुण 'सजीवता' तथा 'विचारशीलता' पर विचार किया जाता है।

इन गुणों का सामान्यीकरण करने से, तथा—

(३) **सामान्यीकरण** (Generalisation) : अगले सोपान मे इन समान तथा अनिवार्य गुणो का **सामान्यीकरण** किया जाता है अर्थात् यह प्रदर्शित किया जाता है कि ये समान तथा अनिवार्य गुण केवल उन्ही व्यक्तियो मे नही पाये जाते जिनका परीक्षण किया गया, वरन इसी प्रकार के अन्य व्यक्तियो मे भी पाए जाते है। अत. यह बात मान ली जाती है कि 'सजीवता' तथा 'विचारशीलता' केवल उन्ही मनुष्यो के समान तथा अनिवार्य गुण नही है, जिनकी जाँच की गई, वरन सभी मनुष्यो के गुण है।

उनको एक नाम देने से होता है।

(४) **नामकरण** (Naming) : अन्तिम सोपान सामान्यीकरण द्वारा प्राप्त गुण-समूहो को **एक नाम दे देने** का है। जब यह हो जाता है तो उसके सामान्य भाव को भले प्रकार मस्तिष्क मे रखा जा सकता है तथा आवश्यकतानुसार उसे पुन व्यक्त किया जा सकता है एव उसे अन्य व्यक्तियों को भी बतलाया जा सकता है। इस प्रकार इन सामान्य, समान तथा अनिवार्य गुणो के समूह का नाम 'मनुष्य' रख दिया जाता है।

टिप्पणी २ : धारणा का स्वरूप : वस्तुवाद (Realsim) धारणावाद (Conceptualism) तथा नामवाद (Nominalism)

तीन दार्शनिक मत :

धारणा (Concept) के स्वरूप (Nature) की समस्या तर्कशास्त्र का विषय न होकर तत्वज्ञान (Metaphysics) का विषय है। इस सम्बन्ध में दार्शनिको के तीन विभिन्न मत है। यथा—**वस्तुवाद** (Realism), **धारणावाद** (Conceptualism) **तथा नामवाद** (Nominalism)।

वस्तुवाद के अनुसार धारणा यथार्थ वस्तु है।

वस्तुवाद (Realism) **उस दृष्टिकोण को कहते है जिसके अनुसार प्रत्येक धारणा** (Concept) **के संगत** (corresponding) **एक यथार्थ वस्तु** (Real substance) है। अतः 'मनुष्य' धारणा के संगत एक ऐसी वस्तु है जो कि कोई व्यक्ति-विशेष तो नही, अपितु जिसमे प्रत्येक व्यक्ति भाग लेता है— वह एक **'सार्वलौकिक मनुष्य'** (Universal Man) होता

है जिसमे **'मनुष्य' का तत्व** (essence) निहित रहता है और वही वास्तविक मनुष्य होता है। यह दृष्टिकोण **प्लेटो** (Plato) और **अरस्तू** (Aristotle) का है।

धारणावाद के अनुसार धारणा सामान्य भाव हैं।

धारणावाद (Conceptualism) उस दृष्टिकोण को कहते है जिसके अनुसार धारणायें (Concepts) यथार्थ वस्तुयें नहीं होतीं, प्रत्युत केवल सामान्य-भाव (general ideas) होती हैं। धारणा उसके द्वारा व्यक्त वस्तुओ के समान एव अनिवार्य गुणो का मानसिक ज्ञान होता है। धारणा अथवा सामान्य-भाव का निर्माण परिवर्तनीय (variable) एव सायोगिक (accidental) गुणो को छोडकर केवल समान (common) और अनिवार्य (essential) गुणो पर अलग विचार करने से होता है। अत 'मनुष्य' धारणा प्रत्येक मनुष्य के समान और अनिवार्य गुणो के सामान्य-भाव को कहते है। यह दृष्टिकोण लॉक (Locke) का है।

नामवाद के अनुसार, धारणा सामान्य नाम हैं।

नामवाद '(Nominalism) उस दृष्टिकोण को कहते है, जिसके अनुसार धारणा (Concept) केवल सामान्य नाम (General name) है, सामान्य-भाव (General idea) नही। **'सामान्य-भाव'** नामक कोई वस्तु नही होती—सब भाव वस्तु-विशेषो के **विशिष्ट-भाव** (Particular ideas) होते है। केवल नाम ही सामान्य होता है, जो विशेप-वस्तुओ मे समान होता है। अत धारणा शब्द-मात्र ही होती है—उससे सगत न तो यथार्थ-वस्तु ही होती है और न सामान्य-भाव ही। 'मनुष्य' वर्ग से हमारे मन मे मनुष्य-विशेप तथा समान या सामान्य नाम 'मनुष्य' का भाव जाग्रत होता है। किसी मनुष्य-विशेप के बारे मे विचार किये बिना 'मनुष्य पर विचार करना असभव है। यह दृष्टिकोण हॉब्स (Hobbes) और बर्कले (Berkeley) का है।

§ ५ विचार और भाषा: तर्कशास्त्र और व्याकरण

भाषा के विभिन्न रूप ।

भाषा (Language) शब्द का उपयोग भिन्न-भिन्न अर्थो मे किया जाता है। व्यापक अर्थ मे, जीव-जन्तुओ का स्वर यथा भौकना, चिल्लाना, गरजना, चिंघाडना आदि भी भाषा के अन्तर्गत आता है। इन्हे हम **पशुओ की भाषा** (Language of the animals) कह सकते है। मनुष्य-साम्राज्य मे भाषा का सब से सरल रूप भिन्न-भिन्न शारीरिक चेष्टाओ तथा हाव-भाव प्रदर्शन मे मिलता है, जिसका उपयोग अपने विचारो को उस व्यक्ति तक पहुँचाने मे करते है, जो उस स्थान की भाषा से पूर्णतया अनभिज्ञ हो। उदाहरण के लिए गुलीवर जब लिलीपुट के द्वीप मे पहुँचा तो वह अपनी भूख का सकेत अपना मुह खोलकर तथा उसकी ओर उँगली दिखकर कर सका। परन्तु तर्कशास्त्र मे भाषा के इन प्राथमिक मूलरूपों को स्थान नही मिलता। पशुओ की अस्पष्ट ध्वनि तथा मनुष्यो की शारीरिक चेष्टा तथा हाव-भाव एव गूगे-बहरे व्यक्तियो के भाव प्रकाशन के सकेतो को हम भाषा नही मानते।

तर्कशास्त्र में 'भाषा' की परिभाषा ।

तर्कशास्त्र में 'भाषा' से तात्पर्य मुख से बोली जानेवाली स्पष्ट ध्वनि की एक प्रणाली है, इसके अनुरूप ही लिखित शब्दों की एक प्रणाली होती है, जोकि मुखरित शब्दों की प्रतीक हो। मौखिक तथा लिखित शब्दो का उपयोग विचारो की उत्पत्ति तथा विस्तार मे सहायक होता है।

भाषा का कार्य विचारों को व्यक्त करना तथा उनका विस्तार करना है।

भाषा का कार्य (function) विचारो को व्यक्त करना तथा उनका विस्तार करना है। जटिल तथ्यो (Complex-facts) को सरल तत्त्वों में विश्लेषित करते समय भाषा सहायक होती है। धारणाओ के निर्माण मे एव विचार-क्रियाओ मे भी भाषा के कारण सुविधा हो जाती है। अन्य व्यक्तियो तक हम अपने विचार भाषा के द्वारा पहुँचा सकते है तथा स्वय सुविधापूर्वक

विचार कर सकते है। लिखित भाषा के द्वारा हम अपने विचारो का विवरण रख सकते है ताकि हर काल व स्थान के व्यक्तियो तक वे विचार पहुँच सके।

प्रायः यह प्रश्न पूछा जाता है कि **क्या भाषा के विना विचार करना संभव है?** यह प्रश्न मुख्यत तर्कशास्त्र से नही, वरन मनोविज्ञान (Psychology) से सम्बन्ध रखता है। यह सभव हो सकता है कि प्रारम्भिक सरल विचार मौखिक तथा लिखित भाषा के विना भी किये जा सके, परन्तु तर्कशास्त्र मे 'विचार' का अर्थ है 'सूक्ष्म अथवा सामान्य विचार' (abstract or general thought) और सूक्ष्म एव सामान्य विचार भाषा की निश्चित प्रणाली के बिना सभव नही हो सकते।

तर्कशास्त्र में भाषा के विना कोई 'विचार' नहीं होता।

तर्कशास्त्र और व्याकरण :—'विचार' और भाषा का घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण यह प्रश्न उठता है कि विचार-विज्ञान अर्थात् तर्कशास्त्र एव भाषा-विज्ञान अर्थात् व्याकरण (Grammar) का क्या सम्बन्ध है? इस सम्बन्ध का विवेचन करते समय हम केवल **'सार्वलौकिक व्याकरण'** (Universal Grammar) (अर्थात उन सार्वलौकिक नियमो का विज्ञान, जिनका पालन करना प्रत्येक भाषा के लिए अनिवार्य है) को ही स्थान दे सकेगे, 'विशेष व्याकरण' (Special Grammar) को नही, जिसमे उन सार्व-लौकिक नियमो का किसी भाषा-विशेष मे उपयोग किया गया है। सार्वलौकिक व्याकरण भाषा के शुद्ध उपयोग का विज्ञान है। उसका कार्य उन व्याकरणीय पदो का पारस्परिक सम्बन्ध एव उनका और उनके द्वारा व्यक्त विचारो का सम्बन्ध निश्चित करना है, जो कि प्रत्येक भाषा के लिए आवश्यक है। व्याकरण मे उन नियमो की खोज की जाती है जिनके पालन करने से हमारी भाषा शुद्ध हो सके। तर्कशास्त्र भाषाभिव्यक्त विचारो का विज्ञान है। अत.

सार्वलौकिक-व्याकरण उन नियमो का वर्णन करता है जिन्हें सब भाषायें पालन करती है।

तर्कशास्त्र तथा व्याकरण दोनों ही भाषा से सम्बद्ध है; परन्तु विभिन्न प्रकार से।

तर्कशास्त्र एव व्याकरण दोनो का ही सम्बन्ध भापा से है। ज्ञान की इन दोनो शाखाओ के इस घनिष्ठ सम्बन्ध के कारण कुछ विचारको ने तर्कशास्त्र एव व्याकरण के उद्देश्यो को बड़ा गड़वडा दिया है। उदाहरण के लिए **व्हैटली** (Whately) का कहना है **'शब्द-संगति'** (Verbal consistency) ही तर्कशास्त्र का मुख्य उद्देश्य है। परन्तु यह दृष्टिकोण नितात अशुद्ध है। यह सच है कि तर्कशास्त्र तथा व्याकरण दोनों का सम्बन्ध भाषा से है, परन्तु उनमे भेद यह है कि तर्कशास्त्र तो भाषा का उपयोग विचार के उपकरण एव माध्यम की भाति करता है और उसका मुख्य विषय 'विचार' है, भाषा से उसका सम्बन्ध परोक्ष है। तर्कशास्त्र मे भाषा की विभिन्नताओ से हमे दिलचस्पी नही होती, हम तो केवल उनमे निहित विचारो पर ही ध्यान केन्द्रित करते है, परन्तु व्याकरण का मुख्य विषय भाषा है।

§ ६ 'विचार' का आकार (Form) और विषयवस्तु (Matter)

भौतिक वस्तुओं का 'आकार' तथा 'विषय-वस्तु'।

प्रत्येक **भौतिक पदार्थ** का एक निश्चित **आकार,** (Form) होता है तथा वह किसी **विषयवस्तु** (Matter) द्वारा निर्मित होता है। उदाहरण के लिए स्वर्णमुद्रा का आकार गोल होता है तथा उसकी विषयवस्तु (Matter) स्वर्ण है। मेज का आकार गोल, अडे-जैसा अथवा आयत-जैसा हो सकता है तथा उसकी विषयवस्तु लकडी होती है। अतः इस प्रकार के सब पदार्थो का कोई न कोई आकार (Form) अवश्य होता है और वह किसी न किसी विषयवस्तु (Matter) द्वारा निर्मित होता है। बिना आकार के विषयवस्तु नही हो सकती तथा बिना विषयवस्तु के आकार भी सभव नही होता। आकार (Form) तथा विषयवस्तु (Matter) सर्वदा साथ-साथ रहते है तथा ये दोनो बाते एक ही पदार्थ में पाई जाती है। परन्तु यह बात सभी को ज्ञात है कि पदार्थ का आकार अथवा विषयवस्तु बिना एक दूसरे पर प्रभाव डाले हुए भी परिवर्तित हो सकते है। भिन्न-भिन्न विशेष

वस्तु से निर्मित वस्तुये एक ही आकार की हो सकती है; इसी प्रकार भिन्न-भिन्न आकार की वस्तुयें एक ही विषयवस्तु द्वारा निर्मित हो सकती है। उदाहरण के लिए कोई घडी विभिन्न आकारो की हो सकती है—यथा, वर्गाकार, आयताकार, षट्-भुजाकार, बहुभुजाकार आदि; और इसके विपरीत उसकी विषय-वस्तु भी भिन्न-भिन्न हो सकती है; यथा वह स्वर्ण, रजत अथवा निकिल की हो सकती है। एक ही साँचे के बने हुए सब पदक (medal) एक ही आकार (Form) के होते है, परन्तु उनकी विषयवस्तु (Matter) स्वर्ण, रजत, ताँबा, निकिल आदि हो सकती है।

विचार का आकार (Form) एव विषयवस्तु (Matter) :—

'विचार' का आकार तथा विषयवस्तु।

जिस प्रकार भौतिक वस्तुओ का आकार एव विषयवस्तु का अन्तर हमे तुरन्त ज्ञात हो जाता है, उसी प्रकार का भेद विचार के आकार एव विषयवस्तु मे भी होता है। **विचार की विषयवस्तु से हमारा तात्पर्य उन पदार्थों से होता है, जिनके बारे मे हम विचार करते है और विचार के आकार से हमारा अर्थ वह प्रणाली अथवा प्रक्रिया है, जिसके द्वारा हम विचार करते है।**

तर्कशास्त्र मे 'विचार' को भाषा मे व्यक्त करने से पद (Terms), **तर्कवाक्य** (Propositions), **युक्ति** अथवा **तर्क-पद्धति** (Reasoning) बनते है। इनमे से प्रत्येक मे आकार-सम्बन्धी तथा विषयवस्तु-सम्बन्धी अन्तर होता है। 'श्वेत' तथा 'अश्वेत' पदो का आकार क्रमश स्वीकारात्मक (positive) तथा निषेधात्मक (Negative) है और उनकी विषयवस्तु उनके अर्थ मे निहित है। इसी प्रकार इस तर्कवाक्य (proposition) को देखिए—'सब मनुष्य मरणशील है'। इस तर्कवाक्य का अर्थ तो इसकी विषयवस्तु (Matter) है तथा इसका आकार (Form) सार्वलौकिक-स्वीकृति (Universal Affirma-

tive) का है। तर्कपद्धति के लिए निम्नलिखित युक्ति देखिए :—

सब मनुष्य मरणशील है।
सब नरेश मनुष्य है।
∴ सब नरेश मरणशील है।

आकार मे यह एक 'न्यायवाक्य' या 'सिलोजिज्म' (Syllogism) है तथा इसकी विषयवस्तु (Matter) इसके तीनों तर्कवाक्यो द्वारा व्यजित अर्थ है।

भौतिक-पदार्थो की भाति विचारकी विषय-वस्तु एव आकार मे से किसी एक मे परिवर्तन हो सकता है और ऐसा होने पर भी दूसरा ज्यो का त्यो रहता है। निम्नलिखित तर्कवाक्य देखिए :—

(१) सब मनुष्य मरणशील है।
(२) सब श्वान चतुष्पदी है।

इन दोनो तर्कवाक्यो का आकार समान है अर्थात् सार्वलौकिक स्वीकृति (Universal affirmative) है: परन्तु उनका अर्थ अर्थात् विषयवस्तु भिन्न-भिन्न है।

अब निम्नलिखित तर्कवाक्य देखिए :—

(१) सब मनुष्य मर्त्य है।
(२) कोई मनुष्य अमर्त्य नही है।

इन दोनो तर्कवाक्यो (propositions) का आकार (Form) भिन्न-भिन्न है, क्योकि पहला तर्कवाक्य स्वीकारात्मक (Positive) तथा दूसरा निषेधात्मक (Negative) है। परन्तु उन दोनो का अर्थ समान होने के कारण उनकी विषयवस्तु (Matter) अभिन्न है।

पद (Term) तथा तर्क-पद्धति का उदाहरण लेकर भी यही बात दर्शायी जा सकती है।

§ ७ आकारगत (Formal) एव वास्तविक सत्य

अब हम आकारगत (Formal) एव वास्तविक (Material) यथार्थ अथवा सत्य (Truth) पर विचार करेगे।

आकारगत सत्य (Formal Truth) से तात्पर्य विचारो की पारस्परिक आत्मसंगति (Self-consistency) का होना तथा आत्मविरोध (Self-contradiction) का अभाव है। प्रश्न यह है—क्या 'विचार' आत्मसंगत है? क्या उसमे आत्मविरोध तो नही है? क्या यथाकथित विचार वास्तव मे विचार है भी अथवा वह एक अर्थहीन शब्द-मात्र ही है? उदाहरण के लिए व्यजक 'गोल-वर्ग' मे आत्मविरोध (Self-contradiction) है। यही नही कि ऐसी वस्तु असत् है, वरन् उसके सम्बन्ध मे विचार ही नही किया जा सकता। वह स्वतः ही अविचारणीय एव असम्भव है। उसकी अयथार्थता की पुष्टि करने के लिए अन्यत्र खोज नही करनी पडती। वह स्वय ही अयथार्थ है।

आकारगत सत्य का अर्थ आत्म-संगति है।

वास्तविक सत्य (Material Truth) से तात्पर्य हमारे विचारों की बाह्य-जगत् की वस्तुओं से संगति है। यदि कभी हमे यह पता चले कि हमारे विचार बाह्य-जगत् की किसी भी वस्तु से संगत नही है, अर्थात् हमारे विचार वास्तविकता के प्रतिकूल है, तो हमारे विचारों मे वास्तविक सत्य (Material Truth) नहीं होगा। वे वास्तव मे अयथार्थ होगे। अतएव यदि हम 'स्वर्णपर्वत' 'हवाई महल', 'दुग्धसागर' आदि की खोज करने लगे, तो वह व्यर्थ होगी। ये वस्तुये तो मिल सकती है, कल्पना के लोक मे, अयथार्थता के राज्य मे। वास्तविक लोक मे वे असत् है। दूसरी ओर, यदि धूम्र की उपस्थिति को देखकर हम यह निष्कर्ष निकाले कि उस स्थान पर अग्नि भी उपस्थित है, तथा उस स्थान पर स्वय जाकर हम देख भी सके कि वहाँ वास्तव मे अग्नि है, तो हमारे

वास्तविक सत्य का अर्थ विचारो की बाह्य-वस्तुओं से संगति है।

तर्क का वास्तविक सत्य पुष्ट हो जाता है। कोलम्वस ने अपनी गणना के द्वारा अनुमान लगाया था कि एक महाद्वीप, जो तवतक अज्ञात था, वास्तव मे सत् था। उसने अज्ञात समुद्रों की यात्रा की और इस प्रकार अमेरिका की खोज हुई। अतः उसके अनुमान के वास्तविक सत्य का प्रदर्शन हो गया। रसायन-विज्ञान हमें बतलाता है कि दो गैसे हाइड्रोजन और आक्सीजन जब किसी निश्चित अनुपात में मिला दी जाती है, तो पानी वनता है। जब हम स्वयं प्रयोग करके हाइड्रोजन और आक्सीजन के संयोग से पानी बना लेते है, तो उपर्युक्त सूचना की पुष्टि हो जाती है।

तर्कपद्धति के आकारगत तथा वास्तविक सत्य

अब हम युक्तियो अथवा तर्क-पद्धति के आकारगत (Formal) एवं वास्तविक (Material) सत्य का विवेचन करेगे। **किसी भी सत्य में आकारगत सत्य तब होता है**, जबकि निष्कर्ष उस आकार के नियमो का पूर्ण पालन करके निकाला गया हो। **किसी तर्क में वस्तुगत सत्य तब होता है** जबकि वे तर्कवाक्य, जिनसे वह युक्ति निर्मित हुई है, वास्तविक पदार्थों के सदृश हो। निम्नलिखित तर्क-पद्धति को देखिए :—

सब मनुष्य मर्त्य है।
सव नरेश मनुष्य है।
∴ सब नरेश मर्त्य है।

इसमें तर्क के नियमो का पूर्णरूप से पालन किया गया है, अतः इसमे आकारगत सत्य है। इसके तीनो तर्क-वाक्य यथा—'सब मनुष्य मर्त्य है', 'सब नरेश मनुष्य है', तथा 'सब नरेश मर्त्य है' वास्तविकता के सगत है। अतः उनमे वास्तविक-सत्य भी है।

—सर्वदा साथ साथ नहीं रहते।

आकारगत सत्य एवं वास्तविक सत्य सर्वदा साथ-साथ नही रहते। कोई युक्ति ऐसी भी हो सकती है कि उसमे आकारगत सत्य तो हो, परन्तु वास्तविक-सत्य न हो।

उदाहरण के लिए,

सब मनुष्य अमर्त्य हैं।
सब नरेश मनुष्य हैं।
∴ सब नरेश अमर्त्य हैं।

इस युक्ति में आकारगत सत्य तो है, परन्तु वास्तविक सत्य नही है। इसमे तर्क के नियमो का तो पूर्ण रूप से पालन किया गया है, अतः **उसका आकार शुद्ध है।** परन्तु इसमे **वास्तविक सत्य नहीं है** क्योंकि इसका आश्रय 'सब मनुष्य अमर्त्य है' भी वास्तव में अयथार्थ है।

आकारगत एवं वास्तविक सत्य के भेद के अनुसार तर्कशास्त्री तर्कशास्त्र के भी दो रूप मानने लगे है ; यथा—आकारगत तर्कशास्त्र (Formal Logic) तथा वास्तविक या वस्तुगत तर्कशास्त्र (Material Logic)। इनका विवेचन अन्यत्र किया जायेगा।

§८ विज्ञान (Science)

साधारण ज्ञान की अपेक्षा

विज्ञान तथा साधारण ज्ञान (Popular knowledge) :—**विश्व के किसी एक क्षेत्र से सम्बन्धित सुसंबद्ध ज्ञान-राशि को विज्ञान** (Science) कहते है। साधारण ज्ञान (Popular knowledge) की अपेक्षा विज्ञान (Science) में निम्नलिखित विशेपताये है।

विज्ञान केवल एक क्षेत्र का अध्ययन करता है।

(क) विज्ञान विश्व के किसी एक क्षेत्र (department) का ही अध्ययन करता है, जबकि साधारण व्यक्ति ससार के सभी क्षेत्रो की बातो मे रुचि रखता है।

साधारण व्यक्ति ससार की प्राय सभी बातो के बारे मे कुछ जानता है। वह विभिन्न पौधो एव उनके विकास के बारे मे कुछ ज्ञान रखता है ; भिन्न-भिन्न जन्तुओ की आदतो से भी वह भिज्ञ होता है , अपने साथी अन्य मनुष्यो की विभिन्न रुचियो का ज्ञान भी उसे होता है, ऋतुओ का परिवर्तन, मौसम की सन्दिग्धता,

ज्वार और भाटा, सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण इत्यादि विभिन्न क्षेत्रो का थोडा बहुत ज्ञान उसे होता ही है। इसके विपरीत वैज्ञानिक ज्ञान विश्व के किसी एक ही क्षेत्र से सम्बन्धित होता है। वनस्पति विज्ञान (Botany) पेड-पौधो का विज्ञान है, जन्तु-विज्ञान (Zoology) जीव-जन्तुओ का विज्ञान है, मनोविज्ञान (Psychology) मन का विज्ञान है, रसायन पदार्थ-विज्ञान है, नक्षत्र-विज्ञान (Astronomy) आकाशस्थित ज्योतिपुजो का विज्ञान है, इत्यादि। प्रत्येक विज्ञान का क्षेत्र अपने विभाग तक ही सीमित है और इस आत्मनिर्धारित सीमा के परे वह नही जाता। यह बात सच नही है कि विश्व का एक विभाग दूसरे विभाग से पूर्णतया पृथक हो। अत इस दृष्टिकोण से कोई भी विज्ञान केवल अपने ही क्षेत्र मे सीमित नही रह सकता। परन्तु विज्ञान का प्रत्यक्ष सम्बन्ध केवल अपने ही विभाग से होता है, यह दूसरी बात है कि परोक्ष-रूप मे वह दूसरे विभाग का अध्ययन भी कर ले, जिससे उसके विभाग को सहायता मिलती है।

उसका ज्ञान क्रमानुगत, सुसंगठित होता है।

(ख) वैज्ञानिक ज्ञान **क्रमानुगत, सुसंगठित तथा व्यापक,** (general) होता है, जबकि साधारण ज्ञान प्राय असगत एव अस्तव्यस्त होता है।

साधारण ज्ञान की यह विशेषता होती है कि वह असगत एव अस्तव्यस्त होता है। इधर-उधर विखरे हुए तथ्यो का वह सकलनमात्र होता है, जिससे उनके पारस्परिक सम्बन्ध का ज्ञान भले प्रकार नही हो पाता। विज्ञान इन विखरे हुए तथ्यो को एक व्यापक नियम (general law) के अन्तर्गत रखता है और इस प्रकार उन्हे सयत करता है। विज्ञान विशेष तथ्यो की उपेक्षा नही करता, प्रत्युत उन्हे एकत्रित करता है, तथा उनका पारस्परिक सम्बन्ध ज्ञात करके सुसयत कर देता है।

विशेष उपकरणों का उपयोग करता है।

(ग) विज्ञान अपनी **विशेष प्रकार की प्रणाली एवं उपकरणों** (appliances) **का प्रयोग,** करता है, ताकि उसके द्वारा उपार्जित ज्ञान सत्य एव निश्चित हो सके। परन्तु साधारण ज्ञान विधिहीन निरीक्षण के द्वारा प्राप्त होता है।

साधारण व्यक्ति अपने ज्ञान की सामग्री एकत्रित करते समय

अपनी ज्ञानेन्द्रियो (Sense organs) पर ही पूर्ण भरोसा कर लेता है और उसका ज्ञान उसकी पूर्वनिर्मित धारणाओं के अनुरूप पक्षपातपूर्ण होता है। परन्तु वैज्ञानिक अपने विषय का अध्ययन निष्पक्ष करता है और अपने ज्ञान की परख के लिए कभी-कभी विशेष यन्त्रों और उपकरणो की सहायता लेता है। आकाश-स्थित ज्योतिपुजो का निरीक्षण करने के लिये नक्षत्र-वैज्ञानिक दूरदर्शक यन्त्र का उपयोग करता है। रसायन-वैज्ञानिक बहुत ही शुद्ध तुला का उपयोग पदार्थों का भार ज्ञात करने के लिये करता है; जीवाणु-विशेषज्ञ अणुवीक्षण-यन्त्र की सहायता अनेक ऐसी वस्तुओं के निरीक्षण करने के लिये लेता है, जो इतनी सूक्ष्म होती है कि कोरी आँख से नही देखी जा सकती। इत्यादि।

वैज्ञानिक ज्ञान और साधारण ज्ञान मे अंशमान का भेद है।

अत: **वैज्ञानिक ज्ञान एवं साधारण ज्ञान में प्रकार का अन्तर नहीं, वरन केवल अंशमान का भेद है।** साधारण ज्ञान की अपेक्षा वैज्ञानिक ज्ञान अधिक सयत, सुसम्बद्ध एव निश्चित होता है।

तर्कशास्त्र एक विज्ञान है।

तर्कशास्त्र एक विज्ञान है, उसका पाठ्य-विषय तर्क-पद्धति एव उसके अधीन कुछ अन्य क्रियाये है। वह विधिपूर्वक एव सुसम्बद्ध रीति से उन दशाओ का अनुसधान करता है जिनका पालन करने से 'विचार' विशुद्ध हो सके, तथा विचार-सम्बन्धी दोषो से बचा जा सके और दोषो की पकड हो सके। अत उसका स्तर साधारण ज्ञान के स्तर से ऊँचा होता है क्योकि वह अधिक विधि-वत् और निश्चित होता है।

टिप्पणी —विज्ञान . वर्णनमूलक (Positive) एव आदर्शमूलक (Normative)

वर्णनमूलक और आदर्श-मूलक विज्ञान।

विज्ञान के दो विभाग किये जाते है —वर्णनमूलक (Positive) तथा आदर्शमूलक (Normative)। वर्णनमूलक **विज्ञान** पदार्थों के वास्तविक रूप का वर्णन करता है तथा **आदर्शमूलक** विज्ञान पदार्थों के उस रूप का विवेचन करता है,

जैसा कि उनको होना चाहिये। वस्तुये जैसी है, तथा जैसी उनको होनी चाहिये—वास्तविक तथा आदर्श—का अन्तर बड़ा स्पष्ट हैं। उदाहरण के लिये एक मनुष्य प्रायः यह जानता है कि उसे क्या करना चाहिये, परन्तु वास्तव मे वह उससे भिन्न कार्य करता है। वह जानता है कि उसे सच बोलना चाहिये परन्तु वास्तव मे वह प्राय. सच नही बोलता। जो विज्ञान वस्तुओ के वास्तविक रूप का वर्णन करता है, 'वर्णनमूलक विज्ञान' (Positive Science) कहलाता है। आदर्शमूलक विज्ञान (Normative Science) अपने समक्ष एक आदर्श (Norm or ideal) रखता है। तर्कशास्त्र आदर्शमूलक विज्ञान है क्योकि वह 'विचार' एव तर्क-पद्धति' के वास्तविक रूप का अध्ययन नही करता अपितु, इस वात का अध्ययन करता है कि उनको किस प्रकार का होना चाहिये। तर्कशास्त्र अपने सम्मुख सत्य का आदर्श रखता है और उन दशाओं की खोज करता है, जिनका पालन करने से उस सत्य के आदर्श पर पहुँचा जा सके। जो विज्ञान विचारो के वास्तविक रूप का अध्ययन करता है, मनोविज्ञान (Psychology) कहलाता है। (देखिए खण्ड § १४) ।

§९ विज्ञान (Science) तथा कला (Art)

'विज्ञान' हमें जानना और 'कला' करना सिखलाती है।

विज्ञान (Science) उस सुसम्बद्ध ज्ञानराशि को कहते है जो कि प्रकृति के किसी एक क्षेत्र से सम्बन्धित हो। **कला** (Art) हमे यह बतलाती है कि उस ज्ञान को किसी विशेष उद्देश्य को सामने रखते हुए किस प्रकार उपयोगमे लाया जा सकता है। **विज्ञान हमें 'जानना'** (to know) **तथा कला 'करना'** (to do) **सिखलाती है।** वास्तव मे **जानना** मूल रूप मे अनिवार्य है क्योकि उसी की सहायता से **'करना'** सम्भव हो सकता है। प्रत्येक ज्ञान का उद्देश्य अभ्यास अथवा आचरण का निर्देशन है और

मनुष्य जाति की आवश्यकतानुसार अभ्यास के क्षेत्र विविध है। इन क्षेत्रो को कलाये (Arts) कहते है।

इस प्रकार सब कलाये ज्ञान पर आधारित है। यह ज्ञान वैज्ञानिक ज्ञान हो सकता है अथवा साधारण मनुष्य का ज्ञान। एक कला यदि स्वय कला द्वारा उपार्जित ज्ञान पर ही आधारित हो तो उसे **व्यावहारिक कला** (Empirical Art) कहते है। परन्तु यदि उसका आधार वैज्ञानिक ज्ञान हो तो उसे **वैज्ञानिक कला** (Scientific Art) कहते है। जिस प्रकार साधारण ज्ञान वैज्ञानिक ज्ञान से पहले आता है,उसी प्रकार व्यावहारिक कला वैज्ञानिक कला की पूर्ववर्त्तिनी है। उदाहरण के लिए, पोतकला को लीजिये। प्रारम्भ मे नाविकों को केवल उसी ज्ञान से सतोप हो जाता था, जिसे वे अपनी यात्राओ से उपार्जित करते थे। परन्तु आजकल पोतकला गणित, ज्योतिर्विज्ञान, प्रकाश-विज्ञान आदि जैसे प्रगतिशील विज्ञानो से प्राप्त ज्ञान पर आधारित की जाती है।

व्यावहारिक कला तथा वैज्ञानिक कला।

हम आगे देखेगे कि तर्कशास्त्र एक 'विज्ञान' तथा 'कला' दोनों है। वह वैज्ञानिक ज्ञानराशि प्रस्तुत करता है, परन्तु साथ ही वह यह भी बतलाता है कि उस ज्ञानराशि का वास्तविक व्यवहार में किस प्रकार उपयोग हो।

§ १० तर्कशास्त्र की परिभाषा

तर्कशास्त्र की परिभापा निम्नलिखित हो सकती है :—**तर्कशास्त्र विशुद्ध विचार के व्यवस्थापक सिद्धान्तों (Regulative laws) का विज्ञान है। अर्थात् वह उन सिद्धान्तो का विज्ञान है जिनके अनुरूप हमारे विचार होने चाहिए ताकि वे विशुद्ध हो सकें।**

विज्ञान।

विज्ञान किसी विशेष-पाठ्य विषय से सम्बन्धित ज्ञान-राशि को कहते है। सामान्य ज्ञान की अपेक्षा वह विश्व के केवल एक

क्षेत्र का अध्ययन करता है, ज्ञान के सम्पूर्ण क्षेत्र का नही। परन्तु विज्ञान अव्यवस्थित तथ्यो को सयत करके उनके एकीकरण का प्रयत्न करता है और उनको एक सामान्य-नियम के अन्तर्गत लाता है। विज्ञान वर्णनमूलक एव आदर्शमूलक हो सकता है, जबकि वह क्रमश. वस्तुओ के वास्तविक रूप तथा उनके उस रूप का अध्ययन करता है, जैसा कि उनको होना चाहिए। तर्कशास्त्र एक **विज्ञान** है, उसका पाठ्य-विषय, तर्क-पद्धति तथा कुछ अन्य अधीन क्रियाये है और वह बडी सुसयत रीति से उन दशाओ की खोज करता है, जिनके पालन करने से हमारे विचार विशुद्ध हो सके तथा दोषो का निवारण एव उनकी पकड हो सके। अतः वह, साधारण ज्ञान की अपेक्षा अधिक सयत और निश्चित होने के कारण, उससे अधिक उच्च है। तर्कशास्त्र **आदर्शमूलक विज्ञान** है क्योकि वह 'विचार' की उन दशाओ का अध्ययन नही करता, जैसी कि (उनको होना चाहिए) अपितु 'विशुद्ध विचार' (अर्थात् जैसा कि उसको होना चाहिए) का अध्ययन करता है। वह अपने सामने एक आदर्श रखता है, यथा—'सत्य' का आदर्श, और उन दशाओ की खोज करता है, जिनके पालन करने से 'विचार' शुद्ध हो सकते है। 'व्यवस्थापक विज्ञान' ('Regulative Science') शब्द के उपयोग से यह तात्पर्य है कि तर्कशास्त्र के सैद्धातिक (theoretical) एवं प्रयोगात्मक (Practical) दोनो पहलू है, अर्थात् वह विज्ञान तथा 'कला' दोनो है। उसका सैद्धांतिक-पक्ष 'विज्ञान' शब्द से तथा प्रयोगात्मक-पक्ष 'व्यवस्थापक' शब्द से व्यजित होता है।

नियम।

नियम या सिद्धान्त सामान्य-सत्य (general Truth) के विवरण को कहते है, अर्थात् वह एक ऐसा सत्य होता है जो कि उस विज्ञान मे सार्वलौकिक रूप से चरितार्थ होता है। विशिष्ट-सत्य (Particular Truth) उससे इस दिशा मे भिन्न

होता है कि वह केवल कुछ दशाओ मे ही चरितार्थ हो सकता है। **'व्यवस्थापक सिद्धान्त''** वे सामान्य-सत्य होते है जो कि प्रत्येक 'विचार' में अन्तर्निहित रहते है अर्थात् प्रत्येक 'विचार' उन्ही के अनुसार होता है और जबतक 'विचार' उनका पालन नही करता, वह शुद्ध नही होता।

विचार।

'विचार' शब्द बड़ा सन्दिग्ध है ; उसका अर्थ **विचार-प्रक्रिया'** (Process of thinking) और कभी **'विचार परिणाम'** (Product of thinking) होता है। विचार-प्रक्रियाये **निर्धारण** (Conception) **निर्णय-क्रिया** (Judgment) **एवं तर्क-पद्धति** (Reasoning) है ; उनके परिणाम एक धारणा (a concept), एक निर्णय (a judgment) और एक 'तर्क' है। भाषा मे व्यक्त करने पर धारणा, निर्णय और तर्क को क्रमश. पद (Term), तर्कवाक्य (Proposition) तथा युक्ति (Argument) कहते है। तर्कशास्त्र 'विचार' की प्रक्रियाये एव 'परिणाम' दोनो का अध्ययन करता है। 'विचार' शब्द से यह भी तात्पर्य निकलता है कि तर्कशास्त्र का सम्बन्ध केवल तर्क-पद्धति (Reasoning) से ही नहीं, वरन् विचार की कुछ अन्य अधीन गौण-क्रियाओ, यथा परिभाषा (Definition), वर्गीकरण (Classification), नामकरण (Naming) आदि से भी है।

विशुद्धि : आकारगत तथा वस्तुगत।

'विशुद्धि' (Validity) अथवा 'सत्य' (Truth) शब्दका उपयोग भी दो अर्थो मे किया जाता है। संकीर्ण अर्थ मे 'विशुद्धि' को **'आकारगत-सत्य'** (Formal Truth) या 'आत्म-संगति' (Self-consistency) का समानार्थी समझा जाता है और इस दृष्टिकोण से यदि 'विचार' आत्मसंगत हो तो वह विशुद्ध होता है । विस्तीर्ण अर्थ मे 'विशुद्धि' का अर्थ केवल आकारगत सत्य ही नही, अपितु वस्तुगत-सत्य (Material

Truth) भी है, अर्थात् 'विचारो' वाह्य-जगत् की वस्तुओ से सगति भी है। अत 'विचार' के विशुद्ध होने के लिए यह आवश्यक है कि उसमे केवल आत्मविरोध (Self-contradiction) का अभाव होना ही पर्याप्त नही है, वरन वह वास्तविक वस्तुओ के अनुरूप भी होना चाहिए। तर्कशास्त्रियो मे इस वातमे वडा मतभेद है कि तर्कशास्त्र का सम्बन्ध केवल 'विचार' के आकारगत सत्य (Formal Truth) से ही है अथवा वस्तुगत सत्य (Material Truth) से भी। **आकारगत-तर्कशास्त्री,** (Formal Logicians) यथा **हैमिल्टन** (Hamilton) **मैंन्सल** (Mansel) आदि का कहना है कि तर्कशास्त्र का सम्बन्ध केवल 'विचार' के आकारगत नियमो का अध्ययन करना है। अत: वे तर्कशास्त्र को केवल 'आकारगत-तर्कशास्त्र' के रूप मे मानते हैं। परन्तु **वस्तुगत** (Material) **तर्कशास्त्रियों** का कहना है कि ऐसा करने से तर्कशास्त्र का क्षेत्र वडा सकुचित हो जाता है। 'सत्य' मूलत: एक ही होता है ; 'आकारगत सत्य' तथा 'वस्तुगत-सत्य' 'सत्य' के दो प्रकार नही है, परन्तु एक ही 'सत्य' के दो पहलू हैं। सुविधा के लिये ही उनका अध्ययन पृथक्-पृथक् किया जाता है और पृथक्-पृथक् अध्ययन किए गए तथ्यो को एक ही पद्धति के अवयव समझना चाहिए क्योकि 'सत्य' वास्तव मे एक ही होता है।

सारांश : साराश यह कि तर्कशास्त्र ज्ञान की सुसम्वद्ध राशि है जिसमे उन क्रियाओ एव परिणामो का अध्ययन किया जाता है जिनके द्वारा विशुद्ध विचारो का नियत्रण होता है ; और उसमे उन नियमों का प्रतिपादन किया जाता है, जिनके पालन करने से 'विचार' विशुद्ध हो पाता है। उसका पाठ्य-विषय आकारगत-सत्य ही नही अपितु वस्तुगत-सत्य भी है।

टिप्पणी १ : आकारगत (Formal) एव वस्तुगत (Material) तर्कशास्त्र

आकारगत एव वस्तुगत सत्य के अनुरूप ही तर्कशास्त्रियो ने तर्कशास्त्र के दो विभाग किये है, यथा आकारगत तर्कशास्त्र (Formal Logic) और वस्तुगत तर्कशास्त्र (Material Logic)।

आकारगत तर्कशास्त्र का सम्बन्ध आत्मसगति से है, तथा

आकारगत तर्कशास्त्र का उद्देश्य केवल आकारगत सत्य (Formal Truth) है। उसका सम्बन्ध 'विचार' के आकारो अर्थात् 'विचार-प्रक्रिया' से है। वह उन पदार्थो पर ध्यान नही देता, जिनके बारे मे हम विचार करते है। आकारगत तर्कशास्त्र मे हम आश्रयो (premises) के सत्य पर सन्देह नही करते—हम इस बात को सिद्ध मान लेते है कि वे सत्य है और हम केवल इस बात का निरीक्षण करते है कि उनसे निष्कर्ष विशुद्धतापूर्वक निकलता है अथवा नही : आकारगत तर्कशास्त्र को 'शुद्धतर्कशास्त्र' (Pure Logic) अथवा 'सगति का तर्कशास्त्र' (Logic of Consistency) कहते है।

वस्तुगत तर्कशास्त्र का सम्बन्ध वाह्य-संगति से है।

वस्तुगत तर्कशास्त्र का उद्देश्य केवल आकारगत सत्य ही **नही, वरन 'वास्तविक सत्य'** भी है। वास्तविक तर्कशास्त्र इस बात का अध्ययन करता है कि हमारे विचार के विषय विश्व की वास्तविक वस्तुओ के अनुरूप है अथवा नही। वस्तुगत तर्कशास्त्र को **'प्रयोगात्मक तर्कशास्त्र'** (Applied Logic) भी कहते है।

तर्कशास्त्रियों के दो वर्ग :

आकारगत एव वस्तुगत तर्कशास्त्री (Formal and Material Logicians) .—तर्कशास्त्रियों मे इस प्रश्न पर बड़ा मतभेद है कि क्या तर्कशास्त्र का पाठ्यविषय वास्तविक सत्य (Material Truth) भी है। आकारगत तर्कशास्त्री, यथा—**हैमिल्टन** (Hamilton), **मैन्सल** (Mansel) और **टॉमसन**

(Thomson) का कहना है कि तर्कशास्त्र का विषय केवल 'विचार' का आकार (Form) है, 'विचार' की विषयवस्तु (Matter) नही। हैमिल्टन के अनुसार, "**तर्कशास्त्र विचार के आकारगत नियमो** (Formal Laws) **का विज्ञान है।** अत आकारगत तर्कशास्त्रियो के अनुसार "**तर्कशास्त्र सत्य का नहीं, अपितु संगति** (Consistency) **का विज्ञान है।**" इस कथन मे 'सत्य' से तात्पर्य 'वस्तुगत सत्य' (Material Truth) से है, तथा 'सगति' से तात्पर्य आत्मसगति (Self consistency) अथवा आकारगत-सत्य (Formal Truth) से है। अतः इस कथन के अनुसार तर्कशास्त्र का पाठ्यविषय केवल आकारगत-सत्य है, वस्तुगत-सत्य नही। यही बात इस कथन से स्पष्ट होती है कि **तर्कशास्त्र का सम्बन्ध 'विचार' के 'विस्तार'** (amplification) **से न होकर केवल 'विचार' की व्याख्या** (explication) **से है।** व्याख्या स्पष्टीकरण की क्रिया है, अतः वह आकारगत तर्कशास्त्र का काम है , और 'विस्तार' वस्तुगत तर्कशास्त्र का विषय है।

आकारगत तर्कशास्त्री तर्कशास्त्र का बड़ा संकीर्ण क्षेत्र मानते हैं।

शुद्ध दृष्टिकोण यह है कि **तर्कशास्त्र का विषय आकारगत सत्य एवं वस्तुगत सत्य दोनो ही है।** अत तर्कशास्त्र आकारगत भी हो सकता है और वस्तुगत भी। तर्कशास्त्र को केवल आकारगत समझना बहुत सकुचित दृष्टिकोण है और वह इस त्रुटिपूर्ण धारणा पर आधारित है कि 'विचार' के 'आकार' को उसकी 'विषयवस्तु' से बिल्कुल पृथक किया जा सकता है। आकारगत तर्कशास्त्र एवं वस्तुगत तर्कशास्त्र को पृथक्-पृथक् नही रक्खा जा सकता; वे एक ही विज्ञान के दो विभिन्न पहलू हैं। केवल सुविधा के कारण उनका अध्ययन पृथक्-पृथक् होता है। 'सत्य' अनिवार्यत एक है , अत भिन्न-भिन्न बाते पृथक्-पृथक् अध्ययन किए जाने पर भी एक सम्पूर्ण तथ्य के अनिवार्य अवयव समझे जाने चाहिए।

निगमन (Deductive) तथा उद्गमन (Inductive) तर्कशास्त्र प्राय: यह प्रश्न उठता है कि आकारगत एव वस्तुगत तर्कशास्त्र के पारस्परिक अन्तर का निगमन (Deductive Logic) और उद्गमन (Inductive Logic) के पारस्परिक अन्तर से क्या सम्बन्ध है? कभी-कभी एक ओर तो आकारगत तथा निगमन-मूलक तर्कशास्त्र को और दूसरी ओर वस्तुगत तथा उद्गमन-मूलक तर्कशास्त्र को समानार्थी समझा जाता है। प्राय निगमन तथा उद्गमन तर्क-पद्धति के दो प्रधान रूप माने जाते है, अत· वे क्रमश: आकारगत तथा वस्तुगत तर्कशास्त्र के समतुल्य हुए। परन्तु तर्कशास्त्र का सम्बन्ध केवल तर्क से ही नही है, प्रत्युत उसके अन्तर्गत कुछ गौण-प्रक्रियाये (Subsidiary Processes) भी आती है। अत. आकारगत तर्कशास्त्र मे निगमनमूलक तर्क के अतिरिक्त कुछ गौण-प्रक्रियाओ—यथा, पदो (Terms) और तर्कवाक्यो (Propositions) का आकार, आकारगत-परिभापा (Formal Definition), एव विभाग (Division) की दशाये इत्यादि का भी समावेश होता है और वस्तुगत तर्कशास्त्र मे उद्गमन-मूलक तर्क के अतिरिक्त कुछ गौण-प्रक्रियाये, यथा— परिभाषा (Definition), वर्गीकरण (Classification) नामकरण (Naming) आदि की वस्तुगत दशाये भी सम्मिलित है।

एक ओर निगमन तथा आकारगत तर्कशास्त्र को, और दूसरी ओर उद्गमन और वस्तुगत तर्कशास्त्र को समानार्थी समझा जाता है।

कभी-कभी निगमनमूलक एव आगमन-मूलक तर्क-शास्त्र का सम्बन्ध केवल तर्क से ही समझा जाता है, अन्य गौण-क्रियाओ से नही।

टिप्पणी २ : तर्कशास्त्र का क्षेत्र (Scope)

तर्कशास्त्र के क्षेत्र से तात्पर्य उस पाठ्य-विपय से है, जिनका वह अध्ययन करता है—जिन तक यह विज्ञान अपनी खोज सीमित रखता है। प्रत्येक विज्ञान के अध्ययन का क्षेत्र सीमित होना है और किसी विज्ञान की परिभापा करते समय हम इस बात का निर्णय करते है कि उसके अध्ययन का क्षेत्र कितना और क्या है?

तर्कशास्त्र की परिभापा विशुद्ध विचार के विधानात्मक नियमो

के विज्ञान के रूप मे दी जा चुकी है। अत तर्कशास्त्र की खोज और अध्ययन का विपय विशुद्ध विचार है। इसलिए **'विशुद्ध विचार'** को तर्कशास्त्र का क्षेत्र कह सकते है।

'विचार' से तात्पर्य **'विचार-प्रक्रिया'** एव **'विचार-परिणाम'** दोनो होता है। विचार-प्रक्रियाये निर्धारण (Conception), निर्णय-क्रिया (Judgment) एव तर्क-पद्धति (Reasoning) है और 'विचार' का परिणाम एक धारणा (a concept), एक निर्णय तथा एक तर्क होता है। तर्कशास्त्र पाठ्यविपय मे **विचार की प्रक्रियायें तथा परिणाम दोनो होते है,** अत उसके क्षेत्र मे वे सव सम्मिलित है।

'सत्य' (Truth) भी आकारगत अथवा वस्तुगत हो सकता है और **तर्कशास्त्र का सम्वन्ध दोनो प्रकार के सत्य से है।** आकारगत तर्कशास्त्र सव प्रकार के निगमन-मूलक-तर्क एव आकार-गत-परिभापा, विभाग के नियम तथा तर्क-वाक्यो के तार्किक-स्वरूप आदि का अध्ययन करता है। वस्तुगत-तर्कशास्त्र मे सव उद्गमन-मूलक तर्क एव विभाग, वर्गीकरण और नामकरण की वस्तुगत दशाओ का अध्ययन किया जाता है। अत. ये समस्त विपय तर्कशास्त्र के क्षेत्र मे आते है।

§ ११ तर्कशास्त्र का वैज्ञानिक एव कलात्मक स्वरूप

तर्कशास्त्र विज्ञान है या कला ?

इस प्रश्न के साथ काफी विवाद रहा है कि तर्कशास्त्र को केवल 'विज्ञान' ही समझा जाय अथवा केवल 'कला' ही अथवा 'विज्ञान' तथा 'कला' दोनो ही। **'पोर्ट-रायल लाजिक'** ('Port Royal Logic') के लेखको, **एल्ड्रिच,** (Aldrich) आदिक ने उसे केवल 'कला' माना है। **मैन्सल** (Mansel) और **टॉमसन** (Thomson) ने तर्कशास्त्र को 'कला' (Art) मानने मे आपत्ति की है, वे उसको विज्ञान कहते है। व्हैटली (Whately) इन दोनो दृष्टिकोणो को सम्मिलित कर लेता है। **मिल** (Mill) भी उसके इस कथन से सहमत है कि तर्कशास्त्र 'विज्ञान' और 'कला' दोनो है।

यही शुद्ध दृष्टिकोण प्रतीत होता है कि **तर्कशास्त्र विज्ञान**

तथा कला दोनो है। 'विज्ञान' कुछ निश्चित तथ्य-समूहो को नियंत्रित करनेवाले नियमो का अध्ययन करता है और 'कला' किसी उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए नियम प्रस्तुत करती है। 'विज्ञान' हमे **'जानना'** और कला **'करना'** सिखलाती है। तर्कशास्त्र **'विशुद्ध विचार' के सिद्धान्तों को बतलाने के कारण** 'विज्ञान' है। परन्तु वह **'विशुद्धि-प्राप्ति एवं अशुद्धि-निवारण के नियम प्रस्तुत करने के कारण** कला' भी है। अत तर्कशास्त्र के सैद्धांतिक (theoretical) एव व्यावहारिक (practical) दोनों पक्ष है। तर्कशास्त्र के विशुद्ध विचार के नियम प्रस्तुत करने से ही असत्य और त्रुटिपूर्ण तर्क के निवारण के नियम भी प्रस्तुत हो जाते है। अत तर्कशास्त्र को **क्रियामूलक-विज्ञान** (Practical Science) भी कहते है ; अर्थात् वह विशुद्ध विचार के सामान्य नियमो का सुसयत अध्ययन करता है ताकि सत्य-प्राप्ति के लिए उनका व्यवहार किया जा सके।

तर्कशास्त्र विज्ञान तथा कला दोनो है—उसके सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक दोनों पक्ष है।

तर्कशास्त्र को **"विज्ञानो का विज्ञान"** (Scientia Scientiarum) और **'कलाओं की कला'** (Ars Artium) भी कहा गया है। विभिन्न विज्ञान तो प्रकृति के विभिन्न क्षेत्रो का अध्ययन करते है, परन्तु तर्कशास्त्र का पाठ्यविषय 'विचार' के व्यापक नियमो का अध्ययन है, जिनकी आवश्यकता प्रत्येक विज्ञान के अध्ययन मे पडती है। प्रत्येक विज्ञान को युक्तियुक्त होना पडता है, अर्थात् उसे तर्कशास्त्र मे वर्णित विशुद्ध विचार के नियमो का पालन करना पडता है, अर्थात् साराश मे यह कह सकते है कि प्रत्येक विज्ञान मे कुछ बाते समान होनी है और तर्कशास्त्र का कार्य सभी विज्ञानो के समान आधार का अध्ययन करना होता है। इसी प्रकार, 'तर्कशास्त्र' को 'कलाओ की कला' कह सकते है, क्योकि विभिन्न कलाये तो अपने-अपने क्षेत्र मे ही विशुद्धि-प्राप्ति के नियमो का अध्ययन करती है, परन्तु उनको उन नियमो का पालन

तर्कशास्त्र 'विज्ञानो' का विज्ञान' तथा 'कलाओ की कला' है।

भी करना पडता है जो सामान्य रूप से विशुद्धि-प्राप्ति के है। तर्कशास्त्र विशुद्ध-विचार की कला होने के कारण सभी कलाओं का निर्देशक है।

§ १२ तर्कशास्त्र की विभिन्न परिभापाये

एल्ड्रिच्।

(१) **एल्ड्रिच** (Aldrich) ने तर्कशास्त्र की परिभापा इस प्रकार की है :—"**तर्कशास्त्र तर्क की कला**" (the art of Reasoning) है।

व्हैटली।

व्हैटली (Whately) ने इस परिभापा मे सशोधन करके तर्कशास्त्र को "**तर्क की कला एवं विज्ञान**" (the art and science of Reasoning) कहा है।

ये दोनो परिभाषाये वडी सकीर्ण है, और इन पर निम्नलिखित आक्षेप किये जाते है :—

(क) एल्ड्रिच् की परिभापा कि "तर्कशास्त्र तर्क की कला है" इस वात की उपेक्षा करती है कि तर्कशास्त्र विज्ञान भी है। व्हैटली की परिभाषा मे यह दोप नही है ; परन्तु ये दोनो परिभाषाये तर्कशास्त्र के केवल क्रियामूलक पक्ष को ही अङ्गीकार करती है।

(ख) इन दोनो परिभाषाओ मे यह दोष भी है कि उनमे तर्कशास्त्र का पाठ्यविपय केवल 'तर्क' ही माना है। यह सच है कि तर्कशास्त्र का मुख्य पाठ्यविपय तर्क ही है परन्तु कुछ ऐसे गौण-विषय भी है, जिन्हे तर्क के अन्तर्गत तो नही रक्खा जाता परन्तु जिनका अध्ययन तर्कशास्त्र मे किया जाता है, यथा—परिभाषा, विभाग, वर्गीकरण आदि। इन विषयो से सम्बन्धित निश्चित नियम है, और उनकी विशुद्धि के लिए इन नियमो का पालन करना आवश्यक होता है। अत. यह कहना कि तर्कशास्त्र का पाठ्यविषय केवल तर्क है, उसकी परिभाषा को **संकुचित** करना है।

टॉमसन।

(२) **टॉमसन** (Thomson) ने तर्कशास्त्र की परिभाषा "**विचार के नियमो का विज्ञान**" (the Science of

the Laws of Thought) कहकर दी है। इस परिभापा पर निम्नलिखित आक्षेप हो सकते है :—

(क) तर्कशास्त्र विज्ञान ही नही, अपितु कला भी है, उसके सैद्धान्तिक रूप के साथ-साथ क्रियात्मक-रूप भी है। वह हमें केवल यह नही बतलाता कि 'विशुद्ध विचार' क्या है, अपितु यह भी बतलाता है कि 'विशुद्ध-विचार' किस प्रकार प्राप्त होता है। उपर्युक्त परिभापा तर्कशास्त्र के **क्रियात्मक-पक्ष** की पूर्णरूप से उपेक्षा करती है।

(ख) 'विचार' शब्द बडा सन्दिग्ध होता है। व्यापक अर्थ मे 'विचार' शब्द ज्ञान का समानार्थी माना जाता है। अत: उसके अन्तर्गत प्रत्यक्ष, स्मृति एव कल्पना तथा सूक्ष्म व व्यापक विचार भी आ जाता है। तर्कशास्त्र मे 'विचार' शब्द का उपयोग सकुचित अर्थ मे किया जाता है और उससे तात्पर्य केवल **सूक्ष्म** (abstract) और **व्यापक** (general) विचार होता है।

(ग) इस परिभाषा पर सबसे बडी आपत्ति यह है कि इससे ऐसा प्रतीत होता है कि तर्कशास्त्र का सम्बन्ध विचारोके वास्तविक रूप से है। परन्तु तर्कशास्त्र वर्णनमूलक (Positive) नही, वरन **आदर्शमूलक** (Normative) विज्ञान है। तर्कशास्त्र का पाठ्यविपय सब प्रकार का विचार नही, अपितु केवल 'विशुद्ध-विचार' है। 'विचार' के वास्तविक-रूप का विवेचन तो मनोविज्ञान का विपय है ; तर्कशास्त्र मे तो केवल 'विचार' के आदर्श रूप का ही अध्ययन किया जाता है।

हेमिल्टन।

(३) **हैमिल्टन** (Hamilton) ने तर्कशास्त्र को विचार **के आकारगत नियमों का विज्ञान**' (Science of the Formal Laws of Thought) कहा है।

इस परिभापा मे निम्नलिखित त्रुटियां है —

(क) यह तर्कशास्त्र के केवल सैद्धान्तिक रूप पर ही बल देती है, परन्तु तर्कशास्त्र केवल विज्ञान ही नही, वरन कला भी है।

(ख) 'विचार' शब्द बडा सन्दिग्ध है। तर्कशास्त्र का विपय केवल सूक्ष्म और व्यापक विचार है, परन्तु 'विचार' शब्द कभी व्यापक अर्थ मे भी प्रयुक्त होता है। [देखिए § २ (ग)]

(ग) टॉमसन (Thomson) द्वारा वर्णित परिभापा मे

जो त्रुटियाँ है, वे इसमे भी है। साथ ही इसमे सबसे बडा दोष यह है कि यह तर्कशास्त्र के क्षेत्र को केवल आकारगत सत्य (Formal Truth) तक ही सीमित कर देती है। परन्तु तर्कशास्त्र का सम्बन्ध केवल आकारगत-सत्य खोजनेवाले विचारके आकारगत नियमो से ही नही है, वरन उन अन्य नियमो से भी है जो वस्तुगत-सत्य (Material Truth) की खोज करते है। यह परिभाषा तर्कशास्त्र को आकारगत-तर्कशास्त्र-मात्र का रूप देती है, तथा इसमे वस्तुगत-तर्कशास्त्र को कोई स्थान नही मिलता।

आँरनॉल्ड।

(४) **आँरनॉल्ड** (Arnauld) ने तर्कशास्त्र की परिभाषा इस प्रकार की है : "**तर्कशास्त्र बुद्धि का विचार करनेवाला विज्ञान है, जिससे सत्य की प्राप्ति की जाती है।**" ("Logic is the Science of the understanding in the pursuit of Truth").

इस परिभाषा मे निम्नाकित दोष है :—

(क) यह तर्कशास्त्र के क्रियात्मक-रूप की उपेक्षा करती है; एव उसके सैद्धान्तिक रूप को ही स्वीकार करती है।

(ख) 'सत्य' शब्द बडा सन्दिग्ध है। इस परिभाषा से यह स्पष्टतया ज्ञात नही हो पाता कि तर्कशास्त्र का उद्देश्य आकारगत एवं वस्तुगत सत्य दोनो है।

(ग) इस परिभाषा मे सबसे बडा दोष यह है कि इससे यह पता नही चलता कि तर्कशास्त्र का सम्बन्ध केवल बुद्धि-विषयक विचार से ही नही अपितु अन्य प्रक्रियायों—यथा, परिभाषा, विभाग, वर्गीकरण आदि से भी है।

मिल।

(५) **मिल** (Mill) ने तर्कशास्त्र की परिभाषा इस प्रकार की है :—

"**तर्कशास्त्र वह विज्ञान है, जो बुद्धि के सब कार्यों का समुचित रीतिसे साक्षी के मूल्यांकन के अनुसार विचार करता है तथा उन सब प्रक्रियाओ का, जिनके द्वारा हम ज्ञात से अज्ञात का ज्ञान करते है तथा अन्य बौद्धिक-क्रियाओं का, जो इसमें सहायक होती हं, विवेचन करता है।**"

("Logic is the Science of operation of understanding which are subservient to the estimation of evidence ; both the Process itself of advancing from known truths to unknown and all other intellectual operations in so far as auxiliary to this").

इस परिभाषा का विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है :

(क) तर्कशास्त्र केवल विज्ञान ही नही है, परन्तु उसका संबंध **'साक्षी का मूल्यांकन'** से भी है। साक्षी के मूल्यांकन से यह तात्पर्य है कि तर्कशास्त्र का कार्य उन आश्रयो की जॉच करना भी है, जिनसे कि निष्कर्ष निकाला गया है, ताकि उसकी विशुद्धता का पता लग जाय। अत. इस परिभाषा मे तर्कशास्त्र के सैद्धान्तिक एव क्रियात्मक दोनो पक्ष निहित हैं।

(ख) तर्कशास्त्र केवल बुद्धि के कार्यो मे ही सीमित नही है किन्तु अन्य प्रक्रियाओ का भी वर्णन करता है, जो तर्क करने मे सहायक होती है। अर्थात् यह परिभाषा, वर्गीकरण, नामकरण आदि अन्य प्रक्रियाओ का भी समुचित विचार करता है।

§ १३ तर्कशास्त्र की उपयोगिता (Utility)

तर्कशास्त्र के अध्ययन पर आपत्तियाँ :

तर्कशास्त्र के अध्ययन पर आपत्तियाँ · तर्कशास्त्र के अध्ययन की उपयोगिता के सम्बन्ध मे प्राय सन्देह किया जाता है। यह कहा जाता है कि तर्कशास्त्र का अध्ययन व्यर्थ है, क्योकि (१) तर्कशास्त्र न तो हमे तर्क करना सिखलाता है, और (२) न तर्कशास्त्र के अध्ययन से हमारी तर्क-पद्धति सर्वदा दोषरहित हो पाती है।

(१) इस आपत्ति के सम्बन्ध मे कि तर्कशास्त्र हमे तर्क करना नही सिखलाता, यह उत्तर दिया जा सकता है कि यह तो तर्कशास्त्र

(१) तर्कशास्त्र हमें तर्क करना नही सिखाता।

का उद्देश्य ही नही है। तर्कशास्त्र का कार्य हमे तर्क पद्धति की शिक्षा देना नही है। हम तर्क करना अथवा विचार करना उसी प्रकार सीखते है, जिस प्रकार हम अपनी प्राकृतिक शक्तियो के बल पर चलना और बोलना सीखते है। तर्कशास्त्र हमे तर्क करना नही अपितु विशुद्धतापूर्वक तर्क करना सिखलाता है। ठीक उस प्रकार जैसे सेना मे नए भर्त्ती हुए सैनिक को चलना नही अपितु 'मार्च करना' अर्थात् नपे-तुले कदमो से, उचित प्रकार से, चलना सिखलाया जाता है। तर्कशास्त्र का कार्य अपने ही तर्क की अशुद्धियो का निवारण एव अन्य व्यक्तियो के विचारो और तर्कपद्धतिके दोपो की पकड करना है।

(२) तर्कशास्त्र के अध्ययन से हमारे तर्क सदा शुद्ध नहीं हो सकते।

(२) दूसरी आपत्ति यह है जवकि एक ओर वे व्यक्ति है, जिन्होंने कभी तर्कशास्त्र का अध्ययन नही किया, वे प्राय शुद्ध तर्क कर लेते है ; दूसरी ओर, तर्कशास्त्र के पण्डित भी कभी-कभी तर्क-सम्वन्धी अशुद्धियाँ कर वैठते है। क्या ऐसे व्यक्ति नही है, जिन्होने कभी तर्कशास्त्र का अध्ययन नही किया, परन्तु जो शुद्ध तर्क कर लेते है और क्या ऐसे व्यक्तियो का अभाव है जो तर्क-शास्त्र के विषय को जानते हुए भी तर्क-सम्वन्धी अशुद्धियाँ कर वैठते है ? साधारण दृष्टि मे यह आपत्ति युक्ति-सगत प्रतीत होती है। परन्तु वह वास्तव मे साधारण-ज्ञान और वैज्ञानिक-ज्ञान के अन्तर को न समझ सकने के कारण ही उपस्थित होती है। तर्कशास्त्र तर्क-पद्धति का विज्ञान है। वैज्ञानिक-तर्क और साधारण-तर्क मे प्रकार का भेद नही है। इन दोनो मे केवल यह अन्तर है कि वैज्ञानिक-ज्ञान साधारण-ज्ञान की अपेक्षा अधिक सयत एव निश्चित होता है, अत. यह आवश्यक नही कि साधारण-तर्क सर्वदा दोपपूर्ण हो। तर्कशास्त्र विशुद्ध तर्क के सिद्धान्तो का अध्ययन करता है। साधा-रण व्यक्ति, न जानते हुए भी, उन्ही सिद्धान्तो के अनुसार तर्क कर लेता है। तर्कशास्त्र के अध्ययन से उन नियमो का प्रयोग

तर्कशास्त्र के अध्ययन से ही शुद्ध तर्क संभव है।

अधिक संयत एवं स्पष्ट रीति से किया जा सकता है। यह कहना कि मनुष्य तर्कशास्त्र के ज्ञान के विना ही शुद्ध तर्क कर लेता है, प्राय: उतना ही सत्य है, जितना यह कहना कि वह औपधि-विज्ञान के ज्ञान के बिना भी स्वस्थ रह सकता है। यह सच है, परन्तु इसका अर्थ यह है कि मनुष्य तव तक आरोग्य रह सकता है जव तक कि वह स्वस्थ हो ; परन्तु ज्यो ही वह रोगग्रस्त हो जाता है, तो उसे औषधि-विज्ञान मे दक्ष व्यक्ति की सहायता लेनी ही पडती है। इसी प्रकार, जव तक मनुष्य अपनी वुद्धि के द्वारा शुद्धतापूर्वक तर्क कर पाता है, तव तक उसे तर्कशास्त्र की आवश्यकता नही पड़ती, परन्तु ज्योही उसके तर्क मे अशुद्धि अथवा सन्देह उत्पन्न हो जाता है, तो **उस अशुद्धि का कारण जानने के लिए** तथा शुद्ध तर्क की प्राप्ति के लिए तर्कशास्त्र का ज्ञान अनिवार्य हो जाता है।

तर्कशास्त्र के उपयोग निम्नलिखित है --

उपयोग :

(क) **तर्कशास्त्र विशुद्ध विचार के सिद्धान्तों का वैज्ञानिक ज्ञान प्रदान करता है, जिसका पालन करने से सत्य की प्राप्ति होती है एवं दोषों की पकड़ एवं उनका निवारण हो पाता है।** नि सन्देह कोई योग्य व्यक्ति अपनी सामान्य-वुद्धि के उपयोग से ही,ओर तर्कशास्त्र के विशेष अध्ययन के विना ही शुद्ध तर्क करने मे सफल हो जाता है और वह यह भी वतला सकता है कि अमुक युक्ति अशुद्ध अथवा दोपपूर्ण है ,परन्तु तर्कशास्त्र का ज्ञान ही हमे वतला सकता है वह अशुद्ध युक्ति क्यो दोषपूर्ण है और उस दोप अथवा आभास (fallacy) का क्या नाम है ?

तर्कशास्त्र विशुद्ध तर्क के सिद्धान्त प्रस्तुत करता है।

(ख) **तर्कशास्त्र विज्ञानों का विज्ञान है।** विभिन्न विज्ञान विश्व के भिन्न-भिन्न क्षेत्रो का अध्ययन करते है , और तर्कशास्त्र का इन विज्ञानो के विशेप विपय से कोई सम्बन्ध नही है , परन्तु तर्कशास्त्र उन सामान्य-नियमो का अध्ययन करता है, जिनका पालन

वह 'विज्ञानो का विज्ञान' है।

करना प्रत्येक विज्ञान के लिए आवश्यक है, जिससे उसके द्वारा प्राप्त ज्ञान विशुद्ध हो सके। तर्कशास्त्र विशुद्ध विचार के जिन सामान्य नियमो को प्रस्तुत करता है, उनका पालन प्रत्येक विज्ञान को करना पडता है।

मानसिक-क्रीड़ा।

(ग) तर्कशास्त्र का मुख्य उपयोग यह है कि वह **प्रधानतः मानसिक-अनुशासन** (mental discipline) **और बौद्धिक क्रीड़ा** (intellectual gymnastic) है। तर्कशास्त्र का अध्ययन सूक्ष्म-विचार करने का अभ्यास डालता है तथा हमारी तर्क-शक्ति का विकास करता है। मनुष्य अन्य निम्न जन्तुओ से इस वात मे भिन्न है कि उसमे सचेतन वुद्धि होती है, और उसमे धारणाओ अथवा सामान्यभावो के द्वारा विचार कर सकने की शक्ति होती है। तर्कशास्त्र इस प्रकार की तर्क-शक्तियो का समुचित-अभ्यास प्रदान करने मे वडा उपयोगी है। तर्कशास्त्र के अध्ययन से जिस मनुष्य का मस्तिष्क शुद्ध तर्क करने मे दीक्षित हो जायगा, तो वह ज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र मे उससे लाभ उठायेगा।

§ १४ तर्कशास्त्र और मनोविज्ञान

मनोविज्ञान ज्ञान, संवेदन तथा संकल्प का विज्ञान है।

मनोविज्ञान (Psychology) से तात्पर्य उस विज्ञान से है जो मन तथा उसकी प्रक्रियाओ का सम्यक्-रूप से अध्ययन करता है। मन की मुख्य प्रक्रियाये तीन है, यथा—ज्ञान (Knowing), सवेदन (Feeling) तथा सकल्प (Willing) एक उदहरण देखिए। एक परीक्षार्थी उत्तीर्ण छात्रो की सूची मे अपना नाम देखता है—उसे ज्ञान होता है कि वह उत्तीर्ण हुआ है, तव उसके मनमे आनन्द की लहर दौड जाती है—उसे आनन्द की संवेदना होती है। इसके उपरात वह सकल्प करता है कि आगामी परीक्षा के लिए भी वह पढता रहेगा।

इस प्रकार ज्ञान, सवेदन और सकल्प मनोविज्ञान के पाठ्य-विषय है।

ज्ञान या तो परोक्ष अथवा प्रत्यक्ष होता है। हमे किसी व्यक्ति तथा मूर्त्तपदार्थ अथवा सामान्य तथा सूक्ष्म वस्तु का ज्ञान प्राप्त हो सकता है। तर्कशास्त्र का सम्वन्ध केवल सामान्य तथा सूक्ष्म ज्ञान से होता है, जिसे सकीर्ण अर्थ मे, 'विचार' का समानार्थी माना जाता है। इस प्रकार, मनोविज्ञान तो सव प्रकार के ज्ञानका अध्ययन करता है—चाहे वह प्रत्यक्ष हो या परोक्ष, विशिष्ट हो अथवा सामान्य, मूर्त्त हो अथवा सूक्ष्म। तर्कशास्त्र का विषय केवल परोक्ष, सामान्य और सूक्ष्म ज्ञान ही है। इस दृष्टिकोण से तर्कशास्त्र का क्षेत्र मनोविज्ञान के क्षेत्र की अपेक्षा अधिक संकीर्ण है; क्योकि **मनोविज्ञान सब प्रकार के ज्ञान का अध्ययन करता है, जबकि तर्कशास्त्र केवल परोक्ष, सामान्य और सूक्ष्म ज्ञान का अध्ययन करता है।**

मनोविज्ञान में सब प्रकार के ज्ञान का अध्ययन होता है परन्तु तर्कशास्त्र का पाठ्यविषय केवल सामान्य और सूक्ष्म ज्ञान है।

एक अन्य दृष्टिकोण से भी तर्कशास्त्र मनोविज्ञान से सकीर्ण है। मनोविज्ञान का विषय केवल ज्ञान ही नही है, अपितु सवेदन और संकल्प भी है। हमे केवल वस्तुओ का ज्ञान ही नही होता, वरन हमे सुख-दु.ख आदि की अनुभूति भी होती है। इसके अतिरिक्त हमारे मन की कुछ दशाये ऐसी होती है जो कि वाह्य-क्रियाओं एवं सकल्प के रूप मे स्पष्ट हो जाती हैं। इन दशाओ के समूह को 'निश्चय' (Forming a resolution) कहते है। मन की सवसे विकसित अवस्था यह ही है। हम किसी कार्य को करने का निश्चय करते है और मन का यह निश्चय कुछ क्रियाओ के रूप मे व्यवत हो जाता है। इस प्रकार, मनोविज्ञान **तो ज्ञान के अतिरिक्त संवेदन** (Feeling) **और संकल्प** (Willing) **का भी अध्ययन करता है परन्तु तर्कशास्त्र का विषय संवेदन और संकल्प न होकर केवल ज्ञान ही**

मनोविज्ञान ज्ञान, संवेदन तथा सकल्प का अध्ययन करता है, परन्तु तर्कशास्त्र केवल ज्ञान का अध्ययन करता है।

है। अत तर्कशास्त्र का क्षेत्र मनोविज्ञान की अपेक्षा सकुचित है।

मनोविज्ञान वर्णनमूलक विज्ञान है, परन्तु तर्कशास्त्र आदर्शमूलक विज्ञान है।

तर्कशास्त्र और मनोविज्ञान मे एक विशेष अन्तर और है। **मनोविज्ञान वर्णनमूलक (Positive) और तर्कशास्त्र आदर्शमूलक (Normative) विज्ञान है।** वर्णनमूलक विज्ञान वस्तुओ के उस रूप का अध्ययन करता है, जैसी कि वे है और आदर्शमूलक विज्ञान उनके उस रूप का अध्ययन करता है, जैसा कि उनको होना चाहिए। मनोविज्ञान वर्णनमूलक विज्ञान है, क्योकि वह विचार के उस रूप का अध्ययन करता है, जैसा कि वह वास्तव मे होता है—वह इस बात का अध्ययन करता है कि हम किस प्रकार विचार करते है, अत: उसमे सभी प्रकार के विचार आते है—शुद्ध भी और अशुद्ध भी। तर्कशास्त्र आदर्शमूलक विज्ञान है, क्योकि उसका विषय वह विचार है, जैसा कि उसे होना चाहिए—वह इस बात का अध्ययन करता है कि हमे किस प्रकार विचार करना चाहिए। तर्कशास्त्र अपने समक्ष एक आदर्श रखता है, यथा—विशुद्धि अथवा सत्य का आदर्श और उन दशाओ की खोज करता है, जिनके पालन करने से हमारे विचार उस विशुद्धि के आदर्श के अनुरूप हो सके, अर्थात् विशुद्ध हो सके।

मनोविज्ञान का ज्ञान तर्कशास्त्र के अध्ययन में बड़ा उपयोगी है।

यह बात ज्ञातव्य है कि यद्यपि तर्कशास्त्र और मनोविज्ञान के क्षेत्र भिन्न-भिन्न है, परन्तु **तर्कशास्त्र के अध्ययन में मनोविज्ञान का ज्ञान नितांत उपयोगी है।** यह स्पष्ट है कि इस बात का अध्ययन करने के लिए कि हमे किस प्रकार सोचना चाहिए, यह जानना आवश्यक है कि हम किस प्रकार सोचते है।

सारांश।

साराश मे, (१) मनोविज्ञान ज्ञान, सवेदन और सकल्प का अध्ययन करता है, परन्तु तर्कशास्त्र केवल ज्ञान का ही अध्ययन करता है।

(२) ज्ञान प्रत्यक्ष या परोक्ष, मूर्त्त या सूक्ष्म, विशिष्ट या

सामान्य हो सकता है। मनोविज्ञान ज्ञान के इन सभी प्रकारो का अध्ययन करता है ; परन्तु तर्कशास्त्र का विषय केवल परोक्ष, सूक्ष्म और सामान्य ज्ञान है।

(३) तर्कशास्त्र आदर्शमूलक और मनोविज्ञान वर्णनमूलक विज्ञान है।

§ १५ तर्कशास्त्र और दर्शन (तत्वज्ञान) (Metaphysics)

दर्शन या तत्वज्ञान (Metaphysics) **ज्ञान की उस शाखा को कहते है, जो चरम सत्य का अध्ययन करे—अर्थात् वह ऐसे सत्य का अध्ययन करे जो वास्तवमे वैसा हो और सत्य की प्रतीति-मात्र न हो।**

दर्शन चरम सत्य का अध्ययन करता है और विज्ञान का विषय 'प्रतीति' है।

दर्शन और विज्ञान मे अन्तर है। विज्ञान प्रकृति के किसी विशेष क्षेत्र अथवा सत्य से सम्बन्धित होता है। जो सत्य विज्ञान का विषय होता है, वह वास्तव मे सत्य नही होता , प्रत्युत सत्य प्रतीत होता है । स्वार्थिका-सत्ता अथवा प्रतीति (Appearance) का अध्ययन करना ही विज्ञान का काम है, परन्तु इस प्रतीति के अन्तर्गत जो तथ्य छिपा रहता है अर्थात् जो चरमसत्य (Ultimate Reality) होता है, उसका अध्ययन वह नही करता। चरमसत्य को 'परमार्थिका-सत्ता' (Noumenon) कहते हैं। और इसका अध्ययन करना दर्शन का विषय है।

दर्शन प्रत्येक विज्ञान की स्वयंसिद्धियो का अध्ययन करता है।

प्रत्येक विज्ञान कुछ स्वय-सिद्धियो को मान लेता है। ये स्वयसिद्धिया (assumptions) ही उस विज्ञान का आधार होती है। उदाहरण के लिए रसायन-विज्ञान (Chemistry) मूर्त्त पदार्थ का अध्ययन करता है। वह इस बात को स्वयसिद्ध मान लेता है कि पदार्थ (Matter) सत् है; और इसी आधार पर वह अपने क्षेत्र मे खोज करता है। इसी प्रकार अन्य विज्ञान भी कुछ स्वयसिद्धियो पर आधारित है।

दर्शन या तत्वज्ञान (Metaphysics), जो चरमसत्य (Ultimate Truth) का अध्ययन करता है, उन स्वयसिद्ध मूल-सिद्धातो की जाच करता है। विभिन्न विज्ञान इन स्वयसिद्धियो को मान लेते है और दर्शन उनके सत्य की जाच

करता है। रसायन-विज्ञान पदार्थ की सत्ता को सिद्ध मान लेता है, परन्तु दर्शन इस प्रश्न के बारे मे विचार करता है कि क्या वह स्वयसिद्धि सत्य भी है ; क्या पदार्थ वास्तव मे सत् है ? अत. दर्शन का पाठ्यविषय विभिन्न विज्ञानो के आधारो के सत्य की जॉच करना है।

अतः वह तर्कशास्त्र के मूल सिद्धान्तों की भी जाँच करता है।

तर्कशास्त्र एक विज्ञान है ; उसके अध्ययन का विषय 'विशुद्ध विचार' है। तर्कशास्त्र उन सिद्धान्तो का अध्ययन करता है, जो कि विशुद्ध-विचार को नियत्रित करते है। उनका पालन करने से ही विचार शुद्ध होते है और उनका उल्लघन करने से दोष एवं त्रुटियॉ उत्पन्न हो जाती है।

'विज्ञान' होने के कारण, तर्कशास्त्र मे कुछ नियमो को स्वय-सिद्ध मान लिया जाता है , यथा—तादात्म्य-नियम (Law of Identity), विरोध-वाधक नियम (Law of Contradiction), निर्मध्यम-नियम (Law of Excluded Middle) पर्याप्त-हेतु-नियम (Law of Sufficient Reason), प्रकृति की एकरूपता का नियम (Law of Uniformity of Nature) आदि। तर्कशास्त्र 'सिद्धि का विज्ञान' (Science of Proof)है, परन्तु वह इन मूल-सिद्धान्तो को स्वयसिद्ध मान लेता है। दर्शन या तत्वज्ञान इस वात की जाँच करता है कि ये मूल-सिद्धात, जिन पर सारा तर्कशास्त्र आधारित है, वास्तव मे सत्य भी है, अथवा नही। इस प्रकार दर्शन और तर्कशास्त्र का वही सम्वन्ध है, जो दर्शन तथा अन्य विज्ञानो का है।

एक अन्य दृष्टिकोण से तर्कशास्त्र दर्शन के लिये उतना ही उपयोगी है, जितना कि अन्य विज्ञानो के लिए। तर्कशास्त्र विशुद्ध विचार का विज्ञान है। दर्शन मे भी विशेष-विज्ञान की भाँति विचार अथवा मनन एव तर्क होता है। दर्शन की तर्क-पद्धति तार्किक होनी चाहिए अर्थात् तर्कशास्त्र के द्वारा वर्णित विशुद्ध-विचार के नियमो के अनुरूप होनी चाहिए।

साराश : दर्शन उन मूल स्वयसिद्धियो का अध्ययन करता है, जो कि तर्कशास्त्र की आधारभूत है, परन्तु तर्कशास्त्र, 'विशुद्ध-विचार' का विज्ञान होने के कारण दर्शन के क्षेत्र मे भी पहुँच जाता है क्योकि दर्शन के तर्क एव युक्तियाँ भी विशुद्ध होनी चाहिए अर्थात् उन्हे तार्किक-सिद्धान्तो के अनुरूप होना चाहिए।

प्रश्नमाला १

(१) 'ज्ञान' के स्वरूप की व्याख्या कीजिये तथा उसके विभिन्न स्वरूपो एव साधनो का वर्णन कीजिये। क्या सब प्रकार का ज्ञान तर्कशास्त्र के क्षेत्र मे आ जाता है?

(२) 'ज्ञान' (Knowledge) किसे कहते है? उसके विभिन्न स्वरूपो की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए। इनमे से किस स्वरूप का तर्कशास्त्र से सम्बन्ध है और क्यो? (उ० प्र० १९५२)।

(३) 'ज्ञान' के साधन 'प्रत्यक्ष' (Perception), 'अनुमान' (Inference) और 'शब्द' (Authority) कहे जाते हैं। इनमे से प्रत्येक का विवेचन कीजिये ओर उदाहरण-सहित उनका अन्तर स्पष्ट कीजिए।

(४) प्रत्यक्ष (Immediate) और परोक्ष (Mediate) ज्ञान का अन्तर बतलाइए। इनमे से किस प्रकार का ज्ञान तर्कशास्त्र का पाठ्यविषय होता है?

(५) तर्कशास्त्र से आप क्या समझते है? तर्कशास्त्र, मनोविज्ञान और दर्शन का भेद बतलाइए? (उ० प्र० १९५३)

(६) 'तर्कशास्त्र विज्ञानो का विज्ञान है'—इस कथन की आलोचना कीजिए। (उ० प्र० १९५१)

(७) 'तर्कशास्त्र का पाठ्यविषय विचार का 'आकार' है न कि उसकी विषयवस्तु।' इस परिभाषा की विवेचना कीजिए। (उ० प्र० १९५०)

(८) "तर्कशास्त्र 'विज्ञानो का विज्ञान' तथा 'कलाओ की कला' है।" इस परिभाषा की व्याख्या कीजिए। आपके विचार मे निगमन-शास्त्र के अध्ययन से क्या लाभ है? (उ० प्र० १९४८)

(९) विचार के 'आकार' एव 'विषय' से आप क्या समझते है? तर्कशास्त्र का विचार की विषयवस्तु मे किस प्रकार का सम्बन्ध है? (उ० प्र० १९४७)

(१०) वर्णनमूलक और आदर्शमूलक विज्ञान मे क्या अन्तर है? तर्कशास्त्र को आप किस प्रकार का विज्ञान कहेंगे? अपने उत्तर की पुष्टि कीजिए। (उ० प्र० १९४६)

(११) 'सत्य' किसे कहते है? आकारगत तथा वस्तुगत

सत्य मे क्या अन्तर है ? किस प्रकार का सत्य तर्कशास्त्र का पाठ्यविषय है ? (उ० प्र० १९३५)

(१२) यदि किसी दिन प्रातःकाल बाहर निकलकर आप यह देखें कि सडकें कीचड से भरी हुई है, तो आप तुरन्त विश्वास कर लेंगे कि रात्रि को वर्षा हुई थी। कारण सहित स्पष्ट कीजिए कि इस विषय मे आपका प्रत्यक्ष ज्ञान क्या है, तथा परोक्ष ज्ञान क्या है ?

(१३) निम्नलिखित कथन का विवेचन कीजिए :—

'तर्कशास्त्र सत्य का नही, अपितु सगति का विज्ञान है।'

(उ० प्र० १९३२, पटना १९३८; पजाब १९२४)

(१४) तार्किक धारणा के स्वरूप का वर्णन कीजिए। धारणाओ का निर्माण किस प्रकार से होता है ? वे किस प्रकार मस्तिष्क मे ग्रहण की जाती है और किस प्रकार दूसरो के मस्तिष्क तक पहुँचाई जाती है ?

(१५) तर्कशास्त्र की निम्नलिखित विचार धाराओ की व्याख्या कीजिए : वस्तुवाद, धारणावाद तथा नामवाद।

(१६) 'विज्ञान' और 'कला' किसे कहते है ? उदाहरण सहित समझाइए। आपके विचार मे तर्कशास्त्र विज्ञान है, अथवा कला है, अथवा दोनो ही है ?

(१७) क्या आपके विचार मे तर्कशास्त्र का अध्ययन उपयोगी है, जबकि वे लोग भी, जिन्होने कभी इस विषय का अध्ययन नही किया, शुद्धतापूर्वक तर्क कर लेते है ? कारण सहित समझाइए।

EXERCISE 1.

1. Determine the character of Knowledge indicating its different forms and sources. Does all Knowledge come within the provinc of Logic ?

2 What is Knowledge ? State, explain and illustrate its different forms With which of these forms is Logic concerned ? [U P. 1952].

3. The sources of Knowledge are said to be Perception, Inference and Authority ; explain clearly the nature of each showing the difference between them by means of examples

4. Distinguish between Immediate and Mediate Knowledge. Which of them constitutes the subject-matter of Logic ?

5. What is Logic ? Distinguish between Logic, Psychology and Philosophy [U. P. 1958].

6. "Logic is the Science of Sciences". Discuss this critically [U. P. 1951].

7. 'Logic deals with the Form and not the Matter of thought " Discuss and point out in the cour e of your answer, the proper relationship between Form and Matter of Thought. [U. P 1950].

8 Examine the definition of Logic as "the Science of Sciences and Art of Arts." What in your opinion is the value of learning Deductive Logic ? [U. P. 1948].

9. What do you understand by (a) the Form and (b) the Matter of thought ? In what sense, if any, is Logic concerned with the matter of thought ? [U. P. 1947].

10. Distinguish between Positive and Normative Science. Under which class will you put Logic ? Give reasons for your answer [U. P. 1946]

11. What is Truth ? Point out the difference between Formal and Material Truth. Which of these constitutes the subject-matter of Logic ? [U.P.1935].

12. When you go out in the morning and find the roads in a muddy condition, you believe at once that there had been rain during the night. Explain what is immediate and what is mediate in your knowledge of the subject giving your reasons.

13 Discuss the Proposition that Logic is the Science not of Truth but of Consistency. [U. P 1932, Patna 1938 ; Punjab 1924]

14 Explain the nature of the Logical Concept Explain how Concepts are formed and by what means they are retained in the mind and communicated to other minds

15. Explain Realism, Conceptualism and Nominalism as Schools of Logic.

16. What is Science ? What is Art ? Illustrate

your meanings by examples Do you consider Logic to be a Science or an Art or both ? State your reason fully.

17. Can you say that the study of Logic is useful when persons who have never studied it reason accurately ? Give reasons for your answer.

द्वितीय प्रकरण

तर्कशास्त्र के मूल-नियम

§ १. मूल-नियमो का स्वरूप।
§ २. तर्कशास्त्र के मूल-नियम।
(१) तादात्म्य-नियम (The Law of Identity)
(२) विरोध-बाधक-नियम (The Law of Contradiction)
(३) निर्मध्यम-नियम (The Law of Excluded Middle)
टिप्पणी : विचार के तीनो नियमो का पारस्परिक सबंध
(४) पर्याप्त-हेतु-नियम (Law of Sufficient Reason—Leibnitz)
टिप्पणी . हैमिल्टन (Hamilton) की स्वयसिद्धि।
प्रश्नमाला २।

§ १ मूल-नियमो का स्वरूप।

मूल सिद्धान्त समस्त सिद्धि के आधार हैं, परन्तु स्वय सिद्ध नहीं किए जा सकते।

नियम (Law or Principle) उस सामान्य-सत्य (general truth) के विवरण को कहते है, जो सर्वत्र लागू होता है। **मूल-नियम** (Fundamental Principle) उसे कहते हैं, जिसके प्रमाण की आवश्यकता नही है, और न जिनका प्रमाण दिया ही जा सकता है। ये मूल-नियम स्वय प्रमाण के विषय नही है, प्रत्युत सब प्रमाणो के आधार है। ज्ञान का प्रत्येक क्षेत्र कुछ मूल-नियमों पर आधारित है। तर्कशास्त्र विशुद्ध विचार से सम्बन्धित है। अतः तर्कशास्त्र के मूल-नियम वे सत्य हैं, जिन्हें वह विना प्रमाण के मान लेता है, परन्तु जिनके अनुसार

हमारे समस्त विचार होने चाहिए, ताकि वे शुद्ध हो सकें। ये नियम वे आद्य-सत्य (Primary Truths) हैं, जिनके आधार पर समस्त विशुद्ध-विचार होता है, और जिनका उल्लंघन करने पर विचार करना ही असभव हो जाएगा।

उन्हें स्वयं-सिद्धियाँ भी कहते हैं।

भिन्न-भिन्न न्यायशास्त्रियो ने इन नियमों को विभिन्न नाम दिए है। यूबरवेग (Ueberweg) ने इन नियमों को **'अनुमान की स्वयंसिद्धियां'** (the Axioms of Inference) कहा है और मिल (Mill) ने इनको **"समस्त तर्क के सार्वलौकिक सिद्धान्त"** (Universal Postulates of all reasoning) माना है। इन नामो से यह स्पष्ट है कि तर्कशास्त्र इन नियमो के सत्य को सिद्ध मान लेता है, उसे सिद्ध नही करता। जिस प्रकार मनुष्य की आँख सव कुछ देख लेती है, परन्तु अपने आपको नही देख पाती (दर्पण मे आँख का प्रतिविम्व वास्तविक आँख नही होता) इसी प्रकार तर्कशास्त्र के मूल-नियम प्रत्येक अन्य तथ्य को सिद्ध कर लेते है, परन्तु स्वयं को सिद्ध नही कर सकते। वे समस्त सिद्धि के आधार होते हुए भी स्वयं सिद्धि की पहुँच के परे है। उनका सत्य स्वयसिद्ध मान लिया जाता है।

§ २ तर्कशास्त्र के मूल-नियम।

तर्कशास्त्र के मूल-नियमों की सख्या तथा उनके व्यक्त करने के ढग के वारे मे न्याय-शास्त्रियो मे मतभेद रहा है। **अरस्तू** (Aristotle) ने **तीन** मूल-नियमो का वर्णन किया है, यथा—तादात्म्य-नियम (Law of Identity), विरोध-वाधक-नियम (Law of Contradiction) तथा निर्मध्यम-नियम (Law of Excluded Middle)। अर्वाचीन काल मे दार्शनिक **लेबनित्स** (Leibnitz) ने एक **चौथा** नियम और जोड़ दिया है, यथा—पर्याप्त-हेतु-नियम (Law of Sufficient Reason).

(१) तादात्म्य-नियम (Law of Identity)

'क' 'क' है।

तादात्म्य-नियम (Law of Identity) का सबसे सरल रूप यह हो सकता है: " 'क', 'क' है।" अथवा "जो कुछ है, वह है।" इसका अनेक प्रकार से वर्णन किया जाता है; यथा—

'प्रत्येक वस्तु अपने बराबर है।'
'प्रत्येक वस्तु का अपना निज स्वभाव होता है।'
'प्रत्येक वस्तु अपने से अनन्य है।'
'सत्य सर्वदा आत्मानुरूप होता है।'

निगमन-मूलक तर्कशास्त्र में आश्रय अपरिवर्तित रहना चाहिए।

यद्यपि इन सूत्र-वाक्यों के पढने से यह प्रतीत होता है कि यह तो पुनरुक्ति मात्र है परन्तु इसका अभिप्राय यह है कि जिस वस्तु के विषय में हम तर्क कर रहे है, वह वस्तु हमारे वाद पर्यन्त उसी प्रकार रहनी चाहिए। डा० पी० के० रे (Dr. P. K. Ray) के शब्दो मे इस नियम का यह अर्थ है कि "निगमनमूलक-तर्कशास्त्र मे जिस आश्रय से हम आरम्भ करते है, वह अपरिवर्तित रहना चाहिए।" किसी तर्क मे प्रत्येक पद को एक ही अर्थ मे प्रयुक्त करना चाहिए। काल और परिवर्तन के तत्व का निगमनमूलक तर्कशास्त्र मे कोई स्थान नही है, इसी दिशा मे वह प्रकृति की गति से भिन्न है। प्रकृति बहती हुई नदी के समान परिवर्तनशील है और समय के विभिन्न क्षणो मे भिन्न-भिन्न रूप ग्रहण कर लेती है। ग्रीस देश के एक प्राचीन दार्शनिक हिराक्लिटस (५०० ईसा पूर्व) का कथन है कि हम एक ही धारा मे दो बार नही उतर सकते, जब हम उसी स्थान पर दूसरी बार गोता लगाते है, तब तक पहले वाला जल बहुत आगे बह निकलता है; अतः धारा वही नही रहती। निगमनमूलक तर्कशास्त्र मे ऐसे परिवर्तनो को कोई स्थान नही है। यदि हम

प्रारम्भ मे यह विचार कर ले कि किसी वस्तु मे अमुक गुण है, तो हमें सदा यह वात स्वीकार करनी होगी। यदि किसी पद को किसी विशेष अर्थ मे प्रयुक्त किया जाय, तो उसको हमें सर्वदा उसी अर्थ मे प्रयुक्त करना चाहिए।

(२) विरोध-बाधक-नियम (Law of Contradiction)

'क', 'ख' और 'अ-ख' दोनों नहीं हो सकता।

विरोध-बाधक नियम इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है **" 'क' 'ख' और अ-'ख' दोनों नहीं हो सकता।" 'कोई भी वस्तु एक ही समय में भाव और अभाव रूप नहीं हो सकती।'**

किसी वस्तु में दो विरुद्ध गुण नहीं रह सकते।

इस नियम का अभिप्राय यह है कि एक वस्तु मे, एक ही काल मे, और एक ही स्थान में दो परस्पर विरुद्ध (Contradictory) गुण नही रह सकते। दो विपरीत-गुण 'ख' और 'अ-ख' एक ही वस्तु 'क' के वारे मे सत्य नही हो सकते। यदि 'क' मे कोई गुण 'ख' हो, तो उसी समय विपरीत गुण 'अ-ख' उसमे नही हो सकता। एक कागज़ का टुकड़ा एक ही समय मे 'श्वेत' और 'अश्वेत' दोनो नही हो सकता। यदि वह श्वेत है, तो वह अश्वेत भी नही हो सकता और यदि अश्वेत है तो श्वेत भी नही हो सकता। यह सम्भव हो सकता है कि एक कागज़ कुछ अश मे तो श्वेत हो, तथा कुछ अंश मे अश्वेत (यथा—काला); अथवा किसी समय तो श्वेत हो और बाद मे अश्वेत हो जाये, परन्तु इस व्रात की हम कल्पना नही कर सकते कि एक ही समय और एक ही स्थान मे वह श्वेत और अश्वेत दोनों हो सकता है।

हैमिल्टन (Hamilton) ने इस नियम को **'अविरोध का नियम'** (the Law of Non-contradiction) कहा है, क्योंकि उसके विचार मे, 'अविरोध' अथवा 'विरोध का अभाव' ही विचार की विशुद्धि के लिए आवश्यक है।

(३) निर्मध्यम का नियम (The Law of Excluded Middle)

निर्मध्यम का नियम (the Law of Excluded Middle) इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है :

" 'क' या तो 'ख' अथवा 'अ-ख' है।"

" प्रत्येक वस्तु या तो है अथवा नहीं है।"

'क' या तो 'ख' अथवा 'अ-ख' है।

इस नियम का अभिप्राय यह है कि एक ही समय मे दो विरोधी पद (Contradictory terms) एक ही व्यक्ति के बारे मे गलत नही हो सकते। एक ही वस्तु 'क' के बारे मे दो विरोधी गुण 'ख' और 'अ-ख' गल्त नही हो सकते। यदि 'क' के बारे मे 'ख' सत्य नही है, तो 'अ-ख' सत्य होना चाहिए और यदि 'अ-ख' सत्य नही है, तो 'ख' सत्य होना चाहिए। यदि एक कागज का टुकडा श्वेत नही है, तो वह 'अश्वेत' अवश्य होगा। **जैवन्स** (Jevons) का कथन है कि "इस नियम का नाम ही इस बात को व्यक्त करता है कि मध्य का कोई मार्ग ही नही है , उत्तर स्वीकारात्मक होगा या निषेधात्मक । "

किसी वस्तु में दो विरोधी गुणों में से एक अवश्य चरितार्थ होगा।

विरोध-बाधक नियम (the Law of Contradiction) के अनुसार, दो विरोधी पद एक ही वस्तु के बारे मे सही नही हो सकते अर्थात् उनमे से **एक गलत होना चाहिए**। यथा एक ही वस्तु 'चट्टान' पर दो विरोधी पद 'कठोर' और 'अकठोर' एक साथ चरितार्थ नही हो सकते। "यह चट्टान कठोर है" और "यह चट्टान अकठोर है"—ये दोनों कथन एक साथ सही नही हो सकते—इनमे से एक गलत होना चाहिए। यदि पहला कथन सही है, तो दूसरा गलत होगा , यदि दूसरा कथन सही है, तो पहला गलत होगा। **निर्मध्यम-नियम** (the Law of Excluded Middle) के अनुसार, दो विरोधी पद एक ही वस्तु के बारे मे एक साथ गलत नही हो सकते, अर्थात् उनमे से **एक सही होना चाहिए**। यदि 'कठोर' पद चट्टान के बारे मे सही नही है, तो उसका विरोधी-पद 'अकठोर' उसके बारे मे अवश्य सही होगा। इसी प्रकार

विरोध बाधक नियम और निर्मध्यम-नियम की तुलना।

यदि 'अकठोर' पद 'चट्टान' के बारे में सही नही है, तो 'कठोर' पद सही होगा। इस प्रकार, दोनो नियमो के पर्यालोचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि एक विरोधी तर्क-वाक्य की सत्यता में दूसरे की असत्यता निहित रहती है, तथा उसकी असत्यता में दूसरे की सत्यता निहित रहती है। दोनो न तो सत्य हो सकते हैं और न असत्य ही।

टिप्पणी—यूबरवेग (Ueberweg) ने दोनो नियमो को सम्मिलित कर एक नवीन सिद्धान्त की प्रतिष्ठा की। उन्होने इसका नाम **'विरोधी-विकल्प का नियम'** (Principle of Contradictory Disjunction) रक्खा है। उनका सूत्र इस विषय मे इस प्रकार है " **'क' या तो 'ख' है अथवा 'अ-ख' है।**" इसका तात्पर्य है कि :—

(१) " 'क' , 'ख' और 'अ-ख' दोनो नही हो सकता।"
(विरोध-बाधक-नियम) और—

(२) " 'क' या तो 'ख' अथवा 'अ-ख' है।
(निर्मध्यम का नियम)

इन दोनो नियमो के सम्बन्ध मे निम्नलिखित बाते द्रष्टव्य है—

(१) ये दोनों नियम परस्पर विरोधी पदों से सम्बन्ध रखते है।

(१) ये दोनो नियम दो परस्पर विरोधी (Contradictory) पदो से सम्बन्ध रखते है, विपरीत (Contrary) पदो से नही। एक ही व्यक्ति के सम्बन्ध मे दो विपरीत (Contrary) पद एक साथ सही तो नही हो सकते, परन्तु वे दोनों उस व्यक्ति के सम्बन्ध मे गलत हो सकते है। उदाहरण के लिए विपरीत पद 'श्वेत' और 'श्याम' को लीजिए। ये दोनो पद कागज़ के टुकडे के सम्बन्ध मे सही तो नही हो सकते , परन्तु दोनो गलत हो सकते है, क्योकि वह कागज़ का टुकडा 'श्वेत' या 'श्याम' न होकर 'लाल' भी तो हो सकता है। इसी प्रकार यह चट्टान न तो 'कठोर' हो और न 'कोमल' परन्तु इन दोनो के बीच के गुणवाली अर्थात् कुछ कठोर और कुछ कोमल हो सकती है। परन्तु दो विरोधी पद यथा—'श्वेत' और 'अश्वेत' न तो दोनो सही ही हो सकते है, और न दोनो गलत ही।

(२) विरोध-बाधक-नियम (Law of Contradiction) इस प्रकार है : " 'क' 'ख' तथा 'अ-ख' दोनो नही हो सकता।" और निर्मध्यम-नियम (Law of Excluded Middle) इस प्रकार व्यक्त किया जाता है : " 'क' या तो 'ख' अथवा 'अ-ख' है।" डाक्टर पी० के० रे (Dr. P. K Ray)का कहना है कि इन दृष्टान्तो मे 'क' से तात्पर्य एक व्यक्तिगत वस्तु है। अत· यह कहना तो ठीक है कि "महाराजा अशोक सभ्य और असभ्य दोनो नही हो सकता" अथवा," महाराजा अशोक या तो सभ्य है, अथवा असभ्य" , परन्तु यह कहना ठीक नही है कि " 'मनुष्य' सभ्य और असभ्य दोनो नही हो सकता" अथवा " 'मनुष्य' या तो सभ्य है, अथवा 'असभ्य' " , क्योंकि इन कथनो मे 'मनुष्य' से तात्पर्य एक व्यक्तिगत वस्तु नही है। इन दृष्टान्तों मे 'मनुष्य' पद किसी व्यक्ति के लिए प्रयुक्त नही हुआ है परन्तु विभिन्न वस्तुओ के लिए प्रयुक्त हुआ है। इससे यह तात्पर्य है कि कुछ मनुष्य सभ्य हो सकते हैं तथा अन्य मनुष्य असभ्य हो सकते है।

(२) 'क' से तात्पर्य एक व्यक्तिगत वस्तु है।

टिप्पणी—विचार के तीनों नियमो का पारस्परिक सम्बन्ध

प्राय. यह प्रश्न उठता है कि क्या ये तीनों नियम—**तादात्म्य-नियम, विरोध-बाधक-नियम और निर्मध्यम-नियम**—अपनी पृथक्-पृथक् सत्ता रखते है या ये तीनो किसी एक ही साधारण-सिद्धान्त के द्योतक हैं ? प्राय· यह कहा जाता है विरोध-बाधक-नियम तादात्म्य-नियम का ही रूपान्तर है, क्योकि जो तादात्म्य का नियम स्वीकार रूप मे कहता है, उसी को विरोध-बाधक-नियम निषेध-रूप मे कहता है। यह बात ज्ञातव्य है कि स्वीकृति और निषेध विचार की विभिन्न अवस्थाये है। यह सच है कि 'स्वीकार' मे उसके विरोध का 'अस्वीकार' निहित रहता है और इसी प्रकार 'अस्वीकार' मे 'स्वीकार' का विरोध निहित रहता है। परन्तु यह भी तो सत्य है कि ये दोनो विचार की विभिन्न अवस्थाओ के द्योतक हैं। इसी प्रकार यह कहा जा सकता है कि एक ओर तो

निर्मध्यम का नियम और दूसरी ओर तादात्म्य और विरोध-वाधक नियम, यद्यपि परस्पर सम्वन्धित है परन्तु मूल रूप मे वे विचार के विभिन्न-रूप ही हैं।

(४) पर्याप्त-हेतु नियम (The Law of Sufficient Reason)—लाइवनीज (Leibnitz)

पर्याप्त-हेतु का नियम इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है :—"**कोई भी वस्तु या घटना विना इस पर्याप्त कारण के नहीं हो सकती कि वह इसी प्रकार क्यों रहे और दूसरे प्रकार नहीं।**"

परिवर्तनों के लिए पर्याप्त कारण होना चाहिए।

इस नियम का यह तात्पर्य है कि यदि किसी वस्तु अथवा घटना मे कोई परिवर्तन हो, तो उसके लिए पर्याप्त कारण होना चाहिए। एक प्राचीन दृष्टांत देखिए। न्यूटन (Newton) ने पेड़ से सेव को गिरते देखा और उसने स्वय अपने आप से यह प्रश्न किया कि वह सेव क्यो गिरा ? सचमुच, इसका कोई सतोपप्रद स्पष्टीकरण होना चाहिए—जो कि उसे माध्याकर्षण के नियम (Law of Gravitation) मे मिल गया।

यह नियम अनिवार्यत तादात्म्य-नियम का परिपूरक है। तादात्म्य-नियम के अनुसार 'विचार' का आश्रय अपरिवर्तित रहना चाहिए ; परन्तु इस नियम के अनुसार उसमे यह वात और जुड जाती है कि यदि कोई परिवर्तन हो, तो उस परिवर्तन के लिए कुछ पूर्ववर्ती परिस्थितिया ऐसी होनी चाहिए जो कि उसे उत्पन्न करने मे समर्थ हो सके।

टिप्पणी—हैमिल्टन (Hamilton) की स्वयसिद्धि (Postulate)

उपर्युक्त मूल-नियमो के अतिरिक्त कुछ अन्य अधीन स्वय-सिद्धियाँ भी है, जिनमे से **हैमिल्टन की स्वयंसिद्धि** पर संक्षेप मे विचार करेंगे।

हैमिल्टन ने अपनी 'तर्कशास्त्र की स्वयंसिद्धि' (postulate of Logic) को इस प्रकार व्यक्त किया है :—

"तर्कशास्त्र बिना तर्क के यह मान लेता है कि जो कुछ आन्तर-रूप से विचार में है, वह बाह्य-रूप से भाषा में प्रकट किया जा सकता है।"

तर्कशास्त्र भाषाभिव्यक्त विचारों से सम्बन्ध रखता है। एक ही विचार को विभिन्न भाषाओ मे व्यक्त किया जा सकता है। इस नियम का अभिप्राय यह है कि जब तक अर्थ मे परिवर्तन नही है, तब तक हम अपनी अभिव्यक्ति के आकार को बदल सकते है। शब्दों का अर्थ, न कि उनका आकार, ही मुख्य है। अतः जब तक अर्थ वही रहता है, तब तक किसी कथन के कहने के ढंग मे परिवर्तन लाया जा सकता है। उदाहरण के लिए यह तर्क वाक्य कि "सब मनुष्य मर्त्य हैं" इस प्रकार भी व्यक्त हो सकता है कि "कोई भी मनुष्य अमर्त्य नही है।"

अभिव्यक्तिका आकार बदला जा सकता है, यदि अर्थ वही रहे।

यह नियम तादात्म्य-नियम से ज्ञात हो सकता है। एक आकार मे व्यक्त विचार दूसरे आकार में व्यक्त विचार से तादात्म्य है और क्योकि प्रत्येक वस्तु मे अपने से तादात्म्य है ; अतः व्यक्त करने के एक ढंग को दूसरे ढग मे बदला जा सकता है।

प्रश्नमाला २

(१) विचार के नियम (Laws of Thought) कौन-कौन-से है ? तादात्म्य-नियम, विरोध-बाधक-नियम और निर्मध्यम-नियम की व्याख्या कीजिए।

(२) तादात्म्य-नियम का उदाहरण-सहित विवरण दीजिए। उसका तात्पर्य समझाइए। उसे आकारगत तर्क का सिद्धान्त क्यो कहते है ?

(३) इस प्रश्न पर विचार कीजिए कि क्या तादात्म्य-नियम पुनरुक्ति-मात्र है ?

(४) तादात्म्य-नियम और [illegible] नियम का

उदाहरण सहित वर्णन कीजिए तथा उनका पारस्परिक सम्बन्ध प्रदर्शित कीजिए। तर्क के नियमों के रूप में उनकी क्या उपयोगिता है ?

(५) तादात्म्य-नियम, विरोध-बाधक-नियम और निर्मध्यम नियम का वर्णन कीजिए और निगमनमूलक तर्कशास्त्र में उनके व्यावहारिक उपयोग को स्पष्ट कीजिए।

(६) वास्तविक उदाहरणों सहित तर्कशास्त्र में मूल-सिद्धान्तो की व्याख्या कीजिए। क्या ये सब नियम अपनी पृथक्-पृथक् सत्ता रखते है ? इस प्रश्न पर विचार कीजिए।

(७) पर्याप्त-हेतु-नियम से आप क्या समझते है ? तर्कशास्त्र मे उसकी क्या उपयोगिता है ?

(८) 'विचार के नियमों' की व्याख्या कीजिए। क्या आपके विचार मे पर्याप्त हेतु का नियम एक विचार का नियम है ?

टिप्पणी :—पर्याप्त कारण का नियम इस प्रकार का है कि उसका सम्बन्ध उन तार्किक आधारो मे प्रतीत होता है जिन पर किसी दिए हुए कथन की सत्यता निर्भर रहती है, साथ ही उसका सम्बन्ध उन वस्तुओ से भी हो सकता है जिनसे विश्व की घटनाओ मे परस्पर कारण-सम्बन्ध होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि लाइबनीज़ ने इस नियम का निर्माण बादवाली बात के ही सम्बन्ध मे किया है। अत. पर्याप्त-हेतु का नियम वास्तविक वस्तुओ के लिए है और अरस्तू के तीनो विचार के नियमो के सदृश केवल आकारगत-नियम ही नही है।

EXERCISE II.

1. What are the Laws of Thought ? Explain the Laws of Identity, Contradiction and Excluded Middle.

2. State and illustrate the Principle of Identity. Give its precise significance Why is it called a principle of formal reasoning ?

3. Examine the question whether the principle of Identity is a mere tautology.

4. State and illustrate fully the principles of Identity and Contradiction, exhibiting their relation

to each other. Explain and illustrate their use or significance as principles of reasoning.

5. State the Principles of Identity, Contradiction and Excluded Middle ; and explain their practical application in Deductive Logic

6. State and explain with concrete illustrations the Fundamental Principles of Deductive Logic. Are they equally Fundamental ? Discuss the question fully.

7. What do you understand by the Principle of Sufficient Reason ? Indicate its importance in Logic.

8. Explain the Laws of Thought Do you think that the Law of Sufficient Reason is a law of thought ?

तृतीय प्रकरण

पद

§ १. शब्द (Words) और पद (Terms) : पदयोग्य शब्द (Categorematic) और पद-संयोज्य (Syncategorematic) शब्द।

टिप्पणी :—क्या पद सम्बन्धी प्रकरण का तर्कशास्त्र में स्थान है ?

§ २. पदों का निर्देश (Denotation) और गुण (Connotation)।

§ ३. पदों का विभाग :—

(क) एक शब्दात्मक (Simple) और अनेक शब्दात्मक (Composite)।

(ख) विशिष्ट (Singular) और सामान्य (General)।

(ग) समूहवाचक (Collective) और असमूह-वाचक (Non-collective) ; पदों का समष्ट्यर्थ (Collective use) एवं व्यष्ट्यर्थ (Distributive use)।

(घ) वस्तुवाचक (Concrete) और भाव-वाचक (Abstract)।

(ङ) स्वीकारात्मक (Positive), निषेधात्मक (Negative) तथा अभावात्मक (Privative)।

टिप्पणी—विरोधी-पद : विरुद्ध (Contradictory) और विपरीत (Contrary) पद।

(च) निरपेक्ष (Absolute) और सापेक्ष (Relative)।

(छ) गुणवाचक (Connotative) और
अगुणवाचक (Non-connotative)।
अभ्यासार्थ प्रश्न (उत्तर सहित)।
प्रश्नमाला ३

§१ शब्द (Words) और पद (Terms) : पदयोग्य शब्द (Categorematic) और पद-सयोज्य शब्द (Syn-categorematic)।

शब्द

'शब्द' से क्या तात्पर्य है, यह हम सब जानते है। 'शब्द' एक या अनेक अक्षरो से मिलकर बनता है, तथा उसका कुछ अर्थ होता है। शब्द एक अक्षर का भी हो सकता है, जैसे 'न' और वह अनेक अक्षरो का भी हो सकता है, जैसे 'वह' 'मनुष्य', 'साधारण', 'हरसिंगार' इत्यादि।

वाक्य

शब्दो के संयोग से व्याकरण का **वाक्य** (Sentence) बनता है, जैसे—"आओ, चले।" "मनुष्य मर्त्य है।" "घोडा एक चतुष्पदी जन्तु है।" इत्यादि। अत. वाक्य शब्दो के समूहसे बनता है, तथा उसमे एक पूर्ण-विचार निहित रहता है।

तर्क-वाक्य

यदि साधारण रीति से देखा जाय तो व्याकरण मे हम जिसे वाक्य कहते है, तर्कशास्त्र मे वह **तर्क-वाक्य** (Logical Proposition) कहलाता है। तर्कवाक्य और साधारण वाक्य मे भेद होता है। तर्क-वाक्य के तीन अग होते है. (१) उद्देश्य (Subject) (२) विधेय (Predicate) और सयोजक (Copula)। **उद्देश्य** वह है जिसके साथ कोई स्वीकारात्मक या निषेधात्मक सम्बन्ध स्थापित किया जाय। **विधेय** वह है जिसका उद्देश्य के साथ स्वीकारात्मक अथवा निषेधात्मक सम्बन्ध स्थापित किया जाय और **संयोजक** (Copula) उद्देश्य और विधेय के सम्बन्ध का प्रतीक चिह्न है। उदाहरण के लिए, तर्कवाक्य

"मनुष्य मर्त्य है" मे, 'मनुष्य' उद्देश्य है, 'मर्त्य' विधेय है, तथा 'है' सयोजक है।

जो शब्द या शब्द-समूह किसी तार्किक-वाक्य में उद्देश्य (Subject) या विधेय (Predicate) की भाँति प्रयुक्त किया जा सके उसे पद (Term) कहते है।

पद

कुछ तर्कशास्त्रियो का कथन है कि जो शब्द या शब्द-समूह किसी तर्कवाक्य मे वास्तव मे उद्देश्य या विधेय की भाँति प्रयुक्त किया गया हो, उसी को पद कहते है। इस दृष्टिकोण से वह शब्द या शब्द-समूह जो इस प्रकार व्यक्त किये जा सकते हो, यद्यपि किये नही गये हों, संभावित-पद (possible term) कहे जा सकते है।

'पद' को अंग्रेजी मे 'टर्म' (Term) कहते है। यह शब्द लैटिन भाषा के 'टर्मिनस' (Terminus) शब्द का संक्षिप्त रूप है। टर्मिनस' का अर्थ है सीमा, छोर। अंग्रेज़ी भाषा के तर्कवाक्य मे उद्देश्य आदि मे—एक छोर पर और विधेय अन्त मे—दूसरे छोर पर होता है। जैसे तर्कवाक्य "Man is mortal" मे, 'man' और 'mortal' शब्द तर्कवाक्य के दोनो छोर पर है और पद है क्योकि वे तर्कवाक्य मे उद्देश्य या विधेय की भाँति प्रयुक्त किये जा सकते है , 'is' शब्द पद नही है, क्योकि वह इस प्रकार प्रयुक्त नही किया जा सकता।

सब पद शब्द है परन्तु सब शब्द पद नहीं होते

इस प्रकार हम देखते है कि **यद्यपि प्रत्येक पद एक शब्द या शब्द-समूह होता है, परन्तु प्रत्येक शब्द एक पद नहीं होता।** शब्द या शब्द-समूह तभी 'पद' हो पाते है जब उनका उपयोग किसी वाक्य मे उद्देश्य या विधेय की भाँति हो सकता हो। प्रत्येक शब्द का प्रयोग इस प्रकार नही हो सकता , अतः ऐसा शब्द 'पद' नही होता।

अत. तर्कशास्त्र मे शब्दो को दो वर्गो मे बाँटा जाता है ;

यथा—'पदयोग्य-शब्द' (Categorematic) तथा 'पद-संयोज्य शब्द' (Syncategorematic)।

पदयोग्य-शब्द 'पद' होते हैं।

पदयोग्य शब्द (Categorematic) वह है जो स्वयं पद की तरह बिना दूसरे शब्दो की सहायता के प्रयुक्त हो सके; और पद-संयोज्य (Syncategorematic) वह है जो स्वयं पद की तरह प्रयुक्त नहीं हो सकता किन्तु किसी पदयोग्य शब्द के साथ मिलकर उसे प्रयुक्त किया जा सकता है। अतः पदयोग्य-शब्द तो पद (Term) होते है, परन्तु पद-संयोज्य शब्द पद नहीं होते।

उदाहरण के लिए, 'मनुष्य' पद पदयोग्य शब्द अर्थात् 'पद' है क्योंकि वह एक तर्कवाक्य का उद्देश्य या विधेय हो सकता है। इसी प्रकार 'वह' शब्द पदयोग्य हे क्योकि वह किसी तर्कवाक्य का उद्देश्य हो सकता है ; 'श्वेत' शब्द भी पदयोग्य है क्योकि वह किसी तर्कवाक्य का विधेय हो सकता है। पद-सयोज्य शब्दो के उदाहरण 'का' 'और' इत्यादि हो सकते है। क्योकि ये शब्द स्वय पद की भाँति प्रयुक्त नही हो सकते।

व्याकरण एवं तर्कशास्त्र के शब्दों के विभाग की तुलना

अब हम तर्कशास्त्र के 'शब्द' तथा व्याकरण के शब्दो के अन्तर पर विचार करेंगे। व्याकरण मे शब्दो को सज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, क्रियाविशेषण आदिक पदो मे विभक्त किया जाता है। तर्कशास्त्र मे शब्दो के केवल दो विभाग है—पदयोग्य शब्द (अर्थात् 'पद') और पद-सयोज्य शब्द (अर्थात् जो पद नही होते)। तर्कशास्त्र मे कोई शब्द या तो पद होगा अथवा नही।

कुछ तर्कशास्त्री शब्दो के एक अन्य वर्ग को भी मान्यता देते है, जिन्हे पदायोग्य शब्द (Acategorematic words) कहते है।

पदायोग्य शब्द

पदायोग्य शब्द (Acategorematic) वह है जो स्वतत्र रूप से या किसी अन्य के सम्बन्ध से भी पद के रूप मे प्रयुक्त न किया जा सके। उदाहरणार्थ अरे, हे, हाय, इत्यादि सम्बोधन-

बोधक अव्यय शब्द ऐसे है, जिनका न तो स्वतन्त्र रूप से और न किसी के सम्बन्ध से पद के रूप मे प्रयोग हो सकता है।

टिप्पणी—क्या पद-सम्बन्धी प्रकरण का तर्कशास्त्र मे स्थान है ?

तर्कशास्त्र में पदो का स्थान

प्राय यह प्रश्न उठाया जाता है कि क्या पद-सम्बन्धी-प्रकरण का तर्कशास्त्र मे कोई स्थान हो सकता है ? इसका उत्तर स्वीकारात्मक ही है। यह ठीक है कि तर्कशास्त्र का मुख्य सम्बन्ध तर्क से है, परन्तु जब तर्क को भाषा मे व्यक्त करते है तो हमे तर्क-वाक्यो (Propositions) पर विचार करना पड़ता है। तर्क-वाक्य पदो (Terms) से बनते है। अत. तर्क पर विचार करते समय तर्कशास्त्र मे तर्क-वाक्य एव पदो का अध्ययन हो ही जाता है। वास्तव मे तर्क पर विचार उसके अवयव —पद तथा तर्कवाक्य—पर विचार करने से ही प्रारम्भ होता है।

§ २ पदो का निर्देश (Denotation) और गुण (Connotation)

प्रत्येक पद किसी वस्तु का निर्देश करता है तथा 'गुण' को व्यक्त करता है।

प्रत्येक पद का अर्थ दो प्रकार से समझा जा सकता है, जिन्हे क्रमश. निर्देश (Denotation) और गुण (Connotation) कहते है। निर्देश (Denotation) के द्वारा उन व्यक्तियो को बतलाया जाता है, जिनके लिए वह पद प्रयुक्त होता है तथा गुण (Connotation) के द्वारा उन विशेषताओ को बतलाया जाता है जो उस पद द्वारा निर्दिष्ट व्यक्तियों में समान रूप से वर्तमान है। इस प्रकार एक पद वस्तुओं का निर्देश करता है तथा उनके समान-गुणो को बतलाता है। उदाहरण के लिए, 'मनुष्य' पद को लीजिए। 'मनुष्य' पद उन समस्त वस्तुओ का निर्देश करता है, जिनके लिए यह पद प्रयुक्त

हुआ है, अर्थात् 'सब मनुष्य'। और यह उन गुणो को बतलाता है जो कि सब मनुष्यो मे समान रूप से पाये जाते है, अर्थात् 'प्राणित्व' (animality) और 'विचारशीलता' (rationality)। इसी प्रकार 'त्रिभुज' पद 'सब त्रिभुजो' का निर्देश करता है और उन अनिवार्य गुण को व्यक्त करता है जो कि सब त्रिभुजो मे समान रूप से पाये जाये, अर्थात् तीन सीधी रेखाओ से वेष्ठित सरल-आकृति का होना। इसी प्रकार 'सूर्य' पद केवल एक ही वस्तु-विशेष का निर्देश करता है और निर्दिष्ट वस्तु के समस्त अनिवार्य गुणो को व्यजित करता है।

'निर्देश' (Denotation) के समानार्थी शब्द **'विस्तार'** (Extension), **'क्षेत्र'** (Scope) **'विषय'** (Domain) आदि है तथा 'गुण' (Connotation) के समानार्थी शब्द **'स्वभाव'** (Intension) **'पदत्व'** (Intent) **'गहराई'** (Depth) **'सामर्थ्य'** (Comprehension) आदि है।

अब हम इस बात पर विचार करेगे कि पद के 'निर्देश' (Denotation) और 'गुण' (Connotation) मे क्या पारस्परिक सम्बन्ध है? यह कहा जाता है कि **पद के 'निर्देश' और 'गुण' में प्रतिलोम-अनुपात** (inverse ratio) **का सम्बन्ध है।**

'निर्देश' और 'गुण' में प्रतिलोम-अनुपात का सम्बन्ध है।

इस कथन का यह तात्पर्य है कि यदि एक बढता है, तो दूसरा घटता है और यदि एक घटता है, तो दूसरा बढता है। इस प्रकार,

(१) यदि 'निर्देश' बढता है, तो 'गुण' घटता है।
(२) यदि 'निर्देश' घटता है, तो 'गुण' बढता है।
(३) यदि 'गुण' बढता है, तो 'निर्देश' घटता है। और—
(४) यदि 'गुण' घटता है, तो 'निर्देश' बढता है।

उदाहरण

उदाहरण के लिए, 'मनुष्य' पद का 'निर्देश' 'सब मनुष्य' है और उसका 'गुण', 'प्राणित्व' और 'विचारशीलता' है। यदि हम 'मनुष्य' पद मे 'अन्य सब जन्तु' जोडकर उसका 'निर्देश' बढा दे ('मनुष्य' का निर्देश+'अन्य सब जन्तु'='समस्त जन्तु') तो

'गुण' केवल 'प्राणित्व' रह जायगा ('मनुष्य' का 'गुण'–विचारशीलता='प्राणित्व')। **अतः 'निर्देश' के बढ़ने से 'गुण' कम हो जाता है।**

यदि हम 'मनुष्य' पद से 'असभ्य मनुष्य' घटाकर उसका 'निर्देश' कर दे ('मनुष्य' का निर्देश–असभ्य मनुष्य=सभ्य मनुष्य), तो 'गुण' मे 'सभ्यता' का गुण जुडकर वृद्धि हो जायगी ('मनुष्य' का 'गुण'+'सभ्यता' का गुण='सभ्य मनुष्य' का 'गुण')। अत. **'निर्देश' के कम होने से 'गुण' बढ़ जाता है।**

यदि हम 'मनुष्य' के 'गुण' को 'ईमानदारी' जोडकर बढ़ा दे ('मनुष्य' का 'गुण'+ईमानदारी=प्राणित्व+सजीवता+ईमानदारी) तो उसका निर्देश कम होकर केवल 'ईमानदार मनुष्य' रह जायेगा (मनुष्य का निर्देश–बेईमान मनुष्य=ईमानदार मनुष्य)। अत. **यदि 'गुण' बढ़ता है, तो 'निर्देश' घटता है।**

इसी प्रकार यदि हम 'मनुष्य' पद से 'विचारशीलता' को घटा कर उसका 'गुण' कम कर दे (मनुष्य का 'गुण'–विचारशीलता =प्राणित्व) तो निर्देश बढ जायेगा, क्योकि शेष गुण 'प्राणित्व' केवल सब मनुष्यो मे ही नही होगा, वरन सब जन्तुओ (प्राणियो) में होगा (मनुष्य का निर्देश+अन्य सब जन्तु=सब जन्तु)। **अतः 'गुण' के घटने से 'निर्देश' बढ़ता है।**

सम्बद्ध शृंखला

'निर्देश' और 'गुण' का यह 'प्रतिलोम-अनुपात का सम्बन्ध' (relation of inverse variation) पदो की एक **परस्पर सम्बद्ध शृखला** के द्वारा अधिक स्पष्ट हो सकता है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित शृखला देखिए :—

जन्तु (प्राणी), मनुष्य, सभ्य मनुष्य, भारतीय।

इस शृंखला मे पहला पद जन्तु (अथवा प्राणी) है जिसका 'निर्देश' तो सबसे अधिक है, परन्तु 'गुण' सबसे कम है। जब हम क्रम से उसके बाद वाले पदों का अध्ययन करते है, तो हमे पता चलता है कि 'निर्देश' तो कम होता जा रहा है, परन्तु 'गुण' बढ़ता जा रहा है। इस प्रकार जब हम अन्तिम पद 'भारतीय' पर पहुँचते है, तो पता चलता है कि इसका 'निर्देश' सबसे कम है, परन्तु

'गुण' सबसे अधिक है। अत. यह शृंखला यह प्रदर्शित करती है कि ज्यो-ज्यो 'निर्देश' मे कमी होती है, त्यों-त्यो 'गुण' में वृद्धि होती है। इसकी विलोम-क्रिया जिसमे 'निर्देश' की वृद्धि के साथ-साथ 'गुण' मे कमी होती हे, निम्नलिखित शृंखला से प्रदर्शित होती है:

मनुष्य, जन्तु, सजीव वस्तु, भौतिक वस्तु, वस्तु (पदार्थ)।

जाति और उपजाति

जाति (Genus) और उपजाति (Species) : जब दो वर्गो के द्योतक पद इस प्रकार सम्बन्धित हों, कि एक मे दूसरे का निर्देश सन्निहित हो, तो अधिक निर्देश वाला पद कम निर्देश वाले पद के सम्बन्ध मे 'जाति' (Genus) कहलाता है; और कम निर्देश वाला पद उसकी उपजाति (Species) कहलाता है। उदाहरण के लिए, 'जन्तु' पद 'मनुष्य' पद के सम्बन्ध मे 'जाति' हे, और 'मनुष्य' पद 'जन्तु' पद के सम्बन्ध मे 'उपजाति' है। इस दृष्टात से 'निर्देश' और 'गुण' का प्रतिलोम-अनुपात का सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है। 'जाति' जन्तु का निर्देश उपजाति 'मनुष्य' के निर्देश से अधिक है, परन्तु 'जाति' का गुण (अर्थात् 'प्राणित्व') 'उपजाति' के गुण (अर्थात् 'प्राणित्व' और 'विचारशीलता') से कम है।

'निर्देश' और 'गुण' के प्रतिलोम-अनुपात के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातो को भले प्रकार समझ लेना चाहिए :—

'निर्देश' या 'गुण' के बढ़ाने या घटाने से नया पद बन जाता है।

(क) यह बात ज्ञातव्य है कि जब हम किसी पद के 'निर्देश' (Denotation) या 'गुण' (Connotation) को बढाते या घटाते है, तो वह पद वही नही रहता, बल्कि एक नया 'पद' बन जाता है। उदाहरण के लिए, यदि हम 'मनुष्य' पद के 'गुण' को 'ईमानदारी' जोडकर बढा दे, तो वह एक अन्य पद 'ईमानदार मनुष्य' बन जाता है। और इस नये पद का 'निर्देश' (Denotation) पुराने पद के 'निर्देश' से कम होता है। इसी प्रकार यदि हम 'मनुष्य' पद के गुण को

उसमें से 'विचारशीलता' घटाकर, कम कर दे, तो एक नया पद 'जन्तु' वन जाता है। और इस नए पद का निर्देश पुराने पद के निर्देश से अधिक होता है।

इससे यह तात्पर्य निकलता है कि यदि किसी पद के 'गुण' (Connotation) मे एक ऐसा गुण जोड दिया जाय जो कि उस पद द्वारा निर्दिष्ट **सभी सदस्यों में पाया जाय** या जो उस पद के **'गुण' के किसी अंश से फलित होता हो**, तो वह पद ज्यो का त्यो रहता है, अतः उसका निर्देश नही घटता। उदाहरण के लिए, 'त्रिभुज' पद को लीजिए। इसका गुण यह है· "तीन सीधी रेखाओ से वेष्ठित सरल आकृति।" यदि हम इसमें "जिसमे तीन कोण होते हो" गुण जोड दे, तो उस पद के 'निर्देश' मे कोई कमी नही होगी क्योकि जो गुण हमने जोडा है, वह सभी त्रिभुजो मे वर्तमान रहता है तथा 'त्रिभुज' पद के 'गुण' से फलित होता है। अत 'प्रतिलोम-सम्वन्ध का नियम' (Law of inverse variation) केवल तभी उपयुक्त होता है जवकि वृद्धि अथवा कमी से एक नया पद वन जाता है।

किसी पद के 'निर्देश' या 'गुण' की घटती-बढ़ती तत्सम्वन्धी ज्ञान की घटती-वढती के ऊपर निर्भर नहीं होती।

(ख) किसी पद के 'निर्देश' या 'गुण' की घटती-वढती किसी व्यक्ति के 'निर्देश' तथा 'गुण' के **ज्ञान** की घटती-वढती के ऊपर निर्भर नही होती। किसी मनुष्य का 'निर्देश' व 'गुण' विषयक ज्ञान घट-वढ़ सकता है, परन्तु इससे उस पद के 'निर्देश' व 'गुण' में कोई प्रभाव नही पडता। उदाहरण के लिए, जव कोलम्वस ने अमेरिका की खोज की तो हमारे महाद्वीप के 'निर्देश' के ज्ञान मे वृद्धि हुई, परन्तु 'महाद्वीप' पद के 'निर्देश' मे कोई वृद्धि नही हुई, अतः 'गुण' मे संगत कमी भी नही हुई। इसी प्रकार ज्ञान की वृद्धि होने पर यदि हमे पता चले कि एक विशेषता, जो अवतक किसी वस्तु के गुण का भाग समझी जाती थी, वास्तव मे वैसी नही हो, अथवा किसी ऐसी विशेषता का पता चले जो उस

वस्तु के 'गुण' का भाग नही समझी जाती थी, परन्तु वास्तव मे उसके 'गुण' का भाग हो, तो इससे उस पद के 'निर्देश' मे कोई परिवर्तन नही होगा।

(ग) प्रतिलोम-अनुपात का सम्बन्ध किसी गणित की प्रक्रिया की भाँति घटित नही होता। 'निर्देश' और 'गुण' की संगत बढती-घटती मे कोई निश्चित समानुपात नही है। यदि हम 'मनुष्य' पद के 'गुण' (Connotation) मे 'गोरापन' जोड दे, तो 'निर्देश' (Denotation) 'गोरे मनुष्य' हो जायगा, जो कदाचित् संसार की जन-सख्या के दो-तिहाई है, परन्तु यदि हम 'मनुष्य' पद के 'गुण' मे 'अधापन' जोड दे, तो उसका 'निर्देश' 'अन्धे मनुष्य' हो जायेगा, जिनकी सख्या बहुत कम है। अत यद्यपि दोनो दशाओ मे केवल एक ही 'गुण' जोडा गया था, परन्तु पहले की अपेक्षा दूसरी दशा मे 'निर्देश' की कमी अधिक थी।

कोई निश्चित समानुपात नही है।

§ ३ पदो का विभाग (Division)

कुछ तर्कशास्त्री पदो को एकार्थक (Univocal) और अनेकार्थक (Equivocal) के विभाग मे विभाजित करते है। जेवन्स (Jevons) के शब्दो मे, "एकार्थक (Univocal) पद वे है, जिनका एक निश्चित अर्थ को छोडकर दूसरा अर्थ नही होता। और अनेकार्थक (Equivocal) पद वे है जिनके एक अर्थ को छोडकर अनेक अर्थ होते है।" उदाहरण के लिए, 'घोडा', 'हाथी', 'मनुष्य' इत्यादि एकार्थक शब्द है, क्योकि वे एक ही अर्थ मे प्रयुक्त होते है। 'हरि', 'पद', 'द्विज' इत्यादि अनेकार्थक शब्द है क्योकि इनके एक से अधिक अर्थ होते है।

एकार्थक तथा अनेकार्थक शब्द

वास्तव मे यह कोई पदों का विभाग नही है, अपितु शब्दो का विभाग है। यदि किसी शब्द का केवल एक ही अर्थ हो तो वह एकार्थक और यदि उसके एक से अधिक अर्थ हो, तो वह

यह पदो का नहीं, अपितु शब्दों का विभाग है।

अनेकार्थक कहा जा सकता है। परन्तु **तर्कशास्त्र में किसी पद (term) के एक से अधिक अर्थ नहीं हो सकते।** तादात्म्य-नियम के अनुसार, यदि कोई पद प्रारम्भ मे किसी एक अर्थ मे प्रयुक्त किया जाय, तो युक्ति के अन्त तक वह उसी अर्थ मे प्रयुक्त किया जाना चाहिए। **यदि किसी शब्द के एक से अधिक अर्थ हों, तो जितने उसके अर्थ हो सकते है, वह उतने ही पदों के बराबर होता है।** अत 'द्विज' पद, ब्राह्मण अर्थवाचक, पक्षीवाचक 'द्विज' पद से सर्वथा भिन्न है।

पदों के विभिन्न विभाग

विभिन्न तर्कशास्त्रियो ने विभिन्न प्रकार से पदो के विभाग किये है, जिनमें से निम्नलिखित विभाग मुख्य है :—

(क) एकशब्दात्मक (Simple) और अनेक शब्दात्मक (Composite)।
(ख) विशिष्ट (Singular) और सामान्य (General)।
(ग) समूहवाचक (Collective) और असमूहवाचक (Non-collective)।
(घ) वस्तुवाचक (Concrete) और भाववाचक (Abstract)।
(ङ) स्वीकारात्मक (Positive), निषेधात्मक (Negative) और अभावात्मक (Privative)।
(च) निरपेक्ष (Absolute) और सापेक्ष (Relative)।
(छ) गुणवाचक (Connotative) और अगुणवाचक (Non-connotative)।

इनमे से प्रत्येक विभाग दूसरे विभाग से सम्बद्ध नही है और प्रत्येक पद के लिए यह आवश्यक है कि उपर्युक्त वर्गो मे से प्रत्येक के अन्तर्गत किसी एक उप-विभाग मे आता हो। किसी पद का स्वरूप (character) निश्चित करते समय हमे यह वतलाना है कि उपर्युक्त वर्गों मे से वह किस वर्ग के अन्तर्गत आता है? अर्थात हमे यह वतलाना होता है कि वह 'एकशब्दात्मक' है अथवा 'अनेक

शब्दात्मक', 'विशिष्ट' है अथवा 'सामान्य' इत्यादि। अब हम इन वर्गों का विस्तार से विवेचन करेंगे।

(क) एक शब्दात्मक (Simple) तथा अनेक शब्दात्मक (Composite) पद।

किसी पद मे या तो एक शब्द होता है अथवा वह अनेक शब्दो से निर्मित होता है। **यदि उसमें केवल एक ही शब्द होता है, तो उसे एक शब्दात्मक (Simple) पद कहते है** यथा—'मनुष्य' 'विद्यार्थी', 'विद्यालय' इत्यादि। यदि कोई **पद एक से अधिक शब्दो से निर्मित होता है तो उसे अनेक शब्दात्मक (Composite) पद कहते हैं।** यथा—'यह मनुष्य', 'एक योग्य विद्यार्थी', 'बनारस विश्वविद्यालय', 'भारतवर्ष के प्रधान मत्री' इत्यादि।

एक शब्दात्मक पद में एक शब्द तथा अनेक शब्दात्मक में एक से अधिक शब्द होते हैं।

यह स्पष्ट है कि अनेक शब्दात्मक पदो मे कुछ तो पदयोग्य शब्द (Categorematic words) (अर्थात् ऐसे पद जो स्वय ही 'पद' की भाँति प्रयुक्त हो सके) होते है, तथा कुछ पद-सयोज्य शब्द (Syncategorematic words) (अर्थात् ऐसे शब्द जो बिना दूसरे शब्दो के सयोग के स्वय ही पद की भाँति प्रयुक्त न हो सके) होते है। उदाहरण के लिए, 'भारतवर्ष के प्रधान मत्री' पद मे 'भारतवर्ष' और प्रधान मत्री तो पदयोग्य शब्द है तथा 'के' पद-सयोज्य शब्द हैं।

(ख) विशिष्ट अथवा व्यक्तिसूचक (Singular) और सामान्य (General) पद।

जिस पद से केवल एक ही वस्तु का निर्देश होता हो, उसे विशिष्ट (Singular) या व्यक्तिसूचक (Individual) कहते है। उदाहरण के लिए, 'बनारस', 'कालिदास', 'गगा', 'ससार का सर्वोच्च पर्वत शिखर', 'यह मनुष्य', 'यह पुस्तक' इत्यादि

विशिष्ट पद से एक ही वस्तु का निर्देश होता है और—

सामान्य पद अनेकों वस्तुओं में से किसी एक के लिए प्रयुक्त किया जाता है।

विशिष्ट पद है, क्योकि उनसे एक व्यक्ति या वस्तु का निर्देश होता है। **सामान्य पद उसे कहते है जो एक ही अर्थ में उन वस्तुओं में से किसी एक के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है, जो वस्तुएं कुछ अनिवार्य गुणों के कारण परस्पर समान है।** यथा--'मनुष्य', 'पुस्तक', 'विद्यार्थी', 'ग्रह' इत्यादि।

अत 'यह मनुष्य' पद तो विशिष्ट (Singular) है क्योकि वह एक ही व्यक्ति का निर्देश करता है परन्तु 'मनुष्य' पद सामान्य (General) है क्योकि वह अनेको मनुष्यो के वर्ग के किसी एक मनुष्य के लिए उपयुक्त किया जा सकता है, क्योकि सब मनुष्यो मे कुछ अनिवार्य गुण समान रूप से वर्तमान रहते है।

यह बात ज्ञातव्य है कि सामान्य पद अनेको वस्तुओ मे से किसी एक पर योही प्रयुक्त नही किया जाता, परन्तु इसलिए प्रयुक्त किया जाता है कि उन सब वस्तुओ मे कुछ अनिवार्य गुण समान रूप से वर्तमान रहते है। अत सामान्य पद (General term) केवल वस्तुओ का 'निर्देश' ही नही करता वरन उनके द्वारा व्यक्त गुणो को भी व्यक्त करता है। उससे केवल इस बात का ज्ञान ही नही होता कि वह कुछ वस्तुओ के लिए प्रयुक्त हुआ है, वरन यह भी पता चलता है कि उन वस्तुओ मे कुछ समानता है। इसी समानता के आधार पर समान-वस्तुओ का एक 'वर्ग' (Class) बनता है, अत सामान्य पद को **वर्ग-पद** (Class term) भी कहते है।

दो प्रकार के विशिष्ट पद

विशिष्ट पद (Singular terms) तार्किकों के मत में दो प्रकार के होते है, यथा—(१) सार्थक विशिष्ट पद (Significant Singular Terms) तथा (२) निरर्थक विशिष्ट पर्द (Non-significant Singular Terms) अथवा व्यक्तिवाचक नाम (Proper Names)।

सार्थक और-

(१) **सार्थक विशिष्ट पद** (Significant Singular

Term) वह है जिसके द्वारा किसी विशेष गुण के आधार पर केवल एक व्यक्ति का बोध हो, जैसे 'जगत् का सबसे ऊँचा पर्वत' एक सार्थक विशिष्ट पद है, क्योकि 'सबसे अधिक ऊँचा होना' यह एक विशेष गुण है और इसी के कारण केवल एक व्यक्ति का बोध हो रहा है। सबसे अधिक ऊँचा पर्वत केवल एक ही हो सकता है।

व्यक्ति-वाचक नाम

(२) **निरर्थक विशिष्ट पद** (Non-significant Singular Terms) अथवा **व्यक्तिवाचक नाम** (Proper Names) उन विशिष्ट पदो को कहते है जिनसे किसी गुण का बोध नही होता। अधिकाश तर्कशास्त्रियो का मत है कि व्यक्तिवाचक नाम (Proper Names) निरर्थक होते है; अर्थात् वे किसी 'गुण' (connotation) को व्यक्त नही करते। व्यक्तिवाचक नाम चिह्नमात्र होते है जो कि किसी विशेष व्यक्ति, स्थान, वस्तु अथवा घटना का बोध कराते है परन्तु उनसे यह तात्पर्य नही निकलता कि उनके द्वारा व्यक्त वस्तुओ मे कोई विशेष गुण समान है। उदाहरण के लिए 'हरी' पद को लीजिए। इस पद के द्वारा किसी व्यक्ति का निर्देश होता है, परन्तु उसके किसी गुण की अभिव्यक्ति नही होती। इससे इस नामवाले किसी भी व्यक्ति का बोध हो सकता है, परन्तु इसलिए नही कि इन व्यक्तियो मे कोई समान गुण है। यह नाम एक कुत्ते या घोडे या किसी नदी को भी दिया जा सकता है।

(ग) समूहवाचक (Collective) और असमूहवाचक (Non-collective) पद

पदो का समष्ट्यर्थ (Collective use) और व्यष्ट्यर्थ (Distributive use)

समूहवाचक पद

समूहवाचक पद (Collective term) वह है जो कि **समान वस्तुओं के समुदाय के लिए प्रयुक्त हो।** यह प्रत्येक वस्तु

का अलग-अलग बोध नहीं कराता, वरन उसके समुदाय का एकत्र बोध कराता है। अत. समूह-वाचक पद से (क) विभिन्न वस्तुओ का बोध होता है, (ख) उनमे कोई समानता होती है जिसके आधार पर हम उनको एक समूहमे ग्रहण करते है। उदाहरण के लिए 'सेना', 'नौसेना', 'पुस्तकालय' इत्यादि। 'सेना' पद समूहवाचक है क्योकि उससे प्रत्येक सैनिक का बोध नही होता, वरन सैनिक के समुदाय का ही बोध होता है।

असमूह-वाचक पद

जो पद समूहवाचक नही होते उन्हे असमूहवाचक (Non-collective) पद कहते है। **कॉफी** (Coffey) नामक तर्कशास्त्री ने असमूहवाचक पदो को **'ऐकिक-पद'** (Unitary Term) का नाम दिया है। 'असमूहवाचक' अथवा 'ऐकिक-पद' किसी समुदायका द्योतक नही होता। यह बात ध्यान देने की है कि ऐसे पदो को 'व्याप्त-पद' (Distributive Terms) नही समझना चाहिए।

पदो का समष्ट्यर्थ और व्यष्ट्यर्थ में प्रयोग

भाषा मे बहुत कम शब्द ऐसे है जो स्वय समष्टि या समुदाय के वोधक हो। कई स्थानो पर समष्टि का बोध कराने के लिए 'सव' अथवा 'सब मिलकर' इत्यादि शब्दो से काम लिया जाता है। यदि हम कहे 'एक त्रिभुज के सव कोण मिलकर दो समकोण के वरावर होते है' तो यहाँ हम 'सब कोण' समष्टि के अर्थ मे ले रहे है, अर्थात् सब कोण मिलकर दो समकोण के बराबर होते है। यदि हम कहे 'एक त्रिभुज के सब कोण दो समकोण से छोटे होते है, तो यहाँ 'सव' समष्टि के अर्थ मे नही, वरन व्यष्टि के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है, अर्थात् सव कोण अलग-अलग दो समकोण से छोटे होते है। यही **पदों का समष्ट्यर्थ** (Collective use) **और व्यष्ट्यर्थ** (Distributive use) **में प्रयोग कहलाता है।**

कोई समूहवाचक पद समष्ट्यर्थ अथवा व्यष्ट्यर्थ मे प्रयुक्त हो सकता है। यदि हम कहे, 'जूरी (Jury) अपने मत मे

अविभक्त थी', तो यहाँ हमारा तात्पर्य 'जूरी' के भिन्न-भिन्न व्यक्तियो से है, अर्थात् यहाँ 'जूरी' शब्द व्यष्ट्यर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। यदि हम कहे कि 'जूरी नौ मनुष्यो का समुदाय है', तो यहाँ हमारा तात्पर्य नौ मनुष्यो के समुदाय से है, अर्थात् यहाँ 'जूरी' शब्द समष्ट्यर्थ मे प्रयुक्त हुआ है।

समूहवाचक पद विशिष्ट या सामान्य हो सकता है।

समूहवाचक पद विशिष्ट (singular) या सामान्य (general) हो सकता है। यदि कोई समूहवाचक पद केवल एक ही समुदाय का बोध कराता हो, तो वह विशिष्ट होता है; यथा—'कलकत्ते की नेशनल लाइब्रेरी', 'भारतीय-जनता' इत्यादि। यदि समूहवाचक पद कई समुदायो मे से किसी भी समुदाय का बोध करावे तो वह सामान्य (general) होता है, यथा—'पुस्तकालय' इत्यादि। 'पुस्तकालय' सामान्य समूहवाचक पद है क्योकि उससे पुस्तको के किसी विशेष समुदाय का बोध नही होता, परन्तु ससार के अनेको पुस्तकालयों मे से किसी एक का बोध होता है।

(घ) वस्तुवाचक (Concrete) और भाववाचक (Abstract) पद

वस्तुवाचक और भाव-वाचक पद

जिससे किसी द्रव्य या वस्तु का बोध हो, उसे वस्तुवाचक पद (Concrete term) **और जिससे किसी भाव या गुण का बोध हो, उसे भाववाचक पद** (Abstract term) **कहते हैं।** उदाहरण के लिए, 'मनुष्य', 'पुस्तक', 'विद्यालय' 'त्रिभुज' वस्तु-**वाचक** पद है क्योकि वे वस्तुओको व्यक्त करते है और 'मनुष्यता' 'समानता' 'भोलापन' 'सफेदी' इत्यादि **भाववाचक** पद है क्योकि इनसे केवल गुणो का बोध होता है।

'वस्तु' (thing) से तात्पर्य उससे होता है, जिसमे कुछ 'गुण' हों। प्रत्येक वस्तु मे कुछ गुण होते है और गुण सर्वदा वस्तुओ

मे ही होते है। वस्तु और गुण पृथक-पृथक नही रह सकते। परन्तु यह सभव हो सकता है कि किसी गुण के वारे मे उसे वस्तु से पृथक करके भी विचार किया जा सके और ऐसे ही गुण का नाम भाववाचक पद (Abstract term) है।

वस्तुवाचक और भाववाचक पदों के युग्म

वस्तुवाचक और भाववाचक नाम प्राय युग्म मे रहते है ; यथा—मनुष्य-मनुष्यता , जीव-सजीवता , कजूस-कजूसी ; बुड्ढा-बुढापा ; शक्तिमान-शक्ति , थका व्यक्ति-थकान, इत्यादि। परन्तु यह नही सोचना चाहिए कि प्रत्येक वस्तुवाचक पद का सगत भाववाचक पद होता है।

यह वात ज्ञातव्य है कि **विशेषण** (adjectives) वस्तु-वाचक (concrete) ही है, भाववाचक (abstract) नही। यदि हम कहे 'यह पुस्तक उपयोगी है,' तो 'उपयोगी' विशेषण 'पुस्तक' पर चरितार्थ होता है। उसका सगत गुण 'उपयोगिता' होता है। इसी प्रकार 'बरावर', 'भला', 'कृतज्ञ', 'विचारशील' आदि विशेषण वस्तुओ के नाम है; अतः वे वस्तुवाचक पद है। उनके सगत भाववाचक पद क्रमश. 'बरा-वरी', 'भलाई', 'कृतज्ञता' एव 'विचारशीलता' है।

गुणात्मक पद

कुछ तर्कशास्त्रियों ने एक विभाग पदो का ऐसा निकाला है जिसे वे **गुणात्मक** (Attributive) कहते है। इनके अन्तर्गत वे विशेपण-पद तथा पूर्वकालिक-क्रिया (Participles) पदो का समावेश करते है। भाववाचक पदो से ये इस वात मे भिन्न है कि ये पद, कर्त्ता या उद्देश्य के रूप मे तो नही प्रयुक्त किये जा सकते किन्तु विधेय के रूप मे उनका प्रयोग हो सकता है। जैसे 'मानवीय', 'पढा हुआ' 'बहादुर'। इस प्रकार हम कह सकते है कि 'महात्मा गाधी का आचरण मानवीय है', 'यह पाठ पढ़ा हुआ है', 'अर्जुन बहादुर है।'

विशेष और सामान्य भाववाचक पद

भाववाचक पदों का 'विशिष्ट' और 'सामान्य' में विभाग

तर्कशास्त्रियोमे इस विषय मे बडा मतभेद है कि भाववाचक पदो का विभाग 'विशिष्ट' (singular) और 'सामान्य' (general) मे किया जा सकता है या नही। यह दृष्टिकोण कि उनका विभाग इस प्रकार किया जा सकता अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

जो भाववाचक पद किसी एक गुण को व्यक्त करता हो, वह विशेष (singular) होता है क्योकि यद्यपि वह गुण अनेक वस्तुओ मे वर्तमान हो, परन्तु वह गुण तो एक ही होता है। यद्यपि अनेको वर्गाकार वस्तुये हो सकती है, परन्तु 'वर्गता' का गुण तो एक ही होता है। भिन्न-भिन्न प्रकार की 'वर्गताओ' के बारे मे सोचना असभव ही है। इसी प्रकार, 'बराबरी', 'सत्यनिष्ठा', 'सुन्दरता' आदि विशिष्ट भाववाचक पद है।

जब कोई भाववाचक पद अनेको गुणो का नाम हो, तो वह 'सामान्य' (general) हो जाता है, यथा—'रग', 'सदाचार, इत्यादि। रग भिन्न-भिन्न प्रकार के होते है यथा 'सफेदी', 'लाली' 'कालापन', 'हरापन', 'पीलापन' इत्यादि। अत भाववाचक पद 'रग' सामान्य हुआ। इसी प्रकार 'सदाचार' के अन्तर्गत भी अनेको गुण आ जाते है यथा—'सत्यवादिता', 'दया', 'क्षमा', 'सच्चरित्रता' इत्यादि।

(ङ) स्वीकारात्मक (Positive), निषेधात्मक (Negative) और अभावात्मक (Privative) पद : अपरिमित पद (Infinite Terms)

स्वीकारात्मक, निषेधात्मक और अभावात्मक पद

स्वीकारात्मक (Positive) पद वह है, जिससे किसी वस्तु या गुण के अस्तित्व का बोध होता हो; जैसे—मनुष्य, मानवीय, प्रसन्न सुख, दु.ख इत्यादि। **निषेधात्मक (Negative) पद उसे कहते**

है, **जिससे किसी वस्तु या गुण के अनस्तित्व का बोध होता हो;** जैसे—'अ-मनुष्य', 'अमानवीय', 'अप्रसन्न', 'अ-सुख' इत्यादि। **अभावात्मक (Privative) पद उसे कहते हैं जो कि इस समय उन गुणों के अनस्तित्व का बोध कराता है, जो साधारणतया किसी वस्तु में रहते हैं।** अतः अभावात्मक पद यह बतलाता है कि किसी वस्तु मे इस समय उस गुण का अभाव है जो कि सामान्यतया उस वस्तु मे रह सकते हैं, जैसे—'अन्धा', 'बहरा', 'लँगडा', गूँगा', वन्ध्या' इत्यादि। किसी मनुष्य को 'अन्धा' तभी कहते हैं जबकि उसमें दृष्टि का अभाव हो, परन्तु उसमे वे अग उपस्थित हो, जिनकी सहायता से वह देख सकने मे समर्थ हो पाता, यदि दुर्घटनावश उनमे आघात न लगता। एक पेड़ को हम 'अन्धा' नही कहते, क्योकि किसी भी परिस्थिति मे वह देख नही सकता था। अतः **अभावात्मक (Privative) पदों का स्थान स्वीकारात्मक (Positive) और निषेधात्मक (Negative) पदों के मध्य का है।** निषेधात्मक पदो की भाँति वे किसी गुण के अभाव का बोध कराते हैं, और स्वीकारात्मक (Positive) पदो की भाँति वे इस बात का बोध भी कराते हैं कि सामान्यतया वह गुण उस वस्तु मे पाया जा सकता है।

पद का स्वरूप उसके 'आकार' से नहीं, वरन उसके अर्थ से निश्चित करना चाहिए।

प्राय. निषेधात्मक पद (Negative Terms) वे होते हैं जिनके पहले 'अ', 'अन', 'निस्', 'निर्' आदि उपसर्ग लगे रहते हैं। किन्तु कुछ पद ऐसे भी हैं जिनके पहले निषेधवाचक उपसर्ग न रहने पर भी वे निषेधातममत्क गिने जाते हैं। वास्तव मे इस विषय मे पद के आकार पर न जाकर उसके अर्थ पर विशेष ध्यान देना चाहिए। इस प्रकार के शब्द जैसे—अप्रसन्न (दुखी), अयोग्य (मूर्ख), अमूल्य (अधिक मूल्यवान), बुद्धिहीन (मूर्ख), आकार मे तो अवश्य निषेधात्मक है, परन्तु उनका स्वभाव स्वीकारात्मक है। साथ ही, 'सन्देह' अथवा

'भ्रम' (विश्वास का अभाव) 'परदेशी' (अपने देश का न होना), अन्धकार (प्रकाश का अभाव) इत्यादि शब्दो का आकार तो स्वीकारात्मक है, परन्तु उनका अर्थ निषेधात्मक है।

अभाववाचक पद उन वस्तुओ के लिए प्रयुक्त होते है, जिनमे गुण नही पाये जाते किन्तु उनको रखने की योग्यता होती है और प्राय. रखते है, तथा निषेधात्मक पद वे है जिनमे गुण नही है और न रखने की योग्यता ही है। यह बात ध्यान देने की है कि **विशेषण पद और पूर्व-कालिक-क्रिया पद अभावात्मक पदों की भाँति समझने चाहिए और उन्ही के अनुरूप भाववाचक पदो को निषेधात्मक समझना चाहिए।** इस प्रकार 'अधा', 'वधिर', 'मूक', 'सुस्त' आदि अभाववाचक पद है क्योकि वे उन गुणो को नही रखते है, क्योकि उनको प्राप्त करने की योग्यता उनमे है। इनके सगत भाववाचक पदो को निषेधात्मक मानना चाहिए, जैसे— 'अन्धापन', 'वधिरपन', 'मूकता', 'सुस्ती' इत्यादि ; क्योकि इन पदो का अर्थ क्रमशः 'दृष्टि का अभाव', 'श्रवणेन्द्रिय का अभाव', 'वाक्-शक्ति का अभाव' एव 'क्रियाशीलता का अभाव' है।

जब निषेधात्मक पद अपने स्वीकारात्मक पद का सर्वथा विरोधी होता है, तो उसे 'अपरिमित पद' (Infinite Terms) कहते है क्योंकि वह अपने स्वीकारात्मक पद के अतिरिक्त अन्य सब पदो का बोध कराता है। इस प्रकार 'अश्वेत' पद 'श्वेत' के अतिरिक्त सबको बोधित करता है। उसका क्षेत्र अपरिमित तथा असीमित होता है। **अरस्तू** (Aristotle) ने कहा था कि इस प्रकार के पदो का प्रयोग नही करना चाहिए क्योकि इनका अर्थ सदिग्ध होता है।

टिप्पणी—विरोधी-पद (Opposition in Terms) : विरुद्ध (Contradictory) तथा विपरीत (Contrary) पद

जिन पदो से ऐसे गुण सूचित होते है जो एक साथ ही एक ही

विरोधी पद

वस्तु मे नही रह सकते उन्हे **विरोधी** (Opposite) या **विसंवादी** (Incompatible) पद कहते है। ये दो प्रकार के है ; यथा—

विरुद्ध पद

(१) **विरुद्ध** (Contradictory) तथा

(२) **विपरीत** (Contrary)।

विरुद्ध, विपरीत

(१) जब दो पद परस्पर व्यावर्तक (Exclusive) **होते है और समस्त निर्दिष्ट वस्तुओं का नि:शेषीकरण** (exhaust) **करते है, तब वे विरुद्ध** (Contradictory) **पद कहलाते है।** उदाहरण के लिए 'श्वेत' तथा 'अश्वेत' पद परस्पर विरुद्ध (Contradictory) है क्योंकि कोई भी वस्तु श्वेत और अश्वेत दोनो नही हो सकती और श्वेत और अश्वेत दोनो से सब रगो का नि शेषीकरण हो जाता है।

विपरीत पद

(२) जब एक प्रकरण या विषय के भीतर दो पद परस्पर अधिक से अधिक विपर्यय प्रकट करते है, तो वे विपरीत पद (Contrary terms) **कहलाते है।** यथा—'श्याम' और 'श्वेत' विपरीत पद है क्योकि रग मे, विषय मे इन दोनो मे परस्पर अधिक से अधिक विपर्यय है। इसी प्रकार 'बुद्धिमान' और 'निर्बुद्धि', 'सबल' और 'निर्बल', 'सुखी' और 'दुखी' इत्यादि विपरीत पदो के युग्म है।

विपरीत पद दोनों असत्य हो सकते है

विपरीत (Contrary) और विरुद्ध (Contradictory) पदो मे समानता यह है कि इनमे से कोई भी द्वन्द्व एक ही काल मे एक ही वस्तु के सम्बन्ध मे एक साथ सत्य नही हो सकता। कोई भी वस्तु एक ही काल मे एक ही साथ 'श्याम' और 'श्वेत' (विपरीत) दोनो नही हो सकती। इसी प्रकार कोई भी वस्तु एक ही काल मे एक ही साथ 'श्वेत' और 'अश्वेत' (विरुद्ध) दोनो नही हो सकती। इन दोनो मे भिन्नता यह है कि विपरीत पद दोनो एक ही वस्तु के सम्बन्ध मे असत्य हो सकते है, पर विरुद्ध पद एक ही वस्तु के सम्बन्ध मे एक ही काल मे दोनो असत्य नही हो सकते। यह सभव है कि

एक वस्तु न तो 'श्याम' हो और न 'श्वेत', पर वह या तो 'श्वेत' या 'अश्वेत' अवश्य होगी। विरुद्ध पदो मे बीच मे कोई मध्यस्थ सभावना नही होती—वह वस्तु उन दोनो मे से एक अवश्य होगी। परन्तु विपरीत पदो के बीच मध्यस्थ दशा हो सकती है। उदाहरणके लिए कोई वस्तु 'श्याम' या 'श्वेत' न होकर 'नीली', 'पीली' या अन्य किसी रग की भी तो हो सकती है। (इस प्रसग मे देखिए : द्वितीय प्रकरण : विरोधबाधक नियम और निर्मध्यम नियम)

परन्तु दोनों विरुद्ध पद असत्य नही हो सकते।

(च) निरपेक्ष (Absolute) और सापेक्ष (Relative) पद

निरपेक्ष पद को अन्य वस्तु के आश्रय की आवश्यकता नहीं पड़ती;

निरपेक्ष-पद (Absolute term) **उस पद या गुण का नाम है जो किसी अन्य वस्तु के आश्रय के बिना स्वयं अपना एक निश्चित अर्थ रखता है;** जैसे–'पेड', 'पुष्प', 'घोडा', 'सोना' इत्यादि।

सापेक्ष-पद (Relative term) **वह है जिसका अर्थ किसी अन्य पद के आश्रय से ही स्पष्ट होता है।** सापेक्ष पद उस वस्तु का निर्देश करता है जिसके बारे मे किसी अन्य पद के अभाव मे विचार करना ही सभव न हो। यथा 'पिता' पद पर विना 'पुत्र' पद के सम्बन्ध के विचार ही नही किया जा सकता। इसी प्रकार 'शिक्षक' और 'शिष्य', 'कारण' और कार्य', 'पति' और 'पत्नी', 'राजा' और 'प्रजा', 'वडा' और 'छोटा', 'उत्तर' और 'दक्षिण' इत्यादि परस्पर सापेक्ष पद है।

सापेक्ष पद अन्य वस्तुओं पर आश्रित होते हैं।

सापेक्ष-पद सर्वदा युग्म मे रहते है और इस युग्म के प्रत्येक पद को 'सह-सम्बन्धी' (Correlative) पद कहते है। कभी-कभी दोनो सह-सम्बन्धी पदो को एक ही नाम से पुकारा जाता है ; यथा—'साथी-साथी', 'मित्र-मित्र', 'पास-पास' इत्यादि। और कभी-कभी सह-सम्बन्धी पदो के भिन्न-भिन्न नाम होते है ; यथा—'पिता' और 'पुत्र', 'पति' और 'पत्नी' इत्यादि। जिसके

सापेक्ष पद सदा युग्म में रहते हैं।

आधार पर सापेक्ष-पद एक दूसरे पर आश्रित होते है, वह सम्बन्धाधार (Fundamentum relationis) कहलाता है। उदाहरण के लिए, साझीदारो मे साझे का तथ्य तथा पति और पत्नी मे उनके विवाह-सम्बन्धी तथ्य सम्बन्धाधार है।

तर्कशास्त्र में 'सापेक्ष' का अर्थ

यह सच है कि ससार की कोई भी वस्तु पूर्णरूपेण स्वतन्त्र या निरपेक्ष नही है और वास्तव मे प्रत्येक वस्तु का किसी अन्य वस्तु से सम्वन्ध होता ही है। प्रत्येक वस्तु का आदि और अन्त होता है और अपने जीवन-काल मे अन्य वस्तुओ की क्रियाओ का प्रभाव उस पर पड़ता रहता है। अत. उन्हे पूर्णरूप से स्वतंत्र नही कह सकते, इस अर्थ मे प्रत्येक वस्तु सापेक्ष (relative) हुई। परन्तु तर्कशास्त्र मे 'सापेक्ष' पद इस अर्थ मे प्रयुक्त नही किया जाता। केवल उन्ही पदो को 'सापेक्ष' माना जाता है जो कि किसी विशेष प्रकार के सम्वन्ध को व्यक्त करते है। वह सम्बन्ध इतना घनिष्ठ होता है कि **एक पद बिना दूसरे पद के प्रसंग के समझा ही नहीं जा सकता।**

(छ) गुणवाचक (Connotative) और अगुणवाचक (Non-Connotative) पद

गुणवाचक पदों में 'निर्देश' और 'गुण' दोनो होते हैं;

गुणवाचक (Connotative) **पद वे है, जो वस्तुओं और गुणों दोनों का बोध कराते हों। और अगुणवाचक** (Non-Connotative) **पद उन्हें कहते है जो या तो वस्तु का ही बोध करावें, या गुण का ही बोध करायें।** अत. गुणवाचक पदो के 'निर्देश' (Denotation) और 'गुण' (Connotation) दोनो होते है और अगुणवाचक पदो का या तो केवल 'निर्देश' होता है अथवा केवल 'गुण'। **मिल** (Mill) के शब्दों में "अगुणवाचक पद वह है, जो या तो केवल गुणी (subject) को व्यक्त करता है, अथवा केवल गुण (attribute) को।

अगुणवाचक पदों में या तो 'निर्देश' होता है, या 'गुण'।

गुणवाचक पद गुणी का निर्देश करता है तथा गुणो को व्यक्त करता है।"

यह बात ध्यान मे रखनी चाहिए कि 'गुण' और 'गुणवाचक' एव 'अगुणवाचक' शब्दों के अर्थो मे भ्रान्ति न होने पावे। गुण-वाचक पद वे हैं, जो केवल गुण ही नही बतलाते, बल्कि 'गुण' और 'निर्देश' दोनो बतलाते हैं। अगुणवाचक पद का अर्थ यह नही है कि जिसमे 'गुण' नही हो, वरन वह पद जो या तो केवल 'निर्देश' करता है या केवल 'गुण' बतलाता है, पर दोनो नही बतलाता। यह विवरण मिल (Mill) की परिभाषा के अनुसार दिया गया है। परन्तु वेल्टन (Welton) का कहना है कि अगुण-वाचक पद वह है, जो केवल किसी वस्तु का निर्देश करता है, अर्थात् जो 'गुण' नही बतलाता।

दृष्टान्त

उदाहरण के लिए, 'मनुष्य' पद गुणवाचक है क्योकि वह 'सब मनुष्यो' का निर्देश करता है और 'प्राणित्व' तथा 'विचार-शीलता' के गुणो को व्यक्त करता है। 'श्वेत' पद भी गुणवाचक है क्योकि वह समस्त श्वेत वस्तुओ का निर्देश करता है जैसे हिम, खडिया, चूना इत्यादि और साथ ही साथ वह 'श्वेतता' के गुण को भी व्यक्त करता है। इसी प्रकार सदाचार' पद गुणवाचक है क्योकि वह विभिन्न प्रकार के सदाचारो यथा---सत्यता, पवित्रता, साहस, सच्चरित्रता आदि का निर्देश करता है और उस गुण का निर्देश करता है जो कि इन सभी प्रकार के सदाचारो मे वर्तमान रहता है। परन्तु 'वर्गता' अगुणवाचक पद है क्योकि वह केवल एक 'गुण' का बोध कराता है; किसी वस्तु का निर्देश नही करता। मिल (Mill) का कथन है कि व्यक्तिवाचक नाम, यथा, हरिश्चन्द्र इत्यादि अगुण-वाचक पद है, क्योकि उनमे केवल 'निर्देश' (Denotation) होता है, 'गुण' (Connotation) नही।

निम्नलिखित वर्ग **गुणवाचक पदों** के है :—

गुणवाचक पद : (क) सब सामान्य पद

(क) **सब सामान्य** (general) **पद**—चाहे वे वस्तु-वाचक (concrete) हों, या भाववाचक (abstract)—गुणवाचक होते है। 'मनुष्य' पद—जो कि एक वस्तुवाचक सामान्य पद है—गुणवाचक है क्योकि वह 'सब मनुष्यों' का निर्देश करता है और 'प्राणित्व' और 'विचारशीलता' के गुणो को भी व्यक्त करता है। 'रंग' पद—जो कि भाववाचक सामान्य पद है—भी गुणवाचक है क्योकि वह विभिन्न प्रकार के रंगो का निर्देश करता है, जैसे श्वेतता, श्यामता, लाली, हरापन, पीलापन इत्यादि और उस 'गुण' को व्यक्त करता है जो कि सभी रगो में समान रूप से हो।

(ख) कुछ विशिष्ट पद

(ख) **कुछ विशिष्ट पद, जो कि वस्तुओं का निर्देश करते है और गुणो को व्यक्त करते है।** उदाहरण के लिए, 'सूर्य', 'चन्द्रमा', 'प्रयाग विश्वविद्यालय के वर्तमान कुलपति', 'उत्तरप्रदेश के वर्तमान राज्यपाल', 'एशिया का सर्वोच्च पर्वत', 'संसार का सबसे बडा नगर' इत्यादि गुणवाचक पद है क्योकि ये वस्तुओ का निर्देश करते है और साथ उन वस्तुओ के अनेक गुणो का बोध कराते है। **समूह-बोधक विशिष्ट पद** भी गुणवाचक होते है यथा 'प्रयाग विश्वविद्यालय का पुस्तकालय', इत्यादि।

अगुणवाचक पद : (क) विशिष्ट भाववाचक पद

निम्नलिखित वर्ग **अगुणवाचक पदों** के है :

(क) **विशिष्ट भाववाचक पद** (Singular Abstract terms) यथा—'समानता, 'वर्गता', 'सत्यनिष्ठा', इत्यादि। ये अगुणवाचक-पद है, क्योकि इनमे 'निर्देश' नही होता और केवल 'गुण' होता है।

(ख) व्यक्तिवाचक नाम

(ख) **व्यक्तिवाचक नाम** (Proper Names) : **मिल** (Mill) तथा उस विचारधारा के अन्य तर्कशास्त्रियो का कहना है कि व्यक्तिवाचक नाम अगुणवाचक होते है क्योकि उनमे केवल

'निर्देश' होता है, 'गुण' नही। परन्तु यह समस्या बडी विवादास्पद है।

क्या व्यक्ति-वाचक नाम गुणवाचक होते हैं ?

क्या व्यक्तिवाचक नाम गुणवाचक (Connotative) **होते है ?** तर्कशास्त्रियो मे इस बात मे बडा मतभेद है कि व्यक्तिवाचक नाम (Proper Names) मे गुण' (Connotation) होता है या नही ? कुछ तर्कशास्त्री, यथा **मिल** (Mill) का विचार है कि वे गुणवाचक (Connotative) नही होते—उनका केवल 'निर्देश (Denotation) होता है, 'गुण' (Connotation) नही। अन्य तर्कशास्त्री, यथा—**जैवन्स** (Jevons) का विचार ठीक इसका उलटा है। क्योकि वह इन्हे 'गुणवाचक' मानता है, जिनके 'निर्देश' और 'गुण' दोनो होते हैं। अब हम इन दोनो दृष्टिकोणो का विस्तार मे वर्णन करेंगे।

मिल : व्यक्तिवाचक नाम गुण-वाचक नहीं होते।

मिल (Mill) के अनुसार व्यक्तिवाचक नाम अगुणवाचक (Non-Connotative) होते है। उसका कहना है कि "व्यक्तिवाचक नाम गुणवाचक नही होते। व्यक्तिवाचक नाम उन व्यक्ति-विशेषो का निर्देश करते है, जो उन नामो से पुकारे जाते है, परन्तु वे उनके गुणो को व्यजित नही करते। जब हम किसी बच्चे का नाम 'पॉल' अथवा किसी कुत्ते का नाम 'सीजर' रखते है, तो ये नाम केवल प्रतीक-मात्र होते है, ताकि इनके सम्बन्ध मे वार्तालाप किया जा सके।" वास्तव मे व्यक्तिवाचक नाम का कोई अर्थ नही होता, "वह तो एक अर्थहीन चिह्न (unmeaning mark)-मात्र होता है।"

"जब हम किसी बच्चे का नाम 'पॉल' अथवा किसी कुत्ते का नाम 'सीजर' रखते है तो ये नाम केवल प्रतीक-मात्र होते है, ताकि इनके सम्बन्ध मे वार्तालाप किया जा सके। यह कहा जा सकता है कि कोई नाम अन्य वस्तुओ को न देकर किसी विशेष वस्तु को देने का कोई कारण अवश्य होना चाहिए। और यह बात सत्य भी है।

परन्तु एक बार जब नामकरण कर दिया गया, तो फिर उस कारण से उसका कोई सम्बन्ध नही रहता। यह हो सकता है कि 'डार्ट' नदी के मुहाने पर बसा होने के कारण एक नगर का नाम 'डार्ट-माउथ' पड गया। परन्तु 'डार्टमाउथ' नाम का यह तात्पर्य नही है कि वह नगर 'डार्ट' नदीके मुहाने पर ही स्थित हो। यदि रेत से 'डार्ट' नदी का मुहाना पट जाय, अथवा भूकम्प के कारण 'डार्ट' नदी का प्रवाह दूसरी ओर को हो जाय, जिससे वह नदी नगर से काफी दूर हट जाय, तो ऐसी दशा मे भी उस नगर का नाम नही बदला जायगा। अत यह युक्ति कि 'डार्ट' नदी के मुख पर बसा होने के कारण यह नगर 'डार्टमाउथ' कहलाता है, अधिक महत्व की नही है, अन्यथा उस तथ्य के असत्य हो जाने पर उस नगर का वही नाम रखने मे कोई सार नही है। व्यक्तिवाचक नाम केवल वस्तुओ से सम्बद्ध रहते है, उन वस्तुओ मे किसी 'गुण' की उपस्थिति से नही।"

जैवन्स : व्यक्ति-वाचक नाम गुणवाचक होते है।

इसके विपरीत, **जैवन्स** (Jevons) का कथन है कि **व्यक्तिवाचक नाम गुणवाचक होते है** और वे व्यक्तियो का 'निर्देश' करने के साथ-साथ उनके विशेष हाव-भाव, आकार एव चरित्र की व्यजना भी करते हैं। किसी देश को जब हम 'इग्लैण्ड' नाम से पुकारते है, तो ऐसा हम इसलिए करते है कि उस देश की कुछ निश्चित विशेषताये है।

जैवन्स (Jevons) के अनुसार, मिल का दृष्टिकोण "सभवत अशुद्धिपूर्ण" है। उसका कहना है कि 'मिल' (Mill) ने "किसी वस्तु के व्युत्पत्त्यर्थ (etymological meaning) (अर्थात् वे परिस्थितिया, जिनके कारण वह नाम उस वस्तु को दिया गया) को उसके 'गुण' (Connotation) के साथ गडबडा दिया है। जो व्यक्ति इगलैण्ड' शब्द का प्रयोग करता है और जानता है कि इस नाम से किस वस्तु का निर्देश होता है, वह इस

देश की विशेषताओ एव परिस्थितियो से अनभिज्ञ नही रह सकता। किसी भी व्यक्ति को जो 'डार्टमाउथ' नगर को जानता है, यह ज्ञात हो जाता है कि उस नगर का यह नाम क्यो पडा ? यदि 'डार्ट' नदी हट जाय या सूख जाय तो इस कारण उस नगर मे परिवर्तन हो जायगा और उसके नाम के महत्व मे भी तदनुसार परिवर्तन हो जायगा। तब यह नाम 'डार्ट' नदी के मुहाने पर बसे नगर को व्यजित नही करेगा, वरन उस नगर को व्यक्त करेगा, जो पहले 'डार्ट' नदी के मुहाने पर बसा हुआ था, तथा यह केवल एक ऐतिहासिक सयोग ही होगा कि उस नगर के लिए यह नाम उपयुक्त नही जँचेगा। इसी प्रकार अन्य व्यक्तिवाचक नाम, यथा 'जॉन स्मिथ' भी अर्थहीन होगा, जब तक हम 'जॉन स्मिथ' से परिचित न हो। यह सच है कि इस नाम-मात्र से ही यह बोध हो जाता है कि वह पुरुष है, परन्तु ज्योही हम इस नामधारी व्यक्ति से परिचित हो जाते है, तो उस नाम से उस व्यक्ति के विशेष हाव-भाव, शारीरिक गठन तथा चरित्र की व्यजना भी हो जाती है। वास्तव मे किसी वस्तु के विशेप हाव-भाव, रूप-रेखा तथा परिस्थिति के द्वारा ही हम उसे पहचान पाते है। अत किसी नाम का स्थिर अर्थ तब तक नही हो सकता, जब तक कि हम (कम से कम मन में ही) उसके साथ उसके द्वारा व्यजित परिभाषा सयुक्त न कर दे, जिससे हमे पता चल सके कि उसके द्वारा कोई वस्तु व्यजित भी हुई है अथवा नही। यदि 'जॉन स्मिथ' नाम मेरे मन मे 'जॉन स्मिथ' के गुणो का ज्ञान जाग्रत नही करता तो उससे मिलने पर मै उसे किस प्रकार पहचान सकूँगा, क्योकि उसका नाम उसेके चेहरे पर तो नही लिखा होगा।"

डॉ० पी० के० रे : यह विषय तर्क-

डॉक्टर पी० के० रे (Dr. P. K. Ray) का कथन है कि व्यक्तिवाचक नामो का गुणवाचक होने या न होने का प्रश्न आकारगत तर्कशास्त्र का विपय न होकर भापा-विज्ञान (Philology)

–शास्त्र का नहीं है।

तथा मनोविज्ञान (Psychology) का विषय है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से अर्थात् व्यक्तिगत ज्ञान के आधार पर जब व्यक्तिवाचक नाम को किसी व्यक्ति या वस्तु के चिह्न या प्रतीक के रूप मे प्रथम वार प्रयुक्त किया जाता है, तो उस नाम के साथ कोई गुण सयुक्त नही रहता, परन्तु जव हमारा उस वस्तु-सम्वन्धी ज्ञान वढता जाता है तो उसके गुण भी उस नाम के साथ सम्वद्ध होने लगते है और तव वह नाम केवल उस वस्तु या व्यक्ति का ही निर्देश नही करता, वरन उसके गुणो को भी व्यक्त करता है। डा० पी० के० रे के विचार मे यह मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण, तार्किक दृष्टिकोण मे सतोपप्रद नही है।

कारवेथ रीड

कारवेथ रीड (Carveth Read) के विचारो मे यह मत अधिक सतोपप्रद है कि सामान्य रीति से प्रयुक्त व्यक्तिवाचक नाम गुणवाचक नही होते, क्योकि (१) व्यक्तिवाचक नामो का जो अर्थ होता है, वह केवल आकस्मिक ही होता है। और इस अर्थ को 'गुण' (Connotation) नही मानना चाहिए। व्यक्तिवाचक नाम 'लन्दन' अथवा 'नैपोलियन' का केवल आकस्मिक महत्व ही है क्योकि इन नामो से प्रसिद्ध व्यक्ति अथवा स्थानो के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियो या स्थानो का भी यही नाम हो सकता है। और (२) जो विशेपताये एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति से भिन्न करती है, वे असख्य होती है और किसी व्यक्ति को भले प्रकार पहचानने के लिए यह आवश्यक है कि उन समस्त विशेषताओ की गणना की जाय। परन्तु ऐसी गणना करना असम्भव है। अतः व्यक्तिवाचक नामो का कोई उपयुक्त-गुण (assignable connotation) नही होता। यह वात ज्ञातव्य है कि **कारवेथ रीड** (Carveth Read) की दूसरी दलील पक्की नही प्रतीत होती। हमारे सामने प्रश्न यह है कि क्या व्यक्तिवाचक नामो मे 'गुण' होता है अथवा नही , यह नही कि हम सम्पूर्ण

व्यक्तिवाचक नाम गुणवाचक नही होते।

गुण को स्पष्टता से व्यक्त कर सकते है अथवा नही। कारवेथ रीड (Carveth Read) ने इस कठिनाई का अनुभव अवश्य किया; तभी तो उसने यह नहीं कहा कि व्यक्तिवाचक नामो मे गुण नही होता, प्रत्युत यह कहा कि उनमे कोई 'उपयुक्त गुण' नही होता।

यह सारा विवाद 'गुण' (Connotation) शब्द के अर्थ की स्पष्टता न होने के कारण है। 'गुण' को 'सुझाव' (Suggestion) के भाव मे नही समझना चाहिए। 'गुण' तो वस्तु का निज अश होता है और वही उसके बोध कराने मे हेतु होता है। किन्तु सुझाव (Suggestion) तो वह है, जिसके कारण उन गुणो का सकेत मिले जो अन्य प्रकार से ज्ञात हो सके। अत. यह कहना उचित नही है कि व्यक्तिवाचक नाम 'इगलैण्ड' एक विशेष देश के गुणो को व्यक्त करता है। यह सभव हो सकता है कि इस नाम से किसी व्यक्ति को उन गुणो का सुझाव मिल सके, जिन्हे वह अन्य किसी विधि से जानता हो, परन्तु हम यह नही कह सकते कि इस नाम-मात्र मे वे गुण निहित है। वास्तव मे, यह आवश्यक नही कि 'इगलैण्ड' किसी देश ही का नाम हो ; वह किसी घोडे, मकान या जहाज का नाम भी हो सकता है। जैवन्स (Jevons) का यह कथन सर्वथा अशुद्ध प्रतीत होता है कि व्यक्तिवाचक नाम 'जॉन स्मिथ' से ही इन गुणो का बोध हो जाता है कि वह ट्यूटन है और पुरुष है क्यो कि ऐसा भी सभव हो सकता है कि यह किसी मनुष्य का नाम ही न हो। व्यक्तिवाचक नाम 'जॉन' अनेको व्यक्ति धारण कर सकते है, परन्तु इसका यह अर्थ नही कि उनमे कुछ समान गुण है। इससे इतना अर्थ भी नही निकलता कि वे मनुष्य है, क्योकि कुत्ते और घोडे को भी तो इस नाम से पुकारा जा सकता है। कॉफी (Coffey) का कथन है कि "कोई व्यक्ति किसी वस्तु या स्थान का नाम उसके गुणो को विचार कर कभी नही रखा करता।" अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि तार्किक

उचित दृष्टिकोण यह है कि व्यक्तिवाचक नाम स्वयं गुणवाचक नहीं होते।

दृष्टि से मिल (Mill) का दृष्टिकोण शुद्ध है। व्यक्तिवाचक नाम 'अर्थहीन चिह्न' (unmeaning marks) ही होते हैं और वे किसी 'गुण' को व्यक्त नही करते; उनका उद्देश्य केवल व्यक्तियो का निर्देश करना है।

उत्तर-सहित अभ्यासार्थ प्रश्न

सकेत—किसी पद के तार्किक-स्वरूप (Logical character) का वर्णन करने का अर्थ यह है कि पदो के तार्किक विभाग की सम्पूर्ण-तालिका सामने रखकर हम यह निश्चय करते है कि उन भिन्न-भिन्न वर्गो मे से वह पद किस-किस के अन्तर्गत रखा जा सकता है। दूसरे शब्दो मे हमे यह बतलाना पड़ता है कि निम्नलिखित वर्गो मे से किन-किन के अन्तर्गत वह पद आता है—

(क) एक शब्दात्मक (Simple) या अनेक शब्दात्मक (Composite)।

(ख) विशिष्ट (Singular) या सामान्य (General)।

(ग) समूहवाचक (Collective) या असमूहवाचक (Non-collective)।

(घ) वस्तुवाचक (Concrete) या भाववाचक (Abstract)।

(ङ) स्वीकारात्मक (Positive) या निषेधात्मक (Negative) या अभावात्मक (Privative)।

(च) निरपेक्ष (Absolute) या सापेक्ष (Relative)।

(छ) गुणवाचक (Connotative) या अगुणवाचक (Non-connotative)।

प्रश्न .—निम्नलिखित पदो के तार्किक-स्वरूप का विवेचन कीजिए :

(१) विद्यालय

(२) बनारस विश्वविद्यालय का इजीनियरिंग कालेज।

(३) प्रयाग विश्वविद्यालय के वर्तमान उपकुलपति ।
(४) ससार का सर्वोच्च पर्वत ।
(५) नगर ।
(६) मनुष्यता ।
(७) अन्धापन ।
(८) अन्धा व्यक्ति ।
(९) कलकत्ता ।
(१०) अकबर महान् ।

उत्तर :—(१) विद्यालय :—एक शब्दात्मक, सामान्य, समूह-वाचक, वस्तुवाचक, स्वीकारात्मक, निरपेक्ष, गुणवाचक ।

(२) बनारस विश्वविद्यालय का इजीनियरिंग कालेज :—अनेक शब्दात्मक, विशिष्ट, असमूहवाचक, वस्तुवाचक, स्वीकारात्मक, निरपेक्ष, गुणवाचक ।

(३) प्रयाग विश्वविद्यालय के वर्तमान उपकुलपति :—अनेक शब्दात्मक, विशिष्ट, असमूहवाचक, वस्तुवाचक, स्वीकारा-त्मक, निरपेक्ष, गुणवाचक ।

(४) ससार का सर्वोच्च पर्वत :—अनेक शब्दात्मक, विशिष्ट, असमूहवाचक, वस्तुवाचक, स्वीकारात्मक, सापेक्ष (क्योकि वह अनिवार्यत. अनेक पर्वतो से सम्बन्धित है), गुणवाचक ।

(५) नगर:—एक शब्दात्मक, सामान्य, असमूहवाचक (यदि इस पद का प्रयोग उन सब व्यक्तियो के लिए किया जाय, जिनका समूह 'नगर' कहलाता है, तो समूहवाचक) वस्तुवाचक, स्वीकारात्मक, निरपेक्ष, गुणवाचक ।

(६) मनुष्यता :—एक शब्दात्मक, विशिष्ट, असमूहवाचक, भाववाचक, स्वीकारात्मक, निरपेक्ष, अगुणवाचक ।

(७) अन्धापन :—एक शब्दात्मक, विशिष्ट, असमूहवाचक,

भाववाचक, निषेधात्मक (क्योंकि इसका अर्थ दृष्टि का न होना है), निरपेक्ष, अगुणवाचक।

(८) अन्धा व्यक्ति :—अनेक शब्दात्मक, सामान्य, असमूह-वाचक, अभावात्मक, निरपेक्ष, गुणवाचक ।

(९) कलकत्ता :—एक शब्दात्मक, विशिष्ट, असमूहवाचक, वस्तुवाचक, स्वीकारात्मक, निरपेक्ष, अगुणवाचक. (क्योकि व्यक्तिवाचक नाम है) ।

(१०) अकबर महान् :—अनेक शब्दात्मक, विशिष्ट, असमूहवाचक, वस्तुवाचक, स्वीकारात्मक, निरपेक्ष, अगुणवाचक (क्योंकि व्यक्तिवाचक नाम है) ।

प्रश्नमाला ३

(१) पद किसे कहते है ? क्या पदयोग्य शब्दो को 'पद' कहना उचित है ?

(२) 'शब्द' और 'पद' मे क्या अन्तर है ? तर्क-वाक्य को कौन-से अवयवो मे विश्लेषित किया जा सकता है ?

(३) निम्नलिखित का भेद उदाहरण-सहित समझाइए : शब्द, नाम, पद, धारणा। (उ० प्र० १९४७, १९५३, पटना १९३८)

(४) किसी पद के 'निर्देश' और 'गुण' से आप क्या समझते है ? वे किस प्रकार परस्पर सम्बन्धित है ? (कलकत्ता १९४१, मद्रास १९३९; पंजाव १९३५ ; पटना १९३५ ; उ० प्र० १९३४, १९३८, १९३९, १९४८, १९५२, १९५३) ।

(५) निम्नलिखित पदों का तार्किक-स्वरूप बतलाइए :— धवल, धवलता, दुग्ध-धवलता। (उ० प्र० १९४७) ।

(६) निम्नलिखित पदो का तार्किक-स्वरूप बतलाइए.— वहरा, वर्ग, सुकरात, भारतीय लोकतंत्र का राष्ट्रपति ; बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, सुन्दरता, भीड, जातीयता, हरा। (उ० प्र० १९५१) ।

(७) अभावात्मक पद का उदाहरण-सहित अर्थ समझाइए। (पंजाव १९२८) ।

(८) निम्नलिखित की उदाहरण-सहित व्याख्या कीजिए :—
(क) व्यक्तिवाचक नाम तथा अन्य विशिष्ट पद ।
(ख) निरपेक्ष और सापेक्ष पद ।
(ग) विरुद्ध तथा विपरीत पद ।
(घ) व्यक्तिसूचक (विशिष्ट) और सामान्य पद ।
(ङ) निषेधात्मक एव अभावात्मक पद ।
(च) भाववाचक तथा वस्तुवाचक पद ।

(९) गुणवाचक और अगुणवाचक पदो का अन्तर स्पष्ट कीजिए । क्या व्यक्तिवाचक नाम गुणवाचक होते हैं ? विस्तार से लिखिए ।

(१०) निम्नलिखित पदो को 'गुण' के अनुसार रखिए :—
मेरुदण्डधारी, मनुष्य, जन्तु, पदार्थ, बच्चा, जीवधारी,
[उत्तर :—पदार्थ, जीवधारी, जन्तु, मेरुदण्डधारी, मनुष्य, बच्चा] ।

(११) पद का कितने वर्गो मे विभाग हो सकता है ? प्रत्येक की उदाहरण-सहित व्याख्या कीजिए ।

(१२) पदो के समष्ट्यर्थ तथा व्यष्ट्यर्थ मे क्या अन्तर है ? उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए ।

EXERCISE III

1. What is a Term ? Are Syncategorematic Terms really terms ?

2. How would you distinguish between a mere word and a term ? Indicate the parts into which a proposition may be analysed

3. Distinguish between the following, giving examples Word, Name Term, Concept [U.P. 1947, 1953; Patna 1938].

4 What do you understand by the Denotation and Connotation of a term ? How are they mutually related ? [Calcutta 1941, Madras 1939, Punjab 1935, Patna 1935; U.P 1934, 1938, 1939, 1948, 1952, 1953].

5. Describe the logical character of the following terms :
White, Whiteness, Milk-whiteness. [U. P. 1947]

6. Describe the logical character of the following terms.

Deaf, Square, Socrates, President of Indian Republic, Banaras Hindu University, Beauty, Crowd, Nationalism, Green [U. P. 1951]

7 Explain, with examples, the meaning of Privative Term. [Punjab 1928]

8 Explain the following with examples.

(a) Proper names and other Singular Terms
(b) Absolute and Relative Terms
(c) Contradictory and Contrary Terms.
(d) Singular and General Terms.
(e) Negative and Privative Terms
(f) Abstract and Concrete Terms.

9 Distinguish between Connotative and Non-Connotative terms Are Proper Names Connotative ? Discuss the question fully.

10. Arrange the following terms in order of Denotation· Vertebrate, Human, Substance, Child, Organism.

[Answer: Substance, Organism, Animal, Vertebrate, human, child]

11 What are the various classes of terms ? Explain each of them and give an example of each

12. Explain and distinguish between Collective and Distributive uses of Terms. Give examples.

चतुर्थ प्रकरण

वाच्य

§१ पाँच वाच्य (Predicables) जाति (Genus), उपजाति (Species), व्यावर्तक गुण (Differentia), सहज गुण (Proprium), आकस्मिक गुण (Accidens)।
§२ पॉरफिरी का वृक्ष (Tree of Porphyry)।
प्रश्नमाला ४.

§१. पाँच वाच्य (Predicables) : जाति (Genus), उपजाति (Species), व्यावर्तक गुण (Differentia), सहज गुण (Proprium), आकस्मिक गुण (Accidens).

वाच्य (Predicable) उद्देश्य के सम्बन्ध में विधेय के विभिन्न वर्गों का नाम है। वाच्य उस पद को कहते हैं जो कि विधेय के बारे मे या तो स्वीकार अथवा अस्वीकार किया जाय। अतः वाच्य (Predicable) उद्देश्य (Subject) के सम्बन्ध मे विधेय (Predicate) के भिन्न-भिन्न प्रकार के सम्बन्ध को कहते हैं। अरस्तू (Aristotle) ने चार प्रकार के वाच्यो (Predicables) का वर्णन किया है, यथा—परिभाषा या लक्षण (Definition), सहज-गुण (Proprium), जाति (Genus), आकस्मिक गुण (Accidens)। दार्शनिक पॉरफिरी (Porphyry) (सन् २३३-३०४ ईसवी) ने एक पाँच-वाच्य-योजना प्रस्तुत की है, यथा—जाति (Genus), उपजाति (Species), व्यावर्तक गुण (Differentia),

वाच्य

सहज गुण (Proprium) और **आकस्मिक गुण** (Accidens)। अत पॉरफिरी (Porphyry) के अनुसार प्रत्येक तर्क-वाक्य (Proposition), जो उद्देश्य (Subject) और विधेय (Predicate) का सम्बन्ध व्यक्त करता है,

विधेय उद्देश्य का { जाति / उपजाति / व्यावर्तक गुण / सहज गुण अथवा / आकस्मिक गुण } होगा।

इस सम्वन्ध मे यह बात ज्ञातव्य है कि उपर्युक्त पच-वाच्य-योजना मे विशिष्ट-पद (Singular term) के विधेय होने की बात सभव नही है। अत. इस तर्कवाक्य मे कि "सिकन्दर महान मेसीडोन के फिलिप का एकमात्र पुत्र था", विधेय पॉरफिरी (Porphyry) के उपर्युक्त किसी भी वाच्य के अन्तर्गत नही रखा जा सकता। इसका कारण है कि प्राचीन तर्कशास्त्री विशिष्ट पदो को विधेय के स्थान पर नही रखते थे।

जाति (Genus) और उपजाति (Species) :

'जाति' (Genus) और 'उपजाति' (Species) किसी वर्ग के द्योतक है। दो वर्गो मे ऐसा सम्बन्ध हो सकता है कि एक वर्ग का 'निर्देश' (Denotation) दूसरे वर्ग के 'निर्देश' से अधिक व्यापक हो। उदाहरण के लिए 'जन्तु' का निर्देश 'मनुष्य' के निर्देश से अधिक व्यापक है। **अधिक व्यापक वर्ग 'जाति' (Genus) कहलाता है और उसकी अपेक्षा जो कम व्यापक वर्ग है, वह उसकी 'उपजाति' (Species) कहलाता है।** अत. 'जन्तु' जाति है, 'मनुष्य' उसकी एक उपजाति है।

जाति=अधिक व्यापक वर्ग। उपजाति=कम व्यापक वर्ग

यह स्पष्ट है कि **'जाति और 'उपजाति' सापेक्ष पद** (Relative term) है, एक दूसरे से सम्बद्ध है। 'जाति' अपने अन्तर्गत 'उपजातियो' से पृथक नही की जा सकती और

जाति और उपजाति सापेक्ष है

'उपजाति' उस 'जाति' से सर्वथा पृथक नही की जा सकती, जिसके अन्तर्गत वह है। अतः एक ही पद अपेक्षाकृत कम व्यापक वर्ग के सम्बन्ध मे 'जाति' और अपेक्षाकृत अधिक व्यापक वर्ग के सम्बन्ध मे 'उपजाति' कहलाता है। उदाहरण के लिए, 'जन्तु' (Animal)-वर्ग कम व्यापक 'मनुष्य' वर्ग के सम्बन्ध मे 'जाति' है और अधिक व्यापक 'प्राणी' (Living being) पद के सम्बन्ध मे 'उपजाति' है। अत·—
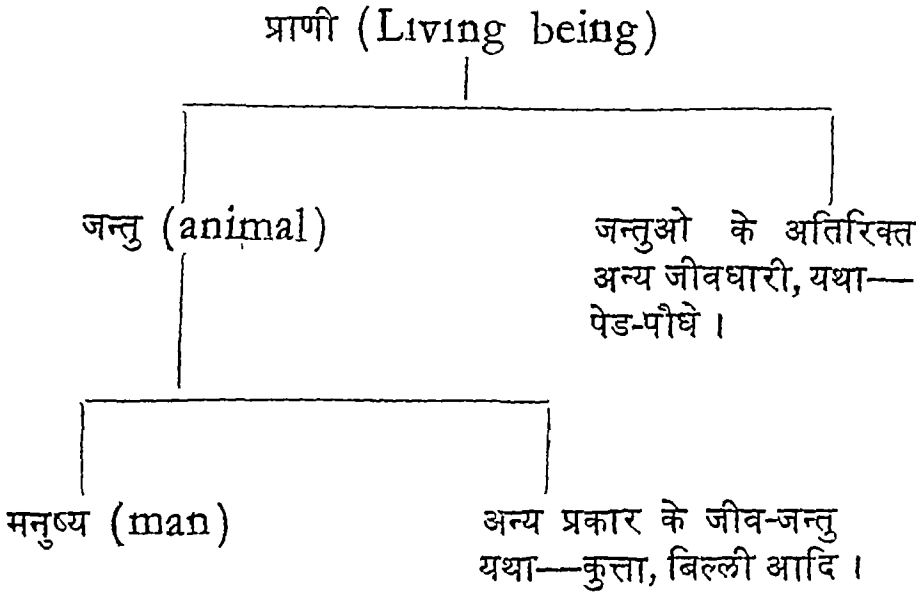
यह स्पष्ट है कि 'निर्देश' के अनुसार 'जाति' में उपजाति निहित रहती हैं तथा 'गुण' (Connotation) के अनुसार 'उपजाति' में 'जाति' निहित रहती है।

परतम-जाति —उच्चतम वर्ग

यदि एक वर्ग इतना व्यापक होता है कि कोई वर्ग उससे अधिक व्यापक नही हो सकता, तो उसे 'परतम-जाति' (Summum Genus) कहते है। 'परतम जाति' सबसे व्यापक जाति होती है; अत. उससे अधिक व्यापक जाति हो ही नही सकती। अतः 'परतम जाति' (Summum Genus) किसी की उपजाति (Species) नहीं हो सकती।

अपरतम उपजाति = निम्नतम वर्ग

जब कोई वर्ग इतना कम व्यापक होता है कि उससे छोटा वर्ग और कोई हो ही नही सकता, तो उसे **'अपरतम उपजाति'** (Infima Species) कहते है। यह अपरतम उपजाति है, अत. इससे नीची और कोई उपजाति नही होती। इसलिए **'अपरतम उपजाति' अन्य 'उपजातियों' की 'जाति' नहीं हो सकती।** 'अपरतम उपजाति' को और उपजातियो या छोटे वर्गो मे विभाजित नही किया जा सकता।

अवर-जाति तथा उपजाति

समवर्गीय उपजाति

आसन्न जाति

'परतम जाति' (Summum Genus) और 'अपरतम उपजाति' (Infima Species) के बीच के वर्ग **'अवर-जाति'** (Subaltern Genera) **या 'अवर-उपजाति'** (Subaltern Species) कहलाते है। दो या इससे अधिक वर्ग जो एक ही 'जाति' के 'उपजाति' है, परस्पर **'समवर्गीय उपजाति'** (Cognate or Co-ordinate Species) कहलाते है। वह 'जाति' जिसके भीतर कोई उपजाति बिना किसी व्यवधान के आती हो, उस उपजाति की **'आसन्न जाति'** (Proximate Genus) कहलाती है।

व्यावर्तक-गुण (Differentia):

व्यावर्तक गुण = उपजाति का विशेष गुण। वह उपजाति के 'गुण' का ही एक भाग होता है।

व्यावर्तक-गुण (Differentia) उसे कहते है, जो एक ही 'जाति' के अन्तर्गत एक 'उपजाति' का दूसरी 'उपजाति' से भेद बतलाता है। यथा—'विचारशीलता' मनुष्य का 'व्यावर्तक गुण' (Differentia) है क्योकि वह 'मनुष्य' का अन्य जन्तुओ से भेद बतलाता है। यह बात ज्ञातव्य है कि **व्यावर्तक गुण (Differentia) पद के 'गुण' (Connotation) का ही एक भाग होता है।**

'गुण' (Connotation) के अनुसार 'उपजाति' मे 'जाति' (Genus) निहित रहती है और 'निर्देश' (Denotation)

के अनुसार 'उपजाति' (Species) 'जाति' में निहित रहती है। अत. आसन्न-जाति (Proximate Genus) के 'गुण' से 'उपजाति' (Species) में जो अधिक 'गुण' होता है, उसे व्यावर्तक-गुण (Differentia) कहते हैं। इस प्रकार 'जाति' का 'गुण' (Connotation) और व्यावर्तक गुण (Differentia) मिलकर 'उपजाति' का 'गुण' होता है। इस प्रकार 'प्राणित्व' (आसन्न जाति 'जन्तु' का 'गुण') तथा 'विचारशीलता' ('मनुष्य' पद का व्यावर्तक गुण) मिलकर 'मनुष्य' पद का गुण (Connotation) (अर्थात् प्राणित्व' और 'विचारशीलता') हुआ।

व्यावर्तक गुण=उपजाति को 'गुण' से जाति का गुण कम

सहज-गुण (Proprium or Property) :

'सहज-गुण' (Proprium or Property) उसे कहते हैं, जो पद के 'गुण' (Connotation) का अंश तो नहीं है, परन्तु जो आवश्यक रूप से 'गुण' (Connotation) से या तो कारण से कार्य की भाँति या किसी हेतु से परिणाम की भाँति फलित होता है।

सहज गुण 'गुण' से फलित होता है

'व्यावर्तक गुण' (Differentia) और 'सहज गुण' (Proprium) में यह अन्तर है कि 'सहज गुण' पद 'गुण' का भाग तो नहीं होता परन्तु उससे फलित अवश्य होता है। ऐसा दो प्रकार से हो सकता है—या तो किसी हेतु से परिणाम की भाँति अथवा किसी कारण से कार्य की भाँति।

उदाहरण के लिए, "प्रत्येक त्रिभुज के तीनो कोणो का योग दो समकोण के बराबर होता है।" इसमें 'तीनों कोणो का योग दो समकोण के बराबर होने' का गुण त्रिभुज के 'गुण' (Connotation) (अर्थात् उसके 'तीन भुजाओ के होने') से फलित होता है। यहाँ पर 'सहज गुण' (Proprium) एक विदित तथ्य से

निष्कर्ष के रूप मे ज्ञात होता है। एक अन्य तर्कवाक्य (Proposition) देखिए। "मनुष्य मे निर्णय करने की शक्ति है" इसमे सहज गुण 'निर्णय करने की शक्ति' 'विचारशीलता' से फलित होती है। 'विचारशीलता' मनुष्य के 'गुण' (Connotation) का ही भाग है। अतः यहाँ 'सहज गुण' (Proprium) 'गुण' से 'कारण-कार्य' के रूप मे प्राप्त हुआ है। 'विचारशीलता' कारण (cause) है और 'निर्णय करने की शक्ति' कार्य (effect) है।

सहज गुण यदि जाति के गुण से फलित होता है तो 'जातिगत' और यदि उपजाति के गुण से फलित होता है तो 'व्यक्तिगत' कहलाता है।

सहज-गुण (Proprium) या तो **जातिगत** (generic) अथवा **व्यक्तिगत** (specific) हो सकता है। यदि 'जाति' के 'गुण' से फलित होता है, तो उसे 'जातिगत-सहज गुण' (generic property) और यदि 'उपजाति' के 'गुण' से फलित होता है, तो उसे 'व्यक्तिगत सहज गुण' (specific property) कहते है। उदाहरण के लिए, यदि हम कहें कि "समद्विबाहु त्रिभुज में तीनों कोणो का योग दो समकोण के बराबर होता है", तो "तीनो कोणों का योग दो समकोण के बराबर होने" का 'सहज गुण' 'त्रिभुज' के 'गुण' से फलित होता है, 'समद्विबाहु त्रिभुज' के गुण से नही। अतः यह 'सहज-गुण' 'जातिगत' (generic) हुआ। परन्तु यदि हम कहे कि "समद्विबाहु त्रिभुज के दो कोण बराबर होते है", तो यह 'सहज गुण' उपजाति 'समद्विबाहु त्रिभुज' के गुण से फलित होता है, अतः यह 'व्यक्तिगत सहज गुण' (specific property) हुआ।

आकस्मिक गुण (Accidens or Accident) :

'गुण' और 'सहजगुण' के अतिरिक्त विशेषतायें 'आकस्मिक

आकस्मिक गुण (Accidens or Accident) **उसे** कहते है, जो न तो 'गुण' (Connotation) का एक भाग हो और न 'गुण' के द्वारा फलित होता हो। 'आकस्मिक गुण' (Accidens), 'गुण' (Connotation) का भाग न होने के

कारण व्यावर्तक गुण (Differentia) से भिन्न है और 'गुण' के द्वारा प्राप्त न हो सकने के कारण 'सहज गुण' (Proprium) से भिन्न है। वे सब, जो न तो 'गुण' (Connotation) हों और न सहज गुण (Proprium) हों, 'आकस्मिक-गुण' (Accidens) कहलाते है। 'आकस्मिक गुण' (Accidens) किसी वर्ग या व्यक्ति मे, बिना उसमे परिवर्तन लाए हुए ही, अलग किया जा सकता है, परन्तु व्यावर्तक गुण (Differentia) और सहज गुण (Proprium) को किसी वर्ग या व्यक्ति से, बिना उसमे परिवर्तन लाए हुए, अलग नहीं किया जा सकता।

गुण' कहलाती है।

आकस्मिक गुण (Accidens) या तो किसी वर्ग (class) का हो सकता है, अथवा किसी व्यक्ति का। और प्रत्येक दशा मे या तो वह 'वियोज्य' (separable) हो सकता है, अथवा 'अवियोज्य (inseparable)।

चार प्रकार के आकस्मिक गुण:

(क) वर्ग का अवियोज्य आकस्मिक गुण

किसी वर्ग का 'अवियोज्य आकस्मिक गुण' (Inseparable Accidens) उसे कहते है जो उस वर्ग के प्रत्येक सदस्य मे पाया जाये। यथा—"कौओ मे कालापन"। जहाँ तक हमारा अनुभव है, 'सब कौए काले होते है' परन्तु 'कालापन' न तो कौओ के 'गुण' (Connotation) का अश है और न उसके द्वारा फलित होता है।

(ख) वर्ग का वियोज्य आकस्मिक गुण

किसी **वर्ग का 'वियोज्य आकस्मिक गुण'** (Separable Accidens) उसे कहते हैं जो उस वर्ग के कुछ सदस्यो मे तो पाया जाये, परन्तु सब सदस्यो मे समान रूप से न पाया जाये, यथा "कुत्तो का सफेद रग का होना।"

(ग) व्यक्ति का अवियोज्य आकस्मिक गुण

किसी व्यक्ति का 'अवियोज्य आकस्मिक गुण' (Inseparable Accidens) उसे कहते है जो उस व्यक्ति मे हर समय विद्यमान हो तथा जो परिवर्तित न हो सके। जैसे, किसी व्यक्ति की जन्मतिथि अथवा उसका जन्मस्थान।

(घ) व्यक्ति का वियोज्य

किसी व्यक्ति का 'वियोज्य-आकस्मिक गुण' उसे कहते है जो किसी समय उस

आकस्मिक गुण

व्यक्ति मे उपस्थित रहे और किसी समय अनुपस्थित। यथा—मनुष्य का व्यवसाय, रहन-सहन, आदते इत्यादि।

§ ७. पॉरफिरी का वृक्ष (Tree of Porphyry) :

पॉरफिरी का वृक्ष वाच्यो की व्याख्या करता है।

'पॉरफिरी के वृक्ष' (Tree of Prophyry) से प्रधान वाच्यो की व्याख्या हो जाती है। इसके साथ दार्शनिक **पॉरफिरी** (Porphyry) (२३३-३०४ ईसवी) का नाम सलग्न है, जिसने सर्वप्रथम इस सारिणी को प्रस्तुत किया। इसे सोलहवी सदी के तर्कशास्त्री **रेमस** (Ramus) के नाम पर 'रेमस का वृक्ष' (Ramean Tree) भी कहते है। यह वृक्ष इस प्रकार है:—

पदार्थ (Substance)

- शारीरिक (Corporeal) | अशारीरिक (Incorporeal)

शरीर (Body)

- जीवित (Animate) | अजीवित (Inanimate)

प्राणी (Living Being)

- बुद्धिमान (Sensible) | अबुद्धिमान (Insensible)

जीव (Animal)

- विशारशील (Rational) | अविचारशील (Irrational)

मनुष्य (Man)

- सुकरात (Socrates) | प्लेटो (Plato) | अन्य मनुष्य
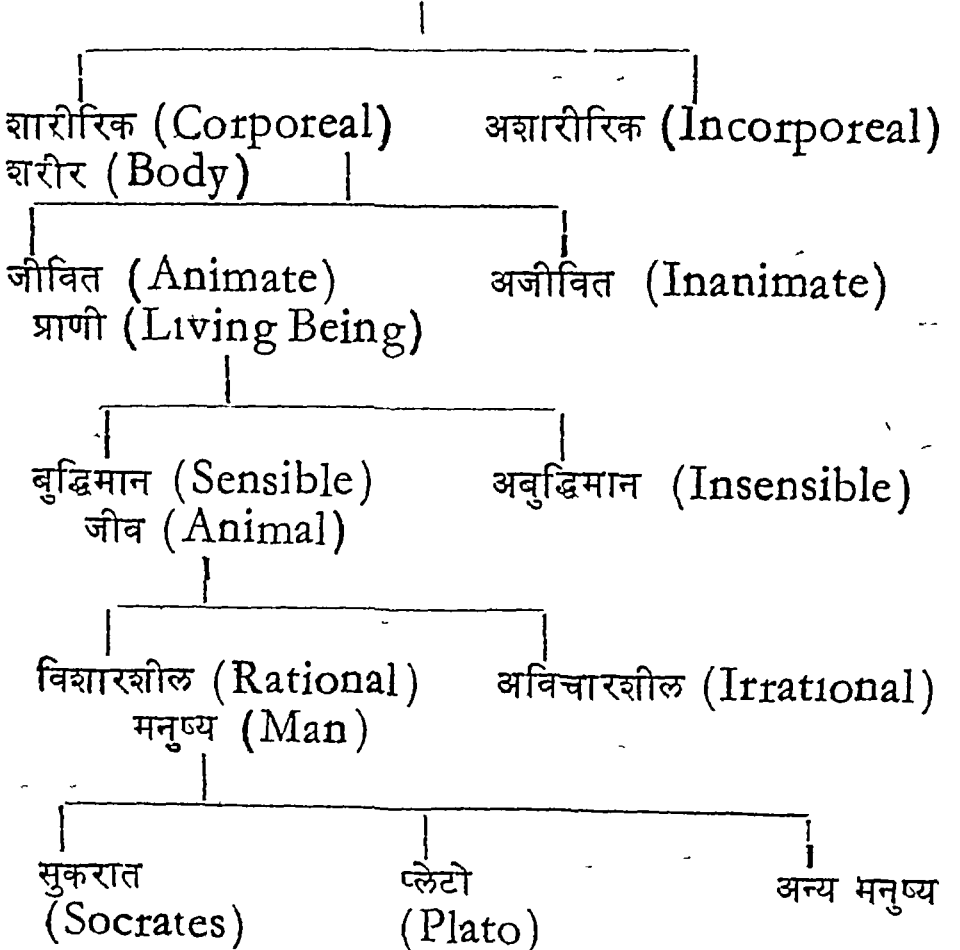
(Smmum Genus)
Infima Species)
। मे नही किया जा सकता
आदि) मे किया गया है।
'जीव' अवर-जातियाँ या
निम्न वर्ग के सम्बन्ध मे
ति' है। 'पदार्थ' जाति
उपजातियाँ परस्पर
ate Species) है।
विनाशशील' व्यावर्तक
त' से भिन्न किया जा

कुछ हल किये हुए प्रश्न

(१) निम्नलिखित विधेय किस वाच्य (Predicable) के अन्तर्गत आते है?

(क) 'मनुष्य भी जन्तु है।'

उत्तर —इस तर्क मे विधेय 'जन्तु' जाति '(Genus) है और उद्देश्य 'मनुष्य' उसकी उपजाति (Species) है।

(ख) 'तर्कशास्त्र अच्छा मानसिक अनुशासन है।'

उत्तर —इस तर्कवाक्य मे विधेय 'अच्छा मानसिक अनुशासन' है। यह उद्देश्य 'तर्कशास्त्र' का 'सहज-गुण' (Proprium) है क्योकि 'तर्कशास्त्र' के 'गुण' (Connotation) का एक अंग यह है कि वह एक विज्ञान है और उसके 'विज्ञान' होने के गुण से 'अच्छा मानसिक अनुशासन होने' का गुण फलित होता है। अत विधेय उद्देश्य के गुण से अनिवार्यत फलित होने के कारण 'सहज-गुण' (Proprium) है।

(ग) 'सब हब्शी घने बालो वाले होते है ।'

उत्तर :—इस तर्कवाक्य मे विधेय 'घने बालो वाला होना' न तो गुण (Connotation) का भाग है और न उसके द्वारा ही फलित होता है। अतः यह न तो व्यावर्तक गुण' (Differentia) है और न सहज गुण (Proprium), वरन आकस्मिक गुण (Accidens) है ; क्योकि यह गुण 'हब्शी'-वर्ग के प्रत्येक व्यक्ति मे पाया जाता है। अत· यह जाति का अवियोज्य आकस्मिक गुण (Inseparable Accidens) है।

(घ) फाउन्टेनपैन प्राय· काला होता है।'

उत्तर .—इस तर्कवाक्य मे विधेय जाति का वियोज्य आकस्मिक गुण है क्योकि वह न तो 'गुण' का भाग है और न उसके द्वारा फलित होता है, और यह गुण 'फाउन्टेनपैन' जाति के सब सदस्यो मे नही पाया जाता।

प्रश्नमाला ४

(१) वाच्य क्या है ? वाच्य और विधेय मे क्या अन्तर है ? विभिन्न वाच्यो की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए। (उ० प्र० १९४६, १९५०)।

(२) निम्नलिखित कथन की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए —"जाति उपजाति का एक भाग होता है, तथा उपजाति स्वय जाति का एक भाग है।" (उ० प्र० १९२३, पटना १९३५, कलकत्ता १९३४)।

(३) व्यावर्तक गुण, सहज गुण और आकस्मिक गुण की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए। निम्नलिखित मे क्या भेद है ?

(क) जातिगत सहजगुण तथा व्यक्तिगत सहजगुण।

(ख) अवियोज्य आकस्मिकगुण तथा वियोज्य आकस्मिक गुण।

(४) निम्नलिखित विधेय किन वाच्यो के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं —

(क) वर्ग के सब कोण बराबर होते है।

(ख) त्रिभुज तीन रेखाओं से वेष्ठित है।
(ग) सब जनतन्त्र राज्य हैं।
(घ) ज्ञान शक्ति है।
(ङ) तिमि (ह्वेल) स्तनपायी जन्तु है।
(च) बत्तखें जालीदार-पैरवाली होती हैं।
(छ) सिंह प्राक्ऐतिहासिक-जन्तु है।

EXERCISE IV.

1 What are Predicables? Distinguish between Predicables and Predicates. Explain the different Predicables giving examples. [U P 1946, 1950].

2. Comment upon the following with illustrations:

"Genus is a part of Species and Species is a part of Genus" [U P 1943; Patna 1935; Cal. 1934].

3. Explain and illustrate differentia, property and accident. How would you distinguish between

(a) Generic Property and Specific Property.
(b) Inseparable accident and separable accident

4 To which of the Predicables does each of the following predicates belong?

(a) All the angles of a square are equal.
(b) A triangle is three sided
(c) All Republics are governments
(d) Knowledge is power
(e) Whales are mammals
(f) All ducks are web footed
(g) The lion is a predatory animal.

पंचम प्रकरण

परिभाषा (Definition)—उसकी सीमायें और आकारगत दशायें (Formal Conditions)

§ १. परिभाषा (Definition) का स्वरूप ।

टिप्पणी :—परिभाषा और उसका वर्णन (Description) : उनका वाच्यो (Predicables) से सम्बन्ध ।

§ २. परिभाषा के नियम (Rules) एवं दोष (Fallacies)।

नियम १—उसके उल्लघन से उत्पन्न (क) अतिरिक्त (Redundant), (ख) आकस्मिक (Accidental), (ग) अव्याप्त (too narrow) और (घ) अतिव्याप्त (too wide) परिभाषा के दोष।

नियम २—उसके उल्लघन से दुर्बोध (Obscure) तथा आलकारिक परिभाषा (Figurative) के दोष।

नियम ३—उसके उल्लघन से पर्यायोक्ति (Synonymous) या चक्रक (Circular) परिभाषा का दोष।

नियम ४—उसके उल्लघन से निषेधात्मक परिभाषा (Negative Definition) का दोष।

§ ३. परिभाषा की सीमाये (Limits) ।

प्रश्नमाला ५.

§ १. परिभाषा (Definition) का स्वरूप

किसी पद के सम्पूर्ण 'गुण' (Connotation) का स्पष्ट

विवरण परिभाषा (Definition) कहलाता है। किसी पद के 'गुण' से तात्पर्य उसकी समान और आवश्यक विशेषताओ से है; और परिभाषा सम्पूर्ण 'गुण' का विवरण है।

परिभाषा सम्पूर्ण 'गुण' का वर्णन है।

परिभाषा के सम्बन्ध में पुरातन नियम है कि **वह पद द्वारा निर्दिष्ट उपजाति की आसन्न-जाति** (Proximate Genus) **तथा उसके व्यावर्तक-गुण** (Differentia) **का वर्णन करे** (per genus et differentiam)।

नियम: आसन्न जाति और व्यावर्तकगुण का वर्णन।

जब हम आसन्न जाति (Proximate Genus) के गुण (Connotation) का उल्लेख करते हैं तो हमे उस जाति के अन्तर्गत आनेवाली सभी उपजातियो के समान गुणो का बोध हो जाता है; और व्यावर्तक गुण (Differentia) का उल्लेख करने से 'गुण' (Connotation) पूर्ण हो जाता है। क्योकि इस प्रकार उन गुणो का वर्णन भी हो जाता है जिससे निर्दिष्ट उपजाति अन्य समवर्गीय (Cognate) उपजातियो से भिन्न समझी जा सकती है। दूसरे शब्दो मे, किसी पद की परिभाषा करते समय हम पहले यह निश्चय कर लेते हैं कि वह किस जाति के अन्तर्गत है; फिर हम उन गुणो पर ध्यान देते हैं, जिनके कारण वह उस जाति के अन्य सदस्यों से भिन्न मानी जाती है। उदाहरण के लिए, हम 'मनुष्य' की परिभाषा इस प्रकार करते है कि "मनुष्य विचारशील प्राणी है।" अर्थात् 'मनुष्य' मे 'प्राणित्व' का गुण है, जो कि उसकी आसन्न-जाति 'प्राणी' (अथवा 'जीव') मे पाया जाता है, और उसका व्यावर्तक गुण (Differentia) 'विचारशीलता' है। इसी प्रकार, 'त्रिभुज' की परिभाषा 'तीन सरल रेखाओ से आविष्ट समतल-आकृति' है। यहाँ आसन्न-जाति (Proximate Genus) 'समतल आकृति' है, तथा 'व्यावर्तक-गुण' (Differentia) 'तीन सरल रेखाओ से आविष्ट होने क गुण' है।

जाति का 'गुण' = आसन्न जाति का गुण + व्यावर्तक गुण

टिप्पणी—परिभाषा (Definition) और वर्णन (Description) : उनका वाच्यो (Predicables) से सम्बन्ध ।

गुण तीन प्रकार के होते है ; यथा—पद का **'गुण'** (Connotation), **सहज-गुण** (Property), जो 'गुण' (Connotation) के **द्वारा फलित होता है**; और **आकस्मिक-गुण** (Accidens) जो न तो 'गुण' (Connotation) का भाग होता है और न उससे फलित होता है। जब हम 'सम्पूर्ण गुण' (entire connotation) अर्थात् आसन्न-जाति (Proximate Genus) और व्यावर्तक गुण (Differentia) का उल्लेख कर देते है, तो पद की **परिभाषा** ज्ञात हो जाती है। परन्तु जब हम **'सहजगुण'** (Property) या **आकस्मिक-गुण** (Accidens) या 'गुण' (Connotation) के केवल एक अंश का ही उल्लेख करते है, तो वह केवल 'वर्णन' (Description) होता है। अत. प्लेटो (Plato) ने 'मनुष्य' का वर्णन **'पंखहीन द्विपद'** (featherless biped) कह कर दिया था। कभी-कभी वर्णन मे सहज-गुण (Property) और आकस्मिक-गुण (Accidens) के अतिरिक्त 'गुण' के **एक भाग का उल्लेख भी हो जाता है**। यथा—'घोडा एक जन्तु है, जिसके गले मे बाल होते है और उसके एक पूँछ होती है तथा जो काफी मूल्यवान होता है।' अथवा, 'चीता एक जन्तु होता है, जो बनावट मे बिल्ली से मिलता-जुलता है, परन्तु आकार मे उससे काफी बड़ा होता है। वर्णन (Description) का उपयोग इस बात मे है कि जिस वस्तु के बारे मे हम बात कर रहे है, उसे आसानी से पहचान सकें।

परिभाषा (Definition) और वर्णन (Description)

की तुलना करते समय निम्नलिखित बातें द्रष्टव्य हैं :—

(१) परिभाषा (Definition) मे 'सम्पूर्ण गुण' (entire connotation) का उल्लेख किया जाता है, जब कि वर्णन (Description) मे सहज-गुण (Property), आकस्मिक-गुण (Accidens) और कभी-कभी 'गुण' (Connotation) के एक अंश का ही उल्लेख होता है। यह बात ज्ञातव्य है कि सब वर्णन समान महत्व के नही होते। वर्णन मे उल्लिखित गुण जितने अधिक महत्व के होते हैं, उतना ही अधिक महत्व का वह वर्णन व्यक्त वस्तुओ को पहचानने मे होता है।

(२) परिभाषा वैज्ञानिक (Scientific) होती है, परन्तु वर्णन साधारण (Popular) होता है। परिभाषा का ध्येय हमारे वस्तु-विषयक विचारो को स्पष्ट और निश्चित करना है, और वर्णन वस्तुओ को पहचानने की एक सरल और सुलभ रीति है।

(३) हम 'पदो' का वर्णन नही करते। पदो की तो परिभाषा होती है, और वर्णन उन वस्तुओ का होता है, जिनका नाम उस पद के द्वारा व्यक्त किया जाता है।

(४) परिभाषा मे 'पद' के 'गुण' (Connotation) का उल्लेख किया जाता है, अत. उन पदो की, जिनका 'गुण' (Connotation) नहीं होता, परिभाषा नही की जा सकती। ऐसी दशामे उनका स्पष्टीकरण करने की विधि केवल यही है कि उनके द्वारा निर्दिष्ट वस्तु का कुछ पहचान के गुणो के साथ वर्णन कर दिया जाय।

§ २. परिभाषा के नियम (Rules) एव दोष (Fallacies)

नियम

परिभाषा निम्नलिखित नियमो के अनुसार होनी चाहिए :—

नियम १ : सम्पूर्ण गुण का वर्णन हो।

नियम १ : परिभाषा परिभाव्य पद के 'सम्पूर्ण गुण' (entire

connotation) का वर्णन करे, न उससे अधिक और न उससे कम।

किसी पद के 'गुण' से तात्पर्य उसके सभी **समान** और **आवश्यक गुणों** से होता है। अत. किसी पद की परिभापा करते समय अनावश्यक गुणो को छोड देना चाहिए। उसके समान गुणो (common attributes) का उल्लेख करना भी तब तक आवश्यक नही है, जब तक कि वे आवश्यक (essential) गुण भी न हो। यथा—'मनुष्य' के 'गुण' मे 'प्राणित्व' और 'विचार-शीलता' के समान और आवश्यक गुण सम्मिलित है। अतः 'मनुष्य' की परिभाषा इस प्रकार होनी चाहिए: "मनुष्य एक विचारशील प्राणी है।" इसी प्रकार त्रिभुज की परिभाषा 'तीन सरल रेखाओ से वेष्टित समतलाकृति' कहकर दी जा सकती है।

यदि हम इस नियम का उल्लघन कर देते है तो या तो 'गुण' (Connotation) से **अधिक** का या उससे **कम** का उल्लेख हो जाता है।

यदि 'गुण' से अधिक का वर्णन हो जाये तो—

(क) यदि परिभाषा मे **गुण (Connotation) से अधिक** का उल्लेख हो, तो वह अधिक भाग या तो (१) सहज-गुण (Property) अथवा (२) अवियोज्य आकस्मिक गुण (Inseparable Accidens) अथवा (३) वियोज्य आक-स्मिक गुण (Separable Accidens) होगा।

१. अतिरिक्त परिभाषा

(१) यदि अधिक गुण 'सहजगुण' (Property) हो अर्थात् पद के 'गुण' (Connotation) का भाग तो न हो, पर उससे फलित होता हो, **तो 'अतिरिक्त परिभाषा'** (Redundant Definition) का दोप उत्पन्न हो जाता है। वह अधिक गुण समान-गुण तो होता है, परन्तु आवश्यक-गुण नही होता। अत. उसका परिभापा मे उल्लेख करना निरर्थक होता है। यथा, 'त्रिभुज तीन रेखाओं से वेष्ठित एक सरल आकृति है,

जिसमे तीन कोण होते है।' यह परिभाषा अतिरिक्त (Redundant) है क्योकि 'तीन-कोण होने का गुण' निरर्थक है।

(२) आकस्मिक परिभाषा

(२) यदि अधिक गुण अवियोज्य आकस्मिक गुण (Inseparable Accidens) हो, अर्थात् ऐसा गुण हो जो उस पद द्वारा निर्दिष्ट सब वस्तुओं मे तो पाया जाये, परन्तु न तो वह 'गुण' (Connotation) का भाग हो और न उसके द्वारा फलित होता हो, तो आकस्मिक-परिभाषा (Accidental Definition) का दोष हो जाता है। यथा—'मनुष्य एक हसनेवाला विचारशील प्राणी है।' यह एक आकस्मिक-परिभाषा है क्योकि 'हॅसने का गुण' यद्यपि प्रत्येक मनुष्य मे होता है, परन्तु वह उस पद के 'गुण' का भाग नही है।

आकस्मिक-परिभाषा (Accidental Definition) के अन्य उदाहरण —

'मनुष्य एक विचारशील प्राणी है, जिसके दो हाथ और दो पैर होते है।' 'मनुष्य एक जीव है, जो स्वय अपने लिए वस्त्र तैयार करता है।' 'चावल एक वस्तु है जो भारतवर्ष मे भोजन की भाँति प्रयोग मे लाया जाता है।' 'कुत्ता एक पालतू जानवर है।' 'सैनिक एक वीर पुरुष है जो अपने देश के लिए मरने को तत्पर रहता है।' 'विद्यार्थी वह वयस्क व्यक्ति है, जो पुस्तको सहित विद्यालय मे जाता है।' 'स्वर्ण एक बहुमूल्य धातु है।' 'दिन सूर्योदय और सूर्यास्त के मध्य का समय है।' 'सूर्य दिन मे चमकनेवाला सितारा है।' 'सज्जन वह है जो भले समाज मे उठता-बैठता है।'

(३) अव्याप्त परिभाषा

(३) यदि अधिक गुण वियोज्य-आकस्मिक-गुण (Separable Accidens) हो, अर्थात् ऐसा गुण हो जो पद द्वारा निर्दिष्ट सब वस्तुयो मे नही, पर कुछ मे ही वर्तमान हो, तो **'अव्याप्त परिभाषा'** (too narrow definition) **का दोष** हो जाता है, क्योकि ऐसी परिभाषा पूरे पद पर नही, पर उसके एक अश पर ही

चरितार्थ हो पाती है। यथा--'मनुष्य एक सभ्य विचारशील प्राणी है।' यह अव्याप्त परिभाषा (too narrow definition) है, क्योकि 'सभ्यता' का गुण सब मनुष्यो मे नही होता। इसी प्रकार यह परिभाषा कि 'त्रिभुज एक समतल आकृति है, जो तीन बराबर रेखाओं से वेष्ठित हो' भी अव्याप्त (too narrow) है।

(ख) यदि 'गुण' से कम का उल्लेख हो, तो अतिव्याप्त परिभाषा

(ख) यदि परिभाषा 'गुण' (Connotation) **से कम का उल्लेख करे**, तो **'अतिव्याप्त-परिभाषा'** (too wide definition) **का दोष** हो जाता है, क्योकि वह परिभाष्य-पद द्वारा निर्दिष्ट वस्तुओंकी अपेक्षा अधिक वस्तुओ पर चरितार्थ हो जाती है। यह परिभाषा कि 'मनुष्य एक प्राणी है,' अतिव्याप्त है, क्योकि वह मनुष्य पर ही नही, अपितु सभी जीव-जन्तुओ पर चरितार्थ हो जाती है। इसी प्रकार, 'अल्कोहल एक प्रकार की औषधि है।' 'हीरा एक प्रकार का कार्बन है।' 'चट्टान एक कठोर पदार्थ है।' आदि भी अतिव्याप्त (too wide) परिभाषाये है।

नियम २ : परिभाषा दुर्बोध या आलंकारिक नही होनी चाहिए।

नियम २ :—**परिभाषा परिभाष्य पद की अपेक्षा अधिक स्पष्ट होनी चाहिए ; अतः वह आलंकारिक** (Figurative), **संदिग्ध** (Ambiguous) **और दुर्बोध** (Obscure) **भाषा में व्यक्त नही होनी चाहिए।**

दोष

इस नियम के उल्लघन से **'आलंकारिक परिभाषा'** (Figurative Definition) तथा **'दुर्बोध परिभाषा'** (Obscure Definition) का दोष हो जाता है।

आलंकारिक परिभाषा के उदाहरण :—

आलंकारिक परिभाषा

'सिह जगल का राजा है।' 'मनुष्य सृष्टि का सिरमौर है।' 'आवश्यकता आविष्कार की जननी है।' 'सगीत एक मूल्यवान ध्वनि है।' 'कवि माधुर्य और प्रकाश का प्रतीक है।' 'तर्कशास्त्र मानसिक-औषधि है।' 'बाल्यकाल जीवन का सवेरा है'

'बालक मनुष्य का पिता है।' 'समय अनन्त का गतिमय प्रतिबिम्ब है।'

दुर्बोध परिभाषा के उदाहरण :—

दुर्बोध परिभाषा

'जीवन शरीरान्तर्गत एकत्रीभूत और अभौतिक पदार्थ है।' 'सूर्य दिवान्धकारहर्ता जाज्वल्यमान दीपक है।' 'पेंशन एक प्रकार का भत्ता है, जो किसी व्यक्ति को दिया जाता है, जिसकी बराबरी कोई नही कर सकता।'

नियम ३ :—परिभाषा मे परिभाष्य पद अथवा उसका समानार्थी पद नही होना चाहिए।

नियम ३ : परिभाषा में परिभाष्य पद नही होना चाहिए

इस नियम के उल्लघन से पर्यायोक्ति परिभाषा (Synonymous Definition) या चक्रक परिभाषा (Circle in Definition) का दोष हो जाता है।

उदाहरण —'मनुष्य मानवीय है।' 'पौधा एक वनस्पति है।' 'माध्याकर्षण पदार्थ का वह सार्वलौकिक गुण है, जिसके कारण प्रत्येक पदार्थ एक दूसरे की ओर आकर्षित होता है।' 'शिक्षा-सचालक शिक्षा का सचालन करता है।' 'ग्लेशियर हिम की सरिता है।' 'सूर्य सौर-मडल का केन्द्र है।' 'राजनीतिज्ञ वह मनुष्य है, जो राजनीति जानता हो।' 'बलवान मनुष्य वह है, जिसमे बल हो।'

दोष : चक्रक-परिभाषा

नियम ४ —परिभाषा निषेधात्मक (Negative) नही होनी चाहिए, यदि वह स्वीकारात्मक हो सकती है।

नियम ४ : परिभाषा निषेधात्मक नही होनी चाहिए।

परिभाषा मे वे सब गुण प्रकट किये जा सकते है, जो आवश्यक है, किन्तु निषेधात्मक परिभाषा उन्ही बातो का प्रतिपादन करती है, जो किसी वस्तु मे नही होती। अत परिभाषा को निषेधात्मक नही होना चाहिए, जहाँ तक सम्भव हो सके, वह स्वीकारात्मक ही होनी चाहिए।

इस नियम का उल्लघन करने से निषेधात्मक परिभाषा (Negative Definition) का दोष हो जाता है।

दोष : निषेधात्मक परिभाषा

उदाहरण —'पाप पुण्य नही है।' 'सत्य असत्य नही है।' 'द्रव वह है जो न तो ठोस हो और न गैस।' 'मन पदार्थ नही है।' 'असफलता सफलता का अभाव है।' 'अज्ञान ज्ञान के न होने को कहते है।' 'शान्ति अशान्ति का अभाव है।' 'निद्रा जागृति का उल्टा है।'

कभी-कभी किसी पद की उचित परिभापा करने मे कठिनाई होती है, तव हम वर्णन (Description) के रूप मे निपेधात्मक परिभाषा (Negative Definition) का सहारा ले लेते है।

सक्षेप मे, **परिभाषा पूर्ण और स्पष्ट होनी चाहिए और वह पर्यायोक्ति-मात्र अथवा निषेधात्मक नही होनी चाहिए।**

§ ३. परिभाषा की सीमाये (Limits)

परिभापा की सीमाये निम्नलिखित है —

परतम जाति

(क) **परतम जाति** (Summum Genus) की परिभाषा नही हो सकती। परिभाषा मे आसन्न-जाति तथा व्यावर्तक गुण का विवरण किया जाता है। परतम जाति सर्वोच्च जाति होती है, अत. वह किसी उच्चतर जाति के अन्तर्गत नही रक्खी जा सकती। अत उसकी परिभाषा नही हो सकती।

विशिष्ट भाववाचक नाम

(ख) **विशिष्ट भाववाचक नाम** (Singular Abstract Names) प्रारम्भिक गुणो के नाम होते है; अतः उनकी परिभाषा नही की जा सकती क्योकि उनसे अधिक सरल अथवा प्रारम्भिक और कुछ नही हो सकता। इसलिए 'समानता', 'वर्गता' आदि की परिभाषा असभव है।

व्यक्तिवाचकनाम तथा व्यक्तिगत वस्तुयें

(ग) **व्यक्तिवाचक नाम** (Proper Names) **तथा व्यक्तिगत वस्तुयें** (Individual objects)। व्यक्तिवाचक नामो मे 'गुण' (Connotation) नही होता, अत. उनके गुणो का वर्णन हो ही नही सकता। व्यक्तिगत वस्तुओ के अपरिमित गुण होते है और उन समस्त गुणो की गणना करना असंभव है।

अत. उनकी परिभाषा नही हो सकती। उनके स्पष्टीकरण की विधि केवल यह है कि समयानुकूल उनका किसी प्रकार से वर्णन कर दिया जाय।

कुछ हल किये हुए प्रश्न

(क) कुत्ता एक पालतू जानवर है।

उत्तर :—यह परिभाषा तार्किक नही है क्योकि 'पालतू जानवर' 'कुत्ते' का आकस्मिक गुण है। इसमे सम्पूर्ण 'गुण' का वर्णन न करके केवल आकस्मिक गुण का वर्णन किया गया है। अत यह 'आकस्मिक परिभाषा' अथवा वर्णन-मात्र है।

(ख) कवि माधुर्य और प्रकाश का देवता है।

उत्तर :—इसमे 'आलंकारिक परिभाषा' का दोष है क्योकि सम्पूर्ण 'गुण' का वर्णन न करके आलंकारिक भाषा का उपयोग किया गया है।

(ग) शान्ति अशान्ति का अभाव है।

उत्तर :—इसमे निषेधात्मक परिभाषा का दोष है क्योकि 'अशान्ति का अभाव' केवल यह व्यक्त करता है कि 'शान्ति' क्या नही है, परन्तु तार्किक परिभाषा मे यह व्यक्त होना चाहिए कि वह क्या है।

(घ) सिंह चित्राकित जन्तु जैसा होता है।

उत्तर :—यह केवल वर्णन है क्योकि इसमे सम्पूर्ण 'गुण' का विवरण नही है।

प्रश्नमाला ५

(१) तार्किक-परिभाषा किसे कहते है? उसकी सीमायें तथा आकारगत दशायें क्या है?

(२) तार्किक-परिभाषा के नियमो का वर्णन कीजिए। इन नियमो के उल्लंघन से कौन-कौन से आभास (दोष) उत्पन्न हो जाते है? (उ० प्र० १९५२)

(३) परिभाषा की उपयोगिता और कार्य क्या-क्या है? परिभाषा को 'विशुद्ध विचार की आवश्यक शर्त' क्यो कहते है? (पजाव १९२३)

(४) किस प्रकार के पदो की परिभाषा नही हो सकती? क्या व्यक्तिवाचक नामो की परिभाषा हो सकती है? (कलकत्ता १९३९)

(५) एक दृष्टात देकर परिभाषा और वर्णन का अन्तर स्पष्ट कीजिए।

(६) निम्नलिखित परिभाषाओ का परीक्षण कीजिए :—

(क) त्रिभुज वह समतल क्षेत्र है जिसकी तीन भुजाये एक समान हो।
(ख) घी आयु है।
(ग) सुवर्ण एक धातु है जो चाँदी से अधिक कीमतवाली होती है।
(घ) सभ्य मनुष्य उसे कहते है, जिसके आजीवन का कोई खास प्रवन्ध न हो।
(ङ) मनुष्य एक स्वार्थी जीव है।
(च) रोटी जीवन है।
(छ) घोडा जीव है।
(ज) आम एक मीठा फल है।
(झ) मनुष्य हँसनेवाला जन्तु है।
(ञ) मनुष्य आदतो का समूह है।
(ट) ज्ञान अज्ञान का अभाव है।
(ठ) मनुष्य एक विचारशील जीव है जो सस्कृत जानता है।
(ड) काव्य मानव-हृदय का व्यक्त-भाव है।
(ढ) देवता वह है जो मनुष्य न हो।
(ण) न्यायाधीश वह व्यक्ति है, जो न्याय-कुशल हो।
(त) प्रकाश अन्धकार का अभाव है।
(थ) धोबी वह व्यक्ति है जो कपडे धोता है।
(द) भेड वह जानवर है जिससे ऊन मिले।
(ध) कुत्ता वह पशु है जो विल्ली से बडा हो।

(न) रेलगाडी वह सवारी है जो चालीस मील प्रति-घंटे की चाल से दौडे।

(प) व्यायाम जीवन की ओपधि है।

EXERCISE V.

1. What is Logical Definition? What are its limits and formal conditions?

2 Enunciate the Rules of Logical Definition What Fallacies are committed by the violation of these rules? [U P 1952]

3. What are the uses and functions of Definition? Why is Definition called the essential condition of valid thought? [Punjab 1923].

4. Which are the terms, which cannot be defined? Can Proper Names be defined?

5 Elucidate by means of a concrete illustration the distinction between Definition and Description

6 Examine the following definitions —

(a) A triangle is a plane figure having its three sides equal

(b) Ghee is Life

(c) Gold is a metal more costly than silver

(d) A gentleman is one who has no particular means of subsistence

(e) Man is a selfish animal

(f) Bread is life

(g) Horse is an animal.

(h) Mango is a sweet fruit

(i) Man is a laughing animal

(j) Man is a bundle of habits.

(k) Knowledge is the absence of ignorance

(l) Man is a rational animal, who knows Sanskrit

(m) Poetry is an expressed emotion of human heart.

(n) A god is one who is not a man

(o) A judge is a person who is expert in judging

(p) Light is the absence of darkness
(q) A washerman is a person who washes the clothes.
(r) Sheep is an animal which gives wool
(s) A dog is that animal which is bigger than cat.
(t) A railway train is that conveyance which runs forty miles an hour.
(u) Exercise is a medicine of life

षष्ठ प्रकरण

तार्किक-विभाग (Logical Division)

§ १. तार्किक-विभाग (Logical Division) का स्वरूप।
टिप्पणी—विभाग (Division) और परिभाषा (Definition)।

§ २ तार्किक-विभाग के नियम (rules) तथा उनके उल्लंघन से उत्पन्न दोष (fallacies)।

नियम १ उसके उल्लंघन से 'भौतिक-विभाग' (Physical Division) तथा 'अतिभौतिक विभाग (Metaphysical Division) के दोष।

नियम २. उसके उल्लंघन से 'संकर-विभाग' (Cross-Division) का दोष।

नियम ३ उसके उल्लंघन से 'अति-संकीर्ण-विभाग' (Too narrow Division) तथा 'अति-विस्तीर्ण विभाग' (Too wide Division) का दोष।

नियम ४ उसके उल्लंघन से 'परस्पर-व्याप्त-विभाग' (Overlapping Division) का दोष।

नियम ५ उसके उल्लंघन से 'भौतिक-विभाग' (Physical Division) और 'अतिभौतिक विभाग (Metaphysical Division) का दोष।

नियम ६. उसके उल्लंघन से 'अतिसंकीर्ण-विभाग' (Too narrow Division) का दोष।

§ ३ द्विवर्गाश्रित विभाग (Division by Dichotomy)

प्रश्नमाला ६।

§ १. तार्किक विभाग (Logical Division) का स्वरूप

तार्किक विभाग

जब हम किसी जाति (Genus) या उच्चतर वर्ग को किसी निश्चित सिद्धान्त के अनुसार तद्गत उपजातियों (Species) या निम्नतर वर्गों में विश्लेषित करते हैं, तो इस क्रिया को 'तार्किक-विभाग' (Logical Division) कहते हैं।

तार्किक-विभाग (Logical Division) किसी पद के 'निर्देश' (Denotation) का विश्लेपण होता है, जब कि तार्किक-परिभाषा (Logical Definition) में उसके 'गुण' (Connotation) का वर्णन किया जाता है। 'तार्किक-विभाग' से तात्पर्य उस पद द्वारा निर्दिष्ट वस्तुओ की गणना (enumeration)-मात्र नहीं है, वरन जाति को उसकी उपजातियो में विभक्त करना है। इस प्रकार तार्किक-विभाग सर्वदा एक वर्ग (class) को उसके उप-वर्गों (sub-classes) में बाँटना है; किसी वस्तुविशेष या व्यक्ति को उसके अवयवो मे बाँटना नही।

तार्किक-विभाग (Logical Division) का भौतिक-विभाग (Physical Division) एव अतिभौतिक-विभाग-(Metaphysical Division) से अन्तर समझ लेना चाहिए।

भौतिक विभाग और

भौतिक-विभाग (Physical Division) से तात्पर्य किसी भौतिक पदार्थ को उसके अवयवो (parts) मे बाँटना है। यथा 'वृक्ष' को उसके तने, शाखा, पत्ते आदि मे विभक्त करना, 'मनुष्य' को उसके 'सिर', 'धड', 'हाथ', 'पैर' आदि मे बाँटना।

अतिभौतिक विभाग से है।

अतिभौतिक-विभाग (Metaphysical Division) किसी एक वस्तु अथवा वस्तुओ के वर्ग का उसके गुणो मे विश्लेपण करना है। यथा—यदि हम 'शीशे' को उसके गुणो—'कडा',

'भुरभुरा', 'पारदर्शी' इत्यादि में विश्लेषित करे, तो यह अति-भौतिक विभाग (Metaphysical Division) होगा। इसी प्रकार यदि हम 'मनुष्य' का विभाजन उसके गुणो, यथा—'प्राणित्व' एव 'विचारशीलता' में करे, तो यह भी अति-भौतिक-विभाग (Metaphysical Division) होगा।

भौतिक-विभाग (Physical Division) तथा अति-भौतिक-विभाग (Metaphysical Division) दोनो ही तार्किक-विभाग (Logical Division) से भिन्न हैं, क्योकि तार्किक-विभाग किसी एक वस्तु या गुण का नही होता, केवल वस्तुओं या गुणो के एक वर्ग का होता है।

विभाग का मूल नियम

तार्किक-विभाग (Logical Division) में हम एक ऐसे गुण के बारे में सोचते हैं, जो कि किसी जाति के कुछ सदस्यो मे तो पाया जाये, परन्तु कुछ में नही। और यही 'विभाग का मूल-सिद्धान्त' (Fundamentum Divisionis) हो जाता है। यथा—'मनुष्य' का विभाग करते समय हमें पता चलता है कि कुछ मनुष्य 'सभ्य' हैं और कुछ 'सभ्य' नही हैं। अत हम विभाग का मूल सिद्धान्त सभ्य होना या सभ्य न होने के गुण को चुनते हैं। यह स्पष्ट है कि विभाग के विभिन्न मूल-सिद्धान्तो के आधारपर एक ही जाति को उसकी उपजातियो मे अनेक प्रकार से विभाजित किया जा सकता है। इस प्रकार 'मनुष्य' का विभाग 'श्वेत' या 'अश्वेत' मे, अथवा 'सभ्य' या 'असभ्य' मे, अथवा 'हिन्दू' या 'अहिन्दू' मे किया जा सकता है।

टिप्पणी —विभाग (Division) और परिभाषा (Definition)

विभाग (Division) का सम्बन्ध पदो के निर्देश (Denotation) से है, और परिभाषा का सम्बन्ध उनके

'गुण' (Connotation) से होता है। अधिकाश पदो के 'निर्देश' तथा 'गुण' दोनो होते है और इन दोनो अर्थों मे वडा घनिष्ठ सम्वन्ध होता है। वास्तव मे ये दोनों एक ही वस्तु के दो दृष्टिकोण समझे जाते है। अत विभाग (Division) और परिभाषा (Definition) को एक साथ रखने से पदो का पूर्ण अर्थ ज्ञात हो पाता है। विभाग से पता चलता है कि पद द्वारा व्यक्त उच्च वर्ग मे कौन कौन-से उपवर्ग सम्मिलित हैं, और परिभाषा उनके समान और अनिवार्य गुणो का विवरण देती है। इस प्रकार विभाग (Division) और परिभाषा (Definition) परस्पर सम्पूरक है।

§ २ तार्किक-विभाग के नियम (rules) तथा उनके उल्लघन से उत्पन्न दोष (fallacies)

तार्किक-विभाग (Logical Division) निम्नलिखित नियमो के अनुसार होना चाहिए। ये नियम विभाग के स्वभाव मे ही निहित रहते है।

नियम १ : तार्किक विभाग वर्ग का होता है।

नियम १ : **तार्किक विभाग सर्वदा किसी वर्ग (class) का होता है, व्यक्ति (individual) का नही।** उदाहरण के लिए, हम 'मनुष्य' का तार्किक-विभाग कर सकते है, परन्तु 'अकवर महान्' का तार्किक-विभाग नही कर सकते।

तार्किक-विभाग की परिभाषा से ही यह नियम फलित हो जाता है। इसी विशेषता के कारण तार्किक-विभाग (Logical Division), भौतिक (Physical) और अतिभौतिक (Metaphysical) विभाग से भिन्न माना जाता है।

नियम २ : विभाग का एक मूल

नियम २ **तार्किक विभाग एक काल में एक ही मूल-सिद्धान्त (Fundamentum Divisionis) के अनुसार होना चाहिए,** यथा—किसी जाति के कुछ सदस्यो मे किसी विशेष

गुण का होना और कुछ सदस्यो मे उस गुण का न होना। इस प्रकार, 'विद्यार्थी' का विभाग 'योग्य' और 'अयोग्य' मे हो सकता है क्योकि विभाग का मूल-सिद्धान्त एक ही है यथा—कुछ विद्यार्थियो मे योग्यता का गुण होना और कुछ मे उस गुण का न होना।

नियम होना चाहिए।

दोष

इस नियम के उल्लंघन से संकर-विभाग (Cross Division) का दोष (fallacy) हो जाता है। यथा—'मनुष्य' का विभाग 'लम्बे', 'सभ्य', 'गोरे', और 'योरपवासी' मे करना। स्पष्ट है कि यह विभाजन चार मूल-सिद्धान्तो के अनुसार हुआ है, यथा—'कद', 'संस्कृति', 'त्वचा का रंग' और 'जाति'। इसी प्रकार, यदि 'त्रिभुज' का विभाग 'समत्रिबाहु त्रिभुज' और 'समकोण त्रिभुज' मे करे तो विभाग के दो मूल सिद्धान्तो का उपयोग हो जाता है, यथा—'भुजाओ के प्रकार' एव 'कोणो के प्रकार'।

नियम ३. उपजातियों का योग विभाजित जाति के बराबर होना चाहिए।

नियम ३ : **तार्किक विभाग में उपजातियों का 'निर्देश' विभाजित 'जाति' के 'निर्देश' के बराबर होना चाहिए।** उदाहरण के लिए, यदि हम भौतिक पदार्थो का विभाग 'ठोस', 'द्रव', और 'गैस' मे करे, तो इन तीनो उपजातियो का सम्मिलित 'निर्देश' 'भौतिक पदार्थ' के 'निर्देश' के बिल्कुल बराबर होगा।

दोष

इस नियम के उल्लंघन से या तो 'अति-संकीर्ण-विभाग का दोष' (Fallacy of too narrow Division) या **'अति-विस्तीर्ण-विभाग का दोष'** (Fallacy of too wide Division) हो जाता है। यदि विभाग इस प्रकार का हो कि कोई उपजाति छूट जाय, तो ऐसा विभाग **'अति-संकीर्ण'** (too narrow) कहलायेगा; यथा—'त्रिभुज' का विभाग 'समत्रिबाहु' और 'समद्विबाहु' मे। (यहाँ उपजाति 'विषमबाहु' छूट गई है।) यदि किसी जाति का विभाग करते समय उसमे ऐसी उपजाति भी सम्मिलित कर दे जो कि उसके अन्तर्गत नही आती हो, तो ऐसा विभाग **'अति-विस्तीर्ण'** (too wide) हो जायेगा; उदाहरण के लिए सिक्को का विभाग सोने, चाँदी, निकिल, ताबे के सिक्के एव 'बैंक-नोट' मे।

नियम ४ : विभाजित उपजातियाँ परस्पर-व्याप्त नहीं होनी चाहिए।

नियम ४ : **तार्किक-विभागमें, विभाजित उपजातियाँ पृथक्-पृथक् होनी चाहिए, परस्पर-व्याप्त नहीं।**

इस नियम का यह अर्थ है कि कोई वस्तु एक से अधिक उपजाति के अन्तर्गत नही आनी चाहिए। उदाहरण के लिए, यदि हम 'त्रिभुज' का विभाग 'समत्रिबाहु', समद्विबाहु' और 'विषमबाहु' मे करे तो विभाजित उपजातियाँ परस्पर पृथक्-पृथक् है, कोई भी त्रिभुज एक से अधिक उपजाति के अन्तर्गत नही रक्खा जा सकता।

यह नियम दूसरे नियम से ही फलित होता है जिसके अनुसार विभाग का एक ही मूल-सिद्धान्त होना चाहिए। यदि विभाग का एक ही **मूल-सिद्धान्त** होगा, तो उपजातियाँ पृथक्-पृथक् होंगी; परन्तु यदि विभाग एक से अधिक मूल-सिद्धान्तों के अनुसार होगा, तो विभाजित उपजातियाँ परस्पर-व्याप्त हो जायेगी।

दोष

इस नियम के उल्लघन से **परस्पर-व्याप्त विभाग** (Overlapping Division) का दोष उत्पन्न हो जाता है। उदाहरण के लिए, यदि, 'मनुष्य' का विभाग 'गोरे' और 'लंबे' मे करे, तो यह दोष हो जाता है, क्योकि 'गोरे' मनुष्य 'लम्बे' भी हो सकते है, अत. उपजातियाँ परस्पर-व्याप्त हो जाती है।

नियम ५ : विभाजित जाति का नाम उपजातियो में प्रयुक्त हो सकना चाहिए।

नियम ५ : **विभाजित जाति का नाम उसी अर्थ में प्रत्येक उपजाति के लिए प्रयुक्त होना चाहिए।** जैसे—'त्रिभुज' नाम उसकी प्रत्येक उपजाति यथा—'समत्रिबाहु', 'समद्विबाहु' और 'विषमबाहु' के लिए प्रयुक्त हो सकता है।

यह नियम दूसरे नियम से फलित होता है। यदि कोई ऐसी उपजाति हो, जिसके लिए जाति का नाम प्रयुक्त न हो सके, तो स्पष्ट है कि उपजातियो का सम्मिलित 'निर्देश' विभाजित 'जाति' के निर्देश से अधिक हो जायगा।

यदि इस नियम का उल्लघन कर दिया जाय तो **भौतिक-विभाग** (Physical Division) अथवा **अति-भौतिक-विभाग**

(Metaphysical Division) का दोष हो जाता है। उदाहरण के लिए, यदि हम 'मनुष्यों' का विभाग 'सिर', 'धड', 'हाथ', 'पैर' इत्यादि मे करे तो 'मनुष्य' नाम शरीर के भिन्न-भिन्न अगो के लिए प्रयुक्त नही हो सकता। इसी प्रकार यदि हम 'एशिया' का विभाग 'जापान', 'चीन', 'भारतवर्ष', 'ईरान' इत्यादि मे करे, तो यह तार्किक-विभाग नही होगा, क्योकि इन भागो के लिए महाद्वीप का नाम प्रयुक्त नही किया जा सकता यह भौतिक-विभाग के उदाहरण है। यदि 'मनुष्य' के गुणो का 'प्राणित्व' एव 'विचारशीलता' मे विश्लेषण करे, तो जाति का नाम 'मनुष्य' इन गुणो के लिए प्रयुक्त नही किया जा सकता। अत यह तार्किक-विभाग न होकर अतिभौतिक-विभाग हुआ।

दोष

नियम ६ किसी क्रमिक-विभाग (continued Division) में प्रत्येक जाति का विभाग तद्गत आसन्न-उपजातियों (proximate sub-classes) में होना चाहिए, दूरस्थ (remote) में नहीं। विभाग मे उल्लघन (leap) कभी नही होना चाहिए (Divisio non faciat saltum)। जब कभी विभाग मे एक से अधिक सोपान हो, तो वे क्रमिक होने चाहिए, ताकि एक भी मध्यवर्त्ती वर्ग न छूट जाय।

नियम ६: विभाग आसन्न उपजातियों में होना चाहिए।

इस नियम के उल्लघन करने से प्राय अति-संकीर्ण-विभाग (too narrow division) का दोष हो जाता है। अत 'आयताकार सरल आकृतियो' का विभाग 'समत्रिबाहु त्रिभुज', 'वर्ग', 'समानान्तर चतुर्भुज' जैसी दूरस्थ (remote) उपजातियो मे नही करना चाहिए।

दोष

यह बात ज्ञातव्य है कि उपर्युक्त सभी नियम परस्पर सम्बद्ध है और उनमे से किसी एक के उल्लघन करने से ही अन्य नियमो का उल्लघन हो जाता है। अत एक ही दृष्टात मे एक से अधिक दोष हो जाते है।

§ ३. द्विवर्गाश्रित-विभाग (Division by Dichotomy)

विभाग के नियमो के अनुसार, विभाग का मूल-सिद्धान्त

द्विवर्गाश्रित विभाग एक आकारगत क्रिया है।

एक ही होना चाहिए ; विभाजित उपजातियाँ परस्पर-व्याप्त नही होनी चाहिए और सब उपजातियो का सम्मिलित रूप विभाजित जाति के बराबर होना चाहिए। यह स्पष्ट है कि हम इस बात के लिए सर्वदा निश्चित नही रहते कि किसी विभाग मे इन नियमो का पूर्ण रूप से पालन किया गया है या नही। क्योकि हमे विभाजित जाति द्वारा निर्दिष्ट वस्तुओ का पूर्ण ज्ञान नही होता। आकारगत तर्कशास्त्र मे ऐसे ज्ञान की आवश्यकता नही होती। इसी कारण कुछ तर्कशास्त्री 'विभाग' को वस्तुगत तर्कशास्त्र का भाग समझते है। अत आकारगत तर्कशास्त्रियो ने विभाग की एक ऐसी पद्धति का वर्णन किया है, जिसमे विभाग के आकार-मात्र से, बिना विषय-वस्तु के ज्ञान के ही, हम यह जान सकते है कि विभाग के नियमो का पूर्ण रूप से पालन किया गया है। इस पद्धति को **द्विवर्गाश्रित-विभाग** (Division by Dichotomy) कहते है।

इसमें उच्च वर्ग को दो उपवर्गों में विभाजित किया जाता है—एक वर्ग स्वीकारात्मक तथा दूसरा उसका निषेधात्मक होता है।

द्विवर्गाश्रित-विभाग (Division by Dichotomy) **का अर्थ दो भागो में काटना है। इसका यह अर्थ है कि किसी उच्च वर्ग को, प्रत्येक पद पर, दो उपवर्गों में विभाग करना, जिनमें से एक स्वीकारात्मक होता है, और दूसरा निषेधात्मक।** क्योकि उपवर्ग स्वीकारात्मक तथा निषेधात्मक होते है, अतः विभाग का मूल-नियम एक ही होता है। दोनो उपवर्ग विरोध-बाधक-नियम (Principle of Contradiction) और निर्मध्यम-नियम (Principle of Excluded Middle) के अनुसार, परस्पर पृथक् पृथक् होगे और उनका सम्मिलित 'निर्देश' जाति (या वर्ग) के 'निर्देश' के बराबर होगा। अत इस विधि से विभाग के नियमो का पालन हो जाता है और साथ ही विषयवस्तु के ज्ञान की आवश्यकता नही पडती।
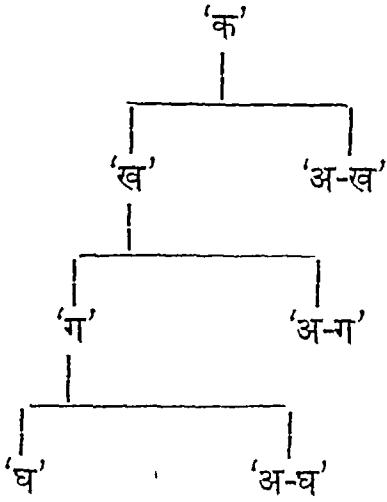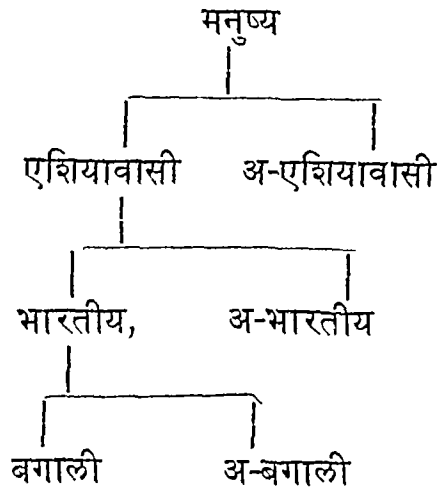
उपयोगिता तथा कमियाँ

द्विवर्गाश्रित विभाग (Division by Dichotomy) की उपयोगिता इस बात मे है कि इससे विभाग पूर्ण रूप से हो जाता है । विरोध-बाधक-नियम एव निर्मध्यम नियम पर आधारित होने के कारण, यह 'आकार' की दृष्टि मे शुद्ध है। परन्तु इस पर यह आक्षेप किया जा सकता है कि निषेधात्मक पद बडा अनिश्चित और अस्पष्ट होता है।

कुछ हल किये हुए अभ्यास

सकेत —जैसा कि तार्किक परिभाषा के सम्बन्ध में होता है, उसी प्रकार तार्किक-विभाग के किसी दिए हुए उदाहरण मे, एक से अधिक दोप सभव हो सकते हैं। अत विभाग के उदाहरणो का परीक्षण करते समय हमे केवल उसके दोष का नाम ही नही देना चाहिए, अपितु उन कारणो का भी उल्लेख करना चाहिए, जिनसे वह दोप हुआ हो।

प्रश्न :—निम्नलिखित विभागो का परीक्षण कीजिए और बतलाइए कि क्या वे तार्किक-दृष्टि मे शुद्ध है ?

(क) पौदो का विभाग तना, जड और शाखो मे।

उत्तर —यह तार्किक-विभाग नही है, प्रत्युत भौतिक-विभाग है क्योकि इसमे पौधे को उसके घटक भौतिक अगो मे बॉटा गया है।

(ख) मन का विभाग सवेदन, विचार और सकल्प मे।

उत्तर —यह तार्किक-विभाग न होकर अतिभौतिक विभाग है क्योकि इसमे 'मन' का विश्लेषण उसके गुणो मे किया गया है।

(ग) मनुष्य का विभाग गोरे और काले, बदमाश और खूनी मे।

उत्तर —इसमे एक से अधिक दोप वर्तमान हैं। इसमे इस नियम का उल्लघन किया गया है कि एक समय मे विभाग का मूल-सिद्धान्त एक ही होना चाहिए। इस उदाहरण मे अनेक मूल-सिद्धान्त है, यथा—'वर्ण' और 'नैतिकता'। अत. यह सकर-विभाग के दोष से युक्त है। इसमे परस्पर-व्याप्त विभाग का दोप भी है क्योकि विभाजित उपजातियाँ 'गोरे' और 'खूनी' परस्पर व्यावर्तक नही हैं—कोई व्यक्ति इन दोनो उपजातियो के अन्तर्गत रक्खा जा सकता है।

प्रश्नमाला ६

(१) तार्किक-विभाग और तार्किक परिभाषा से आप क्य समझते हैं ? उदाहरण देकर उनका सम्बन्ध बतलाइए (उ० प्र० १९५३)।

(२) तर्कशास्त्र मे 'विभाग' से क्या तात्पर्य है ? निम्नलिखित विभागो का परीक्षण कीजिए —

(क) पुस्तको का विभाग धार्मिक, ऐतिहासिक तथ मनोरजक मे।

(ख) त्रिभुजो का विभाग समद्विवाहु, समत्रिवाहु तथ समत्रिभुज मे।

(ग) पदो का विभाग विशिष्ट, स्वीकारात्मक तथ भाववाचक मे।

(घ) भारत का विभाग बगाल, मद्रास, बम्बई तथा उत्तर-प्रदेश मे। (उ० प्र० १९५२)।

(३) तार्किक-विभाग किसे कहते है ? तार्किक, भौतिक तथा अतिभौतिक विभाग का अन्तर उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए। (उ० प्र० १९४६, १९५१, कलकत्ता १९३४)।

(४) विभाग के नियमो का उल्लेख कीजिए तथा उनकी पुष्टि कीजिए। (उ० प्र० १९४८)।

(५) निम्नलिखित विभागो की विवेचना कीजिए।

(क) वायुयान का विभाग पख, इजन और प्रौपेलर मे।

(ख) पुस्तक का विभाग साम्यवादी, मनोरजक और बहुमूल्य मे।

(ग) त्रिभुज का विभाग न्यूनकोणिक, समत्रिभुज तथा समत्रिबाहु मे। (उ० प्र० १९४८)।

(६) विभाग और वर्गीकरण की तुलना कीजिए। उदाहरण द्वारा स्पष्ट कीजिए कि विभाग निगमनमूलक होता है, तथा वर्गीकरण आगमनमूलक। (उ० प्र० १९४७)

(७) निम्नलिखित विभागो की जॉच कीजिए —

(क) रग का विभाग सफेदी, कालापन तथा हरापन मे।

(ख) पदो का विभाग विशिष्ट, भाववाचक तथा गुणवाचक मे।

(ग) मनुष्य का विभाग पुरुष, स्त्री तथा बच्चो मे। (उ० प्र० १९४६)।

(८) द्विवर्गाश्रित विभाग से क्या तात्पर्य है ? उसका क्या उपयोग है ? (बम्बई १९३०, कलकत्ता १९३७, मद्रास १९३३, पजाब १९२६)।

(९) परिभाषा, विभाग तथा वर्गीकरण के पारस्परिक सम्बन्ध का विवेचन कीजिए। (कलकत्ता १९४०)।

EXERCISE VI

1. What do you understand by Logical Division and Logical Definition ? Explain their mutual relation, giving examples. [U P 1953].

2 What is meant by Division in Logic ? Examine the following Divisions

(a) Books into religious, historical and interesting.
(b) Triangles into isosceles. equilateral and right-angled
(c) Terms into Singular Positive and Abstract
(d) India into Bengal, Madras, Bombay and Uttar Pradesh. [U.P 1952].

3 What is Logical Division ? Explain the difference between Logical, Physical and Metaphysical Division. Give examples [U P. 1946, 1951, Calcutta 1934].

4. Enunciate the Rules of Division and exemplify them. [U P. 1948]

5. Criticise the following divisions
(a) Aeroplane into wings, engine and propeller.
(b) Books into communist, interesting and valuable.
(c) Triangles into acute-angled, right-angled and equilateral. [U P 1948].

6 Compare and distinguish between Division and Classification Give examples to support that Division is deductive while Classification is inductive [U P 1947]

7 Examine the following divisions
(a) Colour into whiteness, blackness and greenness.
(b) Terms into Singular, Abstract and Connotative
(c) Human beings into men, women and children. [U P 1946].

8. What do you mean by Division by Dichotomy ? What is its utility ? [Bombay 1930, Calcutta 1937, Madras 1933, Punjab 1926].

9. Discuss the relations between Definition, Division and Classification [Calcutta 1940]

सप्तम प्रकरण

तर्क-वाक्य (Proposition)

§१. तर्क-वाक्य (Proposition) का विश्लेषण।

टिप्पणी —व्याकरण का वाक्य (Grammatical Sentence) तथा तर्कवाक्य (Proposition)।

§२. तर्कवाक्यो के प्रकार।

(क) शुद्ध (Simple) और मिश्रित (Compound)।

(ख) सम्बन्धानुसार (according to Relation) विभाग निरपेक्ष (Categorical) तथा सापेक्ष (Conditional)।

(ग) गुणानुसार (according to Quality) विभाग . स्वीकारात्मक (Affirmative) तथा निषेधात्मक (Negative)।

टिप्पणी १ : हेतुफलाश्रित तर्कवाक्यो (Hypothetical Propositions) का गुण (Quality)।

टिप्पणी २ वैकल्पिक तर्कवाक्यो (Disjunctive Propositions) का गुण (Quality)।

(घ) परिमाणानुसार (according to Quantity) विभाग · सार्वलौकिक (या सामान्य) (Universal) तथा विशेष (Particular)।

टिप्पणी १ · विशिष्ट तर्कवाक्य (Singular Propositions)।

टिप्पणी २ सार्वलौकिक (सामान्य) तर्कवाक्य (Universal Propositions)।

टिप्पणी ३ · हेतुफलाश्रित (Hypothetical) तर्कवाक्यो का परिमाण (Quantity)।

टिप्पणी ४ . वैकल्पिक (Disjunctive) तर्कवाक्यो का परिमाण (Quantity)।

(ङ) विधि-अनुसार (according to Modality) —आवश्यक, प्रतिज्ञात, संदिग्ध।

(च) तात्पर्य (Import) के अनुसार—शाब्दिक (Verbal) और वास्तविक (Real)।

§३ तर्कवाक्यो का सरलीकरण (Simplification)। —'गुण और परिमाण' के अनुसार तर्कवाक्यो का आकार: "आ" (A), "ई" (I), "ए" (E) तथा "ओ" (O)।

§४ वाक्यो का तार्किक आकार मे रूपान्तर।

§५ पदो की व्याप्ति (Distribution)।

टिप्पणी विधेय (Predicates) का परिमाण ज्ञात करना (Quantification)।

§६ चारो प्रकार के तर्कवाक्यो का चित्रीकरण। —यूलर (Euler) के वृत्त।

§१. तर्क-वाक्य (Proposition) का विश्लेषण

तर्कवाक्य

दो पदों के बीच के सम्बन्ध के कथन को तर्कवाक्य (Proposition) **कहते है।** इस प्रकार तर्कवाक्य के तीन अंग होते है—अर्थात्, दो पद और एक उन दोनो के बीच का सम्बन्धसूचक शब्द। दो पदो मे से एक **उद्देश्य** (Subject) और दूसरा **विधेय** (Predicate) कहलाता है, और सम्बन्ध-सूचक चिह्न को **संयोजक** (Copula) कहते है। तर्कवाक्य का **'उद्देश्य'** उस पद को कहते है, जिसके बारे मे स्वीकृति या निषेध के रूप मे कुछ कहा जाय और जो कुछ कहा जाता है, उसे **'विधेय'** कहते है। तथा **संयोजक** स्वीकृति या निषेध का चिह्न है। उदाहरण के लिए, 'मनुष्य' पूर्ण नही है'—इस तर्कवाक्य (Proposition) मे, 'मनुष्य' पद उद्देश्य (Subject) है,

उसके तीन भाग

उद्देश्य

विधेय

संयोजक

'पूर्ण'-पद विधेय (Predicate) है और 'नही है' शब्द सम्वन्ध-सूचक होने के कारण सयोजक (Copula) है।

सयोजक (Copula) के स्वरूप के विषय मे तर्कशास्त्रियो मे बडा मतभेद है। इस सम्बन्ध मे दो शब्द उठाए जाते है—(१) क्या सयोजक वर्तमान-काल (present tense) मे ही प्रयुक्त होता है या अन्य कालो मे भी ? (२) क्या सयोजक सर्वदा स्वीकारात्मक ही होता है अथवा निषेधात्मक भी हो सकता है ?

संयोजक 'होना' क्रिया के वर्तमान काल में होता है, उसमें निषेध चिह्न हो भी सकता है और नहीं भी।

(१) पहले प्रश्न के सम्बन्ध मे, **हैमिल्टन** (Hamilton), **मैन्सल** (Mansel), **फौउलर** (Fowler) इत्यादि तर्कशास्त्रियो का कहना है कि **संयोजक** (Copula) **सर्वदा वर्तमान काल में ही होता है**, परन्तु **मिल** (Mill) का कहना है कि वह किसी भी काल (tense) मे हो सकता है। इस विवाद से दूर रहते हुए भी यह तो स्पष्ट ही है कि सयोजक उद्देश्य और विधेय के बीच का सम्वन्ध वतलाता है, अत उसमे काल का तत्व नही आ सकता। अत वह वर्तमान काल मे ही होना चाहिए। वह काल के तत्व से स्वतत्र होना चाहिए—काल के तत्व को विधेय (Predicate) के अन्तर्गत समाविष्ट किया जाना जाहिए। यथा—यह न कहकर कि 'सुकरात एक महान् दार्शनिक था', हमे यह कहना चाहिए कि 'सुकरात एक व्यक्ति है, जो एक महान् दार्शनिक था।' इसमे काल का तत्व विधेय मे समाविष्ट कर दिया गया है। इसी प्रकार यह न कहकर कि 'स्टीमर दो पहर के बाद छूटेगा', हमे इसे तार्किक-आकार मे इस प्रकार व्यक्त करना चाहिए—"स्टीमर एक यान है, जो दो पहर के बाद रवाना होगा।"

अत हमे यह दृष्टिकोण मान्य है कि **संयोजक केवल वर्तमान काल में ही होना चाहिए**। 'होना' क्रिया के वर्तमान-काल के रूप

"है", "है", "हूँ" इत्यादि हैं। परिस्थिति के अनुसार सयोजक इन्ही मे से कोई रूप ले सकता है।

संयोजक स्वीकारात्मक अथवा निषेधात्मक हो सकता है।

(२) दूसरे प्रश्न के सम्वन्ध मे, कुछ तर्कशास्त्रियो का मत है कि सयोजक (Copula) सर्वदा स्वीकारात्मक (affirmative) आकार मे ही व्यक्त किया जाना चाहिए, परन्तु कुछ का यह कहना है कि परिस्थिति के अनुसार वह स्वीकारात्मक (affirmative) अथवा निषेधात्मक (negative) हो सकता है। जो लोग उसके सदा स्वीकारात्मक होने के पक्ष मे है, वे निषेध के चिह्न को विधेय मे स्थानान्तरित कर देते है। यह न कहकर कि "मनुष्य पूर्ण नही है", वे कहेगे कि "मनुष्य अ-पूर्ण है।" परन्तु यह वात ज्ञातव्य है कि स्वीकृति और निपेध मूल-रूप से विल्कुल भिन्न भाव है और उनकी विभिन्नता शव्दो के उलट-फेर से दूर नही हो सकती। अत हमे यह मत मान्य है कि सयोजक (Copula) उद्देश्य और विधेय के स्वीकृति अथवा निपेध-सम्वन्ध के अनुसार क्रमश स्वीकारात्मक और निपेधात्मक हो सकता है।

अत हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि **संयोजक 'होना'-क्रिया के वर्तमान काल में होना चाहिए और उसका स्वरूप स्वीकारात्मक अथवा निषेधात्मक हो सकता है।**

दूसरे शव्दो मे, 'सयोजक' का निम्नलिखित मे से कोई भी स्वरूप हो सकता है—'है', 'नहीं है', 'हूँ', 'नहीं हूँ', 'है', 'नहीं है', 'हो', 'नही हो' इत्यादि।

'होना' क्रिया को 'अस्तित्व होना' के अर्थ में नहीं लेना चाहिए।

सयोजक के सम्वन्ध मे एक वात और महत्व की है। सयोजक दो पदो के वीच का सम्वन्ध व्यक्त करता है, वह उद्देश्य या विधेय के अस्तित्व को स्वीकार या अस्वीकार नही करता। वह तो उद्देश्य और विधेय की पारस्परिक सगति या असगति का प्रतीक-मात्र है। जव हम कहते है कि 'सोना पीला है,' तो हम 'सोने'

के अस्तित्व को स्वीकार नही करते, वरन हम केवल 'सोना' और 'पीला' पदो के सम्बन्ध को व्यक्त करते है। यह बात निम्नाकित तर्कवाक्यो से अधिक स्पष्ट हो जाती है 'सोने का पहाड तो एक कल्पना है।' अथवा 'आकाशकुसुम सुगन्धियुक्त है।'

टिप्पणी : व्याकरण के वाक्य (Grammatical sentence) और तर्कवाक्य (Proposition)।

तर्कवाक्य प्राय व्याकरण के वाक्य के समान ही होता है। परन्तु यद्यपि प्रत्येक तर्कवाक्य (Proposition) एक व्याकरण का वाक्य होता है, परन्तु यह सच नही है कि प्रत्येक व्याकरण का वाक्य एक तर्कवाक्य होगा। अनेको ऐसे व्याकरण के वाक्य होते है, जो तर्कवाक्यो से भिन्न होते है, यथा—प्रश्नसूचक (Interrogative), इच्छासूचक (Optative), आज्ञासूचक (Operative) तथा विस्मयसूचक (Exclamatory) वाक्य। केवल व्याकरण के वर्णनसूचक (Indicative) वाक्य ही तर्कवाक्यो (Propositions) के समान होते है। अन्य प्रकार के वाक्यो को वर्णनसूचक वाक्य मे परिवर्तित कर देने के वाद ही उनका उपयोग तर्कशास्त्र मे हो सकता है। तर्कवाक्य मे तीन अग होते है; यथा—उद्देश्य, विधेय और सयोजक और कभी-कभी वर्णनसूचक वाक्य को भी इस प्रकार व्यक्त करना पडता है कि वह शुद्ध तार्किक स्वरूप मे आ सके।

व्याकरण का वर्णन-सूचक वाक्य तर्कवाक्य के समान होता है।

§२ तर्कवाक्यो के (Propositions) प्रकार

(क) शुद्ध (Simple) और मिश्रित (Compound) :

तर्कवाक्य दो पदो के पारस्परिक सम्वन्ध का वर्णन करता है। **यदि ऐसा एक ही वर्णन हो, तो उस तर्कवाक्य को शुद्ध (Simple) कहते है**; यथा—'सब मनुष्य मरणशील है', 'कोई

शुद्ध तर्कवाक्य से तात्पर्य

एक और 'मिश्रित' से तात्पर्य एक से अधिक तर्कवाक्य होता है।

मनुष्य पूर्ण नही है'। परन्तु यदि किसी तर्कवाक्य में एक से अधिक वर्णन हो, तो वह मिश्रित (Compound) कहलायेगा। यथा—'नैपोलियन एक महान् विजेता और महान् राजनीतिज्ञ दोनो था।' वास्तव मे यह तो दो तर्कवाक्यो के बराबर है: (१) नैपोलियन एक महान् विजेता था और (२) नैपोलियन एक महान् राजनीतिज्ञ था। इसी प्रकार, यह तर्कवाक्य कि 'मनुष्य न तो अमर है और न पूर्ण है' अधोलिखित दो तर्कवाक्यो मे तोडा जा सकता है 'मनुष्य अमर नही है' और 'मनुष्य पूर्ण नही है।' अत' मिश्रित तर्कवाक्य (Compound Proposition) एक से अधिक तर्कवाक्यो के तुल्य होता है।

सन्निकृष्ट तथा विप्रकृष्ट

मिश्रित तर्कवाक्य के दो उपविभाग किये जा सकते है, यथा—सन्निकृष्ट (Copulative) तथा विप्रकृष्ट (Remotive)। 'सन्निकृष्ट' उस मिश्रित तर्कवाक्य को कहते है जिसमे एक से अधिक स्वीकारात्मक तर्कवाक्य हो और 'विप्रकृष्ट' उस मिश्रित तर्कवाक्य को कहते हैं जिसमे एक से अधिक निषेधात्मक तर्कवाक्य हो।

(ख) सम्बन्धानुसार (according to Relation) विभाग ·—निरपेक्ष (Categorical) और सापेक्ष (Conditional)।

निरपेक्ष= बिना किसी शर्त्त के

सम्बन्ध (Relation) अर्थात् स्वीकृति और निषेध के स्वरूप के अनुसार तर्कवाक्यो को निरपेक्ष (Categorical) तथा सापेक्ष (Conditional) मे बाँटा जाता है। **निरपेक्ष तर्कवाक्य उसे कहते है जिसमें उद्देश्य और विधेय का सम्बन्ध बिना किसी उपाधि या शर्त्त (Condition) के हो; जिसमें विधेय उद्देश्य को पूर्ण रूप से स्वीकार या अस्वीकार करता हो।** यथा—'सब मनुष्य मर्त्य हे।' 'कोई भी मनुष्य पूर्ण नही है।' 'कुछ विद्यार्थी चतुर है।' 'कुछ मनुष्य चतुर नही है।' इत्यादि।

इन सब उदाहरणो मे उद्देश्य और विधेय के सम्बन्ध मे किसी भी प्रकार की शर्त्त नही है। **सापेक्ष (Conditional) तर्कवाक्य उसे कहते है जिसमें उद्देश्य और विधेय के सम्बन्ध की स्वीकृति या निषेध कुछ शर्त्तो (conditions) के साथ किया जाय।** यथा—'यदि वह आवे, तो मै जाऊँ।' 'यदि मै धनी होता, तो मै अधिक सुखी होता।' 'वह या तो कालेज जायगा, या घर पर ही रुका रहेगा।' इत्यादि। इन सब दशाओ मे उद्देश्य और विधेय का सम्बन्ध कुछ शर्त्तो पर निर्भर है, जिन्हे मान लेने पर ही वह सम्बन्ध लागू हो सकता है।

सापेक्ष= कुछ शर्त्तो पर निर्भर

सापेक्ष (Conditional) तर्कवाक्य दो प्रकार के होते है, यथा—**हेतुफलाश्रित** (Hypothetical) तर्कवाक्य तथा **वैकल्पिक** (Disjunctive) तर्कवाक्य।

दो प्रकार के सापेक्ष तर्कवाक्य

हेतुफलाश्रित (Hypothetical) तर्कवाक्य उस सापेक्ष तर्कवाक्य को कहते है, जिसमें शर्त 'यदि' या इसके समानार्थी शब्द द्वारा व्यक्त की गई हो। यथा—'यदि वह आवे, तो मै जाऊँगा।' 'यदि वर्षा हुई, तो वह नही आयेगा।' 'जहाँ सकल्प है, वहाँ राह है।' 'यदि वह मुझसे मिलता, तो वह तुरन्त मुझे पहचान लेता।' 'यदि वह आ जाता, तो मै चला गया होता।' हेतुफलाश्रित तर्कवाक्य के दो भाग होते है—**पूर्वांग** (antecedent) और **उत्तरांग** (consequent)। हेतुफलाश्रित तर्कवाक्य का **पूर्वांग** (antecedent) वह भाग है, जिसमे शर्त (condition) होती है और **उत्तरांग** (consequent) वह भाग है, जिसमे वर्णन होता है। उपर्युक्त दो उदाहरणो मे 'यदि वह आवे' और 'यदि वर्षा हुई' पूर्वांग है तथा 'मै जाऊँगा' तथा 'वह नही आयेगा' उत्तरांग है। यदि हेतुफलाश्रित तर्कवाक्य शुद्ध तार्किक रूप मे व्यक्त हो, तो शर्त वाला भाग वर्णन वाले भाग से सदा पहले आता है। इसीलिए

हेतुफलाश्रित 'यदि......तो'

शर्तवाला भाग 'पूर्वांग (=पहले आनेवाला भाग) और स्वीकृति या निषेध व्यक्त करनेवाला भाग 'उत्तरांग' (=बाद मे आनेवाला भाग) कहलाता है। अत यह हेतुफलाश्रित तर्कवाक्य 'मै जाऊँगा, यदि वह आवे,' शुद्ध तार्किक रूप मे नही है क्योकि पूर्वांग 'यदि वह आवे' उत्तरांग 'मै जाऊँगा' के पहले नही आया है। उसे तार्किक रूप मे व्यक्त करने पर वह इस प्रकार हो जायेगा— 'यदि वह आवे, तो मै जाऊँगा।'

वैकल्पिक "या तो...या"

वैकल्पिक तर्कवाक्य (Disjunctive Proposition) **उस सापेक्ष तर्कवाक्य को कहते है जो कि दो विकल्प प्रस्तुत करता है और वे दोनो विकल्प 'या तो .....या' से पृथक् किये होते है।** अत वैकल्पिक तर्कवाक्य का आकार इस प्रकार होता है: "या तो वह आयेगा या मै जाऊँगा।" "या तो वह साधु है, या वह ठग है।" इत्यादि।

(ग) गुणानुसार (according to Quality) विभाग: स्वीकारात्मक (Affirmative) और निषेधात्मक (Negative)।

स्वीकारात्मक और निषेधात्मक तर्कवाक्य

गुण (Quality) के अनुसार तर्कवाक्य **स्वीकारात्मक** (Affirmative) और **निषेधात्मक** (Negative) मे बाँटे जाते है। **स्वीकारात्मक**(Affirmative) **तर्कवाक्य उसे कहते है, जिसमें विधेय उद्देश्य को स्वीकार या समर्थन करता है।** यथा—'मनुष्य मर्त्य है।' **निषेधात्मक** (Negative) **तर्कवाक्य उसे कहते है जिसमें विधेय उद्देश्य को अस्वीकार करता है।** यथा—"मनुष्य पूर्ण नही है।"

स्वीकारात्मक तर्कवाक्य मे, सयोजक स्वीकारात्मक होता है, अर्थात् उसमे निषेध का चिह्न नही होता। परन्तु निषेधात्मक तर्कवाक्य मे सयोजक निषेधात्मक होता है, अर्थात् उसमे निषेध

का चिह्न होता है। यथा—'सब मनुष्य मर्त्य हैं'—स्वीकारात्मक तर्कवाक्य है तथा 'कुछ मनुष्य चतुर नही हैं'—निषेधात्मक है। जब निरपेक्ष निषेधात्मक तर्कवाक्य को व्यक्त करते हैं, तो वह इस प्रकार हो जाता है—"कोई भी 'उ' 'वि' नही है।" "कोई भी मनुष्य पूर्ण नही है।"

कुछ न्यायशास्त्रियो ने सब निषेधात्मक तर्कवाक्यो मे निषेध के चिह्न को विधेय का भाग मानकर उन्हे स्वीकारात्मक रूप देने का प्रयत्न किया है। अत यह न कहकर कि "कोई भी मनुष्य पूर्ण नही है", वे कहेगे कि "सब मनुष्य अपूर्ण है।" इस प्रकार निषेध का चिह्न विधेय मे समाविष्ट कर दिया गया है। ऐसे तर्कवाक्यो को **अपरिमित तर्कवाक्य** (Infinite Propositions) कहते हैं। अत अपरिमित तर्कवाक्यो मे सयोजक स्वीकारात्मक होता है, इसलिए उनका आकार स्वीकारात्मक होता है, यद्यपि उनका बल मुख्यत: निषेधात्मक ही होता है। 'स्वीकृति' तथा 'निषेध' मूल रूप मे भिन्न होते हैं, अत स्वीकारात्मक तथा निषेधात्मक तर्कवाक्यो का अन्तर मानना ही उचित है।

क्या सब निषेधात्मक तर्कवाक्य स्वीकारात्मक बनाए जा सकते है ?

टिप्पणी १ : हेतुफलाश्रित (Hypothetical) तर्कवाक्यो का गुण (Quality)।

हेतुफलाश्रित (Hypothetical) **तर्कवाक्यो का गुण उनके उत्तरांग** (Consequent) **के गुण पर निर्भर** रहता है। पूर्वांग के गुण से उस तर्कवाक्य का गुण निश्चित नही किया जाता, क्योंकि पूर्वांग मे तो केवल शर्त रहती है, उसमे सम्बन्ध का वर्णन नही होता। अत यदि उत्तरांग स्वीकारात्मक है, तो हेतुफलाश्रित तर्कवाक्य भी स्वीकारात्मक होगा, और यदि उत्तरांग

हेतुफलाश्रित तर्कवाक्यो का गुण उनके उत्तरांगो के गुण पर आश्रित रहता है।

निपेधात्मक है, तो हेतुफलाश्रित-तर्कवाक्य भी निपेधात्मक होगा। यथा :—

स्वीकारात्मक हेतुफलाश्रित	निषेधात्मक हेतुफलाश्रित
(१) यदि 'क' 'ख' है तो 'ग' 'घ' है।	(१) यदि 'क' 'ख' है, तो 'ग' 'घ' नही है।
(२) यदि 'क' 'ख' नही है तो 'ग' 'घ' है।	(२) यदि 'क' 'ख' नही है, तो 'ग' 'घ' नही है।
(३) यदि वह आता है तो मै जाऊँगा।	(३) यदि वह आता है, तो मै नही जाऊँगा।
(४) यदि वर्षा नही होगी, तो मै जाऊँगा।	(४) यदि वर्षा नही होगी, तो पृथ्वी नही भीगेगी।

कुछ तर्कशास्त्री ऐसे भी है जो सब हेतुफलाश्रित तर्कवाक्यो को स्वीकारात्मक मानते है। उनके अनुसार, हेतुफलाश्रित तर्कवाक्य यह व्यक्त करते है कि उत्तरांग और पूर्वांग मे पारस्परिक सम्बन्ध है। परन्तु इस दृष्टिकोण से व्यर्थ की जटिलता वढती है।

टिप्पणी २. वैकल्पिक तर्कवाक्यों (Disjunctive Propositions) का गुण (Quality)।

गुण का भेद नहीं होता।

वैकल्पिक तर्कवाक्यो (Disjunctive Propositions) मे गुण (Quality) का भेद नही होता क्योकि उनका निषेधात्मक आकार ही नही होता। अत. **सब वैकल्पिक तर्कवाक्य स्वीकारात्मक होते है**। यह तर्कवाक्य कि " 'क' न तो 'ख' है और न 'ग' है"—वैकल्पिक तर्कवाक्य नही है क्योकि उसमे विकल्प का विधान न होकर केवल 'दुहरा-निषेध' (double negation) मात्र है, यथा " 'क' 'ख' नही है" तथा " 'क' 'ग' नही है।" यह तो विप्रकृष्ट (Remotive) प्रकार का सयुक्त निरपेक्ष तर्कवाक्य है।

(घ) परिमाण (Quantity) के अनुसार विभाग—सार्वलौकिक या सामान्य (Universal) तथा विशेष (Particular)।

परिमाण (Quantity) के अनुसार तर्कवाक्यो का विभाग सार्वलौकिक या सामान्य (Universal) तथा विशेष (Particular) में किया जाता है। सार्वलौकिक या सामान्य (Universal) तर्कवाक्य उसे कहते है जिसमें विधेय (predicate) सम्पूर्ण उद्देश्य (subject) के लिए स्वीकार अथवा अस्वीकार किया जाय; यथा—"सब मनुष्य मर्त्य है", "कोई भी मनुष्य पूर्ण नही है।" विशेष तर्कवाक्य (Particular Proposition) उसे कहते है जिसमें विधेय उद्देश्य के एक अंश को ही स्वीकार या अस्वीकार करता हो। यथा—"कुछ मनुष्य चतुर है।", "कुछ मनुष्य ईमानदार नही है।"

सार्वलौकिक (सामान्य) और विशेष तर्कवाक्य

साधारणतया तर्कशास्त्र मे परिमाण (Quantity) के चिह्न निम्नलिखित है सार्वलौकिक (सामान्य) के लिए 'सब', 'प्रत्येक', 'कोई भी', 'जो कुछ भी', 'जब कभी भी'। और विशेष के लिए · 'कुछ'। निषेधात्मक तर्कवाक्यो मे निषेध का चिह्न (अर्थात् "नही") जुडा रहता है।

परिमाण के चिह्न

तर्कशास्त्र मे "कुछ" से जो अर्थ होता है, वह साधारणतया समझे जानेवाले अर्थ से भिन्न होता है —

तर्कशास्त्र में 'कुछ' का अर्थ

(१) साधारण बोलचाल मे "कुछ" से तात्पर्य 'सब' या पूर्ण के एक छोटे अश से होता है। तर्कशास्त्र मे 'कुछ' का अर्थ कोई भी अनिश्चित परिमाण (indefinite quantity) होता है। अत यदि किसी कक्षा मे एक सौ विद्यार्थी है और उनमे से केवल एक या दो ने ही अपना पाठ याद किया है, तो हम तर्कशास्त्र की भाषा मे कहेगे कि "कुछ विद्यार्थियो ने अपना पाठ याद किया

है।" और यदि सौ मे से निन्यानवे विद्यार्थियो ने भी अपना पाठ याद किया हो तो इस बात को व्यक्त करने का भी यही तरीका है कि "कुछ विद्यार्थियो ने अपना पाठ याद किया है।" अतः **तर्कशास्त्र में "कुछ" का अर्थ "कम से कम एक" होता है।**

'कुछ' = कम से कम एक

(२) यह बात भी ज्ञातव्य है कि तर्कशास्त्र में जब हम "कुछ" शब्द का प्रयोग करते है तो "सब" के सम्बन्ध मे कोई बात नही कहते। साधारण बोलचाल की भाषा मे जब हम कोई वक्तव्य किसी कक्षा के कुछ व्यक्तियो के बारे मे देते है तो हमारा अभिप्राय यह होता है कि इसका विरुद्ध वक्तव्य शेष के बारे मे सही होगा। उदाहरणार्थ, बोलचाल मे जब हम कहते है कि "कुछ विद्यार्थियो ने अपना पाठ याद कर लिया है", तो हम मानो यह समझते है कि "शेष विद्यार्थियो ने अपना पाठ तैयार नही किया है।" परन्तु तर्कशास्त्र मे ऐसा कोई सकेत या सुझाव नही होता। जब हम 'कुछ' के बारे मे कोई बात कहते है तो 'शेष' के बारे मे कुछ सकेत नही किया जाता। साधारण भाषा मे 'कुछ' से तात्पर्य 'केवल कुछ' होता है, परन्तु तर्कशास्त्र मे, 'कुछ' से तात्पर्य 'कम से कम कुछ' होता है—वह 'सब' भी हो सकता है और नही भी। अत **तर्कशास्त्र में "कुछ" अनिवार्यतः "सब" का व्यावर्तक नहीं है, परन्तु वह "सब" के सम्बन्ध में कोई संकेत नही करता।**

'कुछ' = कम से कम कुछ

निरपेक्ष तर्कवाक्यो का 'परिमाण' उद्देश्य के परिमाण से निर्धारित होता है। यदि उद्देश्य अपने पूर्ण विस्तार (extent) मे लिया जाता है तो तर्कवाक्य सार्वलौकिक या सामान्य (Universal) होता है। और यदि उद्देश्य अपने आंशिक विस्तार मे लिया जाता है, तो तर्कवाक्य विशेष (Particular) होता है। अत सार्वलौकिक या सामान्य तर्कवाक्यो का उद्देश्य व्याप्त (distributed) होता है, तथा विशेष तर्कवाक्यो का उद्देश्य अव्याप्त (undistributed) होता है।

निरपेक्ष तर्कवाक्यो का परिमाण उद्देश्य के परिमाण से निर्धारित होता है।

साधारण भाषा में हम सर्वदा तर्कवाक्य के परिमाण को व्यक्त नहीं करते। यदि परिमाण स्पष्टतया व्यक्त नहीं होता अथवा अनिश्चित होता है, तो ऐसे तर्कवाक्यों को अनिश्चित तर्कवाक्य (Indesignate or Indefinite Propositions) कहते हैं। यथा—'मनुष्य [illegible] हैं', 'पुस्तकें लाभदायक हैं।' इत्यादि। जिन तर्कवाक्यों का परिमाण व्यक्त होता है उन्हें निश्चित तर्कवाक्य (Predesignate) कहते हैं। वास्तव में अनिश्चित तर्कवाक्यों का तर्कशास्त्र में कोई स्थान नहीं है क्योंकि तर्कवाक्य अस्पष्ट नहीं होना चाहिए और उसका निश्चित अर्थ होना चाहिए। इस दृष्टिकोण से, तर्कशास्त्र में, सब अनिश्चित तर्कवाक्य 'विशेष तर्कवाक्य' समझे जाने चाहिए।

अनिश्चित तथा निश्चित तर्कवाक्य

टिप्पणी १ विशिष्ट तर्कवाक्य (Singular Proposition)।

जब किसी तर्कवाक्य का उद्देश्य एकवाचक या विशिष्ट (Singular) होता है तो उसे विशिष्ट तर्कवाक्य (Singular Proposition) कहते हैं। कुछ तर्कशास्त्रियों ने इसको 'सामान्य' (Universal) और 'विशेष' (Particular) तर्कवाक्यों से भिन्न-तर्कवाक्य परिमाण के अनुसार माना है, परन्तु ऐसा विभाग उचित नहीं है। विशिष्ट तर्कवाक्य (Singular Proposition) में जब उद्देश्य निश्चित व्यक्ति या व्यक्तिसमूह का निर्देश करता हो तो उसे सार्वलौकिक या सामान्य मानना चाहिए, यथा—'प्लेटो एक महान् दार्शनिक है,' 'यह मनुष्य शिक्षित है।' इत्यादि। ये तर्कवाक्य सार्वलौकिक या सामान्य (Universal) हैं क्योंकि इनका उद्देश्य पूर्ण विस्तार के अर्थ में है तथा विधेय उद्देश्य के पूर्ण विस्तार को स्वीकार करते हैं। यदि विशिष्ट तर्कवाक्य का उद्देश्य किसी निश्चित व्यक्ति या व्यक्तिसमूह का निर्देश

'विशिष्ट' तर्कवाक्यों का सार्वलौकिक या विशेष होना उद्देश्य के क्रमशः निश्चित विशिष्ट पद होने या न होने पर निर्भर है।

नहीं करता, तो वह तर्कवाक्य **'विशेष'** (Particular) होता है, यथा—"एक व्यक्ति यहाँ है", "एक धातु द्रव है।"

टिप्पणी २ : सार्वलौकिक या सामान्य (Universal) तर्कवाक्य।

सार्वलौकिक या सामान्य (Universal) तर्कवाक्य उसे कहते है जिसमे विधेय पूरे उद्देश्य को स्वीकार या अस्वीकार करता है, अर्थात् उद्देश्य पूर्ण 'निर्देश' (Denotation) में प्रयुक्त होता है। जब उद्देश्य एक सामान्य पद होता है तो हम उसमे 'सब' या 'कोई भी नही' शब्दों से अपने भाव का संकेत करते हैं। परन्तु यदि उद्देश्य विशिष्ट पद (Singular term) हो तो उसे निश्चित बनाने के लिए हम उसे पूर्ण विस्तार में लेते हैं। सार्वलौकिक तर्कवाक्यो के उदाहरण निम्नलिखित है :—

सार्वलौकिक (सामान्य) स्वीकृति	**सार्वलौकिक निषेध**
(१) सब मनुष्य मर्त्य है।	(१) कोई मनुष्य अमर नहीं है।
(२) प्लेटो एक दार्शनिक है।	(२) प्लेटो रोमनिवासी नहीं है।
(३) यह मनुष्य विद्वान है।	(३) यह मनुष्य मूर्ख नहीं है।

टिप्पणी ३ : हेतुफलाश्रित तर्कवाक्यों का परिमाण

हेतुफलाश्रित तर्कवाक्यों का परिमाण पूर्वांगों पर निर्भर होता है।

हेतुफलाश्रित (Hypothetical) तर्कवाक्यों का परिमाण (quantity) उनके पूर्वांगों (antecedents) के परिमाण पर निर्भर रहता है। हेतुफलाश्रित तर्कवाक्य **सार्वलौकिक** या सामान्य तब होता है जब कि, पूर्वांग सर्वदा और प्रत्येक दशा मे उत्तरांग में फलित होता है। यथा—"यदि 'क' 'ख' है, तो 'ग' 'घ' है।" या और भी स्पष्टतया, "यदि सब दशाओ मे 'क' 'ख' है तो 'ग' 'घ' है।" हेतुफलाश्रित तर्कवाक्य **विशेष** तब होता है जब पूर्वांग से उत्तरांग केवल कुछ दशाओं में या कम से कम एक दशा मे, फलित होता है। यथा—"यदि कुछ दशाओं मे, 'क' 'ख' है तो 'ग' 'घ' है।" हेतुफलाश्रित तर्क-

वाक्यों में यदि पूर्वांग के साथ परिमाण का कोई चिह्न नहीं होता, तो वह सार्वलौकिक या सामान्य समझा जाता है।

टिप्पणी ४ वैकल्पिक (Disjunctive) तर्कवाक्यों का परिमाण।

वैकल्पिक तर्कवाक्य

वैकल्पिक तर्कवाक्य सार्वलौकिक (सामान्य) अथवा विशेष हो सकते हैं। यथा—"सब 'क' या तो 'ख' या 'ग' है।" यह सार्वलौकिक (सामान्य) है। "कुछ 'क' या तो 'ख' या 'ग' है।" यह विशेष है। विशेष वैकल्पिक प्रभेद तर्कशास्त्र में महत्व के नहीं होते।

(ङ) विधि (Modality) के अनुसार विभाग :—
आवश्यक (Necessary), प्रतिज्ञात (Assertory) तथा संदिग्ध (Problematic)।

विधि= संभावना का अंशमान

किसी तर्कवाक्य की आस्था या विधि (Modality) विधेय के उद्देश्य को स्वीकार या अस्वीकार करने की संभावना पर नियत की जाती है। विधि (Modality) के अनुसार, तर्कवाक्यों के तीन विभाग किये गये हैं;—यथा, आवश्यक (Necessary), प्रतिज्ञात (Assertory) तथा संदिग्ध (Problematic)।

आवश्यक : —'क' अवश्य 'ख' होगा।

किसी तर्कवाक्य को 'आवश्यक' तब कहते हैं जब कि उद्देश्य और विधेय का सम्बन्ध उनके स्वभाव में ही निहित हो अर्थात् जो सार्वलौकिक रूप में अनिवार्यत सत्य हो। यथा, " 'क' अवश्य 'ख' होगा।" "त्रिभुज के तीनों कोण अवश्य ही दो समकोण के बराबर होंगे।" इत्यादि। जब उद्देश्य और विधेय का सम्बन्ध इस प्रकार का होगा कि वह अनुभव के आधार पर निर्मित किया गया हो और जो अनिवार्यता के न होते हुए भी, जहाँ तक हमारा अनुभव हो, सत्य होगा, तो ऐसे तर्कवाक्य को प्रतिज्ञात (Assertory) कहते हैं यथा—" 'क' 'ख' है।" "सब कौए काले है।" इत्यादि। संदिग्ध (Problematic)

प्रतिज्ञात : —'क' 'ख' है।

संदिग्ध : —'क' कदा-

चित् 'ख' हैं।

तर्कवाक्य उसे कहते हैं, जिसमें उद्देश्य और विधेय का सम्बन्ध वडा सदिग्ध हो अर्थात् कुछ दशाओ मे तो वह सत्य हो और कुछ दशाओ मे सत्य नही हो। यथा—" 'क' कदाचित् 'ख' हो।" "वह शायद कल आएगा।" इत्यादि।

(च) तात्पर्य (Import) के अनुसार विभाग—शाब्दिक (Verbal) तथा वास्तविक (Real) तर्कवाक्य।

शाब्दिक तर्कवाक्य में विधेय उद्देश्य के 'गुण' या गुण के अंश का वर्णन करता है।

विश्लेषणात्मक (Analytic) **या शाब्दिक** (Verbal) **तर्कवाक्य उसे कहते हैं, जिसमें विधेय** (predicate) **उद्देश्य के 'गुण'** (Connotation) **अथवा गुण के एक अंश का ही वर्णन करता हो।** यथा—"सब मनुष्य विचारशील हैं।" यहाँ पर विधेय केवल उसी बात को व्यक्त करता है, जो कि उद्देश्य मे निहित है। अत: **विश्लेषणात्मक या शाब्दिक तर्कवाक्य कोई नई सूचना नही देता।** उसे **विश्लेषणात्मक** इसलिए कहते हैं, क्योकि उसमे उद्देश्य का विश्लेषण-मात्र होता है। ऐसे तर्कवाक्यो को **'अनिवार्य'** (Essentiaal) अथवा **व्याख्यानात्मक** (Explicative) भी कहते हैं।

वास्तविक तर्कवाक्य मे विधेय एक नये तथ्य को व्यक्त करता है, जो उद्देश्य से स्पष्ट नही होता।

संश्लेषणात्मक (Synthetic) **या वास्तविक** (Real) **तर्कवाक्य उसे कहते हैं जिसमे विधेय एक नये तथ्य को व्यक्त करता है जो कि उद्देश्य के विश्लेषण करने पर स्पष्ट नहीं होता।** अत: **वास्तविक तर्कवाक्य एक ऐसी नवीन सूचना देता है जो कि** उद्देश्य के 'गुण' (Connotation) मे निहित नही होती। ऐसे तर्कवाक्यो को **'आकस्मिक'** (Accidental) या **'विस्तारक'** (Ampliative) भी कहते हैं। उदाहरणार्थ, "मनुष्य एक हँसनेवाला प्राणी है।" "कुत्ता एक पालतू जानवर है।"

इस तर्कवाक्यों के विभाग की

शाब्दिक (Verbal) **तर्कवाक्य में विधेय, उद्देश्य के सम्बन्ध में या तो जाति** (Genus) **अथवा व्यावर्तक गुण** (Differentia) होता है। उदाहरणार्थ "सब मनुष्य जीव हैं" मे विधेय

उद्देश्य के सम्बन्ध मे 'जाति' (Genus) है। और "सब मनुष्य विचारशील है' मे, विधेय उद्देश्य के सम्बन्ध मे 'व्यावर्तक गुण' (Differentia) है।

वाच्यो से तुलना

वास्तविक तर्कवाक्य मे विधेय उद्देश्य के सम्बन्ध में या तो सहजगुण (Proprium.) अथवा आकस्मिक गुण (Accident) होता है। उदाहरणार्थ, "मनुष्य एक बुद्धिमान जीव है।" "मनुष्य एक हसनेवाला प्राणी है।' इत्यादि।

अब हमारे सामने प्रश्न यह है कि जिस तर्कवाक्य का विधेय उद्देश्य के सम्बन्ध मे 'उपजाति' (Species) होगा, वह शाब्दिक (Verbal) होगा अथवा वास्तविक (Real) ? यह बात ज्ञातव्य है कि यदि तर्कवाक्य सामान्य या सार्वलौकिक (Universal) होगा तो विधेय उद्देश्य की उपजाति (Species) नही हो सकता। परन्तु यदि तर्कवाक्य विशेष (Particular) हो तो विधेय उद्देश्य की उपजाति हो सकता है। यथा—"कुछ जन्तु मनुष्य है।" वेल्टन ने (Welton) इस प्रश्न का उत्तर निम्नलिखित प्रकार से दिया है—"वास्तव मे किसी व्यक्ति का विधेय ही उपजाति हो सकता है।" यहाँ 'उपजाति' को 'जाति' का सापेक्ष पद नही माना है, प्रत्युत उसे 'व्यक्ति' से असम्बद्ध किया गया है। इस दृष्टिकोण के अनुसार दो सभावनाये हो सकती है—या तो उस व्यक्ति का निर्देश व्यक्तिवाचक नाम (Proper Name) से हुआ हो अथवा सार्थक विशिष्ट नाम (Significant Singular Name) से। यदि व्यक्ति का निर्देश व्यक्तिवाचक नाम से हुआ हो, तो वह तर्कवाक्य वास्तविक (Real) है। यथा—'सुकरात एक मनुष्य है।' 'एवरेस्ट एक पर्वत है।' इत्यादि। क्योकि व्यक्तिवाचक नामो का 'गुण' (Connotation) नही होता अत उपर्युक्त उदाहरणो मे विधेय कोई नई सूचना अवश्य देते है। परन्तु यदि उस व्यक्ति

का निर्देश सार्थक विशिष्ट नाम (Significant Singular Name) से हो, तो वह तर्कवाक्य प्राय. शाब्दिक (Verbal) होता है। यथा—"यह महान् ग्रीस-निवासी दार्शनिक एक मनुष्य है।" "ससार का सर्वोच्च पर्वत एक पर्वत है।" इन उदाहरणो मे विधेय 'मनुष्य' तथा 'पर्वत' का गुण (Connotation) उद्देश्य 'दार्शनिक' तथा 'सर्वोच्च पर्वत' मे ही निहित है।

गुण और परिमाण के अनुसार विभाग

§३. तर्कवाक्यो का सरलीकरण (Simplification) 'गुण और परिमाण' के अनुसार तर्कवाक्यो के आकार : "आ" (A), "ई" (I), "ए" (E), "ओ" (O)।

परिमाण (Quantity) के अनुसार तर्कवाक्यो का विभाग सार्वलौकिक या सामान्य (Universal) तथा विशेप (Particular) मे होता है। ये दोनो प्रकार के तर्कवाक्य पुनः स्वीकारात्मक (Affirmative) तथा निपेधात्मक (Negative) मे बाँटे जाते है। यथा—

तर्कवाक्य (Proposition)

- सार्वलौकिक (सामान्य) (Universal)
  - स्वीकारात्मक (Affirmative) — सब 'उ' 'वि' है। सब मनुष्य मर्त्य है।
  - निपेधात्मक (Negative) — कोई भी 'उ' 'वि' नही है। 'कोई भी मनुष्य पूर्ण नही है।
- विशेप (Particular)
  - स्वीकारात्मक (Affirmative) — कुछ 'उ' 'वि' है। कुछ मनुष्य ईमानदार है।
  - निषेधात्मक (Negative) — कुछ 'उ' 'वि' नही है। कुछ मनुष्य ईमानदार नही है।
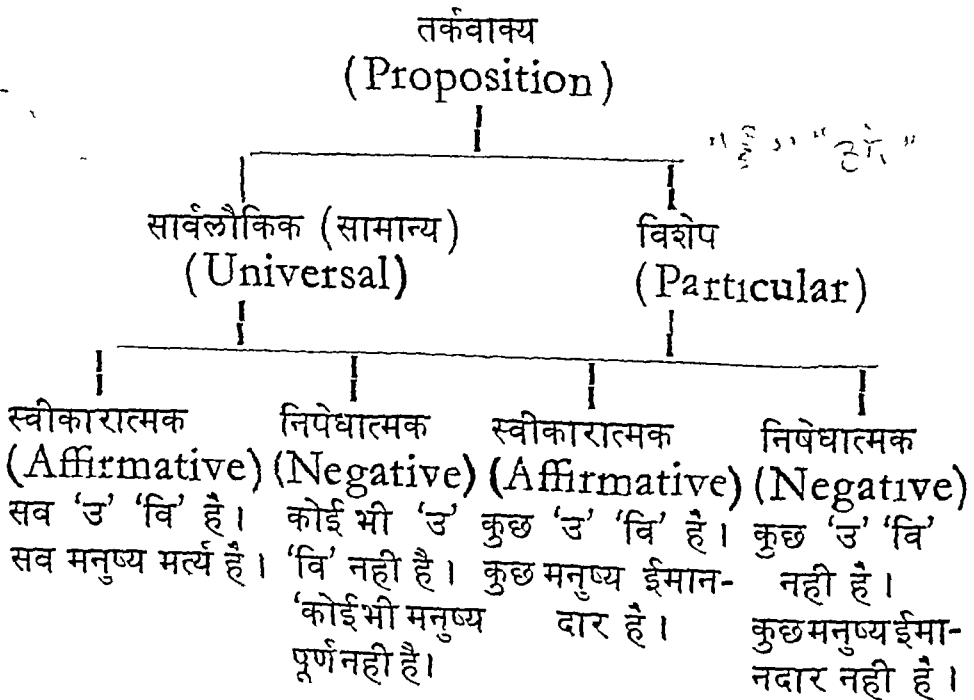
सार्वलौकिक-स्वीकारात्मक-तर्कवाक्य (Universal Affirmative Proposition) को "आ" (A) चिह्न से व्यक्त किया जाता है सार्वलौकिक-निषेधात्मक तर्कवाक्य (Universal Negative Proposition) को "ए" (E) चिह्न से, विशेष स्वीकारात्मक तर्कवाक्य (Particular Affirmative Proposition) को "ई" (I) चिह्न से तथा विशेष निषेधात्मक तर्कवाक्य (Particular Negative Proposition) को "ओ" (O) चिह्न से व्यक्त किया जाता है।

§४ वाक्यों का तार्किक आकार में रूपान्तर

'आ' (A), 'ए' (E), 'ई' (I) और 'ओ' (O) ही तर्कवाक्यों के चार प्रकार हैं जो तर्कशास्त्र में मान्य हैं। और यदि कोई तर्कवाक्य शुद्ध तार्किक आकार में न दिया गया हो तो उसका इनमें से किसी एक आकार में रूपान्तरण करना होता है। अब हम कुछ अनियमित आकार के वाक्यों का परीक्षण करेंगे तथा उनके तार्किक आकार में रूपान्तरण की विधि का अध्ययन करेंगे। इस सम्बन्ध में यह बात ज्ञातव्य है कि प्रत्येक दशा में ऐसा करते समय हम तर्कवाक्य के केवल आकार पर ही ध्यान नहीं देते परन्तु उसके अर्थ पर ही ध्यान देते हैं।

(१) संयोजक (Copula) —अनियमित वाक्यों को तार्किक आकार में लाने के लिए सबसे पहले हमें उस तर्कवाक्य के संयोजक (Copula) का पता लगाना चाहिए। हमें ज्ञात है कि संयोजक 'होना' क्रिया के वर्तमान काल में निषेधात्मक अव्यय 'नहीं' के बिना या उसके साथ में हो सकता है। प्रायः ऐसा होता है कि संयोजक अलग नहीं प्रयुक्त होता परन्तु विधेय की मुख्य क्रिया के साथ जुड़ा रहता है। इस प्रकार के वाक्यों में यह आवश्यक है कि संयोजक को अलग निकाल लेना चाहिए ताकि वाक्य के गुण और

(१) संयोजक पृथक व्यक्त होना चाहिए

परिमाण निश्चित किये जा सके। यथा—'गुणवानो का आदर होना चाहिए।' इस वाक्य का तार्किक आकार इस प्रकार होगा—'सब गुणवान जिनका आदर होना चाहिए, मनुष्य है।'

कभी-कभी निषेध का चिह्न विधेय के साथ लगा रहता है। उसे अलग कर देना चाहिए। जैसे—'उसे सफलता नही मिल सकती।' इसका तार्किक आकार यह होगा—'वह एक मनुष्य नही है, जिसे सफलता मिल सकती है।' इसी प्रकार, 'अकर्मण्य जीवन मे सफल नही होते' का रूपान्तरण यह होगा—'वे अकर्मण्य मनुष्य नही है जो सफल हो सकते है।'

(२) उद्देश्य सबसे पहले रखना चाहिए

(२) कभी-कभी बल देने के लिए, और प्राय. कविता मे, **विधेय को उद्देश्य के पहले रख देते है**। यथा—'सफल होते है कर्मवीर।' इसका तार्किक आकार यह होगा—'कर्मवीर सफल होते है।' इसी प्रकार, 'था कोलाहल अधिक वहाँ' का तार्किक रूपान्तर 'कोलाहल एक वस्तु है, जो वहाँ अधिक था' होगा।

(३) उद्देश्य के सापेक्ष उपवाक्य को विधेय नही समझना चाहिए

(३) कभी-कभी उद्देश्य या विधेय मे भ्रम हो जाता है, जबकि उद्देश्य की विशेषता बतलानेवाला एक सम्बन्ध-वाक्य होता है, जो वाक्य के अन्त मे आता है। यथा—"वह क्या जाने पीर पराई, जिसके पैर न फटी बिवाई।" यहाँ सम्बन्ध-बोधक वाक्य 'जिसके . बिवाई', 'वह' की विशेषता बतलाता है। इसलिए इसका रूपान्तर इस प्रकार करना चाहिए—"वे सब मनुष्य जिनकी बिवाइयाँ नही फटी है, मनुष्य है जो दूसरे की पीर का अनुभव नही करते।" यह "आ"—तर्कवाक्य (A Proposition) है।

(४) 'सब' .....इत्यादि निषेध चिह्न के बिना 'आ' है।

(४) (क) वे सब तर्कवाक्य जो **'सब', 'सभी', 'हरएक', 'सबकोई', 'प्रत्येक', 'कुल', 'सब के सब', 'सारे', 'सदा', 'सदैव', 'सर्वदा', 'निश्चय ही', 'अवश्य ही'** आदि शब्दो से प्रारम्भ होते है तथा उनके संग निषेध का चिह्न नही होता, उन्हे "आ" (A)-

तर्कवाक्य (अर्थात् सामान्य स्वीकारात्मक) समझना चाहिए।
यथा—

(१) सब मनुष्य मर्त्य हैं। (आ)
(२) सभी बात [illegible] हैं। (आ)
(३) हर एक मनुष्य गलती करता है। (=सब गलती करते हैं) (आ)
(४) सब आदमी हँस रहे हैं। (=सब हँस रहे हैं) (आ)
(५) प्रत्येक दाने का मूल्य है। (=सब दाने मूल्यवान हैं) (आ)
(६) कुल विद्यार्थी पढ़ते हैं। (=सब विद्यार्थी पढ़ते हैं) (आ)
(७) इस विद्यालय के सब के सब विद्यार्थी भले हैं। (=इस विद्यालय के सब विद्यार्थी भले हैं) (आ)
(८) सारे तारे डूब गए (=सब तारे डूब गए हैं) (आ)
(९) धर्मात्मा सदा सुखी रहते हैं (=सब धर्मात्मा सुखी हैं) (आ)
(१०) मुर्गा सदैव प्रातःकाल जागता है (=सब मुर्गे प्रातःकाल जागनेवाले हैं) (आ)
(११) भले लोग सर्वदा सत्य बोलते हैं। (=सब भले लोग सच बोलते हैं) (आ)
(१२) निर्धन निश्चय ही दुखी होता है। (=सब निर्धन दुखी हैं) (आ)
(१३) कौआ अवश्य ही काला होता है। (=सब कौए काले होते हैं। (आ)

(ख) जिन तर्कवाक्यों मे उपर्युक्त शब्दो के साथ ही निषेध का चिह्न भी हो वे 'ओ'-तर्कवाक्य (O Proposition) (अर्थात् विशेष निषेधात्मक) समझे जाते हैं। यथा—

और निषेध के साथ 'ओ' होता है।

(१) सब चमकनेवाली वस्तुएँ सोना नही होती हैं। (=कुछ चमकनेवाली वस्तुएँ सोना नहीं होती हैं) (ओ)

(२) सभी मनुष्य बुरे नही होते। (=कुछ मनुष्य बुरे नहीं है।) (ओ)

(३) हर एक मनुष्य सुखी नही है। (=कुछ मनुष्य सुखी नही है।) (ओ)

(४) सब कोई नेता नही बन सकते। (=कुछ मनुष्य नेता नहीं बन सकते।) (ओ)

(५) प्रत्येक व्यक्ति चतुर नही है। (=कुछ व्यक्ति चतुर नही है।) (ओ)

(६) कुल विद्यार्थी पास नही होते। (=कुछ विद्यार्थी पास नहीं होते। ।) (ओ)

(७) सबके सब लोग विद्वान नही है। (=कुछ लोग विद्वान नहीं है।) (ओ)

(८) सारी गाये दूध नही देती। (=कुछ गाये दूध देने वाली नही है।) (ओ)

(९) बादल सदा नही बरसते। (=कुछ बादल बरसते नही है।) (ओ)

(१०) वकील सदैव सत्य नही बोलते। (=कुछ वकील सत्य बोलनेवाले नही है।) (ओ)

(११) जो गरजता है वह सर्वदा नही बरसता। (=कुछ दशाओ मे जो गरजता है वह बरसता नही है।) (ओ)

(१२) साँप निश्चय ही विषैला नही होता। (=कुछ साँप ज़हरीले नही है।) (ओ)

(१३) काबुल के कुछ पशु अवश्य हो घोडे नही है। (=काबुल के कुछ पशु घोडे नही है।) (ओ)

(५) अधिकांश= 'कुछ'

(५) जो वाक्य 'बहुत से', 'थोड़े से', 'कुछ', 'अनेक', 'लगभग सब', 'एक को छोड़कर सब', 'कई' शब्दो से प्रारम्भ होते है और साथ मे यदि निषेध का चिह्न हो, तो वे **विशेष**

निषेधात्मक (ओ) होते है, और यदि साथ मे निषेध का चिह्न न हो, तो वे विशेष स्वीकारात्मक (ई) होते है। साधारण भाषा मे 'बहुत से' शब्द से आशय 'आधे से अधिक' होता है, परन्तु तर्कशास्त्र मे केवल सार्वलौकिक सामान्य तथा 'विशेष ही मान्य होते है, अतः कोई भी अपरिमित परिमाण "कुछ" शब्द के द्वारा व्यक्त होता है। उदाहरणार्थ,

(१) सभा मे बहुत से सदस्य उपस्थित है। (=कुछ सदस्य सभा मे उपस्थित है।) (ई)

(२) थोड़े से भारतीय पारसी है। (=कुछ भारतीय पारसी है।) (ई)

(३) कुछ वृद्ध व्यक्ति अनुभवी होते है। (ई)

(४) अनेक फल खट्टे होते है। (=कुछ फल खट्टे है।) (ई)

(५) लगभग सब पक्षी घोसलो मे रहते है। (=कुछ पक्षी घोसलो मे रहते है।) (ई)

(६) एक को छोड़कर सब धातुये ठोस है। (=कुछ धातुये ठोस है।) (ई)

(७) कई विद्यार्थी पास हुए (=कुछ विद्यार्थी पास हुए।) (ई)

(८) सभा मे बहुत से सदस्य उपस्थित नही है। (=कुछ सदस्य सभा मे उपस्थित नही है।) (ओ)

(९) थोड़े से फल खट्टे नही है। (=कुछ फल खट्टे नही है।) (ओ)

(१०) कुछ व्यक्ति अनुभवी नही होते। (ओ)

(११) अनेक फल मीठे नहीं होते (=कुछ फल मीठे नही होते।) (ओ)

(१२) लगभग सब लोग सो नही रहे है (=कुछ लोग सो नही रहे है।) (ओ)

(१३) एक को छोड़कर सब धातुये द्रव नहीं है। (=कुछ धातुये द्रव नही है।) (ओ)

(६) 'अधिकतर' इत्यादि—विशेष होते हैं।

(६) जिन वाक्यो मे **'अधिकतर'**, **'प्रायः'**, **'शायद'**, **'कदाचित'**, **'कभी-कभी'**, **'प्रायः सर्वदा'** इत्यादि शब्दो का प्रयोग होता है और यदि साथ मे निषेध का चिह्न भी होता है तो वे विशेष निषेधात्मक (ओ) माने जाते है, और जब साथ मे निषेध का चिह्न नही होता तो वे विशेष स्वीकारात्मक (ई) माने जाते है। यथा—

(१) पक्षी **अधिकतर** घोसलो मे रहते है। (=कुछ पक्षी घोसलो मे रहते है।) (ई)

(२) मनुष्य **अधिकतर** सुखी **नहीं** होते। (=कुछ मनुष्य सुखी नही होते।) (ओ)

(३) नीली आँखोवाली सफेद बिल्लियाँ **प्राय** बहरी होती है। (=कुछ नीली आँखोवाली सफेद बिल्लियाँ बहरी होती हैं।) (ओ) ई

(४) धर्मात्मा व्यक्ति **प्राय** सुखी होते है। (=कुछ धर्मात्मा व्यक्ति सुखी होते हैं।) (ई)

(५) भारतीय छात्र अपने गुरुओ के प्रति **प्राय.** अशिष्ट **नहीं** होते। (=कुछ भारतीय छात्र अपने गुरुओ के प्रति अशिष्ट नही होते।) (ओ)

(७) विरले ='कुछ' नहीं—निषेधात्मक

(७) **'विरले'**, **शायद हीं'**, **'मुश्किल से कोई'** आदि शब्दो से युक्त वाक्य 'विशेष' होते है और इनका बल निषेधात्मक होता है। अत इन शब्दो से प्रारम्भ होनेवाले वाक्य, **जिनमें निषेध का चिह्न नहीं होता**, वे **'ओ'** होते है और **जिनमें निषेध का चिह्न होता है**, वे **'ई'** होते है। उदाहरणार्थ —

(१) बड़े दांतों वाले लोग बिरले ही मूर्ख होते हैं।
(=बड़े दांतोंवाले कुछ लोग मूर्ख नहीं हैं।) (ओ)

(२) बिरले ही कुत्ते स्वामिभक्त नहीं होते। (=कुछ कुत्ते स्वामिभक्त हैं।) (ई)

(३) शायद ही कोई अमेरिकन निरक्षर हो। (=कुछ अमेरिकन निरक्षर नहीं हैं।) (ओ)

(४) शायद ही कोई योरोपियन आमिषभोजी न हो।
(=कुछ योरोपियन आमिषभोजी हैं।) (ई)

(५) मुश्किल से कोई काश्मीरी काला होगा।
(=कुछ काश्मीरी काले नहीं हैं।) (ओ)

(६) मुश्किल से कोई मनुष्य ऐसा होगा जिसने कचन पर हाथ न पसारा हो। (=कुछ मनुष्य कचन पर हाथ पसारनेवाले हैं।) (ई)

(८) 'केवल' इत्यादि

(८) ऐकान्तिक तर्कवाक्य (Exclusive Propositions) :—

जिन वाक्यों में उद्देश्य 'केवल', 'सिर्फ', 'अतिरिक्त कोई नहीं' शब्दों से युक्त होता है, उन्हें ऐकान्तिक तर्कवाक्य (Exclusive Propositions) कहते हैं। इन वाक्यों को भिन्न-भिन्न प्रकार से तार्किक आकार में रूपान्तरित किया जा सकता है।

ऐकान्तिक वाक्य (Exclusive Proposition) को तार्किक आकार में रूपान्तरित करने की एक विधि उसके उद्देश्य और विधेय में पारस्परिक परिवर्तन करके उसे "आ"-तर्कवाक्य में बदलना है। उदाहरणार्थ, "केवल हाई स्कूल पास विद्यार्थी ही इस कालेज के छात्र हैं।" इस वाक्य को निम्नलिखित "आ"-तर्कवाक्य में रूपान्तरित किया जा सकता है "इस कालेज के सब छात्र हाई स्कूल पास विद्यार्थी हैं।"

इस सम्वन्ध मे यह वात ज्ञातव्य है कि तर्कवाक्य के अर्थ मे कोई परिवर्तन नही हुआ है। दिए हुए वाक्य का यह अर्थ नही है कि "सव हाई स्कूल पास विद्यार्थी इस कालेज के छात्र है।" स्पष्ट है कि वे हाई स्कूल पास विद्यार्थी जिन्होने आगे पढना छोड़ दिया है, इस कालेज के छात्र नही है। परन्तु वे सव विद्यार्थी जो इस कालेज के छात्र है अनिवार्यत. हाई स्कूल पास होने चाहिए। अत गेकान्तिक वाक्यो को रूपान्तरित करते समय हम **उद्देश्य और विधेय को आपस में बदल देते है और इस प्रकार "आ"-तर्कवाक्य बना लेते है।**

-कुछ तर्कशास्त्री इस प्रकार के रूपान्तरण पर आपत्ति करते है क्योकि उनके विचार मे वाक्य को तार्किक आकार मे रूपान्तरित करते समय उद्देश्य और विधेय के स्थान नही वदलने चाहिए। उनका कहना है कि यह केवल आकार का रूपान्तरण ही नही, प्रत्युत एक प्रकार का अनुमान (inference) है, जिसे परिवर्तन (Conversion) कहते है। परन्तु यह आकार काफी प्रचलित है।

दूसरी विधि वाक्य के दिए हुए उद्देश्य को उसका विरुद्ध (Contradictory) वनाकर तथा विधेय को वैसा ही रहने देकर उसे 'ए' (E) का आकार देना है। अत यह तर्कवाक्य कि 'केवल हाई स्कूल पास विद्यार्थी ही इस कालेज के छात्र है' निम्नलिखित 'ए' (E) तर्कवाक्य मे रूपान्तरित हो सकता है—"कोई भी अ-हाई स्कूल पास विद्यार्थी इस कालेज का छात्र नही है।

एक तीसरी विधि भी है। इसमे दिए हुए तर्कवाक्य 'केवल हाई स्कूल पास विद्यार्थी ही इस कालेज के छात्र है' को निम्नलिखित 'ई' (I) तर्कवाक्य मे रूपान्तरित करते है—'कुछ हाई स्कूल पास विद्यार्थी इस कालेज के छात्र है।' इस प्रकार के विशेष आकार

की अपेक्षा पहले के दोनों सार्वलौकिक आकार अधिक श्रेष्ठ हैं।

अन्य उदाहरण :—

(१) "केवल धर्मात्मा ही वास्तव में सुखी है।" यह निम्नांकित आकारों में रूपान्तरित किया जा सकता है —

उदाहरण

(क) सब वास्तव में सुखी व्यक्ति धर्मात्मा है। (आ)

(ख) कोई भी अ-धर्मात्मा सुखी व्यक्ति नहीं है। (ए)

(ग) कुछ वास्तव में सुखी व्यक्ति धर्मात्मा है। (ई)

(२) "केवल ईमानदार व्यक्ति ही विश्वासपात्र होते हैं।" यह निम्नलिखित आकारों में रूपान्तरित किया जा सकता है —

(क) सब विश्वासपात्र (व्यक्ति) ईमानदार व्यक्ति है। (आ)

(ख) कोई भी बे-ईमानदार व्यक्ति विश्वासपात्र नहीं है। (ए)

(ग) कुछ ईमानदार व्यक्ति विश्वासपात्र है। (ई)

(९) अपवादात्मक (Exceptive) तर्कवाक्य।

(९) निश्चित और अनिश्चित अपवाद

जिन तर्कवाक्यों में विधेय कुछ अपवादों को छोड़कर पूर्ण उद्देश्य के बारे में स्वीकार किया जा सके उन्हें अपवादात्मक तर्कवाक्य (Exceptive Propositions) कहते हैं।

जिन अपवादात्मक तर्कवाक्यों में अपवाद स्पष्टतया वर्णित हो, वे सार्वलौकिक (सामान्य) समझे जाते हैं, परन्तु जिनसे अपवाद अनिश्चित होते हैं, वे विशेष समझे जाते हैं। उदाहरणार्थ —

'पारे को छोड़कर' सब धातुये ठोस हैं।'

यह शुद्ध तार्किक आकार में है और इसका आकार 'आ' (A) है क्योंकि अपवाद निश्चित होने के कारण उद्देश्य अपने सम्पूर्ण निर्देश (Denotation) में लिया गया है। परन्तु यह तर्कवाक्य कि

"एक को छोड़कर सब धातुये ठोस हैं।"

एक 'ई' (I)-तर्कवाक्य है, क्योकि अपवाद अनिश्चित होने के कारण यह निम्नलिखित तर्कवाक्य के तुल्य है

"कुछ धातुये ठोस है।"

(१०) विशिष्ट तर्कवाक्य

(१०) **विशिष्ट (Singular) तर्कवाक्य।**

जिन विशिष्ट तर्कवाक्यो के उद्देश्य निश्चित विशिष्ट पद (Definite Singular term) होते है, वे सार्वलौकिक या सामान्य (Universal) होते है और जिनके उद्देश्य अनिश्चित विशिष्ट पद (Indefinite Singular term) है, वे विशेष (Particular) समझे जाते है। यदि सयोजक के साथ निषेध का चिह्न हो तो वे निषेधात्मक और यदि निषेध का चिह्न न हो तो वे स्वीकारात्मक होते है। उदाहरणार्थ :—

(१) अलैग्जैण्डर महान् एक महान् विजेता था। (आ)

(२) अलैग्जैण्डर महान् रोमनिवासी नही था। (ए)

(३) एक ग्रीस निवासी ने भारत पर चढाई की (=कुछ ग्रीसनिवासी ने भारत पर चढाई की।) (ई)

(४) एक धातु ठोस नही है (=कुछ धातु ठोस नही है।) (ओ)

(११) प्रश्नवाचक वाक्य

(११) **प्रश्नवाचक वाक्य (Interrogative Sentences)।**

प्रश्नवाचक वाक्यो मे प्राय: उनका उत्तर भी निहित रहता है और इस प्रकार उनका रूपान्तरण बडी सरलता से हो जाता है। उदाहरणार्थ :—

"क्या कोई मनुष्य है जो देशद्रोही होगा ?"

इस प्रश्न मे यह बात निहित है कि ऐसा कोई मनुष्य नही है। इसके लिए इसका तार्किक आकार यह होगा—

"कोई ऐसा मनुष्य नही है जो देश-द्रोही होगा।" (ए)

साराश मे, यह बात द्रष्टव्य है कि असख्य प्रकार के वाक्यो को तार्किक आकार मे बदलने के नियम प्रस्तुत करना तो सभव नही

है। परन्तु इतना कह देना पर्याप्त है कि **दिए हुए वाक्य को तार्किक आकार में रूपान्तरित करने पर दिए हुए वाक्य का अर्थ नहीं बदलना चाहिए।**

§५ पदो की व्याप्ति (Distribution of Terms)

व्याप्ति

जब किसी पद को उसके पूर्ण निर्देश मे प्रयुक्त किया जाता है, तो उसे व्याप्त (distributed) कहते हैं और जब उसके निर्देश के एक अश पर ही विचार किया जाता है तो वह पद अव्याप्त (undistributed) कहलाता है। अत पद की व्याप्ति से हमारा तात्पर्य **उसके सम्पूर्ण भाग के वर्णन से है।**

अब हम तर्कवाक्यो के 'आ' (A), 'ई' (I), 'ए' (E) तथा 'ओ' (O) के विभाग पर ध्यान देगे और देखेगे कि उनके कौन-से पद व्याप्त होते हैं।

'आ' में उद्देश्य व्याप्त तथा विधेय अव्याप्त होता है।

"आ" (A) अर्थात् सार्वलौकिक स्वीकारात्मक तर्कवाक्य इस आकार का होता है· "सब 'उ' 'वि' है।" "सब मनुष्य मर्त्य है।" स्पष्ट है कि इसमें उद्देश्य अपने पूरे विस्तार मे प्रयुक्त हुआ है, अर्थात् वह व्याप्त (distributed) है और विधेय के पूर्ण निर्देश के सम्बन्ध मे कोई स्पष्ट सकेत नही है। अत **'आ' (A) तर्कवाक्य में उद्देश्य व्याप्त होता है तथा विधेय अव्याप्त होता है।**

'ए' में उद्देश्य तथा विधेय दोनो व्याप्त होते हैं।

'ए' अथवा सार्वलौकिक निपेधात्मक तर्कवाक्यो का स्वरूप इस प्रकार का होता है· "कोई भी 'उ' 'वि' नही है।" "कोई भी मनुष्य पूर्ण नही है।" इसमे उद्देश्य तथा विधेय दोनो ही अपने पूर्ण विस्तार मे प्रयुक्त हुए हैं और इस तर्कवाक्य का यह अर्थ है कि उद्देश्य तथा विधेय द्वारा निर्दिष्ट जातियाँ परस्पर व्यावर्तक (exclusive) हैं। अत उपर्युक्त उदाहरण मे, 'मनुष्य' तथा 'पूर्ण व्यक्ति' की जातियाँ परस्पर पूर्णरूपेण

व्यावर्तक है और दोनो का उपयोग व्याप्त दशा मे हुआ है। अत· **'ए' (E) तर्कवाक्य में उद्देश्य और विधेय दोनो व्याप्त होते हैं।**

'ई' में न तो उद्देश्य और न विधेय व्याप्त होता है।

'ई' अथवा विशेष स्वीकारात्मक तर्कवाक्यो का स्वरूप इस प्रकार होता है—"कुछ 'उ' 'वि' है।" "कुछ मनुष्य चतुर है।" इसमे उद्देश्य तो आंशिक-विस्तार मे प्रयुक्त हुआ है और जहाँ तक विधेय का सम्बन्ध है तो उसका परिमाण स्पष्टतया व्यक्त नही है। अत. 'ई' (I) **तर्कवाक्य में, न तो उद्देश्य और न विधेय व्याप्त होता है।**

'ओ' में केवल विधेय व्याप्त होता है।

'ओ' अथवा विशेष निषेधात्मक तर्कवाक्यो का स्वरूप इस प्रकार होता है—"कुछ 'उ' 'वि' नही है।" "कुछ मनुष्य चतुर नही है।" इसमे उद्देश्य तो स्पष्टतया अव्याप्त है। जहाँ तक विधेय का सम्बन्ध है, हम देखते है कि वह व्याप्त है। निषेधात्मक तर्कवाक्य का यह अर्थ होता है कि विधेय उद्देश्य के सम्बन्व मे अस्वीकार किया गया है। विधेय या तो पूर्ण उद्देश्य के बारे मे अस्वीकार किया जा सकता है, जैसा कि 'ए'-तर्कवाक्य मे होता है। अथवा वह आंशिक-उद्देश्य के बारे मे अस्वीकार किया जा सकता है, जैसा कि 'ओ'-तर्कवाक्य मे होता है। परन्तु दोनो दशाओ मे, जहाँ तक विधेय का सम्बन्ध है, वह पूर्णता से अस्वीकार किया जाता है अन्यथा अस्वीकार अथवा निषेध का कोई अर्थ नही रहता। अत. **'ओ' (O) तर्कवाक्य में उद्देश्य अव्याप्त होता है, परन्तु विधेय व्याप्त होता है।**

साराश मे हम इस प्रकार कह सकते है·—

सार्वलौकिक (सामान्य) तर्कवाक्य (अर्थात् 'आ' तथा 'ए') अपने उद्देश्य को व्याप्त रखते है; परन्तु विशेष तर्कवाक्य ('ई' तथा 'ओ') अपने उद्देश्य को व्याप्त नहीं रखते।

निषेधात्मक तर्कवाक्य (अर्थात् 'ए' तथा 'ओ') अपने विधेय

को व्याप्त रखते है, परन्तु स्वीकारात्मक तर्कवाक्य (अर्थात् 'आ' तथा 'ई') अपने विधेय को व्याप्त नहीं रखते।

इस प्रकार,
'आ' मे केवल उद्देश्य व्याप्त होता है।
'ए' मे उद्देश्य और विधेय दोनो व्याप्त होते है।
'ई' मे न तो उद्देश्य और न विधेय व्याप्त होता है।
'ओ' मे केवल विधेय व्याप्त होता है।

टिप्पणी—विधेय का परिमाण ज्ञात करना (Quantification of Predicate)।

विधेय का परिमाण ज्ञात करना

यह बात ज्ञातव्य है कि उपर्युक्त तर्कवाक्यो मे केवल उद्देश्य का परिमाण (Quantity) स्पष्टतया व्यक्त किया जाता है, विधेय का परिमाण स्पष्ट नही होता। कुछ तर्कशास्त्री, यथा—**हैमिल्टन** (Hamilton) आदि विधेय का परिमाण भी व्यक्त करने के पक्ष मे है। ये लोग परिमाण के अनुसार तर्कवाक्यो के निम्नलिखित आठ विभाग करते है —

'यू' (U) : पूर्ण-पूर्ण-स्वीकारात्मक (Toto-total affirmative)—"सब 'उ' सब 'वि' है।"
'आ' (A) : पूर्ण-अपूर्ण-स्वीकारात्मक (Toto-partial affirmative)—"सब 'उ' कुछ 'वि' है।"
'वाई' (Y) : अपूर्ण-पूर्ण-स्वीकारात्मक (Parti-total affirmative)—"कुछ 'उ' सब 'वि' है।"
'ई' (I) : अपूर्ण-अपूर्ण-स्वीकारात्मक (Parti-partial-affirmative)—"कुछ 'उ' कुछ 'वि' है।"
'ए' (E) : पूर्ण-पूर्ण-निषेधात्मक (Toto-total negative)—"कोई भी 'उ' कोई भी 'वि' नही है।"

'पाई' (π) पूर्ण-अपूर्ण-निषेधात्मक (Toto-partial negative)—"कोई भी 'उ' कुछ 'वि' नही है।"

'ओ' (O) अपूर्ण-पूर्ण-निषेधात्मक (Parti-total negative)—"कुछ 'उ' कोई भी 'वि' नही है।"

'ओमेगा' (ω) अपूर्ण-अपूर्ण-निषेधात्मक (Parti-partial negative)—"कुछ 'उ' कुछ 'वि' नही है।"

विधेय के परिमाण को व्यक्त करने की उपर्युक्त विधि प्राय: मान्य नही है, क्योकि वह व्यर्थ ही इतनी जटिल है।

§६ चारो प्रकार के तर्कवाक्यो का चित्रीकरण—यूलर के वृत्त (Euler's Circles)

यूलर के वृत्त

अठारहवी शताब्दी के प्रसिद्ध न्यायशास्त्री यूलर (Euler) ने चारो प्रकार के तर्कवाक्यो को व्यक्त करने के लिए कुछ चित्र प्रस्तुत किये है। उसने निर्देश की दृष्टि से उद्देश्य और विधेय का सम्बन्ध निम्नाकित चित्रो द्वारा व्यक्त किया है:—
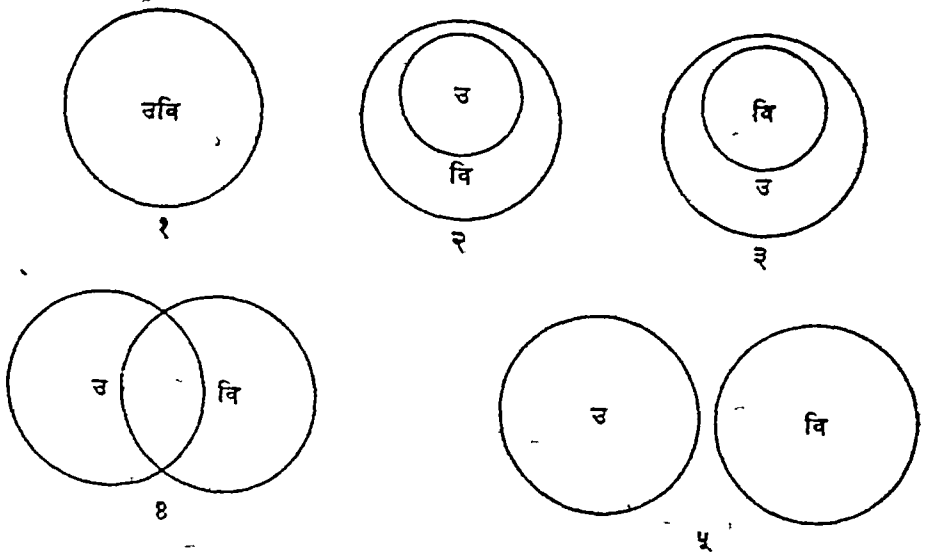
इस सम्बन्ध मे यह बात द्रष्टव्य है कि चित्र (१) मे 'उ' तथा 'वि' समव्याप्तिक (co-extensive) अथवा समरूप है। चित्र (२) मे, 'वि' मे 'उ' समाविष्ट है। चित्र (३) मे, 'उ' मे

'वि' समाविष्ट है। चित्र (४) मे, 'उ' तथा 'वि' एक दूसरे मे आशिक रूप मे समाविष्ट है। चित्र (५) मे 'उ' तथा 'वि' मे कुछ भी उभयनिष्ठता नही है।

उपर्युक्त योजना मे, 'उ' उद्देश्य के लिए तथा 'वि' विधेय के लिए प्रयुक्त हुआ है और ये दोनो पद 'निर्देश' के अर्थ मे लिए गए हैं। अव हम इस बात पर विचार करेगे कि तर्कवाक्यो का चतु-विभाजन इस योजना मे कहाँ तक स्थान पाता है और इन चित्रो की सहायता से पदो की व्याप्ति-सम्बन्धी ज्ञान कहाँ तक प्राप्त हो सकता है।

'आ' (A) तर्कवाक्य चित्र (१) तथा (२) से व्यक्त किया गया है। इस तर्कवाक्य की "सब 'उ' 'वि' है" का अर्थ कभी-कभी तो यह होता है कि 'उ' का निर्देश 'वि' के निर्देश के समान है जैसा कि चित्र न० (१) मे प्रदर्शित है , और कभी-कभी उसका अर्थ यह होता है कि 'उ' का निर्देश 'वि' के निर्देश मे समाविष्ट है, जैसा कि चित्र (२) मे प्रदर्शित है। अत. जहाँ तक 'वि' के सम्बन्ध मे, दोनो चित्रो मे उभयनिष्ठ तथ्य (common element) "कुछ 'वि'" है , "सब 'वि'" नही है। चित्र (१) मे हम निस्सदेह "सब 'वि'" (अर्थात् सम्पूर्ण 'वि') के बारे मे विचार करते हैं परन्तु चित्र (२) मे, हम केवल "कुछ 'वि'" के बारे मे ही विचार करते हैं। अत. हम कह सकते हैं कि 'आ' तर्कवाक्य मे उद्देश्य (अर्थात् "सब 'उ'") व्याप्त (distributed) होता है, परन्तु यह आवश्यक नही कि उसका विधेय भी व्याप्त हो।

'ए' (E) तर्कवाक्य चित्र (५) मे प्रदर्शित किया गया है। यह तर्कवाक्य कि " कोई भी 'उ' 'वि' नही है" यह अर्थ रखता है कि 'उ' और 'वि' परस्पर पूर्ण रूप से भिन्न हैं। अत इस दशा मे स्पष्ट है कि उद्देश्य तथा विधेय दोनो व्याप्त होते हैं।

'ई' (I) तर्कवाक्य चित्र (१), (२), (३) तथा (४) द्वारा प्रदर्शित है। हमे ज्ञात है कि 'सब' मे 'कुछ' निहित रहता है परन्तु 'कुछ' मे 'सब' का निहित होना आवश्यक नही है। अत यह तर्कवाक्य कि "कुछ 'उ' 'वि' है" चित्र (१) मे प्रदर्शित किया जा सकता है, जिसमे "सब 'उ' सब 'वि' है।" यह चित्र (२) से प्रदर्शित किया जा सकता है, जिसमे "सब 'उ' कुछ 'वि' है।"

यह चित्र (३) से प्रदर्शित किया जा सकता है, जिसमे "कुछ 'उ' सब 'वि' है"। और यह चित्र (४) से प्रदर्शित किया जा सकता है जिसमे "कुछ 'उ' कुछ 'वि' है।" यदि इन चारों चित्रों मे उभय-निष्ठ तथ्य की खोज करे तो केवल "कुछ 'उ'" तथा "कुछ 'वि'" ही प्राप्त होगा। अत. हम कह सकते है कि 'ई' (I) तर्कवाक्य मे न तो उद्देश्य और न विधेय व्याप्त होता है।

'ओ' (O) तर्कवाक्य चित्र (३), (४) तथा (५) से प्रदर्शित किया गया है। चित्र (३) मे, "कुछ 'उ' कोई भी 'वि' नही है" व्यक्त है क्योकि यह स्पष्ट है कि 'उ' का वह अश, जो कि 'वि' की सीमा के बाहर है, वह सम्पूर्ण 'उ' के ही बाहर होगा। इसी प्रकार चित्र (४) यह प्रदर्शित करता है कि "कुछ 'उ' कोई भी 'वि' नही है" क्योकि 'उ' का कुछ अश सम्पूर्ण 'वि' के बाहर है। चित्र (५) द्वारा यह व्यक्त होता है कि "कोई भी 'उ' कोई भी 'वि' नही है।" यदि सम्पूर्ण 'उ' सम्पूर्ण 'वि' के बाहर हो, तो यह तो कहा ही जा सकता है कि 'उ' का एक अश सम्पूर्ण 'वि' के बाहर है। अब हम यदि अपना ध्यान उभयनिष्ठ तथ्य अर्थात् "कुछ 'उ' तथा सब 'वि'" पर केन्द्रित करे, तो हम कह सकते है कि 'ओ' (O)-तर्कवाक्य सर्वदा अपने विधेय को व्याप्त रखता है।

उदाहरणो को हल करने के सकेत

अनियमित वाक्यो को तार्किक आकार मे रूपान्तरित करते समय सबसे पहले हम सयोजक (Copula) ज्ञात करते है। संयोजक सर्वदा 'होना' क्रिया के वर्तमान काल मे निषेध के चिह्न सहित अथवा उसके बिना ही हो सकता है।

इसके बाद हम उसके परिमाण (Quantity) को निर्धारित करते है। इस प्रकरण मे हम उन आकारो का वर्णन करते है जिनमे वाक्य प्राय. होते है और उनका परिमाण ज्ञात करने की विधि का वर्णन भी हो चुका है।

अन्त मे हम गुण (Quality) का चिह्न प्रदान करते है। निरपेक्ष तर्कवाक्यो मे गुण का चिह्न प्राय· संयोजक के साथ ही लगा रहता है।

यह बात ज्ञातव्य है कि अपनी भाषा मे सबल-अभिव्यजना तथा सौन्दर्य उपस्थित करने के लिए अनेको प्रकार से वाक्यो को

व्यक्त किया जाता है। परन्तु तर्कशास्त्र मे इन असख्य प्रकार के वाक्यो को केवल चार प्रकार के तर्कवाक्यो मे सरल कर दिया जाता है। अत यह स्वाभाविक ही है कि वाक्यो को तार्किक-रूप देने से भाषा का सौन्दर्य मिट जाता है। उन्हे सरल करने से जितना लाभ होता है उतनी ही कमी उनकी सौदर्य-हीनता से उत्पन्न हो जाती है। इस वात का स्पष्टीकरण निम्नलिखित दृष्टात से हो जायेगा। प्राचीन काल मे ग्रीस देश मे एक लुटेरा था, जिसका नाम प्रोक्रुस्टीज़ (Procrustes) था। वह इस वात मे ही आनन्द लेता था कि यात्रियो को पकडकर वह उन्हे एक पलग पर लिटाये। यदि वह यात्री उस पलग से छोटा होता था तो वह लुटेरा उसके शरीर को इतना खीच लेता था कि उसके प्राण निकल जाते थे। यदि वह यात्री उस पलग से अधिक लम्बा होता था तो वह उसके सिर का उतना भाग काट लेता था कि वह उस पलग के ठीक वरावर हो जाये। अत इस प्रकार भी उस यात्री का प्राणान्त हो जाता था। तर्कवाक्यो मे चारो आकार प्रोक्रुस्टीज़ के पलग के ही सदृश है। भाषा के असख्यो प्रकार के वाक्यो को तार्किक आकार-रूपी प्रोक्रुस्टीज के पलग के बरावर ही कर देना पडता है ताकि उनपर तर्कशास्त्र मे विचार किया जा सके। इसलिए यह कोई आश्चर्य की बात नही है कि तर्कवाक्य इतने नग्न तथा रूखे प्रतीत होते है। इस उग्र परिवर्तन की क्रिया मे अर्थ का सूक्ष्म-सौन्दर्य नष्ट हो जाता है, यद्यपि मूल अर्थ ज्यो का त्यो ही रहता है।

कुछ हल किये हुए उदाहरण

(१) कारण सहित बतलाइए कि निम्नलिखित तर्कवाक्यों के परिमाण (Quantities) क्या हैं?

(क) कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं है जो स्वभावत· भला न हो। यह 'आ' (A)-तर्कवाक्य है तथा 'सब मनुष्य स्वभावत भले है'—इस तर्कवाक्य के तुल्य है, क्योकि एक साथ दो निषेध-चिह्नो का वल स्वीकारात्मक होता है।

(ख) नदी पार करने के प्रयत्न मे अनेको आदमी डूब गये।

यह तर्कवाक्य 'ई' (I) है और निम्नलिखित तर्कवाक्य के तुल्य है 'कुछ मनुष्य वे है जो नदी पार करने के प्रयत्न मे डूब गये।'

(ग) कुछ को छोड़कर सभी व्यक्ति वन्दी बना लिये गये।

यह तर्कवाक्य 'ई' (I) है क्योकि इसमे अपवाद निश्चयपूर्वक व्यक्त नही है। यह निम्नलिखित तर्कवाक्य के तुल्य है—'कुछ व्यक्ति वे है जो व दी वना लिए गए।'

(घ) कोई भी व्यक्ति उस काम को कर सकता है।

इसका अर्थ है कि "सब मनुष्य वे है, जो उस काम को कर सकते है।" अत 'आ' (A)-तर्कवाक्य है।

(२) निम्नलिखित वाक्यों को उनके तार्किक आकारों में व्यक्त कीजिए तथा प्रत्येक के गुण तथा परिमाण का उल्लेख कीजिए।

(क) पृथ्वी ही एकमात्र ग्रह है जिसके चारो ओर वायु-मंडल है।

यह तार्किक आकार मे है, क्योकि यह 'आ' (A)-तर्कवाक्य है। यहाँ यह वात ज्ञातव्य है कि इसमे उद्देश्य तथा विधेय दोनो व्याप्त है।

(ख) प्रगति का न होना पीछे हटना है।

तार्किक आकार 'प्रगति के न होने की सव दशाये पीछे हटने की दशाये है।'—"आ" तर्कवाक्य।

(ग) 'जब भिखारी मरते है, तो तारे नही टूटते!'

यह एक हेतुफलाश्रित तर्कवाक्य है, तथा निम्नलिखित तर्कवाक्य के तुल्य है 'यदि भिखारी मरते है, तो तारे नही टूटते!' —यह 'ए' (E) तर्कवाक्य है क्योकि हेतुफलाश्रित तर्कवाक्य का परिमाण उसके पूर्वांग के परिमाण पर आधारित होता है तथा उसका गुण उसके उत्तराग पर आधारित होता है।

(घ) सब हंस श्वेत नहीं होते।

यह 'ओ' (O) तर्कवाक्य है, जिसका तार्किक-रूप यह है—'कुछ हस श्वेत नही है।'

(३) निम्नलिखित वाक्यों को तार्किक आकार मे रूपान्तरित कीजिए तथा उनके गुण एवं परिमाण का संकेत कीजिए :—

(क) प्रत्येक पद का गुण नहीं होता।

यह 'ओ' (O)-तर्कवाक्य है और निम्नलिखित तर्कवाक्य के तुल्य है :—"कुछ पद, पद नही है जिनके गुण होता है।"

(ख) केवल अज्ञानी व्यक्ति ही जादू में विश्वास करते है।

यह ऐकान्तिक (Exclusive) वाक्य है और निम्नलिखित तीन आकारो मे वदला जा सकता है :—

"आ" : सव व्यक्ति जो जादू मे विश्वास करते है, अज्ञानी है।

"ए" : कोई भी ज्ञानी व्यक्ति वे नही है, जो जादू मे विश्वास करते है।

"ई" · कुछ अज्ञानी व्यक्ति वे है, जो जादू मे विश्वास करते है।

(४) निम्नलिखित तर्कवाक्यो के गुण और परिमाण का उल्लेख कीजिए तथा उनको तार्किक आकार में बदलिए :—

(क) स्वयं मूर्खो को छोड़कर कोई भी उन्हें महान् नही समझता।

यह ऐकान्तिक (Exclusive) वाक्य है, जो निम्नाकित तर्कवाक्यो के तुल्य है

"आ" सव व्यक्ति जो मूर्खो को महान् समझते है स्वय मूर्ख है।

"ए" कोई भी अ-मूर्ख वे व्यक्ति नहीं हैं जो मूर्खो को महान् समझते है।

"ई" कुछ व्यक्ति जो स्वय मूर्ख है, मूर्खो को महान् समझते है।

(ख) पदार्थ वैसे नही होते जैसे प्रतीत होते है।

यह निम्नलिखित तर्कवाक्य के तुल्य है —"कुछ पदार्थ वैसे नही है जैसे प्रतीत होते है।' अत यह 'ओ'-आकार मे है।

(ग) आप में से कम से कम एक तो इस प्रश्न का उत्तर दे सकता है।

यह 'ई'-तर्कवाक्य है और यह निम्नलिखित तार्किक-रूप मे वदला जा सकता है "आप मे से कम से कम कुछ वह व्यक्ति है, जो इस प्रश्न का उत्तर दे सकता है।'

(५) निम्नलिखित तर्कवाक्यों के गुण तथा परिमाण का उल्लेख कीजिए :—

(क) केवल अज्ञानी व्यक्ति ही ऐसा मत रखते है।

यह ऐकान्तिक वाक्य निम्नलिखित तर्कवाक्यों के तुल्य है:
"आ" . सब व्यक्ति जो ऐसा मत रखते है अज्ञानी है।
"ए" . कोई भी ज्ञानी व्यक्ति वे नही है जो ऐसा मत रखते है ।
"ई" कुछ अज्ञानी व्यक्ति वे है जो ऐसा मत रखते है।

(ख) बिरले ही व्यक्ति लालच से बचते है।

यह 'ओ'-आकार मे है और निम्नलिखित तर्कवाक्य में रूपान्तरित हो सकता है—"कुछ व्यक्ति वे है जो लालच से नही बचते है।"

(ग) फॉसफॉरस पानी में नही घुलता ।

यह निम्नलिखित तर्कवाक्य के तुल्य है" "फॉसफॉरस वह पदार्थ नही है जो पानी मे नही घुल सके।" यह 'ए'-तर्कवाक्य है।

(घ) बहुत से योग्य व्यक्ति है, जो अभागे है।

यह 'ई'-तर्कवाक्य है जो कि निम्नलिखित तर्कवाक्य के तुल्य है :—'कुछ लोग जो अभागे है, योग्य व्यक्ति है।'

(ङ) वे सब मित्र नही होते जो वैसा दिखावा करते है।

यह निम्नलिखित तर्कवाक्य के तुल्य है —'कुछ व्यक्ति जो मित्र होने का दिखावा करते है, मित्र नही होते।' यह 'ओ'-आकार में है।

(६) निम्नलिखित तर्कवाक्यों में कौन से पद व्याप्त हैं :

(क) कुछ बहुमूल्य पुस्तकें शायद ही कभी पढ़ी जाती हैं।

यह निम्नलिखित तर्कवाक्य मे रूपान्तरित किया जा सकता है—"कुछ बहुमूल्य पुस्तके नही पढी जाती।" यह 'ओ'-आकार मे है जिसमे उद्देश्य तो अव्याप्त है पर विधेय व्याप्त है।

(ख) प्रत्येक गलती भयानक नहीं होती।

यह इस तर्कवाक्य के तुल्य है : 'कुछ गलतिया भयानक नही है।' यह 'ओ'-आकार मे है, जिसका विधेय तो व्याप्त है, परन्तु उद्देश्य अव्याप्त ही है।

(७) निम्नलिखित वाक्यो को तार्किक आकार में रखिए :

(क) सब वकील मूर्ख नही होते।

तार्किक आकार 'कुछ वकील मूर्ख नही है।' (ओ)

(ख) केवल स्नातक ही अधिकारी है।

यह ऐकान्तिक वाक्य निम्नाकित तर्कवाक्यो के तुल्य है —

"आ" : सब व्यक्ति जो अधिकारी है, स्नातक है।

"ए" · कोई भी अ-स्नातक अधिकारी नही है।

"ई" कुछ स्नातक अधिकारी है।

(८) निम्नलिखित अनियमित वाक्यों को तार्किक आकार में रूपान्तरित कीजिए :—

(क) कहते हैं कि वह दिवालिया है।

उत्तर :—इस कथन मे 'कहते है' से तात्पर्य 'लोग प्राय. कहते है' है। अत. इसका रूपान्तरण निम्नलिखित प्रकार से होगा · 'कुछ लोग वे है, जो कहते है कि वह दिवालिया है।" (ई)

(ख) बड़ी गर्मी है !

उत्तर —इसमे मौसम के सम्बन्ध मे बात कही गई है। अत· यह निम्नलिखित 'आ' तर्कवाक्य के तुल्य है—"मौसम बडा गर्म है।"

प्रश्नमाला ७

(१) तर्कवाक्य (Proposition) किसे कहते है ? उसे तार्किक-आकार मे किस प्रकार रूपान्तरित किया जाता है ? निम्नलिखित तर्कवाक्यो को तार्किक आकार मे रूपान्तरित कीजिए —

(क) किंचिन्मात्र ही स्त्रियाँ इजीनियर है ।
(ख) केवल स्नातक ही आई० सी० एस० के लिए अधिकारी है ।
(ग) पत्थर की दीवारे वन्दीगृह नही वनाती । (उ० प्र० १९४६)

(२) निम्नलिखित तर्कवाक्यो को उनके गुण एवं परिमाण के चिह्नो सहित तार्किक आकार मे रूपान्तरित कीजिए :—

(क) डूबते हुए को तिनके का सहारा काफी है ।
(ख) जापानी शायद ही कभी आत्म-समर्पण करते है ।
(ग) केवल गुरखो ने ही स्थिति को सुधार लिया ।
(घ) सव विद्यार्थी परीक्षा मे उत्तीर्ण नही होते । (उ० प्र० १९४७)

(३) निम्नलिखित तर्कवाक्यो को तार्किक आकार मे रूपान्तरित कीजिए :—

(क) केवल पत्रकार ही प्रथम पंक्ति मे स्थान पा सकते है ।
(ख) किंचिन्मात्र ही मनुष्य चतुर होते है ।
(ग) प्रत्येक रोग घातक नही होता । (उ० प्र० १९४८)

(४) निम्नलिखित तर्कवाक्यो को तार्किक आकार मे व्यक्त कीजिए :—

(क) दो को छोडकर प्रत्येक व्यक्ति मारा गया ।
(ख) अधिक पढनेवाले सव लोग चतुर नही होते ।
(ग) केवल रेखागणित के विशेपज्ञ ही इस मार्ग से प्रवेश पा सकते है । (उ० प्र० १९५०)

(५) सयोजक का क्या स्वरूप है ? एक निर्णय मे सयोजक का क्या महत्व होता है ? (कलकत्ता १९४१)

(६) तर्कवाक्यो को भिन्न-भिन्न प्रकारो मे कैसे बाँटा जाता है ? सविस्तार व्याख्या कीजिए। (कलकत्ता १९३६)

(७) तर्कवाक्य की कौन-सी विशेषता उसे व्याकरणीय वाक्य से भिन्न बना देती है ? (बम्बई १९२९)

(८) निर्णय किसे कहते है ? एक निर्णय और एक तर्कवाक्य मे क्या अन्तर है ? (कलकत्ता १९४०-१९४१)

(९) तर्कवाक्यो मे पदो की व्याप्ति की व्याख्या कीजिए। (उ० प्र० १९५०)

(१०) वैकल्पिक तर्कवाक्य का क्या महत्व है ? ऐसे तर्कवाक्यो के परिमाण के सम्बन्ध मे आप क्या जानते है ? कारण सहित समझाइए।

(११) एक पद और तर्कवाक्य का अन्तर स्पष्ट कीजिए।

(१२) सम्बन्ध के अनुसार तर्कवाक्यो का विभाग कीजिए। क्या यह कहना ठीक है कि सब तर्कवाक्य स्वीकारात्मक तथा निरपेक्ष होने चाहिए ?

(१३) 'विधेय का परिमाण ज्ञात करने' से क्या तात्पर्य है ? क्या आप उसे ठीक समझते हैं ?

(१४) निम्नलिखित तर्कवाक्यो का शुद्ध तार्किक आकार व्यक्त कीजिए :—

(क) सब अच्छे लेखक अच्छे वक्ता नही होते।
(ख) उसे काम करना चाहिए, जो सफलता का इच्छुक है।
(ग) कक्षा के योग्य विद्यार्थियो को छोडकर सब परीक्षा मे असफल रहे।
(घ) वे सब जो यशगान करते है, मित्र नही होते।
(ङ) कोई भी उत्तर अच्छा उत्तर नही होता।
(च) सब मनुष्य कभी-कभी गलती कर बैठते है।
(छ) कोई भी विद्यार्थी इस सरल प्रश्न को हल कर सकता है।
(ज) केवल थोडे-से व्यक्ति प्रसिद्ध है।
(झ) कम से कम एक विद्यार्थी उपस्थित नही है।
(ञ) केवल शिक्षित ही मत देने के योग्य है।

EXERCISE VII.

1. What is a Proposition? How is it changed into logical form? Change the following propositions into logical form :
   (a) Few women are engineers
   (b) Only graduates are eligible for I A S.
   (c) Stony walls do not make prison.

2 Express the following propositions in logical form giving their signs of Quality and Quantity :
   (a) A drowning man seeks for a straw.
   (b) Japanese seldom surrender.
   (c) The Gurkhas alone saved the situation.
   (d) All the students do not succeed in the examination [U.P. 1947]

3. Express the following propositions in strict logical form
   (a) Journalists alone can occupy the front row.
   (b) Few men are wise
   (c) Every disease is not fatal [U. P 1948]

4 Express the following propositions in logical form
   (a) All but two were killed.
   (b) All studious persons are not wise.
   (c) Only Geometricians can get admittance on this path [U. P 1950]

5 What is the nature of Copula? What is the significance of Copula in a judgment? [Calcutta 1941]

6 Discuss in detail how propositions are divided into different forms [Calcutta 1936].

7. What characteristic differentiates a logical proposition from a grammatical sentence? [Bombay 1929].

8 What is a Judgment? What is the difference between a Judgment and a Proposition? [Calcutta 1940, 1941].

9. Explain the Distribution of Terms in the Propositions. [U. P. 1950].

10 What do you consider to be the precise significance of a disjunctive proposition and why ? What do you know regarding the quantity of the proposition and how ?

11. Distinguish between a term and a proposition.

12. Classify Propositions according to relation Is it correct to say that all propositions must be affirmative and categorical ?

13. Discuss briefly the theory of the Quantification of the Predicate. Do you accept it ?

14. Express the following in strict logical forms adding the symbols, A E I or O in each case

(a) All good writers are not good speakers.
(b) He must work who wants to succeed.
(c) All but the best students in the class got plucked in the examination
(d) All who praise are not friends
(e) All answer is not a good answer
(f) All men sometimes fall into error
(g) Any student will answer this simple question
(h) Only a handful of men become famous.
(i) There is at least one student who is absent
(j) Only the educated are fit to vote

अष्टम प्रकरण

निरपेक्ष तर्कवाक्यों का तात्पर्य तथा विधान-सम्बन्धी सिद्धान्त

(Import of Categorical Propositions and Theories of Predication)

§१. विधान सम्वन्धी सिद्धान्त।
§२ तर्कवाक्यो के तात्पर्य के सम्वन्ध मे नामवादी, धारणा-वादी तथा वस्तुवादी सिद्धान्त।
प्रश्नमाला ८

हमारे सामने प्रश्न यह है कि वाक्य के विधान (Predication) का वास्तविक स्वरूप क्या है ? दूसरे शब्दो मे, वाक्य के विधान का निर्माण करते समय हम वास्तव मे क्या करते है ? इन प्रश्नो का उत्तर तर्कशास्त्रियो ने विभिन्न प्रकार से दिया है। इस सम्वन्ध मे दो समस्याओ पर विचार करना है। पहली समस्या यह है. तर्कवाक्य उद्देश्य और विधेय के बीच किस प्रकार का सम्वन्ध व्यक्त करता है ? और दूसरी समस्या यह है कि तर्कवाक्य प्रधान-तया वास्तविक पदार्थ, नाम और विचार—इन तीनो मे से किस से सम्वन्ध रखता है ? अव हम इन समस्याओ पर विस्तार से विचार करेंगे।

§१. विधान-सम्बन्धी सिद्धान्त

हमारे सामने प्रश्न यह है—उद्देश्य का क्या अर्थ है ? विधेय का क्या अर्थ है ? और तर्कवाक्य के उद्देश्य और विधेय के पारस्परिक सम्वन्ध का क्या अर्थ है ?

इन प्रश्नो के सम्बन्ध मे तर्कशास्त्रियो मे बडा मतभेद है। इन विभिन्न मतो को ही विधान के सिद्धान्त (Theories of Predication) कहते है।

(१) विधानात्मक मत (The Predicative view)

१. विधानात्मक मत : उद्देश्य 'निर्देश' में तथा विधेय 'गुण' में

विधानात्मक मत (Predicative view) अथवा सामान्य मत (Common-sense view) के अनुसार, तर्कवाक्य का **उद्देश्य तो उसके निर्देश के अर्थ मे और विधेय उसके 'गुण'** (Connotation) **के अर्थ में** लिया जाता है। और तर्कवाक्य का अर्थ यह होता है कि विधेय द्वारा व्यक्त गुण उद्देश्य द्वारा निर्दिष्ट वस्तु या व्यक्तियो के प्रति स्वीकार या अस्वीकार किया जाता है। उदाहरणार्थ, यह तर्कवाक्य कि 'सब मनुष्य मर्त्य है' का यह अर्थ है कि 'मर्त्यता' का गुण 'सब मनुष्यो' मे उपस्थित है। इसी प्रकार, 'कोई भी मनुष्य पूर्ण नही है' का यह अर्थ है कि 'पूर्णता' का गुण 'सब मनुष्यो' मे अनुपस्थित है। यह मत **मार्टिन्यू** (Martineau) और वैन (Venn) का है।

(२) निर्देशात्मक मत (The Denotative view)

२. निर्देशात्मक मत : उद्देश्य तथा विधेय दोनों ही निर्देश में

निर्देशात्मक मत (Denotative view) के अनुसार **उद्देश्य और विधेय दोनों ही 'निर्देश' के अर्थ मे समझे जाते है** और तर्कवाक्य का यह अर्थ होता है कि उद्देश्य द्वारा निर्दिष्ट जाति विधेय द्वारा निर्दिष्ट जाति मे या तो सन्निहित है अथवा असन्निहित है। उदाहरण के लिए, इस मत के अनुसार इस तर्कवाक्य कि 'सब मनुष्य मर्त्य है'—का यह तात्पर्य है कि 'मनुष्य' जाति 'मर्त्य व्यक्तियो' की जाति मे सन्निहित है। और 'कोई भी मनुष्य पूर्ण नही है' तर्कवाक्य का यह तात्पर्य है कि 'मनुष्य' की जाति 'पूर्ण व्यक्तियो' की जाति मे सन्निहित नही है।

(३) गुणात्मक मत (Connotative or Attributive view) :

३. गुणात्मक मत : उद्देश्य तथा विधेय दोनो ही 'गुण' के अर्थ मे

गुणात्मक (Connotative) मत के अनुसार **उद्देश्य और विधेय दोनो ही अपने 'गुण' के अर्थ में लिए जाते है** और तर्कवाक्य का यह तात्पर्य होता है कि विधेय द्वारा व्यक्त गुणो का उद्देश्य द्वारा व्यक्त गुणो से सामजस्य है अथवा नही। इस दृष्टिकोण से 'सब मनुष्य मर्त्य है' तर्कवाक्य का यह तात्पर्य है कि 'मनुष्यता' के गुण से 'मर्त्यता' के गुण का सामजस्य है। और 'कोई भी मनुष्य पूर्ण नही है' —इस तर्कवाक्य का यह तात्पर्य है कि 'मनुष्यता' के गुण से 'पूर्णता' के गुण का सामजस्य नही है। इस मत के प्रधान पोषक **मिल** (Mill) है।

(४) निर्देश-गुणात्मक मत (Denotative-Connotative view) :

४. निर्देश गुणात्मक मत : उद्देश्य तथा विधेय दोनों ही या तो निर्देश में या गुण में

यह मत दूसरे और तीसरे मत का सम्मिलित रूप है। निर्देश-गुणात्मक मत के अनुसार उद्देश्य और विधेय दोनो ही या तो निर्देश के अर्थ मे या गुण के अर्थ मे माने जाते है। जब दोनो निर्देश के अर्थ मे माने जाते है, तो उद्देश्य विधेय मे सन्निहित या असन्निहित रहता है, और जब दोनो गुण के अर्थ मे माने जाते है, तो विधेय उद्देश्य मे सन्निहित या असन्निहित रहता है। यह कोई नया सिद्धान्त नही है, वरन पिछले दोनो मतो का सम्मिलित रूप ही है। यह मत **हैमिल्टन** (Hamilton) ने प्रतिपादित किया है। इसे **समन्वयवाद** (Comprehensive view) भी कहते है।

उपर्युक्त चारो मतो मे से विधानात्मक-मत (Predicative view) सवसे अधिक युक्तिसगत प्रतीत होता है। निरपेक्ष तर्कवाक्यो मे उद्देश्य परिमाण के चिह्न के सहित व्यक्त

होता है और यह स्वाभाविक ही है कि उसे निर्देश के अर्थ मे लिया जाय । साथ ही विधानात्मक मत तर्कवाक्यो की चतुयोजना के भी पूर्णरूप से अनुरूप है । क्योकि यदि विधेय गुणो को व्यक्त करता है और उद्देश्य वस्तुओ का निर्देश करता है तो हम गुणो को वस्तुओ के सम्बन्ध मे स्वीकार या अस्वीकार करते है । और दोनो दशाओ मे स्वीकृति या अस्वीकृति व्यक्तियो की निश्चित या अनिश्चित सख्या के विषय मे की जा सकती है ।

§२. तर्कवाक्यो के तात्पर्य के सम्बन्ध मे नामवादी (Nominalist), धारणावादी (Conceptualist) तथा वस्तुवादी (Realist) सिद्धान्त

हमारे सामने यह समस्या है कि तर्कवाक्य प्रधानत किस से सम्बन्ध रखता है ? इस सम्बन्ध में अनेक मत है, यथा—तर्कवाक्य **नाम** (name) से, **विचारो** (ideas) से अथवा **वास्तविक वस्तुओ** (real things) से सम्बन्ध रखता है । अब हम इन मतो पर सक्षेप मे प्रकाश डालेगे ।

(१) नामवादी मत (Nominalist view)

यह मत **हॉब्स** (Hobbes) ने प्रतिपादित किया है । इस मत के अनुसार तर्कवाक्य दो नामो का सम्बन्ध व्यक्त करता है । हॉब्स का कहना है कि तर्कवाक्य का तात्पर्य वक्ता के इस विश्वास पर है कि विधेय उसी वस्तु का नाम है जिसका नाम उद्देश्य है ।

यह मत दोषपूर्ण है क्योकि इससे यह अर्थ निकलता है कि सत्य केवल आकारगत है अर्थात् सत्य के अर्थ शब्द-सगति मात्र है । परन्तु वास्तव मे सत्य केवल अकारगत ही नही अपितु वस्तुगत भी होता है ।

(२) धारणावादी मत (Conceptualist view)

धारणावादी मत के अनुसार तर्कवाक्य दो धारणाओ (Concepts) या विचारो (ideas) के मध्य का सम्बन्ध व्यक्त करता है। अर्थात् तर्कवाक्य दो विचारो की पारस्परिक सगति या असगति व्यक्त करता हैं। यह मत **लॉक** (Locke) ने प्रतिपादित किया है।

यह मत भी दोषपूर्ण है क्योकि इसमे इस तथ्य की उपेक्षा की गई है कि 'विचार' किसी '**वस्तु का विचार**' ही होता है। केवल 'विचार' कहलानेवाली किसी वस्तु की सत्ता नही होती। अत. तर्कवाक्य केवल 'विचारो' को ही व्यक्त नही कर सकता।

(३) वस्तुवादी मत (Realist view)

वस्तुवादी मत के अनुसार तर्कवाक्य 'विचारो' या 'नामो' से नही, प्रत्युत 'वस्तुओ' से सम्बन्ध रखता है।

उचित दृष्टिकोण धारणावादी तथा वस्तुवादी मत का सम्मिलित रूप प्रतीत होता है। यह मत **ब्रैडले** (Bradley) का है। यह सच है कि तर्कवाक्य को 'विचार' या धारणा से सम्बन्ध होता है, परन्तु यह 'विचार' किसी वास्तविक पदार्थ से सम्बद्ध रहता है। अत तर्कवाक्य का 'विचार' से ही नही, अपितु उस वस्तु से भी जिसके बारे मे वह विचार हो, सम्बन्ध है।

प्रश्नमाला ८

(१) 'तर्कवाक्य के तात्पर्य' से क्या आशय है ? इस 'तात्पर्य' के सम्बन्ध मे तर्कशास्त्रियो ने जो मत प्रतिपादित किए है, उनकी व्याख्या कीजिए। इन मतो के अनुसार निम्नलिखित तर्कवाक्य का क्या तात्पर्य है—

'सब मनुष्य मर्त्य है।'

(२) विधान सम्बन्धी सिद्धान्त किसे कहते है ? वास्तविक उदाहरण देकर इससे सम्बन्धित विभिन्न मतो को समझाइए ।

EXERCISE VIII

1 State clearly the meaning of the expression the Import of Proposition, and state the principal views, advanced by Logicians regarding Import. What precisely does the proposition 'All men are mortal' mean according to each of these views ?

2 What do you understand by the Theory of Predication ? Explain and illustrate the different theories with reference to a concrete example

— o —

नवम प्रकरण

तर्कवाक्यों का विरोध

(Opposition of Propositions)

§१ विरोध के विभिन्न प्रकार।
(क) उपाश्रितता (Subalternation)।
टिप्पणी—क्या उपाश्रितता विरोध का रूप है?
(ख) वैपरीत्य (Contrariety)।
(ग) अनुवैपरीत्य (Sub-contrariety)।
(घ) विरुद्धता (Contradictory Opposition)।
§२ विरोध का वर्ग।
प्रश्नमाला ९.

§१. विरोध के विभिन्न प्रकार

'विरोध' का अर्थ

उन दो तर्कवाक्यों को परस्पर विरोधी कहते हैं, जिनके उद्देश्य और विधेय समान होते हुए भी, जो गुण की दृष्टि से, या परिमाण की दृष्टि से, या दोनो की दृष्टि से भिन्नता रखते हो।

चार प्रकार के विरोध

विरोध चार प्रकार का माना जाता है; यथा—उपाश्रितता (Subalternation), वैपरीत्य (Contrariety), अनुवैपरीत्य (Sub-contrariety) तथा विरुद्धता (Contradictory Opposition)।

(क) उपाश्रितता (Subalternation)

उपाश्रितता—केवल परिमाण में अन्तर

उपाश्रितता (Subalternation) उस सम्बन्ध को कहते है जो ऐसे दो तर्कवाक्यो में पाया जाये जिनके वही उद्देश्य हों और वही विधेय हो तथा गुण भी वही हो परन्तु जिनके

परन्तु तर्कशास्त्री 'विरोध' शव्द का उपयोग एक विशेप अर्थ मे करते है, वे उसके अन्दर परिमाण के भेद को भी समाविष्ट करते है, चाहे उनमे गुण का विरोध न भी हो। यह स्पष्ट है कि इस विशेप अर्थ मे उपाश्रितता को विरोध का एक ही रूप समझा जा सकता है। अत. उपाश्रितता विरोध का रूप है, अथवा नही इस वात पर निर्भर रहता है कि हम 'विरोध' शव्द का क्या अर्थ लेते है।

(ख) वैपरीत्य (Contrariety)

वैपरीत्य—दो सार्वलौकिक तर्कवाक्य जिनके गुण में भेद हो।

वैपरीत्य उस सम्वन्ध को कहते है जो कि ऐसे दो सार्वलौकिक (सामान्य) तर्कवाक्यों में होता है जिनका उद्देश्य भी समान होता है और विधेय भी समान होता है, परन्तु जिनके गुण में भेद होता है। अर्थात् यह 'आ' (A) तथा सगत 'ए' (E) तर्कवाक्य का पारस्परिक सम्वन्ध है। निम्नलिखित तर्कवाक्यो मे वैपरीत्य (या विपरीत विरोध) है—

(क) सव मनुष्य अपूर्ण है।
(ख) कोई भी मनुष्य अपूर्ण नही है।

(ग) अनुवैपरीत्य (Sub-contrariety)

अनुवैपरीत्य—दो विशेष तर्कवाक्य जिनके गुण में भेद हो।

अनुवैपरीत्य उस सम्वन्ध को कहते है जो कि ऐसे दो विशेष तर्कवाक्यों में होता है, जिनका उद्देश्य भी समान होता है और विधेय भी समान होता है परन्तु जिनके गुण में भेद होता है। अर्थात् यह 'ई' (I) तथा सगत 'ओ' (O) तर्कवाक्यो का पारस्परिक सम्वन्ध है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित तर्कवाक्यो मे अनुवैपरीत्य (Sub-contrariety) का सम्वन्ध है :

(क) कुछ मनुष्य चतुर है।
(ख) कुछ मनुष्य चतुर नही है।

(घ) विरुद्धता (Contradictory Opposition)

विरुद्धता—दो तर्कवाक्य जिनके गुण तथा परिमाण दोनो में भेद हो।

विरुद्धता दो तर्कवाक्यों के ऐसे सम्बन्ध को कहते है, जिनका उद्देश्य भी समान होता है, तथा विधेय भी समान होता है परन्तु जिनके परिमाण में भी भेद होता है तथा गुण में भी भेद होता है। विरुद्ध तर्कवाक्यो के दो युग्म है यथा—(१) 'आ' (A) और 'ओ' (O) तथा (२) 'ए' (E) और 'ई' (I)।

विरुद्धता विरोध का **पूर्ण रूप** है क्योकि उसमे गुण और परिमाण दोनो मे अन्तर है। 'आ' (A) अर्थात् सार्वलौकिक स्वीकारात्मक का विरुद्ध 'ओ' (O) अर्थात् विशेष निषेधात्मक होता है, तथा 'ए' (E) अर्थात् सार्वलौकिक निषेधात्मक का विरुद्ध 'ई' (I) अर्थात् विशेष स्वीकारात्मक होता है।

साराश यह है कि 'विरोध' (Opposition) शब्द का उपयोग विस्तीर्ण एव सकीर्ण अर्थ मे किया जाता है। विस्तीर्ण अर्थ मे, उपाश्रितता सहित चार प्रकार के विरोध होते है। सकीर्ण अर्थ मे केवल दो प्रकार का विरोध होता है यथा वैपरीत्य एव विरुद्धता।

'विरोध' का सम्बन्ध केवल उन दो तर्कवाक्यो मे होता है जिनका उद्देश्य समान होता है तथा विधेय भी समान होता है। उपाश्रितता (Subalternation) मे केवल परिमाण का अन्तर होता है, वैपरीत्य मे दो सार्वलौकिक तर्कवाक्यो मे गुण का अन्तर होता है, अनुवैपरीत्य मे दो विशेष तर्कवाक्यो मे गुण का अन्तर होता है और विरुद्धता मे गुण और परिमाण दोनो का अन्तर होता है। 'आ' तथा 'ई' एव 'ए' तथा 'ओ' उपाश्रित है, 'आ' तथा 'ए' विपरीत है, 'ई' तथा 'ओ' अनुविपरीत है और 'अ.' तथा 'ओ' एव 'ए' तथा 'ई' विरुद्ध है।

§२. विरोध का वर्ग

विरोध का वर्ग

'विरोध का वर्ग' (Square of Opposition) तर्कवाक्यो

के विरोध के सिद्धान्त को याद रखने का चित्र है, जो निम्न प्रकार है :
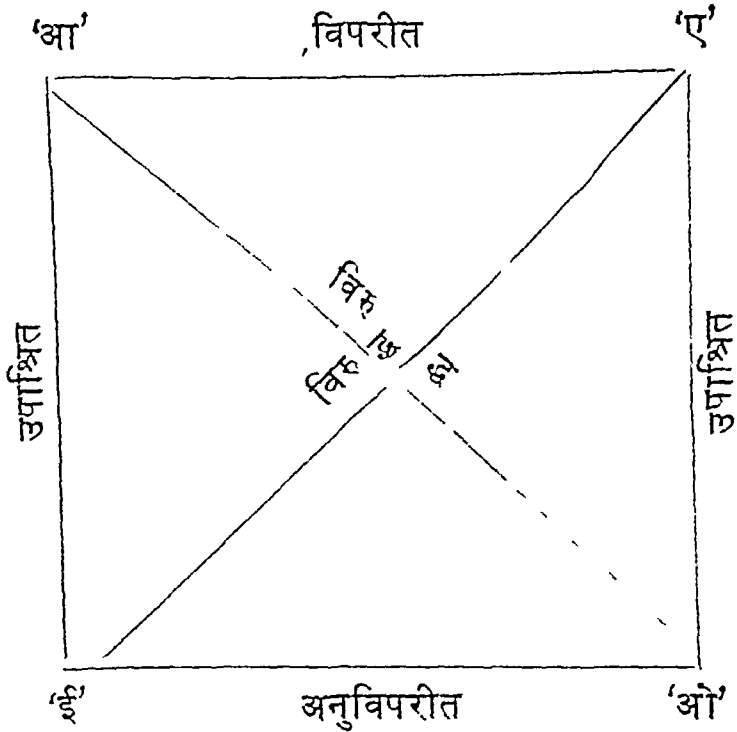
इस चित्र मे सार्वलौकिक तर्कवाक्य ऊपर लिखे हैं, विशेष तर्कवाक्य नीचे लिखे हैं; स्वीकारात्मक तर्कवाक्य बाई ओर तथा निषेधात्मक तर्कवाक्य दाई ओर लिखे है।

अरस्तू (Aristotle) ने विरोध के वर्ग को निम्न प्रकार प्रदर्शित किया है—
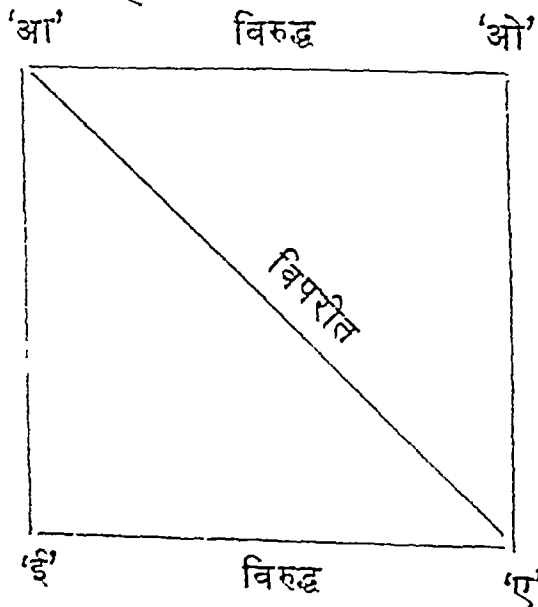
पहले वर्ग की अपेक्षा अरस्तू के वर्ग मे निम्नलिखित विशेषताये है—

(१) उपाश्रितता को विरोध का रूप नही माना गया है।

(२) अनुवैपरीत्य को भी विरोध का रूप नहीं माना गया है क्योकि कभी-कभी ऐसा भी होता है कि 'ई' (I) तथा 'ओ' (O) तर्कवाक्य दोनो सत्य भी हो सकते है। यथा— यह तर्कवाक्य कि 'कुछ मनुष्य ईमानदार है' तथा 'कुछ मनुष्य ईमानदार नही है' दोनो सत्य है। अत. अरस्तू (Aristotle) के अनुसार, 'विरोध' का अर्थ यह है कि दोनो तर्कवाक्य एक ही समय मे सत्य नहीं है।

(३) अरस्तू केवल वैपरीत्य तथा विरुद्धता को ही विरोध मानता है। अरस्तू के वर्ग मे विपरीत-विरोध वर्ग के विकर्ण द्वारा प्रदर्शित किया गया है और विरुद्धता वर्ग की दो सम्मुख भुजाओ से प्रदर्शित है।

प्रश्नमाला ९

(१) तर्कवाक्यो के विरोध से आप क्या समझते है ? यदि निम्नलिखित तर्कवाक्य असत्य हो तो कौन से तर्कवाक्य सत्य, अथवा सन्देहजनक समझे जा सकते है—

'कुछ सुखी मनुष्य असन्तुष्ट है।'

(२) 'सब चमकनेवाली वस्तुये स्वर्ण नही है।' इस तर्कवाक्य के सत्य से विभिन्न प्रकार के विरोधो के द्वारा क्या अनुमान निकाले जा सकते है ? क्या उपाश्रितता विरोध का ही एक प्रकार है ?

(३) विरोध का साधारण वर्ग खीचिये तथा उसका स्पष्टीकरण कीजिये। यह अरस्तू के विरोध-वर्ग से किस प्रकार भिन्न है ?

(४) उपाश्रितता एव अनुवैपरीत्य का अन्तर स्पष्ट कीजिये।

(५) निम्नाकित तर्कवाक्यो का पारस्परिक तार्किक सम्बन्ध बतलाइए—

(क) अच्छे मनुष्य चतुर है।

(ख) अचतुर मनुष्य अच्छे नही है।
(ग) कुछ अचतुर मनुष्य अच्छे हैं।
(घ) कोई भी अच्छा मनुष्य अचतुर नही है।

EXERCISE IX

1. What do you understand by Opposition of Propositions? What propositions can be inferred as true, false or doubtful, if the following proposition is false.—

'Some happy men are discontented.'

2 'All is not gold that glitters' What inferences follow by the various kinds of Opposition from the truth of the above proposition? Is Subalternation a kind of Opposition?

3. Draw the common square of Opposition and explain it How does it differ from Aristotle's square of Opposition?

4 Distinguish between Subalternation and Subcontrary Opposition

5 State the logical relation to each other of the following propositions —

(a) Good men are wise
(b) Unwise men are not good
(c) Some unwise men are good
(d) No good men are unwise

दशम प्रकरण

अनन्तरानुमान

(Immediate Inference)

§१. अनुमान (Inference) का स्वरूप : निगमनमूलक (Deductive) तथा आगमनमूलक (Inductive) : अनन्तरानुमान (Immediate) तथा सान्तरानुमान (Mediate) ।

क्या अनन्तरानुमान वास्तव में अनुमान है ?

§२. परिवर्तन (Conversion) ।

टिप्पणी १ : क्या 'आ' तर्कवाक्य का सरल परिवर्त्तन हो सकता है ?

टिप्पणी २ : निषेध द्वारा परिवर्तन (Conversion by Negation) ।

टिप्पणी ३ . प्रतिलोम-सम्बन्ध द्वारा अनुमान (Inference by Converse Relation)।

§३ प्रतिवर्तन (Obversion) ।

टिप्पणी भौतिक प्रतिवर्तन (Material Obversion) ।

§४. परिवर्तित-प्रतिवर्तन (Contraposition) ।

टिप्पणी १ · परिवर्तित-प्रतिवर्तन अनन्तरानुमान का एक मिश्र रूप है ।

टिप्पणी २ : परिवर्तित-प्रतिवर्तन प्रतिवर्तित-परिवर्तन से भिन्न है ।

§५. विपर्यय (Inversion) ।

टिप्पणी अनन्तरानुमान के मुख्य रूपो की तुलनात्मक तालिका ।

§६. विरोध (Opposition) ।

§१ अनुमान (Inference) का स्वरूप : निगमन-मूलक (Deductive) तथा आगमनमूलक (Inductive): अनन्तरानुमान (Immediate) तथा सान्तरानुमान (Mediate)

अनुमिति को भाषा में व्यक्त करने से उसे 'युक्ति' कहते हैं।

अनुमान (Inference) या **तर्क** (Reasoning) उस **क्रिया** को कहते हैं जिसमे हम एक या अनेक तर्कवाक्यो के आधार पर उनके परामर्श से किसी अन्य तर्कवाक्य पर पहुँचते है। इस क्रिया के **परिणाम** को 'अनुमिति' (an inference) कहते हैं। अत. अनुमिति मे एक से अधिक तर्कवाक्यो की आवश्यकता पडती है। जब उसे भाषा मे व्यक्त करते है तो वह एक **युक्ति** कहलाती है। अत प्रत्येक युक्ति (Argument) मे एक से अधिक तर्कवाक्य होते है।

युक्ति में आश्रयवाक्य तथा निष्कर्ष होते हैं।

प्रत्येक युक्ति मे हम एक या अनेक तर्कवाक्यो के आधार पर एक नए तर्कवाक्य पर पहुँच जाते है। जो तर्कवाक्य विदित होते है, उन्हे **आश्रय वाक्य** (Premises) तथा जो तर्कवाक्य उनके आधार पर प्राप्त किया जाता है, उसे **निष्कर्ष** (Conclusion) कहते है। अत. अनुमान मे हम विदित तर्कवाक्यो के आधार पर ऐसे नवीन और अविदित तर्कवाक्य पर पहुँचते है, जो अनिवार्यत: विदित तर्कवाक्य से फलित होता है।

अनुमान का विभाग निगमनमूलक (Deductive) और आगमनमूलक (Inductive) अनुमान मे किया जाता है। **निगमनमूलक अनुमान** (Deductive Inference) मे निष्कर्ष आश्रयवाक्यो से अधिक व्यापक नही होता और **आगमन मूलक** (Inductive) अनुमान मे निष्कर्ष आश्रय वाक्यो से अधिक व्यापक होता है।

अनुमान निगमन-मूलक तथा आगमन-मूलक होते हैं।

निगमनमूलक अनुमान के पुन दो विभाग किये जाते हैं—(१) **अनन्तरानुमान** (Immediate Inference) तथा (२) **सान्तरानुमान** (Mediate Inference)।

निगमनमूलक अनुमान के दो उपविभाग हैं:

अनन्तरानुमान (Immediate Inference) उस निगमन-मूलक (Deductive) अनुमान को कहते हैं जिसमें निष्कर्ष केवल एक आश्रयवाक्य (Premise) से प्राप्त होता है। अनन्तरानुमान मे दिए हुए तर्कवाक्य का अर्थ खोल कर स्पष्ट कर दिया जाता है। यह निगमनमूलक अनुमान का उप-विभाग है, इस कारण इसका निष्कर्ष आश्रयवाक्य (Premise) से अधिक व्यापक नही हो सकता। **सान्तरानुमान** (Mediate Inference) में निष्कर्ष एक से अधिक तर्कवाक्यों से फलित होता है। जब केवल दो ही आश्रयवाक्य होते है और उन्हे सम्मिलित रूप मे रखने से निष्कर्ष प्राप्त होता है तो उसे 'न्यायवाक्य' या सिलोजिज्म (Syllogism) कहते हैं।

१. अनन्तरानुमान में एक आश्रय से निष्कर्ष प्राप्त होता है; और

२. सान्तरानुमान में एक से अधिक आश्रयो से निष्कर्ष प्राप्त होता है।

क्या अनन्तरानमान वास्तव मे अनुमान है ?

कुछ न्यायशास्त्री, यथा मिल (Mill), बेन (Bain) इत्यादि यहाँ तक कह डालते है कि अनन्तरानुमान वास्तव मे अनु-मान है ही नही। मिल (Mill) उन्हे **'अनुचित रीति से कहे जानेवाले अनुमान'** मानता है। उसका कहना है कि "इन सब दशाओ मे, वास्तव मे कोई अनुमान नही होता—आश्रयवाक्य मे पहले

क्या अनन्तरानुमान वास्तव में अनुमान है ?

से ही व्यक्त बात के सिवा कुछ भी नही . . . निष्कर्ष मे प्रतिपादित बात मूल तर्कवाक्य मे व्यक्त बात अथवा उसका कोई अश ही है।" बेन (Bain) का कहना है कि "इन सब दशाओ मे कभी भी उचित अनुमान (अर्थात् विदित बात मे किसी अविदित और नई बात पर पहुँचना) नही होता। **एक ही बात को एक प्रकार से शब्दो में व्यक्त न करके उसे दूसरे शब्दो में व्यक्त कर दिया जाता है।"** प्रतिवर्तन (Obversion) का एक उदाहरण देखिये। यह तर्कवाक्य कि 'सब मनुष्य मर्त्य हैं' प्रतिवर्तन के बाद यह हो जाता है . 'कोई भी मनुष्य अमर्त्य नही हैं।' स्पष्ट है कि प्रतिवर्तित तर्कवाक्य आश्रय वाक्य का ही बदला हुआ रूप है।

यह सत्य है कि अनन्तरानुमान मे आश्रयवाक्य से निष्कर्ष तक का कदम बहुत छोटा है, परन्तु यह कहना सत्य नही है कि वह कोई कदम ही नही है। अनन्तरानुमान का मुख्य उद्देश्य दिए हुए तर्कवाक्य का पूर्ण आशय व्यक्त करना है। अत वह **आश्रय में निहित** (implicit) **बात को व्यक्त** (explicit) **करता है।** मूल तर्कवाक्य विदित हो सकता है, परन्तु उसका पूर्ण आशय विदित नही होता। इस दृष्टिकोण से अनन्तरानुमान मे हम विदित तथ्य से अविदित तथ्य की ओर अग्रसर होते हैं।

अनन्तरानुमान के विभिन्न प्रकार

अनन्तरानुमान अनेक प्रकार का होता है—यथा, **परिवर्तन** (Conversion), **प्रतिवर्तन** (Obversion), **परिवर्तित-प्रतिवर्तन** (Contraposition), **विपर्यय** (Inversion)—**आंशिक** (Partial) तथा **पूर्ण** (Complete), **विरोध** (Opposition), **विध्याश्रित अनुमान** (Modal Consequence), **सम्बन्ध-विलोमात्मक अनुमान** (Change of Relation), **विशेषण संयोगानुमान** (Inference by Added Determinants) तथा **मिश्र-धारणानुमान** (Inference by Complex Conception)। इनमे से प्रथम चार अर्थात्

परिवर्तन, प्रतिवर्तन, परिवर्तित-प्रतिवर्तन तथा विपर्यय को **'पृथक्-भाव'** (Eductions) कहते हैं।

'पृथक्-भाव' (Eductions) अनन्तरानुमान के उन रूपो को कहते हैं, जिनमे दिए हुए तर्कवाक्य को सत्य मानकर उससे एक ऐसे तर्कवाक्य को प्राप्त करते हैं जिसका उद्देश्य या विधेय या दोनो ही दिये हुए तर्कवाक्य से भिन्न हो। अब हम प्रत्येक पर अलग-अलग विचार करेंगे।

§२. परिवर्तन (Conversion)

परिवर्तन की परिभाषा

परिवर्तन (Conversion) **उस अनन्तरानुमान को कहते है जिसमे किसी तर्कवाक्य के उद्देश्य तथा विधेय का समुचित स्थान-परिवर्तन कर दिया जाता है।**

दिया हुआ तर्कवाक्य जिसमे परिवर्तन किया जाता है, **परिवर्त्य** (Convertend) कहलाता है तथा उसके आधार पर जो निष्कर्ष निकाला जाता है, उसे **परिवर्तित** (Converse) कहते हैं।

परिवर्तन के नियम

परिवर्तन (Conversion) के **नियम** निम्नलिखित है —

(१) परिवर्त्य (Convertend) का **उद्देश्य** परिवर्तित (Converse) का विधेय हो जाता है।

(२) परिवर्त्य का **विधेय** परिवर्तित का उद्देश्य हो जाता है।

(३) परिवर्त्य तथा परिवर्तित का **गुण** (Quality) एक-सा रहता है। अर्थात् यदि परिवर्त्य स्वीकारात्मक हो तो परिवर्तित भी स्वीकारात्मक होता है और यदि परिवर्त्य निषेधात्मक हो तो परिवर्तित भी निषेधात्मक होता है।

(४) कोई भी पद (term) परिवर्तित मे तब तक **व्याप्त** नही होता जब तक कि वह परिवर्त्य में व्याप्त न हो।

अब हम इन नियमो का चारो प्रकार के तर्कवाक्यो में प्रयोग करेंगे।

'आ' : 'ई'

(१) **'आ' (A) का परिवर्तन :—'आ' (A) का परिवर्तित 'ई' (I) होता है।** परिवर्तन के नियमो के अनुसार परिवर्तित का गुण वैसा ही रहना चाहिए। अत 'आ' का परिवर्तित स्वीकारात्मक होना चाहिए, अर्थात् वह या तो 'आ' (A) होगा अथवा 'ई' (I) होगा। परन्तु 'आ' (A) का परिवर्तित 'आ' (A) नही हो सकता क्योकि परिवर्तित का विधेय परिवर्त्य मे व्याप्त न होते हुए भी, उसमे व्याप्त हो जायेगा। अत. परिवर्तित 'ई' (I) होना चाहिये। यथा—

परिवर्त्य	सब 'उ' 'वि' है।	सब मनुष्य मर्त्य है।
परिवर्तित	कुछ 'वि' 'उ' है।	कुछ मर्त्य (व्यक्ति) मनुष्य है।

(२) **'ए' (E) का परिवर्तन :—**

'ए' : 'ए'

'ए' (E) तर्कवाक्य का परिवर्तन 'ए' (E) ही होता है। 'ए' (E)-तर्कवाक्य निषेधात्मक होता है। अत उसका परिवर्तित भी निषेधात्मक होगा। 'ए' का परिवर्तित 'ए' ही निकाला जाय तो पद-व्याप्ति के किसी नियम का उल्लघन नही होता; क्योकि परिवर्त्य मे उद्देश्य तथा विधेय दोनो व्याप्त होते है। अत. वे परिवर्तित मे भी व्याप्त हो सकते है। यथा—

परिवर्त्य	कोई भी 'उ' 'वि' नही है।	कोई भी मनुष्य पूर्ण नही है।
परिवर्तित	कोई भी 'वि' 'उ' नही है।	कोई भी पूर्ण (व्यक्ति) मनुष्य नही है।

(३) **'ई' (I) का परिवर्तन :**

'ई' : 'ई'

'ई' (I) तर्कवाक्य का परिवर्तन भी 'ई' (I) होता है। 'ई' (I) तर्कवाक्य स्वीकारात्मक होने के कारण उसका परिवर्तित भी स्वीकारात्मक होगा। और 'ई' (I) तर्कवाक्य मे न

तो उद्देश्य और न विधेय व्याप्त होता है। अत 'ई' (I) का परिवर्तित 'ई' (I) ही होगा। यथा—

परिवर्त्य . कुछ 'उ' 'वि' है। कुछ मनुष्य चतुर है।
परिवर्तित कुछ 'वि' 'उ' है। कुछ चतुर (व्यक्ति) मनुष्य है।

(४) 'ओ' (O) का परिवर्तन :

'ओ' का परिवर्तन नही होता

'ओ' (O) तर्कवाक्य का परिवर्तन नही होता। 'ओ' (O) तर्कवाक्य निपेधात्मक होता है। अत उसका परिवर्तित, यदि कोई हो, तो निषेधात्मक होगा और ऐसी दशा मे उसका विधेय व्याप्त (distiibuted) हो जायगा। परन्तु वह व्याप्त नही हो सकता क्योकि वह परिवर्त्य मे, उद्देश्य होने के कारण अव्याप्त (undistributed) है। अत 'ओ' (O) का परिवर्तन नही हो सकता।

सक्षेप मे, **परिवर्तन करने पर, 'आ' (A) से 'ई' (I), 'ए' (E) से 'ए' (E), 'ई' (I) से 'ई' (I), प्राप्त होता है, परन्तु 'ओ' (O) से कोई निष्कर्ष नही निकलता।**

दो प्रकार का परिवर्तन

परिवर्तन दो प्रकार का होता है, यथा—सरल परिवर्तन (Simple Conversion) तथा असरल परिवर्तन (Conversion per accidens या Conversion by limitation)। **सरल परिवर्तन** मे परिवर्तित का परिमाण परिवर्त्य के परिमाण के समान होता है, अर्थात् यदि परिवर्त्य सार्वलौकिक (सामान्य) हो, तो परिवर्तित भी सार्वलौकिक (सामान्य) होगा। और यदि परिवर्त्य विशेष हो तो परिवर्तित भी विशेप होगा। अत 'ए' (E) तथा 'ई' (I) तर्कवाक्य का सरल परिवर्तन (Simple Conversion) होता है। **असरल परिवर्तन** (Conversion per accidens) मे परिवर्तित का परिमाण परिवर्त्य के परिमाण से भिन्न होता है, अर्थात् परिवर्त्य सार्वलौकिक

होता है, परन्तु परिर्वातत विशेप है। अत 'आ' (A) तर्कवाक्य का, 'ई' (I) मे परिवर्तन असरल परिवर्तन है।

टिप्पणी १. क्या 'आ' (A) तर्कवाक्य का सरल परिवर्तन हो सकता है ?

सामान्यतया 'आ' तर्कवाक्य का सरल परिवर्तन नहीं होता, परन्तु

सरल-परिवर्तन (Simple Conversion) मे परिर्वातत का परिमाण (Quantity) परिवर्त्य के परिमाण के समान होता है। अत 'आ' (A) तर्कवाक्य का सरल परिवर्तन तव हो सकता है जव हम उसके परिवर्तन के बाद 'आ' (A) तर्कवाक्य ही फलित कर सके। साधारणतया यह सभव नही होता क्योकि यदि परिर्वातत भी 'आ' (A) तर्कवाक्य होगा तो उसका उद्देश्य व्याप्त हो जाएगा, यद्यपि वह पद परिवर्त्य मे, विधेय होने के कारण, व्याप्त नही होगा। अत साधारणतया 'आ' तर्कवाक्य का सरल परिवर्तन नही हो सकता।

यदि उद्देश्य तथा विधेय का निर्देश समान हो तो 'आ'-तर्कवाक्य का सरल परिवर्तन हो सकता है।

परन्तु कुछ विशेष प्रकार के 'आ' (A) तर्कवाक्य ऐसे भी होते है जिनमे **उद्देश्य और विधेय का समान निर्देश होता है।** तब उनका सरल परिवर्तन हो सकता है। अतः 'आ' (A) तर्कवाक्य का सरल परिवर्तन तब हो सकता है जब कि उद्देश्य और विधेय दोनो निश्चित विशिष्ट पद (definite singular terms) हो अथवा जब तर्कवाक्य **परिभाषा** (definitions) अथवा **पुनरुक्ति-कथन** हो। यथा—

(१) 'आ'। एवरेस्ट सर्वोच्च पर्वत है।
परिर्वातत 'आ'। सर्वोच्च पर्वत एवरेस्ट है।

(२) 'आ'। सब मनुष्य विचारशील प्राणी है।
परिर्वातत 'आ'। सब विचारशील प्राणी मनुष्य है।

(३) 'आ'। सब मानव मानवीय प्राणी है।
परिर्वातत 'आ'। सब मानवीय प्राणी मानव है।

इन 'आ' तर्कवाक्यो का परीक्षण करने पर विदित होता है कि उनके **उद्देश्य तथा विधेय समान 'निर्देश' रखते है।** यह बात स्मरणीय है कि **हैमिल्टन** (Hamilton) ने अपने 'विधेय-परिमाण के सिद्धान्त' (Quantification of the Predicate) मे ऐसे 'आ' (A) तर्कवाक्यो को 'यू (U) तर्कवाक्य कहा है। अतः यह कहा जा सकता है कि **'आ'-तर्कवाक्य का**

तो नही, परन्तु 'यू' (U) तर्कवाक्यों का सरल परिवर्तन हो सकता है।

टिप्पणी २. निषेध द्वारा परिवर्तन (Conversion by Negation).

'ओ' (O) तर्कवाक्य का परिवर्तन ।

यदि 'ओ' तर्कवाक्य का परिवर्तन (Conversion) करने का प्रयत्न किया जाय तो पद-व्याप्ति के नियमो का उलघन हो जाता है। अत कुछ तर्कशास्त्रियो ने 'ओ' तर्कवाक्य के निषेध के चिह्न को विधेय मे स्थानान्तरित करके उसे 'ई' (I) तर्कवाक्य का रूप देकर पदो मे स्थान परिवर्तन करने की चेष्टा की है। यथा—

'ओ' तर्कवाक्यो का परिवर्तन निषेध के चिह्न को विधेय मे स्थानान्तरित करने पर हो जाता है।

	'ओ' (O)	कुछ 'उ' 'वि' नही है।	कुछ मनुष्य चतुर नही है।
∴	'ई' (I)	कुछ 'उ' अ-'वि' है।	कुछ मनुष्य अचतुर है।
∴	'ई' (I)	कुछ अ-'वि' 'उ' है।	कुछ अचतुर (व्यक्ति) मनुष्य है।

इस प्रकार की युक्ति को परिवर्तन (Conversion) कहा ही नही जा सकता क्योकि पहले तो निष्कर्ष का गुण दिए हुए तर्कवाक्य के गुण से भिन्न है, और दूसरे, निष्कर्ष का उद्देश्य आश्रयवाक्य (premise) का विधेय न होकर उसके विरुद्ध (contradictory) तर्कवाक्य का विधेय है।

टिप्पणी ३ : प्रतिलोम सम्बन्ध द्वारा अनुमान (Inference by Converse Relation)

जब किसी तर्कवाक्य के उद्देश्य तथा विधेय परस्पर सापेक्ष पद हो, तो इस प्रकार का परिवर्तन सभव हो सकता है। यथा—

जब उद्देश्य तथा विधेय सापेक्ष हो

राम सीता के पति थे।
∴ सीता राम की पत्नी थी।

इस उदाहरण मे 'पति' तथा 'पत्नी' परस्पर सापेक्ष पद (relative terms) है। इसमे उद्देश्य और विधेय का

स्थान परिवर्तन कर दिया गया है और तदनुसार सम्बन्ध-चिह्न भी वदल दिया गया है।

§ ३. प्रतिवर्तन (Obversion)

प्रतिवर्तन की परिभाषा

प्रतिवर्तन (Obversion) उस अनन्तरानुमान को कहते है, जिसमें दिए हुए तर्कवाक्य के गुण में इस प्रकार अन्तर कर दिया जाता है कि अर्थ वही रहे। दूसरे शब्दों मे, प्रतिवर्तन मे, स्वीकारात्मक तर्कवाक्य का समानार्थी निषेधात्मक तर्कवाक्य प्राप्त किया जाता है अथवा निषेधात्मक तर्कवाक्य का समानार्थी स्वीकारात्मक तर्कवाक्य प्राप्त किया जाता है।

जिस दिये हुए तर्कवाक्य का प्रतिवर्तन (Obversion) करना होता है, उसे **प्रतिवर्त्य** (Obvertend) तथा निष्कर्ष को '**प्रतिवर्तित**' (Obverse) कहते है।

नियम

प्रतिवर्तन के नियम निम्नलिखित है—

(१) प्रतिवर्त्य तथा प्रतिवर्तित का उद्देश्य समान होता है।

(२) प्रतिवर्तित का **विधेय** प्रतिवर्त्य के विधेय का विरुद्ध (contradictory) होता है।

(३) प्रतिवर्तित का **गुण** प्रतिवर्त्य के गुण का उलटा होता है। अर्थात् यदि प्रतिवर्त्य स्वीकारात्मक हो तो प्रतिवर्तित निषेधात्मक होता है, तथा यदि प्रतिवर्त्य निषेधात्मक हो तो प्रतिवर्तित स्वीकारात्मक होता है।

(४) प्रतिवर्तित का **परिमाण** (Quantity) प्रतिवर्त्य के परिमाण के तुल्य होता है। अर्थात् यदि प्रतिवर्त्य सार्वलौकिक (सामान्य) हो, तो प्रतिवर्तित भी सार्वलौकिक (सामान्य) होगा और यदि प्रतिवर्त्य विशेष हो तो प्रतिवर्तित भी विशेष होगा।

(१) 'आ' (A) का प्रतिवर्तन

'आ' : 'ए'

'आ' (A) का प्रतिवर्तन 'ए' (E) होता है। यथा—

प्रतिवर्त्य, 'आ' (A) · सब 'उ' 'वि' है। सब मनुष्य मर्त्य है।

प्रतिवर्तित, 'ए' (E) कोई भी 'उ' अ-'वि' नही है। कोई भी मनुष्य अमर्त्य नही है।

यहाँ यह बात द्रष्टव्य है कि प्रतिवर्त्य स्वीकारात्मक है तथा प्रतिवर्तित निषेधात्मक है। दिए हुए विधेय का विरुद्ध (contradictory) पद निष्कर्ष का विधेय बना है तथा उद्देश्य वही है और गुण मे भी भेद नही हुआ है।

(२) 'ए' (E) का प्रतिवर्तन .

'ए' : 'आ'

'ए' (E) **का प्रतिवर्तन 'आ'** (A) है।

प्रतिवर्त्य 'ए' : कोई भी 'उ' 'वि' नही है। कोई भी मनुष्य पूर्ण नही है।
प्रतिवर्तित 'आ' सब 'उ' अ-'वि' है। सब मनुष्य अपूर्ण है।

(३) 'ई' (I) का प्रतिवर्तन :

'ई' : 'ओ'

'ई' (I) **का प्रतिवर्तन 'ओ'** (O) होता है। यथा—

प्रतिवर्त्य 'ई' कुछ 'उ' 'वि' है। कुछ मनुष्य योग्य है।
प्रतिवर्तित 'ओ' कुछ 'उ' 'अ-वि' नही है। कुछ मनुष्य अ-योग्य नही है।

(४) 'ओ' (O) का प्रतिवर्तन .

'ओ' : 'ई'

'ओ' (O) **का प्रतिवर्तन 'ई'** (I) होता है। यथा—

प्रतिवर्त्य 'ओ' · कुछ 'उ' 'वि' नही है। कुछ मनुष्य चतुर नही है।
प्रतिवर्तित 'ई' कुछ 'उ' अ-'वि' है। कुछ मनुष्य अ-चतुर है।

साराश मे, **प्रतिवर्तन से, 'आ'** (A) **से 'ए'** (E), **'ए'** (E) **से 'आ'** (A); **'ई'** (I) **से 'ओ'** (O) **तथा 'ओ'** (O) **से 'ई'** (I) **निष्कर्ष प्राप्त होता है।**

टिप्पणी भौतिक प्रतिवर्तन (Material Obversion)

भौतिक प्रतिवर्तन

बेन (Bain) का विचार है कि उपर्युक्त आकारगत प्रतिवर्तन की क्रियाओ के अतिरिक्त 'ऐसा प्रतिवर्तन भी होता

आकारगत क्रिया नहीं है, वरन अनुभवजन्य है।

है, जिसे तर्कवाक्यो की विषयवस्तु (Matter) का परीक्षण करने के वाद ही समझा जा सकता है।' यथा—

(१) गरमाहट अच्छी है।
∴ ठडक वुरी है।

(२) युद्ध से वुराई वढती है।
∴ शान्ति से भलाई वढ़ती है।

(३) ज्ञान अच्छा होता है।
अज्ञान वुरा होता है।

(४) प्रसन्न व्यक्तियो का हृदय सुखदायी होता है।
∴ अप्रसन्न व्यक्तियो का हृदय दुखदायी है।

स्वयं बेन (Bain) ही इस वात को मानता है कि इस प्रकार का प्रतिवर्तन आकारगत प्रतिवर्तन से पूर्णरूपेण भिन्न है। इसमे प्रतिवर्तन के किसी भी नियम का पालन नही किया गया है। प्रतिवर्तन मे प्रतिवर्त्य तथा प्रतिवर्तित का उद्देश्य समान होना चाहिए परन्तु इसमे वह विपरीत (contrary) है। प्रतिवर्तन मे दिए हुए तर्कवाक्य के विधेय का विरुद्ध (contradictory) निष्कर्ष का विधेय वनता है, परन्तु यहाँ दोनो विधेय परस्पर विपरीत (contrary) है, विरुद्ध (contradictory) नही। प्रतिवर्तन मे, प्रतिवर्तित का गुण दिए हुए तर्कवाक्य के गुण का उलटा होता है परन्तु यहाँ दोनो का गुण समान है। अत इस प्रकार का अनुमान आकारगत अनुमान न होकर वस्तुगत अनुमान है जो कि हमारे अनुभव और ज्ञान पर आधारित है, अत. वह निगमनमूलक तर्कशास्त्र का पाठ्यविषय नही हो सकता।

§४. परिवर्तित-प्रतिवर्तन (Contraposition)

परिवर्तित-प्रतिवर्तन की परिभाषा

परिवर्तित-प्रतिवर्तन (Contraposition) उस अनन्तरानुमान को कहते है, जिसमें दिए हुए तर्कवाक्य से निष्कर्ष के

रूप में एक ऐसा तर्कवाक्य प्राप्त करते है, जिसका उद्देश्य दिए हुए विधेय का विरुद्ध (contiadictoiy) हो।

परिवर्तित-प्रतिवर्तन (Contraposition) के नियम निम्नलिखित है—

नियम

(१) निष्कर्ष का उद्देश्य दिये हुए तर्कवाक्य के विधेय का विरुद्ध होता है।

(२) निष्कर्ष का विधेय दिये हुए तर्कवाक्य का उद्देश्य होता है।

(३) गुण बदल जाता है। अर्थात् यदि दिया हुआ तर्कवाक्य स्वीकारात्मक है, तो निष्कर्ष निषेधात्मक होता है, और यदि दिया हुआ तर्कवाक्य निषेधात्मक है तो निष्कर्ष स्वीकारात्मक होता है।

(४) कोई भी पद, जो दिए हुए तर्कवाक्य मे व्याप्त न हो, निष्कर्ष मे भी व्याप्त नही हो सकता। जब इस प्रकार की अनियमित व्याप्ति नही होती, तो निष्कर्ष का परिमाण वही होता है जो दिए हुए तर्कवाक्य का परिमाण होता है। परन्तु जब ऐसी अनियमित व्याप्ति की सभावना होती है, तो ऐसा भी हो जाता है कि आश्रय वाक्य के सार्वलौकिक होने पर भी निष्कर्ष विशेष हो जाता है।

परिवर्तित-प्रतिवर्तन अनन्तरानुमान का एक मिश्र-रूप है जिसमे परिवर्तन और प्रतिवर्तन दोनो की ही क्रियाये सम्मिलित है। परिवर्तित-प्रतिवर्तन का सुगम नियम यह है

पहले प्रतिवर्तन फिर परिवर्तन

'पहले प्रतिवर्तन करो फिर परिवर्तन।'

(Fiist obvert, then convert)

(१) 'आ' (A) का परिवर्तित-प्रतिवर्तन .

'आ' : 'ए'

यदि 'आ' (A) तर्कवाक्य का परिवर्तित-प्रतिवर्तन (Contraposition) किया जाय तो पहले प्रतिवर्तन (Obversion)

करने से 'ए' (E) आयेगा। फिर 'ए' (E) का परिवर्तन (Conversion) करने से 'ए' (E) आएगा। अतः **'आ' का परिवर्तित-प्रतिवर्तन 'ए' (E) होता है।** यथा—

'आ' सब 'उ' 'वि' है। (१)
∴ प्रतिवर्तित 'ए' कोई भी 'उ' अ-'वि' नही है। (२)
∴ (२) का परिवर्तित 'ए' कोई भी अ-'वि' 'उ' नही है। (३)
(१) का परिवर्तित-प्रतिवर्तन।

(२) 'ए' का परिवर्तित-प्रतिवर्तन।

'ए' : 'ई'

'ए' (E) का प्रतिवर्तन करने पर 'आ' (A) आता है तथा 'आ' (A) का परिवर्तन होने पर 'ई' (I) होता है। **अतः 'ए' (E) का परिवर्तित-प्रतिवर्तन 'ई' (I) होता है।** यथा—

'ए' कोई भी 'उ' 'वि' नही है। (१)
∴ प्रतिवर्तित 'आ' सब 'उ' अ-'वि' है। (२)
∴ (२) का परिवर्तित 'ई' कुछ अ-'वि' 'उ' है। (३)
(१) का परिवर्तित-प्रतिवर्तन।

इसमे दिया हुआ तर्कवाक्य सार्वलौकिक है परन्तु उसका परिवर्तित प्रतिवर्तन विशेष है क्योकि यदि हम निष्कर्ष सार्वलौकिक निकालें तो उद्देश्य अ-'वि' व्याप्त करना होगा, परन्तु वह आश्रय (२) मे व्याप्त नही है।

(३) 'ई' का परिवर्तित-प्रतिवर्तन।

'ई' का नहीं होता

'ई' (I) तर्कवाक्य का प्रतिवर्तन करने पर 'ओ' (O) आता है, परन्तु 'ओ'-तर्कवाक्य का परिवर्तन नही हो सकता। **अतः 'ई' का परिवर्तित-प्रतिवर्तन नही होता।**

(४) 'ओ' का परिवर्तित-प्रतिवर्तन।

'ओ' का 'ई'

'ओ' (O) तर्कवाक्य का प्रतिवर्तन करने पर 'ई' (I) तर्कवाक्य आता है, उसका पुन परिवर्तन करने पर 'ई' होता है। अत. 'ओ' का परिवर्तित-प्रतिवर्तन 'ई' होता है। यथा—

'ओ' कुछ 'उ' 'वि' नही है। (१)
∴ प्रतिवर्तित 'ई' कुछ 'उ' अ-'वि' है। (२)
∴ (२) का परिवर्तित 'ई' कुछ अ-'वि' 'उ' है। (३)
(१) का परिवर्तित-प्रतिवर्तन।

सारांश—परिवर्तित-प्रतिवर्तन करने से, 'आ' (A) से 'ए' (E); 'ए' (E) से 'ई' (I) ; 'ओ' (O) से 'ई' (I) निष्कर्ष प्राप्त होता है परन्तु 'ई' (I) का परिवर्तित-प्रतिवर्तन नही होता।

टिप्पणी १ : परिवर्तित-प्रतिवर्तन अनन्तरानुमान का मिश्र-रूप है।

परिवर्तित-प्रतिवर्तन अनन्तरानुमान का एक मिश्र-रूप है जिसमें निष्कर्ष पहले प्रतिवर्तन तथा फिर प्रतिवर्तित का परिवर्तन करने से प्राप्त होता है।

किसी तर्कवाक्य का परिवर्तित-प्रतिवर्तन उसे पहले प्रतिवर्तित करने तथा फिर परिवर्तित करने पर प्राप्त होता है। अब हम यह देखेगे कि क्या ऊपर लिखे परिवर्तित-प्रतिवर्तन के नियमो से तुरन्त निष्कर्ष पर पहुँच सकते है ?

पहले हम 'आ' और 'ओ' तर्कवाक्यो को लेगे।

(१) 'आ' सब 'उ' 'वि' है।
∴ 'ए' कोई भी अ-'वि' 'उ' नही है।

(२) 'ओ' कुछ 'उ' 'वि' नही है।
∴ 'ई' कुछ अ-'वि' 'उ' है।

इन दोनो दशाओ मे हम परिवर्तित-प्रतिवर्तन के नियमो के अनुसार तुरन्त निष्कर्ष पर पहुँच जाते है। इस प्रकार, (१) निष्कर्ष का उद्देश्य दिए हुए विधेय का विरुद्ध है, (२) निष्कर्ष का विधेय दिए हुए तर्कवाक्य का उद्देश्य है, (३) गुण उल्टा है तथा (४) कोई पद निष्कर्ष मे तब तक व्याप्त नही है जब तक कि वह आश्रय मे व्याप्त न हो। यह बात द्रष्टव्य है कि 'आ' (A) का परिवर्तित-प्रतिवर्तन करने पर निष्कर्ष का उद्देश्य (अ-'वि') व्याप्त है। परन्तु यह पद दिये हुए तर्कवाक्य मे है ही नही, अत उसके निष्कर्ष मे व्याप्त होने की बात को हम अपवाद (exception) मान सकते है।

अब 'ए' (E) तर्कवाक्य को देखिए। परिवर्तित-प्रतिवर्तन

के नियमो का उपयोग करने से हम निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुँचते है।

'ए' (E) · कोई भी 'उ' 'वि' नही है।
∴ 'आ' (A) सब अ-'वि' 'उ' है।

निष्कर्ष पर 'अ-वि' व्याप्त है। परन्तु यह पद दिए हुए तर्कवाक्य मे नही है, अत इसे अनियमित व्याप्ति नहीं कहते। परन्तु यह निष्कर्ष वैध नही है जैसा कि दिए हुए तर्कवाक्य को पहले प्रतिवर्तित करके फिर परिवर्तित करने ने पर ज्ञात होगा ·

'ए' (E) कोई भी 'उ' वि' नही है। (१)
∴ प्रतिवर्तित . 'आ' (A) · सब 'उ' अ-वि' है। (२)
∴ (२) का परिवर्तित . 'ई' (I) कुछ अ-'वि' 'उ' है। (३)

यह स्पष्ट है कि यदि हम "सब अ-'वि' 'उ' है" निष्कर्ष मान ले तो ऐसा करने से अनियमित व्याप्ति हो जायेगी, जैसा कि परिवर्तन के नियम से पता चलेगा। अत 'ए' (E) तर्कवाक्य मे शुद्ध निष्कर्ष नियमो के उपयोग से तुरन्त प्राप्त नही होता। इससे सिद्ध होता है कि प्रतिवर्तित-परिवर्तन अनन्तरानुमान का शुद्ध सरल रूप न होकर एक मिश्र-रूप है, जिसमे शुद्ध निष्कर्ष तभी प्राप्त हो सकता है जब पहले हम दिए हुए तर्कवाक्य को प्रतिवर्तित करे और तब उसे परिवर्तित करे।

टिप्पणी २ : परिवर्तित-प्रतिवर्तन (Contrapositive) प्रतिवर्तित-परिवर्तन (Obverted Converse) से भिन्न है।

परिवर्तित-प्रतिवर्तन (Contrapositive) प्रतिवर्तित-परिवर्तन (Obverted Converse) मे भिन्न है। परिवर्तित-प्रतिवर्तन मे हम पहले प्रतिवर्तन करते है, फिर उसका परिवर्तन करते है। परन्तु प्रतिवर्तित-परिवर्तन मे हम पहले

परिवर्तन करते है, फिर उसका प्रतिवर्तन करते है। यथा—

'आ' · सब 'उ' 'वि' है। . (१)

∴ (१) का परिवर्तित . 'ई' कुछ 'वि' 'उ' है। . (१)

(२) का प्रतिवर्तित : 'ओ' कुछ 'वि' अ-'उ' नही है। (३)

(१) का प्रतिवर्तित-परिवर्तन (Obverted Converse)

उसी तर्कवाक्य का परिवर्तित-परिवर्तन (Contraposition) यह होता :—"कोई भी अ-'वि' 'उ' है।"

§५· विपर्यय (Inversion)

विपर्यय

विपर्यय उस अनन्तरानुमान को कहते है जिसमें एक दिए हुए तर्कवाक्य से ऐसा तर्कवाक्य निष्कर्ष मे प्राप्त करते है जिसका उद्देश्य दिए हुए उद्देश्य का विरुद्ध हो।

जिस तर्कवाक्य का विपर्यय किया जाता है, उसे **विपर्येय** (Invertend) और जो निष्कर्ष उससे फलित होता है, उसे **विपर्यस्त** (Inverse) कहते है।

पूर्ण तथा आंशिक विपर्यय

विपर्यय दो प्रकार का होता है—पूर्ण (Complete) तथा आशिक (Partial)। इन दोनो मे यह अन्तर है कि पूर्ण **विपर्यय** मे विपर्यस्त का विधेय दिए हुए विधेय का विरुद्ध होता है। और **आंशिक विपर्यय** मे वियर्यस्त का विधेय दिये हुए विधेय के समान होता है।

विपर्यय के नियम

विपर्यय मे निम्नलिखित **नियमों** का पालन किया जाता है—

(१) विपर्यस्त का **उद्देश्य** विपर्येय के उद्देश्य का विरुद्ध होता है।

(२) आशिक विपर्यय मे दोनो **विधेय** समान होते है, परन्तु पूर्ण विपर्यय मे विपर्यस्त का विधेय विपर्येय के विधेय का विरुद्ध होता है।

(३) विपर्येय का **परिमाण** सार्वलौकिक (Universal) होता है। और विपर्यस्त का परिमाण विशेप (Particular) होता है। अत. **केवल सार्वलौकिक तर्कवाक्यो का ही विपर्यय हो सकता है।**

(४) पूर्ण विपर्यय में, दोनों का गुण समान होता है। परन्तु आंशिक विपर्यय में दोनों का गुण भिन्न होता है।

विपर्यस्त कैसे प्राप्त करें ?

विपर्यय भी परिवर्तन-प्रतिवर्तन की भाँति अनन्तरानुमान का एक मिश्र-रूप है जिसमें प्रतिवर्तन तथा परिवर्तन की क्रियायें सम्मिलित हैं। परिवर्तित प्रतिवर्तन में हम पहले प्रतिवर्तन करते हैं, तब परिवर्तन करते हैं। परन्तु विपर्यय में ऐसा कोई निश्चित नियम नहीं है। विपर्यय में हमारा ध्येय ऐसा साध्य प्राप्त करना है जिसका उद्देश्य दिये हुए उद्देश्य का विरुद्ध हो, इस ध्येय से हम प्रतिवर्तन तथा परिवर्तन की क्रिया तब तक करते रहते हैं जब तक कि वांछित निष्कर्ष नहीं निकल जाता। यदि प्रतिवर्तन से प्रारम्भ करने पर हमारी प्रगति रुक जाती है तो उस क्रिया को छोड़ देते हैं और परिवर्तन की क्रिया से प्रारम्भ करने लगते हैं। यथा—

[१] 'आ' (A) का विपर्यय।

(१) 'आ' : 'ई' (पूर्ण) : 'ओ' (आंशिक)

विपर्येय 'आ' सब 'उ' 'वि' है। ... (१)
∴ (१) का प्रतिवर्तित 'ए' कोई भी 'उ' अ-'वि' नहीं है। (२)
∴ (२) का परिवर्तित 'ए' कोई भी अ-'वि' 'उ' नहीं है। (३)
∴ (३) का प्रतिवर्तित 'आ' सब अ-'वि' अ-'उ' है। ... (४)
∴ (४) का परिवर्तित 'ई' कुछ अ-'उ' अ-'वि' है। ... (५)
(पूर्ण विपर्यस्त।)
∴ (५) का प्रतिवर्तित 'ओ': कुछ अ-'उ' 'वि' नहीं है। (६)
(आंशिक विपर्यस्त।)

यदि हमने परिवर्तन से प्रारम्भ किया होता, तो हमारी प्रगति विपर्यस्त तक पहुँचने से बहुत पहले ही रुक गई होती। अतः हमने प्रतिवर्तन से प्रारम्भ किया। **अतः 'आ' का निष्कर्ष पूर्ण विपर्यय के बाद 'ई' तथा आंशिक विपर्यय के बाद 'ओ' होता है।** यह बात द्रष्टव्य है कि आंशिक विपर्यस्त में 'वि' व्याप्त है, यद्यपि वह विपर्येय में व्याप्त नहीं है। परन्तु परिवर्तन और प्रतिवर्तन की क्रियाओं में कोई त्रुटि न होने के कारण हमारा निष्कर्ष शुद्ध है।

[२] 'ए' (E) का विपर्यय।

(२) 'ए' : 'ओ' (पूर्ण) : 'ई' (आंशिक)

विपर्येय 'ए' कोई भी 'उ' 'वि' नहीं है। (१)
∴ (१) का परिवर्तित 'ए' कोई भी 'वि' 'उ' नहीं है। (२)
∴ (२) का प्रतिवर्तित : 'आ' : सब 'वि' अ-'उ' है। ... (३)

∴ (३) का परिवर्तित : 'ई' कुछ अ-'उ' 'वि है। ... (४)
(आंशिक विपर्यस्त।)

∴ (४) का प्रतिवर्तित 'ओ' कुछ अ-'उ' अ-'वि' नहीं है। (५)
(पूर्ण विपर्यस्त।)

अतः 'ए' (E) **का निष्कर्ष पूर्ण विपर्यय के बाद 'ओ'** (O) **तथा आंशिक-विपर्यय के बाद 'ई'** (I) होता है। यदि हम परिवर्तन से प्रारभ न करके प्रतिवर्तन से प्रारभ करते तो विपर्यस्त पर नहीं पहुँच पाते।

[३] 'ई' (I) का विपर्यय।

(३) 'ई' का विपर्यय नहीं होता

पहले हम प्रतिवर्तन से प्रारभ करेगे।
विपर्यय 'ई' कुछ 'उ' 'वि' है। ... .. (१)
∴ (१) का प्रतिवर्तित 'ओ' कुछ 'उ' 'अ-वि' नहीं है।... (२)
अब इसका परिवर्तन नहीं हो सकता।

अत हम परिवर्तन से प्रारम्भ करेगे।
विपर्यय : 'ई' कुछ 'ई' 'वि' है। ... ... (१)
∴ (१) का परिवर्तित 'ई' कुछ 'वि' 'उ' है। ... ... (२)
∴ (२) का प्रतिवर्तित 'ओ' कुछ 'वि' अ-'उ' नहीं है। (३)
इसका परिवर्तन नहीं हो सकता।

अत हम किसी भी विधि से विपर्यस्त पर नहीं पहुँच सकते।
अतः 'ई' (I) **का विपर्यय नहीं हो सकता।**

[४] 'ओ' (O) का विपर्यय।

(४) 'ओ' का विपर्यय नहीं होता

पहले हम प्रतिवर्तन से प्रारभ करेगे।
विपर्यय 'ओ' कुछ 'उ' 'वि' नहीं है। ... (१)
∴ (१) का प्रतिवर्तित 'ई' कुछ 'उ' अ-'वि' है। ... (२)
∴ (२) का परिवर्तित 'ई' कुछ अ-'वि' 'उ' है। ... (३)
∴ (३) का प्रतिवर्तित 'ओ' कुछ अ-'वि' अ-'उ' नहीं है। (४)
अब इसका परिवर्तन नहीं हो सकता।

अत हम परिवर्तन से प्रारभ करेगे।
विपर्यय 'ओ' कुछ 'उ' 'वि' नहीं है।
इसका परिवर्तन नहीं हो सकता।

अत किसी भी दशा मे विपर्यस्त प्राप्त नहीं होता। अत **'ओ' तर्कवाक्य का विपर्यय नहीं हो सकता।**

साराश—पूर्ण विपर्यय मे, 'आ' (A) से 'ई' (I) और 'ए' (E) से 'ओ' (O) प्राप्त होता है ; आंशिक विपर्यय में 'आ' (A) से 'ओ' (O) तथा 'ए' (E) से 'ई' (I) प्राप्त होता है। परन्तु 'ई' (I) तथा 'ओ' (O) तर्कवाक्यो का विपर्यय नहीं होता।

टिप्पणी—अनन्तरानुमान के मुख्य रूपो की तुलनात्मक तालिका।

	परिवर्तन	प्रतिवर्तन	परिवर्तित-प्रतिवर्तन	आंशिक विपर्यय	पूर्ण विपर्यय
निष्कर्ष का उद्देश्य	=आश्रय का विधेय	=आश्रय का उद्देश्य	=आश्रय के विधेय का विरुद्ध	=आश्रय के उद्देश्य का विरुद्ध	=आश्रय के उद्देश्य का विरुद्ध
निष्कर्ष का विधेय	=आश्रय का उद्देश्य	=आश्रय के विधेय का विरुद्ध	=आश्रय का उद्देश्य	=आश्रय का विधेय	=आश्रय के विधेय का विरुद्ध
निष्कर्ष का परिमाण	'ए' तथा 'ई' मे समान। 'आ' मे भिन्न। 'ओ' मे कोई निष्कर्ष नही।	समान	आ' तथा 'ओ' मे समान। 'ए' मे भिन्न। 'ई' मे कोई निष्कर्ष नही।	विपर्यय—सार्वलौकिक, विपर्यस्त—विशेष।	विपर्यय—सार्वलौकिक; विपर्यस्त—विशेष।
निष्कर्ष का गुण	समान	विरोधी	विरोधी	विरोधी	समान

इस तालिका से विदित होता है कि चारो प्रकार के अनन्तरानुमानों की तुलना निम्नांकित चार दृष्टिकोणो से की जा सकती है--

(१) निष्कर्ष का उद्देश्य ।

परिवर्तन (Conversion) मे, निष्कर्ष का उद्देश्य आश्रय का विधेय होता है। प्रतिवर्तन (Obversion) मे निष्कर्ष का उद्देश्य आश्रय के उद्देश्य के समान होता है, परिवर्तित-प्रतिवर्तन मे, निष्कर्ष का उद्देश्य आश्रय के विधेय का विरुद्ध होता है, और विपर्यय (Inversion) मे निष्कर्ष का उद्देश्य आश्रय के उद्देश्य का विरुद्ध है।

(२) निष्कर्ष का विधेय।

परिवर्तन मे, निष्कर्ष का विधेय आश्रय का उद्देश्य होता है। प्रतिवर्तन मे, निष्कर्ष का विधेय आश्रय के विधेय का विरुद्ध होता है, परिवर्तित-प्रतिवर्तन मे, निष्कर्ष का विधेय आश्रय का उद्देश्य होता है और पूर्ण विपर्यय मे, निष्कर्ष का विधेय आश्रय के विधेय का विरुद्ध होता है तथा आंशिक विपर्यय मे निष्कर्ष का विधेय आश्रय के विधेय के समान होता है।

(३) निष्कर्ष का परिमाण ।

परिवर्तन मे, 'ए' (E) तथा 'ई' (I) मे, निष्कर्ष का परिमाण आश्रय के परिमाण के तुल्य होता है, और आ' (A) मे निष्कर्ष विशेष होता है, जब कि आश्रय सार्वलौकिक होता है। अत परिमाण कभी तो समान होता है, और कभी भिन्न होता है।

प्रतिवर्तन मे, निष्कर्ष का परिमाण आश्रय के परिमाण के समान होता है।

परिवर्तित-प्रतिवर्तन मे, 'आ' (A) तथा 'ओ' (O) मे निष्कर्ष का परिमाण समान होता है परन्तु 'ए' (E) मे निष्कर्ष विशेष होता है, जब कि आश्रय सार्वलौकिक होता है। अत परिमाण कभी तो समान होता है और कभी भिन्न होता है।

विपर्यय मे, निष्कर्ष का परिमाण सर्वदा विशेष होता है तथा आश्रय का परिमाण सर्वदा सार्वलौकिक होता है। अत निष्कर्ष का परिमाण आश्रय के परिमाण से सर्वदा भिन्न होता है।

(४) निष्कर्ष का गुण।

परिवर्तन में, निष्कर्ष का गुण आश्रय के गुण के समान होता है, प्रतिवर्तन में तथा परिवर्तित-प्रतिवर्तन में निष्कर्ष का गुण आश्रय के गुण का विरोधी होता है, पूर्ण विपर्यय में निष्कर्ष का गुण आश्रय के गुण के समान होता है, और आंशिक विपर्यय में निष्कर्ष का गुण आश्रय के गुण का विरोधी होता है।

निम्नलिखित तालिका से ये समस्त परिणाम एक ही दृष्टि में ज्ञात हो जाते हैं।

दिया हुआ तर्कवाक्य	परिवर्तन	प्रतिवर्तन	परिवर्तित-प्रतिवर्तन	पूर्ण विपर्यय	आंशिक विपर्यय
'आ'	'ई'	'ए'	'ए'	'ई'	'ओ'
'ए'	'ए'	'आ'	'ई'	'ओ'	'ई'
'ई'	'ई'	'ओ'	—	—	—
'ओ'	—	'ई'	'ई'	—	—

अनन्तरानुमान के रूप में 'विरोध'

§६. विरोध (Opposition)

'विरोध' शब्द का उपयोग दो तर्कवाक्यों के एक विशेष प्रकार के सम्बन्ध के लिए तथा अनन्तरानुमान के एक प्रकार के लिये भी होता है। पहले अर्थ में विरोध के चार भेद हैं, यथा—उपाश्रितता (Subalternation), विरुद्धता (Contradictory Opposition), वैपरीत्य (Contrary Opposition) तथा अनुवैपरीत्य (Sub-contrary Opposition)। 'विरोध' को जब अनन्तरानुमान के एक रूप के अर्थ में मानते हैं तो उससे यह आशय होता है कि किसी तर्कवाक्य से एक

अन्य तर्कवाक्य, उपर्युक्त चार प्रकार के सम्बन्धो में से किसी एक के अनुसार, प्राप्त किया जाता है। अब हम इन चारो प्रकारो का पृथक्-पृथक् अध्ययन करेगे।

(१) उपाश्रितता (Subalternation):

उपाश्रितता

उपाश्रितता दो तर्कवाक्यो के उस सम्बन्ध को कहते है, जिनके उद्देश्य समान होते है तथा विधेय भी समान होते है परन्तु जिनमे **परिमाण** (quantity) **का भेद** होता है। अर्थात् यह 'आ' (A) तथा 'ई' (I), एव 'ए' (E) तथा 'ओ' (O) का पारस्परिक सम्बन्ध है। उपाश्रितता के अनुमान के **नियम** निम्नलिखित है

नियम (१) : सार्वलौकिक के सत्य मे सगत विशेष का सत्य निहित रहता है; परन्तु इस बात का विलोम शुद्ध नही होता।

नियम (२) · विशेष के असत्य मे सगत सार्वलौकिक का सत्य निहित रहता है; परन्तु इस बात का विलोम शुद्ध नही होता।

(१) यदि सार्वलौकिक सत्य है तो विशेष भी सत्य है, परन्तु

नियम (१) :—यदि सार्वलौकिक सत्य है, तो उसका संगत विशेष भी सत्य होगा। यदि 'आ' (A) सत्य है, तो 'ई' (I) भी सत्य होगा; यदि 'ए' (E) सत्य है, तो 'ओ' (O) भी सत्य होगा। यदि यह तर्कवाक्य—'सब मनुष्य मर्त्य है' सत्य है, तो यह तर्कवाक्य—'कुछ मनुष्य मर्त्य है' भी सत्य होगा। इसी प्रकार यदि 'कोई भी मनुष्य पूर्ण नही है' सत्य है, तो 'कुछ मनुष्य पूर्ण नही है' भी सत्य होगा।

इस नियम का विलोम शुद्ध नही होता।

परन्तु इस नियम का विलोम शुद्ध नहीं होता। यदि विशेष तर्कवाक्य सत्य हो तो सगत सार्वलौकिक सन्देहात्मक होता है अर्थात् कभी तो सत्य होता है और कभी असत्य होता है। उदाहरणार्थ, 'कुछ मनुष्य मर्त्य है'—यह तर्कवाक्य सत्य है और उसका सगत सार्वलौकिक तर्कवाक्य 'सब मनुष्य मर्त्य है' भी सत्य है। परन्तु विशेष तर्कवाक्य 'कुछ मनुष्य चतुर है' तो सत्य है, परन्तु

सार्वलौकिक तर्कवाक्य 'सब मनुष्य चतुर है' असत्य है। अत: **जब विशेष सत्य होता है, तो सार्वलौकिक सन्देहात्मक होता है।**

(२) यदि विशेष असत्य है, तो सार्वलौकिक असत्य है परन्तु

नियम (२) —**यदि विशेष असत्य है, तो सार्वलौकिक भी असत्य होगा।** यदि 'ई' (I) असत्य है, तो 'आ' (A) भी असत्य होगा और यदि 'ओ' (O) असत्य है तो 'ए' (E) भी असत्य होगा। यदि तर्कवाक्य 'कुछ मनुष्य पूर्ण है' असत्य है, तो सगत सार्वलौकिक तर्कवाक्य 'सब मनुष्य पूर्ण है' अवश्य ही असत्य होगा। यदि तर्कवाक्य 'कुछ मनुष्य मर्त्य नही है' असत्य है, तो सगत सार्वलौकिक तर्कवाक्य 'कोई भी मनुष्य मर्त्य नही है' अवश्य ही असत्य होगा।

इस नियम का विलोम शुद्ध नही होता।

इस नियम का विलोम शुद्ध नही होता। अर्थात् यदि सार्वलौकिक असत्य है, तो हम संगत विशेप के बारे मे निश्चयपूर्वक कुछ नही कह सकते। अर्थात् विशेप असत्य भी हो सकता है तथा सत्य भी। उदाहरणार्थ, सार्वलौकिक तर्कवाक्य 'सब मनुष्य पूर्ण है' असत्य है और साथ ही उसका सगत विशेप तर्कवाक्य 'कुछ मनुष्य पूर्ण है' भी असत्य है। परन्तु सार्वलौकिक तर्कवाक्य 'सब मनुष्य चतुर है' तो असत्य है, परतु सगत विशेप तर्कवाक्य 'कुछ मनुष्य चतुर है' सत्य है। अत. **जब सार्वलौकिक असत्य होता है तो विशेष सन्देहात्मक होता है।**

सारांश. यदि 'आ' (A) सत्य है, तो 'ई' (I) सत्य है और यदि 'ए' (E) सत्य है, तो 'ओ' (O) सत्य है। परन्तु यदि 'ई' (I) सत्य है, तो 'आ' (A) सन्देहात्मक है और यदि 'ओ' (O) सत्य है, तो 'ए' (E) सन्देहात्मक होता है। फिर, यदि 'ई' (I) असत्य है, तो 'आ' असत्य है; यदि 'ओ' (O) असत्य है, तो 'ए' (E) असत्य है, परन्तु यदि 'आ' (A) असत्य है, तो 'ई' (I) सन्देहात्मक है और यदि 'ए' (E) असत्य है, तो 'ओ' सन्दोहत्मक है।

(२) वैपरीत्य (Contrary Opposition).

वैपरीत्य ऐसे दो **सार्वलौकिक तर्कवाक्यो** का पारस्परिक सम्बन्ध होता है, जिनके उद्देश्य भी समान होते है तथा विधेय भी समान होते है परन्तु जिनके गुण (quality) मे अन्तर होता है। अर्थात् यह 'आ' (A) तथा 'ए' (E) तर्कवाक्यो का सम्बन्ध होता है। वैपरीत्य द्वारा अनुमान का नियम निम्नलिखित है

वैपरीत्य

नियम :—एक के सत्य में दूसरे का असत्य निहित रहता है; परन्तु इसका विलोम शुद्ध नही होता।

नियम यदि एक सत्य है तो दूसरा असत्य है, परन्तु

यदि 'आ' (A) सत्य है, तो 'ए' (E) असत्य है, यदि 'ए' (E) सत्य है, तो 'आ' (A) असत्य है। यदि 'आ' तर्कवाक्य 'सब मनुष्य मर्त्य हैं' सत्य है, तो सगत 'ए' (E) तर्कवाक्य 'कोई भी मनुष्य मर्त्य नही है' असत्य है। इसी प्रकार, यदि 'ए' (E) तर्कवाक्य 'कोई भी मनुष्य पूर्ण नही है' सत्य है तो सगत 'आ' (A) तर्कवाक्य 'सब मनुष्य पूर्ण हैं' असत्य है।

इस नियम का विलोम शुद्ध नहीं होता। एक की असत्यता मे दूसरे की सत्यता निहित नही होती। इस प्रकार 'आ'-तर्कवाक्य 'सब मनुष्य चतुर हैं' असत्य है और सगत 'ए' (E) तर्कवाक्य 'कोई भी मनुष्य चतुर नहीं है' भी असत्य है। परन्तु 'आ' तर्कवाक्य 'सब मनुष्य पूर्ण हैं' असत्य है और सगत 'ए' तर्कवाक्य 'कोई भी मनुष्य पूर्ण नही है' सत्य है। अत यदि 'आ' (A) असत्य है, तो 'ए' (E) सन्देहात्मक है। इसी प्रकार यह प्रदर्शित किया जा सकता है कि 'ए' (E) असत्य है, तो 'आ' (A) सन्देहात्मक होता है।

इस नियम का विलोम शुद्ध नहीं होता।

सारांश—यदि 'आ' सत्य है, तो 'ए' असत्य है, और यदि 'ए' सत्य है, तो 'आ' असत्य है। परन्तु यदि 'आ' असत्य है, तो 'ए' सन्देहात्मक है और यदि 'ए' असत्य है तो 'आ' सन्देहात्मक है।

(३) अनुवैपरीत्य (Sub-contrary Opposition):

अनुवैपरीत्य

अनुवैपरीत्य ऐसे दो **विशेष** तर्कवाक्यो का पारस्परिक सम्बन्ध है जिनका उद्देश्य समान होता है, तथा विधेय भी समान होता है, परन्तु जिनके गुण (quality) मे भेद होता है। अर्थात् यह 'ई' (I) तथा 'ओ' (O) का पारस्परिक सम्बन्ध है। अनुवैपरीत्य द्वारा अनुमान का **नियम** निम्नलिखित है।

नियम: यदि एक असत्य है, तो दूसरा सत्य है, परन्तु

एक की असत्यता में दूसरे का सत्य निहित रहता है। परन्तु इस नियम का विलोम शुद्ध नही होता।

यदि 'ई' (I) असत्य है, तो 'ओ' (O) सत्य है, और यदि 'ओ' (O) असत्य है, तो 'ई' (I) सत्य है। यदि 'ई' तर्कवाक्य 'कुछ मनुष्य पूर्ण है' असत्य है, तो 'कुछ मनुष्य पूर्ण नही है' सत्य होगा। यदि 'ओ' तर्कवाक्य 'कुछ मनुष्य मर्त्य नही है' असत्य है, तो सगत 'ई' तर्कवाक्य 'कुछ मनुष्य मर्त्य है' सत्य होगा।

इस नियम का विलोम शुद्ध नही होता।

इस नियम का विलोम शुद्ध नहीं होता। अर्थात् एक के सत्य मे दूसरे का असत्य निहित नही होता। इस प्रकार, 'ई' तर्कवाक्य 'कुछ मनुष्य चतुर है' सत्य है और साथ ही सगत 'ओ' तर्कवाक्य 'कुछ मनुष्य चतुर नही है' भी सत्य है। परन्तु 'ई' तर्कवाक्य 'कुछ मनुष्य मर्त्य है' तो सत्य है परन्तु सगत 'ओ' तर्कवाक्य 'कुछ मनुष्य मर्त्य नही है' असत्य है। अत यदि 'ई' सत्य है तो 'ओ' सन्देहात्मक होता है। इसी प्रकार यह प्रदर्शित किया जा सकता है कि यदि 'ओ' सत्य है, तो 'ई' सन्देहात्मक होता है।

साराश—यदि 'ई' असत्य है, तो 'ओ' सत्य है, और यदि 'ओ' असत्य है, तो 'ई' सत्य है। परन्तु यदि 'ई' सत्य है, तो 'ओ' सन्देहात्मक है और यदि 'ओ' सत्य है, तो 'ई' सन्देहात्मक है।

(४) विरुद्धता (Contradictory Opposition)

विरुद्धता दो ऐसे तर्कवाक्यो के पारस्परिक सम्बन्ध को कहते है जिनका उद्देश्य समान हो तथा विधेय भी समान हो परन्तु **जिनमें गुण तथा परिमाण दोनो का अन्तर** हो। अर्थात् यह 'आ' (A) तथा 'ओ' (O) एव 'ए' (E) तथा 'ई' (I) का सम्बन्ध है। वैपरीत्य द्वारा अनुमान का नियम निम्नलिखित है—

विरुद्धता

नियम :—एक के सत्य में दूसरे का असत्य निहित रहता है, तथा एक के असत्य में दूसरे का सत्य निहित रहता है।

इस नियम से ज्ञात होता है कि दो विरुद्ध तर्कवाक्यो मे से यदि एक सत्य है, तो दूसरा असत्य होता है और यदि एक असत्य होता है तो दूसरा सत्य होता है। दोनो सत्य नही हो सकते और न दोनो असत्य ही हो सकते है। उनमे से एक सत्य होना चाहिए और एक असत्य। विरोधबाधक नियम (Law of Contra-diction) के अनुसार, दो विरुद्ध तर्कवाक्यो मे से एक असत्य होना चाहिए। और निर्मध्यम नियम (Law of Excluded Middle) के अनुसार दोनो मे से एक तर्कवाक्य सत्य होना चाहिए। अत विरुद्धता मे विरोध-सम्बन्ध पारस्परिक होता है। दोनो मे एक विरोधी से दूसरे का अनुमान लगाया जा सकता है। दोनो मे सत्य एव असत्य दोनो की दृष्टि से विरोध होना है। अत **विरुद्धता तार्किक-विरोध का पूर्ण आकार है।**

विरुद्धता विरोध का पूर्ण आकार है।

यदि एक सत्य है तो दूसरा असत्य है और यदि एक असत्य है तो दूसरा सत्य है।

अत विरुद्धता मे, निम्नलिखित परिणाम निकल सकते है—

यदि 'आ' सत्य है तो 'ओ' असत्य है।
यदि 'आ' असत्य है तो 'ओ' सत्य है।
यदि 'ओ' सत्य है तो 'आ' असत्य है।
यदि 'ओ' असत्य है तो 'आ' सत्य है।
यदि 'ए' सत्य है तो 'ई' असत्य है।
यदि 'ए' असत्य है, तो 'ई' सत्य है।

यदि 'ई' सत्य है, तो 'ए' असत्य है।
यदि 'ई' असत्य है, तो 'ए सत्य है।

निम्नलिखित तालिका से उपर्युक्त सभी परिणाम एक ही दृष्टि मे ज्ञात हो जाते हैं—

दिया है		'आ'	'ए'	'ई'	'ओ'
१	'आ' सत्य	—	असत्य	सत्य	असत्य
२	'आ' असत्य	—	सदेहात्मक	सदेहात्मक	सत्य
३	'ए' सत्य	असत्य	—	असत्य	सत्य
४	'ए' असत्य	संदेहात्मक	—	सत्य	सदेहात्मक
५	'ई' सत्य	सदेहात्मक	असत्य	—	सदेहात्मक
६	'ई' असत्य	असत्य	सत्य	—	सत्य
७	'ओ' सत्य	असत्य	सदेहात्मक	सदेहात्मक	—
८	'ओ' असत्य	सत्य	असत्य	सत्य	—

§७ विध्याश्रित अनुमान (Modal Consequence)

विध्याश्रित अनुमान

विधि (Modality) के अनुसार तर्कवाक्य आवश्यक (Necessary), प्रतिज्ञात (Assertory) तथा संदिग्ध (Problematic) मे बाँटे जाते है। **विध्याश्रित अनुमान उसे कहते हैं जिसमें किसी विधि के तर्कवाक्य से अन्य विधि का तर्कवाक्य प्राप्त करते हैं।** इस प्रकार के अनुमान के नियम निम्नलिखित हैं—

नियम १ : अधिक संभावना के तर्कवाक्य में कम संभावना के

तर्कवाक्य का सत्य निहित रहता है, परन्तु इस नियम का विलोम शुद्ध नहीं होता।

नियम : १. यदि अधिक संभावना का तर्कवाक्य सत्य है तो कम सभावना का तर्कवाक्य भी सत्य होगा, परन्तु इसका विलोम नहीं।

यदि आवश्यक तर्कवाक्य सत्य है, तो सगत प्रतिज्ञात तथा सदिग्ध तर्कवाक्य भी सत्य होगे। यथा—यदि यह तर्कवाक्य कि "'क' अवश्य 'ख' होगा" सत्य है तो ये तर्कवाक्य कि "'क' 'ख' है" तथा "'क' 'ख' हो सकता है" भी अवश्य ही सत्य होगे। इसी प्रकार यदि प्रतिज्ञात तर्कवाक्य सत्य है, तो सगत—सदिग्ध तर्कवाक्य भी सत्य होगा। यदि "'क' 'ख' है" सत्य है, तो "'क' 'ख' हो सकता है" भी सत्य होगा। यह स्पष्ट है कि इस नियम का विलोम शुद्ध नही होता अर्थात् कम सभावना के तर्कवाक्य के सत्य होने से हम यह अनुमान नही निकाल सकते कि सगत अधिक सभावना का तर्कवाक्य भी सत्य होगा।

नियम २ : कम संभावना वाले तर्कवाक्य के असत्य में अधिक संभावना वाले तर्कवाक्य का असत्य निहित रहता है। परन्तु इस नियम का विलोम शुद्ध नहीं होता।

(२) यदि कम संभावना का तर्कवाक्य असत्य है तो अधिक संभावना का तर्कवाक्य भी असत्य होगा; परन्तु इसका विलोम नही।

यदि एक सदिग्ध तर्कवाक्य असत्य हो, तो सगत प्रतिज्ञात तथा आवश्यक तर्कवाक्य भी असत्य होगा। और यदि एक प्रतिज्ञात तर्कवाक्य असत्य हो, तो सगत आवश्यक तर्कवाक्य भी असत्य होगा। इस नियम का विलोम शुद्ध नही होता। अर्थात् हम यह अनुमान नही कर सकते कि क्योकि अधिक सभावना का तर्कवाक्य असत्य है, इसलिये कम सभावना का सगत तर्कवाक्य भी असत्य होगा।

§८ सम्बन्ध-विलोमात्मक अनुमान (Change of Relation)

सम्बन्ध-विलोमात्मक अनुमान

सम्बन्ध के अनुसार तर्कवाक्य निरपेक्ष तथा सापेक्ष मे बाँटे जाते है। सापेक्ष तर्कवाक्य पुन. हेतुफलाश्रित तथा वैकल्पिक मे विभाजित किये जाते है। **एक सम्बन्ध के तर्कवाक्य से किसी अन्य सम्बन्ध के तर्कवाक्य का अनुमान करना सम्बन्ध-विलोमात्मक अनुमान (Inference by Change of Relation)**

कहलाता है। अत इस प्रकार के अनुमान के निम्नलिखित चार रूप हो सकते है

(१) निरपेक्ष से हेतुफलाश्रित
(२) हेतुफलाश्रित से निरपेक्ष
(३) वैकल्पिक मे हेतुफलाश्रित
(४) हेतुफलाश्रित से वैकल्पिक

अव हम इनका पृथक्-पृथक् विवेचन करेगे।

निरपेक्ष (Categorical) तर्कवाक्य मे हेतुफलाश्रित तर्कवाक्य प्राप्त करने के लिए अथवा हेतुफलाश्रित से निरपेक्ष तर्कवाक्य प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित वातो का ध्यान रखना चाहिए —

(क) हेतुफलाश्रित तर्कवाक्य का पूर्वाग (Antecedent) निरपेक्ष तर्कवाक्य का उद्देश्य (Subject) होता है।

(ख) हेतुफलाश्रित तर्कवाक्य का उत्तराग (Consequent) निरपेक्ष तर्कवाक्य का विधेय (Predicate) होता है।

(ग) हेतुफलाश्रित तर्कवाक्य का परिमाण (Quantity) उसके पूर्वाग पर निर्भर होता है।

(घ) हेतुफलाश्रित तर्कवाक्य का गुण (Quality) उसके उत्तराग पर निर्भर होता है।

(१) निरपेक्ष से हेतुफलाश्रित

निरपेक्ष से हेतुफलाश्रित

	निरपेक्ष (Categorical)	हेतुफलाश्रित (Hypothetical)
'आ' .	सव 'उ' 'वि' है।	=यदि 'उ' है, तो 'वि' है।
	सव मनुष्य मर्त्य है।	=यदि मनुष्य है, तो मर्त्यता है।
'ए' .	कोई भी 'उ' 'वि' नही है।	=यदि 'उ' है, तो 'वि' नही है।
	कोई भी मनुष्य पूर्ण नही है।	=यदि मनुष्य है, तो पूर्णता नही है।
'ई' .	कुछ 'उ' 'वि' है।	=यदि कुछ दशाओ मे 'उ' है, तो 'वि' है।
	कुछ मनुष्य चतुर है।	=यदि कुछ दशाओ मे मनुष्य है, तो चतुरता भी है।

'ओ'	कुछ 'उ' 'वि' नही हैं।	=यदि कुछ दशाओ मे 'उ' है, तो 'वि' नही है।
	कुछ मनुष्य चतुर नही हैं।	=यदि कुछ दशाओ मे मनुष्य है, तो चतुरता नही है।

(२) हेतुफलाश्रित से निरपेक्ष

हेतुफलाश्रित से निरपेक्ष

हेतुफलाश्रित (Hypothetical)		निरपेक्ष (Categorical)
'आ'	यदि 'क', 'ख' है, तो 'ग' 'घ' है।	='क' के 'ख' होने की सब दशाये 'ग' के 'घ' होने की सब दशाये हैं।
	यदि वह आता है, तो मैं जाता हूँ।	=उसके आने की सब दशाये मेरे जाने की सब दशाये हैं।
'ए'	यदि 'क', 'ख' है, तो 'ग' 'घ' नही है।	='क' के 'ख' होने की कोई भी दशा 'ग' के 'घ' होने की दशा नही है।
	यदि वर्षा होती है तो मैं बाहर नही जाता।	=वर्षा होने की कोई भी दशा मेरे बाहर जाने की दशा नही है।
'ई'	यदि कुछ दशाओ मे 'क' 'ख' है, तो 'ग' 'घ' है।	='क' के 'ख' होने की कुछ दशाये 'ग' के 'घ' होने की दशाये हैं।
	यदि कुछ दशाओ मे, एक मनुष्य गरीब पैदा हुआ है, तो वह सफलता प्राप्त करता है।	=मनुष्य के गरीब पैदा होने की कुछ दशाये सफल मनुष्य की दशाये हैं।
'ओ'	यदि कुछ दशाओ मे, 'क' 'ख' है, तो 'ग' 'घ' नही है।	='क' के 'ख' होने की कुछ दशाये 'ग' के 'घ' होने की दशाये नही हैं।
	यदि कुछ दशाओ मे मनुष्य धनी हो, तो वे सुखी नही होते।	=धनी मनुष्यो की कुछ दशाये सुखी मनुष्यो की कुछ दशाये नही हैं।

(३) वैकल्पिक से हेतुफलाश्रित

वैकल्पिक से हेतुफलाश्रित

मिल (Mill) के अनुसार, वैकल्पिक तर्कवाक्य के किसी एक विकल्प के असत्य मे दूसरे विकल्प का सत्य निहित रहता

मिल के अनुसार दो और

है। परन्तु इस नियम का विलोम शुद्ध नहीं होता। अत. मिल के अनुसार इस वैकल्पिक तर्कवाक्य कि "'क' या तो 'ख' या 'ग' है" से निम्नलिखित दो हेतुफलाश्रित तर्कवाक्य फलित होते है :

(क) यदि 'क' 'ग' नही है, तो 'क' 'ख' है। और—
(ख) यदि 'क' 'ख' नही है, तो 'क' 'ग' है।

यूबरवेग के अनुसार चार हेतुफलाश्रित तर्कवाक्य होते है।

यूबरवेग (Ueberweg) के अनुसार एक विकल्प के असत्य मे दूसरे विकल्प का सत्य निहित रहता है तथा एक विकल्प के सत्य मे दूसरे का असत्य निहित रहता है। अत यूबरवेग के अनुसार, इस तर्कवाक्य कि "'क' या तो 'ख' या 'ग' है" मे निम्नलिखित चार हेतुफलाश्रित तर्कवाक्य फलित होते है

(क) यदि 'क' 'ग' नही है, तो 'क' 'ख' है।
(ख) यदि 'क' 'ख' नही है, तो 'क' 'ग' है।
(ग) यदि 'क' 'ग' है, तो 'क' 'ख' नही है। और—
(घ) यदि 'क' 'ख' है, तो 'क' 'ग' नही है।

अत यूबरवेग के अनुसार वैकलिपक तर्कवाक्य के दोनो विकल्प **दो विरुद्ध-तर्कवाक्यो के समान होते है,** परन्तु मिल के अनुसार, **वे दो अनुविपरीत तर्कवाक्यो के समान होते है।**

यूबरवेग—दो विकल्प दो विरुद्ध तर्कवाक्यो के समान है। यदि एक सत्य है तो दूसरा असत्य है, और इसका विलोम भी।

निम्नलिखित उदाहरण देखिये : "वह या तो गुणवान या अगुणवान है।" यह स्पष्ट है कि इसमे दोनो विकल्प, यथा 'वह गुणवान है' तथा 'वह अगुणवान है' परस्पर व्यावर्तक है। अतः इस वैकलिपक तर्कवाक्य से निम्नलिखित चार हेतुफलाश्रित तर्कवाक्यो का अनुमान हो जाता है—

(क) यदि वह गुणवान नही है, तो वह अ-गुणवान है।
(ख) यदि वह अ-गुणवान नही है, तो वह गुणवान है।
(ग) यदि वह गुणवान है, तो वह अ-गुणवान नही है। और
(घ) यदि वह अ-गुणवान है, तो वह गुणवान नही है।

मिल—दोनो विकल्प दो अनु-

इस दृष्टिकोण से यूबरवेग का मत शुद्ध है। अब निम्नलिखित तर्कवाक्य को देखिये—"वह या तो मूर्ख है या ठग है।"

इसके दोनो विकल्प, यथा 'वह मूर्ख है' तथा 'वह ठग है' परस्पर व्यावर्तक नही है। अत यहाँ यूबरवेग का दृष्टिकोण लागू नही हो सकता। यहाँ पर मिल का मत ही लागू होगा और यह वैकल्पिक तर्कवाक्य निम्नलिखित दो हेतुफलाश्रित तर्कवाक्यो के तुल्य होगा—

विपरीत तर्कवाक्यो के समान है— यदि एक असत्य है तो दूसरा सत्य है, परन्तु इसका विलोम नहीं।

(क) यदि वह मूर्ख नही है, तो वह ठग है। और,
(ख) यदि वह ठग नही है, तो वह मूर्ख है।

उपर्युक्त दोनो मतो मे कौन सा शुद्ध है, यह बात विकल्पो के परस्पर व्यावर्तक होने या न होने पर निर्भर है। यदि वे परस्पर व्यावर्तक है, तो यूबरवेग का मत शुद्ध है और यदि वे परस्पर व्यावर्तक नही है तो मिल का मत शुद्ध है। यह बात ज्ञातव्य है कि यूबरवेग का मत केवल उन विशेष दशाओ मे सत्य होता है जब कि दोनो विकल्प परस्पर व्यावर्तक होते है, परन्तु मिल का मत सब दशाओ मे सत्य होने के कारण अधिक मान्य है।

(४) हेतुफलाश्रित से वैकल्पिक

(४) हेतुफलाश्रित से वैकल्पिक

यह उपर्युक्त क्रिया का विलोम रूप है। यह बात फिर कहने की कोई आवश्यकता नही जान पडती कि यूबरवेग के अनुसार चार हेतुफलाश्रित तर्कवाक्यो से एक वैकल्पिक तर्कवाक्य का अनुमान लगाया जाता है। परन्तु मिल के अनुसार एक वैकल्पिक तर्कवाक्य का अनुमान केवल दो हेतुफलाश्रित तर्कवाक्यो से हो जाता है।

§९. विशेषण-सयोगानुमान (Inference by Added Determinants)

विशेषण-संयोगानुमान

'विशेषण' (Determinant) उसे कहते है जो किसी पद के उपयोग को सीमित कर देता है। क्योकि वह विशेषता पद के सम्पूर्ण निर्देश पर लागू नही होती। अत 'विशेषण' मे पद का अर्थ निश्चित अथवा संकीर्ण हो जाता है।

उद्देश्य तथा विधेय समान रूप से सीमित होने चाहिए।

विशेषण-संयोगानुमान उस क्रिया को कहते है जिसमें एक दिए हुए तर्कवाक्य से अपेक्षाकृत कम विस्तार वाला तर्कवाक्य, दिए हुए तर्कवाक्य के उद्देश्य तथा विधेय को समान रूप से सीमित करके, प्राप्त किया जाता है। यथा :—

एक तारा एक भौतिक पदार्थ है।
∴ एक **दिखाई देनेवाला** तारा एक **दिखाई देनेवाला** भौतिक पदार्थ है।

इस प्रकार के अनुमान की सत्यता इस बात पर निर्भर रहती है कि **उद्देश्य तथा विधेय समान-रूप से सीमित किये जायँ।** जब विशेषण का अर्थ उद्देश्य तथा विधेय दोनो के सम्बन्ध मे समान होता है, तो वह अनुमान शुद्ध होगा। यह आवश्यक नही कि उद्देश्य तथा विधेय के साथ एक ही शब्द को जोडने से ऐसा हो जाय, क्योकि ऐसा होना भी सभव है कि एक ही शब्द विभिन्न प्रसगो मे भिन्न-भिन्न अर्थ रखता हो और तब वह अनुमान दोषपूर्ण हो जायेगा। यदि विशेषण की भाँति प्रयुक्त होनेवाला गुण सापेक्ष हो, तो अनुमान के दोषपूर्ण होने की संभावना और भी अधिक हो जाती है। यथा :—

एक चीटी एक जीव है।
∴ एक **बड़ी** चीटी एक **बड़ा** जीव है।

स्पष्टतया यह अनुमान दोषपूर्ण है क्योकि विशेषण 'बडा' उद्देश्य तथा विधेय को भिन्न-भिन्न प्रकार से सीमित करता है।

शुद्ध-अनुमान के उदाहरण—

(१) सब हब्शी मनुष्य है।
∴ सब **ईमानदार** हब्शी **ईमानदार** मनुष्य है।

(२) कविता बुद्धि का भोजन है।
∴ **अच्छी** कविता बुद्धि का **अच्छा** भोजन है।

(३) सब धातुएँ तत्व है।
∴ सब **भारी** धातुएँ **भारी** तत्व है।

(४) एक कुत्ता एक जन्तु है।
∴ एक स्वामिभक्त कुत्ता एक स्वामिभक्त जन्तु है।

अशुद्ध अनुमान के उदाहरण—

(१) एक गवैया मनुष्य है।
∴ एक बुरा गवैया बुरा मनुष्य है।
(२) एक राजनीतिज्ञ एक मनुष्य है।
∴ एक अच्छा राजनीतिज्ञ एक अच्छा मनुष्य है।
(३) एक कुटिया एक इमारत है।
∴ एक बड़ी कुटिया एक बड़ी इमारत है।
(४) कम ज्ञान खतरनाक होता है।
∴ बहुत ज्ञान बहुत खतरनाक होता है।
(५) एक हाथी एक जन्तु है।
एक छोटा हाथी एक छोटा जन्तु है।

§१० मिश्र-धारणानुमान (Inference by Complex Conception)

मिश्र-धारणानुमान

मिश्र-धारणानुमान में किसी तर्कवाक्य के उद्देश्य तथा विधेय को एक मिश्र-धारणा का भाग इस प्रकार बना देते हैं कि उनके पारस्परिक सम्बन्ध में अन्तर न हो सके। यथा—

एक घोडा एक जन्तु है।
∴ एक **घोड़े का सिर** एक **जन्तु का सिर** है।

'विशेषण-संयोगानुमान' तथा 'मिश्र-धारणानुमान'

इस प्रकार का अनुमान पूर्व-वर्णित विशेषण-सयोगानुमान के समान ही है। परन्तु इन दोनो मे एक विशेष अन्तर यह है कि विशेषण-संयोगानुमान मे विशेषण उद्देश्य तथा विधेय मे सयुक्त किया जाता है, परन्तु मिश्र-धारणानुमान मे, स्वय उद्देश्य तथा विधेय ही विशेपण की भॉति प्रयुक्त किये गये है, अर्थात् वे किसी तीसरे पद की विशेपता प्रदर्शित करते है।

दोष

इस प्रकार के अनुमान मे भी दोष हो सकते है। यदि मिश्र-धारणा (Complex Conception) के उद्देश्य तथा विधेय

मे भिन्न-भिन्न अर्थ हो, तो वह अनुमान दोषपूर्ण हो जायेगा।
उदाहरणार्थ —

सब न्यायाधीश मनुष्य हैं।
∴ न्यायाधीशो की **बहुसंख्या** मनुष्यो की **बहुसंख्या** है।

शुद्ध अनुमान :

(१) सखिया विष है।
∴ सखिया की **एक मात्रा** विष **की एक मात्रा** है।
(२) गरीबी अपराध की जड है।
∴ गरीबी **का निवारण** अपराध की जड **का निवारण** है।
(३) घोडा एक जन्तु है।
∴ घोडे **का पंजर** एक जन्तु **का पंजर** है।

अशुद्ध अनुमान :

(१) सब न्यायाधीश न्यायकुशल हैं।
∴ न्यायाधीशो **की बहुसंख्या** न्यायकुशल व्यक्तियो **की बहुसंख्या** है।
(२) सब कवि पद्य-लेखक हैं।
∴ कवियो की **बहुसंख्या** पद्यलेखको की **बहुसंख्या** है।
(३) सब पारसी भारतीय हैं।
∴ पारसियो **की बहुसंख्या** भारतीयो **की बहुसंख्या** है।

कुछ हल किये हुए अभ्यास

(१) निम्नलिखित का परीक्षण कीजिए :—
पुस्तकें ज्ञान का साधन हैं।
अतः हमें ज्ञान पुस्तको के द्वारा ही प्राप्त हो सकता है।

उत्तर —इस युक्ति का तार्किक आकार निम्नलिखित होगा—
'आ' सब पुस्तके ज्ञान का साधन हैं।
∴ 'आ' सब ज्ञान के साधन पुस्तके हैं।

यह 'आ'-तर्कवाक्य के सरल परिवर्तन का अनियमित रूप है जिसका विधेय अव्याप्त है। शुद्ध अनुमान निम्नलिखित होगा—
'ई' : कुछ ज्ञान के साधन पुस्तके हैं।

(२) निम्नलिखित मे किस प्रकार का अनुमान है ?
केवल अज्ञानी ही ज्ञान से घृणा करते है।
∴ कुछ ज्ञान से घृणा करनेवाले व्यक्ति अज्ञानी है।

उत्तर —तार्किक आकार मे व्यक्त करने से यह युक्ति इस प्रकार होगी —

'आ' सब ज्ञान से घृणा करनेवाले व्यक्ति अज्ञानी है।
∴ 'ई' कुछ ज्ञान से घृणा करनेवाले व्यक्ति अज्ञानी है।

यह उपाश्रितता का शुद्ध रूप है।

(३) यदि यह बात असत्य मान ली जाय कि 'कुछ पत्थर खनिज नही है,' तो इसके विरोधी तर्कवाक्यो के सत्य अथवा असत्य के बारे में आप क्या कह सकते है ?

उत्तर —इसके विरोधी निम्नलिखित है —

(१) विरुद्ध 'आ' सब पत्थर खनिज है। (सत्य)
(२) अनुविपरीत 'ई' कुछ पत्थर खनिज है। (सत्य)
(३) उपाश्रित 'ए' कोई भी पत्थर खनिज नही है। (असत्य)

(४) निम्नलिखित तर्कवाक्य को आश्रय मानकर परिवर्तन, प्रतिवर्तन, परिवर्तित-प्रतिवर्तन तथा विपर्यय से क्या निष्कर्ष प्राप्त होते है ?

'सब मनुष्य कवि नही है।'

उत्तर — (क) इसका परिवर्तन नही हो सकता।
(ख) प्रतिवर्तन 'ई' कुछ मनुष्य अकवि है।
(ग) परिवर्तित-प्रतिवर्तन : 'ई' कुछ अकवि मनुष्य है।
(घ) इसका विपर्यय नही हो सकता।

(५) क्या निम्नलिखित का परिवर्त्य हो सकता है ? अपने उत्तर की पुष्टि कीजिए।

विरले व्यक्ति ही लालच से दूर है।

उत्तर —यह तर्कवाक्य, तार्किक आकार मे इस प्रकार व्यक्त होगा,
'ओ' कुछ व्यक्ति लालच से दूर नही है।
यह 'ओ' तर्कवाक्य है। अत इसका परिवर्तन नही हो सकता।

(६) निम्नलिखित का प्रतिवर्तन कीजिए :—
केवल अज्ञानी व्यक्ति ही ऐसा मत रखते है।

उत्तर —इसका तार्किक आकार निम्नलिखित होगा—सब व्यक्ति जो ऐसा मत रखते है, अज्ञानी है। प्रतिवर्तन के पश्चात्

'ए' (E) निष्कर्ष प्राप्त होता है—"कोई भी व्यक्ति जो ऐसा मत रखते है, अ-अज्ञानी नही है।

(७) 'मेहनती व्यक्तियो के सिवा कोई भी सफलता प्राप्त नही करता।' इस तर्कवाक्य से जो निष्कर्ष फलित होते है, उन्हे व्यक्त कीजिए।

उत्तर —यह तर्कवाक्य निम्नलिखित तर्कवाक्य के तुल्य है : 'सब सफलता प्राप्त करनेवाले व्यक्ति मेहनती होते है।' इनसे निम्नाकित निष्कर्ष निकल सकते है —

(क) परिवर्तित (Converse) 'ई' (I) कुछ मेहनती व्यक्ति वे है, जो सफलता प्राप्त करते है।

(ख) प्रतिवर्तित (Obverse) 'ए' (E) कोई भी व्यक्ति जो सफलता प्राप्त करते है, अ-मेहनती नही होते।

(ग) परिवर्तित-प्रतिवर्तित (Contrapositive) 'ए' (E) कोई भी अ-मेहनती व्यक्ति नही है जो सफलता प्राप्त करते है।

(घ) विपर्यस्त (Inverse) पूर्ण 'ई' (I) कुछ अ-सफलता प्राप्त करनेवाले व्यक्ति वे है जो अ-मेहनती है। आशिक . 'ओ' (O) कुछ असफलता प्राप्त करनेवाले व्यक्ति वे है, जो मेहनती नही है।

(८) निम्नलिखित तर्कवाक्यो का परिवर्तन तथा परिवर्तित-प्रतिवर्तन के पश्चात जो निष्कर्ष निकलता हो, उसे व्यक्त कीजिए—

(क) कोई भी व्यक्ति ऐसा नही है जो स्वभावत भला न हो।

उत्तर —तार्किक आकार

सब मनुष्य स्वभावत भले है।

परिवर्तित 'ई' (I) कुछ स्वभावत. भले व्यक्ति मनुष्य है।
परिवर्तित-प्रतिवर्तित 'ए' (E) कोई भी अ-स्वभावत भला व्यक्ति मनुष्य नही है।

(ख) मनुष्य कभी सुखी नही होता, यदि वह गुणी न हो।

उत्तर —तार्किक आकार —कोई भी अगुणी मनुष्य सुखी नही होता।

परिवर्तित 'ए' कोई भी सुखी व्यक्ति अगुणी नही होता।
परिवर्तित-प्रतिवर्तित 'ई' कुछ अ-सुखी व्यक्ति अ-गुणी है।

(९) निम्नलिखित वाक्य को तार्किक आकारमे व्यक्त कीजिए और बतलाइए कि परिवर्तन तथा प्रतिवर्तन से क्या निष्कर्ष निकलता है

सब वकील धूर्त्त नही होते।

उत्तर —तार्किक आकार कुछ वकील धूर्त्त नही है। 'ओ'।
∴ परिवर्तित 'ओ' तर्कवाक्य का परिवर्तन नही होता।
प्रतिवर्तित 'ई' . कुछ वकील अधूर्त्त है।

प्रश्नमाला १०

(१) अनुमान किसे कहते है? अनन्तरानुमान तथा सान्तरानुमान का अन्तर उदाहरण सहित समझाइए।

(२) क्या एक ही आश्रय-वाक्य से कोई निष्कर्ष प्राप्त करना सभव है? यदि हॉ, तो उसके विभिन्न रूपो का उल्लेख कीजिए।

(३) सरल परिवर्तन तथा असरल परिवर्तन का अन्तर स्पष्ट कीजिए। निषेध द्वारा परिवर्तन से क्या तात्पर्य है?

(४) निम्नलिखित तर्कवाक्य से जितने निष्कर्ष निकलते हो, उन्हे स्पष्ट कीजिए

'केवल गुणी ही सुखी है।'

(५) क्या सब तर्कवाक्यो का सरल परिवर्तन सभव हो सकता है? यदि नही, तो किस विशेष रीति से उनका सरल परिवर्तन किया जा सकता है?

(६) निम्नलिखित तर्कवाक्यो का परिवर्तन तथा प्रतिवर्तन कीजिए —

(क) सुकरात मर्त्य है।
(ख) मनुष्य जाति का उचित अध्ययन मनुष्य ही है।
(ग) हाइड्रोजन सबसे हलकी गैस है।

(७) बतलाइए कि 'ओ' तर्कवाक्य का परिवर्तन तथा 'ई' तर्कवाक्य का परिवर्तित-प्रतिवर्तन क्यो सभव नही है?

(८) निम्नलिखित अनन्तरानुमानो का परीक्षण कीजिए—

(क) मिठास अच्छी लगती है।
∴ कडुआहट बुरी लगती है।

(ख) वकील एक मनुष्य है।
∴ अच्छा वकील एक अच्छा मनुष्य है।

(९) विपर्यय किसे कहते है? उसके विभिन्न रूप कौन-कौन-से है? निम्नलिखित का विपर्यय कीजिए—

'सब मनुष्य मर्त्य है।'

(१०) कौन-से तर्कवाक्य सत्य, असत्य अथवा सन्देहात्मक होते है, जब—

(क) 'आ' सत्य हो।

(ख) 'ओ' असत्य हो।

(११) विरोध द्वारा अनुमान कितने प्रकार का होता है? उदाहरण सहित समझाइए।

(१२) निम्नलिखित अनुमानो का परीक्षण कीजिए :—

(क) सब आलोचना ध्वसात्मक नही होती।
∴ कुछ आलोचना ध्वसात्मक होती है।

(ख) 'क' 'ख' से प्यार करता है।
'ख' 'क' से प्यार करता है।

(ग) प्रकाश लाभदायक है।
∴ अन्धकार हानिकारक है।

(घ) कवि शिक्षक होता है।
. महान् कवि महान् शिक्षक होता है।

(ङ) गुण से सुख प्राप्त होता है।
∴ सुख से गुण प्राप्त होता है।

(च) प्रोफेसर एक मनुष्य है।
∴ बुरा प्रोफेसर बुरा मनुष्य है।

(छ) सब आम मीठे नही होते।
∴ सब मीठी चीजे आम नही होती।

एकादश प्रकरण

न्यायवाक्य

(Syllogism)

§ १ न्यायवाक्य की परिभाषा—उसकी विशेषतायें ।
§ २ न्यायवाक्य की रचना ।
§ ३ न्यायवाक्य के प्रकार।
§ ४ विशुद्ध निरपेक्ष न्यायवाक्य के मूल सिद्धात (Canons)।
§ ५ अरस्तू का सिद्धान्त(Dictum de omni et nullo)।
§ ६. लैम्बार्ट का सिद्धान्त ।
§ ७ निरपेक्ष न्यायवाक्य के सामान्य नियम तथा उनके उल्लघन से उत्पन्न दोष ।
§ ८ न्यायवाक्य के आकार (Figures) ।
§ ९ न्यायवाक्य के सयोग (Moods) ।
§ १० सिद्ध सयोगो को ज्ञात करना ।
(क) प्रथम आकार ।
टिप्पणी १ प्रथम आकार के विशेष नियम ।
टिप्पणी २ प्रथम आकार की विशेषतायें ।
(ख) द्वितीय आकार ।
टिप्पणी . द्वितीय आकार के विशेष नियम ।
(ग) तृतीय आकार ।
टिप्पणी तृतीय आकार के विशेष नियम ।
(घ) चतुर्थ आकार ।
टिप्पणी चतुर्थ आकार के विशेष नियम ।
§ ११ आकारान्तरण (Reduction)—अनुलोम (Direct) तथा प्रतिलोम (Indirect) ।

टिप्पणी · क्या आकारान्तरण आवश्यक है?
§ १२　स्मृति-सहायक छन्द (Mnemonic Lines)।
§ १३.　सब अपूर्ण सयोगो का अनुलोम आकारान्तरण।
§ १४.　सब अपूर्ण सयोगो का प्रतिलोम आकारान्तरण।
§ १५　मूल (Fundamental), निर्बल (Weakened) तथा सबल (Strengthened) न्यायवाक्य।
§ १६　शुद्ध हेतुफलाश्रित तथा शुद्ध वैकल्पिक न्यायवाक्य।
प्रश्नमाला　११।

§ १. न्यायवाक्य (Syllogism) की परिभाषा —उसकी विशेषतायें

परिभाषा

न्यायवाक्य उस निगमनमूलक सान्तरानुमान (mediate inference) **को कहते है, जिनमें दोनो आश्रय-वाक्यों को एक साथ रखने पर निष्कर्ष प्राप्त होता है**। यह **निगमनमूलक** (Deductive) अनुमान है, अत निष्कर्ष आधारवाक्य से अधिक व्यापक नही हो सकता। यह **सान्तरानुमान** है, जिसका निष्कर्ष केवल एक आश्रयवाक्य से नही, अपितु दो आश्रयवाक्यो से प्राप्त होता है। एक उदाहरण देखिए —

सब मनुष्य मर्त्य है।
सब नरेश मनुष्य है।
∴ सब नरेश मर्त्य है।

न्यायवाक्य की विशेषतायें :—

अत. न्यायवाक्य या सिलोजिज्म मे निम्नलिखित विशेषतायें होती है, जिनके कारण वह अन्य प्रकार के अनुमानो से भिन्न समझा जाता है।

(क) निष्कर्ष दोनो आश्रयो के सम्मिलित रूप से प्राप्त होता है।

(क) **न्यायवाक्य का निष्कर्ष दोनों आश्रयवाक्यों को एक साथ रख कर प्राप्त होता है**; उनमे से किसी एक ही आश्रयवाक्य से नही। निष्कर्ष उन दोनो आश्रयवाक्यो का योग-मात्र ही नही होता, परन्तु उन दोनो को एक साथ रखने से अनिवार्यत· फलित होता है। उपर्युक्त उदाहरण मे, निष्कर्ष 'सब नरेश मर्त्य है' केवल

एक ही आश्रयवाक्य से प्राप्त नही किया गया है, वरन उनको सम्मिलित करने से ही प्राप्त हुआ है।

इसी विशेषता के कारण न्यायवाक्य **अनन्तरानुमान** से भिन्न माना जाता है। **अन्य प्रकार के सान्तरानुमानों** से भी वह भिन्न है, क्योकि उनमे दो से अधिक आश्रयवाक्य होते है।

(ख) न्यायवाक्य का निष्कर्ष आश्रयवाक्यो के निष्कर्ष से अधिक व्यापक नहीं हो सकता। न्यायवाक्य निगमनमूलक-अनुमान है और किसी भी निगमनमूलक अनुमान मे निष्कर्ष आश्रय से अधिक व्यापक नही होता।

(ख) निष्कर्ष आश्रय से अधिक व्यापक नहीं होता।

उपर्युक्त उदाहरण मे, निष्कर्ष 'सब नरेश मर्त्य है' स्पष्टतया इस आश्रय से कम व्यापक है—'सब मनुष्य मर्त्य है', यह व्यक्तियो की अपेक्षाकृत अधिक सख्या पर लागू होता है।

इस विशेषता के कारण **न्यायवाक्य** (तथा अन्य प्रकार के निगमनमूलक अनुमान), **उद्गमन** (Induction) से भिन्न माने जाते है, क्योकि उद्गमन मे निष्कर्ष आश्रय मे सर्वदा अधिक व्यापक होता है।

(ग) यदि दिए हुए आश्रयवाक्य सत्य हो, तो निष्कर्ष भी सत्य होता है।

(ग) आश्रयवाक्य सत्य मान लिए जाते हैं और उनके सत्य होने पर निष्कर्ष भी सत्य हो जाता है।

न्यायवाक्य (तथा अन्य प्रकार के निगमनमूलक अनुमान) मे हम इस प्रश्न पर विचार नही करते कि दिए हुए आश्रयवाक्य वास्तव मे सत्य है, या असत्य है। हमारे सामने केवल यह प्रश्न रहता है कि यदि आश्रयवाक्यो को सत्य मान लिया जाय, तो निष्कर्ष अनिवार्यत सत्य होगा। निगमनमूलक अनुमानो मे आश्रयवाक्यो का सत्य सिद्ध मान लिया जाता है, अत यह स्पष्ट है कि **निष्कर्ष का सत्य आश्रय वाक्यों के सत्य पर** निर्भर रहता है, जिन्हे पहले से ही सत्य मान लिया जाता है। दूसरे शब्दो मे न्यायवाक्य (Syllogism) का निगमनमूलक अनुमान होने के

कारण, सम्बन्ध केवल आकारगत सत्य (Formal Truth) से है, वस्तुगत सत्य (Material Truth) से नहीं।

§ २. न्यायवाक्य की रचना

तीन तर्कवाक्य

न्यायवाक्य मे तीन तर्कवाक्य होते है, यथा—दो दिए हुए तर्कवाक्य और एक वह तर्कवाक्य जो उनसे प्राप्त किया जाता है। जो नवीन तर्कवाक्य प्राप्त किया जाता है, उसे **निष्कर्ष** (Conclusion) कहते है और दोनो दिये हुए तर्कवाक्य, जिनसे निष्कर्ष निकाला जाता है, **आश्रय** (Premises) कहलाते है।

तीन पद

प्रत्येक तर्कवाक्य मे दो पद होते है। अत सम्पूर्ण न्यायवाक्य मे, तीन तर्कवाक्य होने के कारण, छ पद होने चाहिए। न्यायवाक्य का परीक्षण करने पर विदित होता है कि उसमे छ भिन्न पद नही, वरन केवल **तीन ही पद होते है, जिनमें से प्रत्येक दो बार प्रयुक्त होता है।**

ये तीनो विभिन्न पद, जिनमे से प्रत्येक दो बार प्रयुक्त होता है, भिन्न-भिन्न नामो से पुकारे जाते है। निष्कर्ष का विधेय **साध्य** (Major term) कहलाता है और निष्कर्ष का उद्देश्य (Subject) **पक्ष** (Minor term) कहलाता है, और वह पद जो दोनो आश्रयवाक्यो मे तो होता है, परन्तु निष्कर्ष मे नही होता, **मध्यस्थ-पद या हेतु** (Middle term) कहलाता है।

मध्यस्थ पद का कार्य

मध्यस्थ पद दोनो आश्रयवाक्यो मे उपस्थित रहता है और उनका उभयनिष्ठ तथ्य होता है। निष्कर्ष मे साध्य और पक्ष के बीच सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। ये दोनो पद प्रारम्भ मे एक दूसरे से अपरिचित रहते है और हेतु या मध्यस्थ पद उस मध्यस्थ व्यक्ति की भाँति कार्य करता है, जो इन दोनो से परिचित हो और इस प्रकार उन दोनो का परस्पर परिचय करा दे। यदि

यह उभनिष्ठ मित्र न होता, तो साध्य और पक्ष एक दूसरे से अपरिचित ही रह जाते। अत. साध्य-वाक्य (Major Premise) मे साध्य (Major term) की मध्यस्थ-पद (Middle term) से तुलना की जाती है, और पक्ष-वाक्य (Minor Premise) मे पक्ष (Minor term) की मध्यस्थ-पद (Middle term) से तुलना की जाती है और इसके वाद निष्कर्ष मे साध्य तथा पक्ष के बीच सम्बन्ध स्थापित कर दिया जाता है। मध्यस्थ-पद इस अर्थ मे मध्यस्थ है कि वह ऐसा उभयनिष्ठ तथ्य होता है, जिससे अन्य दोनो पदो की तुलना की जा सकती है और वह उनके बीच मध्यस्थता का कार्य कर सकता है। साध्य और पक्ष को पास-पास लाकर मध्यस्थ-पद का कार्य पूर्ण हो जाता है, अत वह निष्कर्ष से लुप्त हो जाता है। अत. न्यायवाक्य मे, हम निष्कर्ष को तुरन्त और साक्षात रीति से प्राप्त नही करते, वरन मध्यस्थ-पद की सहायता से करते है।

न्यायवाक्य के आश्रय

दिये हुए तर्कवाक्यो या आश्रयो मे, जिसमे साध्य उपस्थित रहता है, वह **साध्य-वाक्य** (Major Premise) कहलाता है और जिसमे पक्ष उपस्थित रहता है, वह **पक्ष-वाक्य** (Minor Premise) कहलाता है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित न्यायवाक्य देखिए :—

सब मनुष्य मर्त्य है।
सब नरेश मनुष्य है।
∴ सब नरेश मर्त्य है।

इसमे 'मर्त्य' पद 'साध्य' है, क्योकि वह निष्कर्ष का विधेय है और 'नरेश' पद निष्कर्ष का उद्देश्य होने के कारण पक्ष है। 'मनुष्य' पद जो दोनो आश्रय-वाक्यो मे तो उपस्थित है, परन्तु निष्कर्ष मे उपस्थित नही है, मध्यस्थ-पद या हेतु है। पहला आश्रयवाक्य—'सब मनुष्य मर्त्य है' साध्यवाक्य है, क्योकि

उसमे साध्य 'मर्त्य' उपस्थित है, दूसरा आश्रयवाक्य—'सब नरेश मनुष्य हैं' पक्ष-वाक्य है, क्योकि उसमे पक्ष 'नरेश' उपस्थित है।

यह बात ज्ञातव्य है कि मध्यस्थ पद को 'म' से, पक्ष को 'उ' से तथा साध्य को 'वि' से संकेत रूप मे व्यक्त किया जाता है।

§ ३. न्यायवाक्य के प्रकार

शुद्ध और मिश्र न्याय-वाक्य

न्यायवाक्यो का विभाग शुद्ध (Pure) और मिश्र (Mixed) मे किया जाता है। **शुद्ध न्याय-वाक्य** (Pure Syllogism) मे घटक तर्कवाक्य एक से सम्बन्ध के होते है। यदि वे सब निरपेक्ष (Categorical) हो, तो ऐसे न्यायवाक्य को **शुद्ध-निरपेक्ष** (Pure Categorical) कहते है, यदि वे सब हेतुफलाश्रित (Hypothetical) हो, तो ऐसे न्यायवाक्य को **शुद्ध-हेतुफलाश्रित** (Pure Hypothetical) कहते है और यदि वे सब वैकल्पिक (Disjunctive) हो, तो ऐसे न्यायवाक्य को **शुद्ध वैकल्पिक** (Pure Disjunctive) कहते है।

मिश्र न्याय वाक्य के तीन उप-विभाग।

मिश्र-न्यायवाक्य (Mixed Syllogism) मे, घटक तर्कवाक्य **विभिन्न सम्बन्ध के होते** है। मिश्र-न्यायवाक्य तीन प्रकार के होते है —

(१) **हेतुफलाश्रित-निरपेक्ष** (Hypothetical-Categorical)—इसमें साध्यवाक्य (major premise) हेतुफलाश्रित (Hypothetical) होता है, पक्ष-वाक्य (minor premise) निरपेक्ष (Categorical) होता है, तथा निष्कर्ष (conclusion) भी निरपेक्ष होता है।

(२) **वैकल्पिक-निरपेक्ष** (Disjunctive-Categorical) इसमे साध्यवाक्य वैकल्पिक (Disjunctive) होता है, पक्ष-वाक्य निरपेक्ष (Categorical) होता है तथा निष्कर्ष भी निरपेक्ष (Categorical) होता है।

(३) **उभयतोपाश** (Dilemma) · इसमे साध्यवाक्य मिश्र-हेतुफलाश्रित (Compound Hypothetical) होता है, पक्षवाक्य वैकल्पिक (Disjunctive) होता है तथा निष्कर्ष या तो निरपेक्ष होता है, या वैकल्पिक होता है।

§ ४. विशुद्ध-निरपेक्ष-न्यायवाक्य के मूल सिद्धान्त (Canons)

न्यायवाक्य कुछ मूल-सिद्धान्तो पर आधारित होता है, जो इस प्रकार के अनुमान के मुख्य आधार हैं। ये मूलसिद्धान्त निम्न-लिखित है :—

सिद्धान्त १ : **दो पद, जो कि किसी एक तीसरे पद के अनुकूल हों, वे परस्पर भी अनुकूल होंगे।**

उदाहरणार्थ : 'सबसे सस्ती धातु' तथा 'सबसे उपयोगी धातु' ये दोनो पद 'लोहा' पद के अनुकूल है। अत वे परस्पर भी अनुकूल होगे। यथा —

लोहा सबसे सस्ती धातु है।
लोहा सबसे उपयोगी धातु है।
∴ सबसे सस्ती धातु सबसे उपयोगी धातु है।

इस दृष्टान्त मे, अनुकूलता पूर्ण तादात्म्य (identity) है। परन्तु कभी-कभी अनुकूलता इतनी पूर्ण नही होती। यथा—सुकरात एक मनुष्य है और मनुष्य मर्त्य है। यहाँ 'सुकरात' तथा 'मर्त्य' दोनो पदो की 'मनुष्य' पद मे अनुकूलता है, अत वे परस्पर भी अनुकूल होगे। यथा —

सब मनुष्य मर्त्य है।
सुकरात एक मनुष्य है।
∴ सुकरात मर्त्य है।

सिद्धान्त २ **दो पद यदि ऐसे हो कि उनमे से एक किसी तीसरे पद के अनुकूल हो, तथा दूसरा अनुकूल न हो, तो वे परस्पर भी अनुकूल नही होगे।**

उदाहरणार्थ, 'सुकरात' पद 'मनुष्य' पद के अनुकूल है, परन्तु 'अमर' पद 'मनुष्य' पद के अनुकूल नही है। अत 'सुकरात' और 'अमर' पद परस्पर अनुकूल नही होगे। यथा —

कोई भी मनुष्य अमर नही है।
सुकरात एक मनुष्य है।
∴ सुकरात अमर नही है।

अव हम अरस्तू (Aristotle) के **न्यायवाक्य सम्बन्धी** प्रसिद्ध सिद्धान्त (Dictum de Omni et Nullo) पर पहुँचते है।

§ ५. अरस्तू का सिद्धान्त (Aristotle's Dictum de Omni et Nullo)

अरस्तू का सिद्धान्त

अरस्तू का न्यायवाक्य सम्बन्धी सिद्धान्त इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है।

'सब और किसी भी नहीं' का वक्तव्य

'निर्देशार्थ में ग्रहण किए हुए पद के विषय में, चाहे स्वीकार रूप से या निषेध रूप से जो कुछ विधान किया गया है, वह विधान उसी प्रकार हर एक वस्तु के विषय में, जो उसके अन्तर्गत है, किया जा सकता है।'

निर्देश में ग्रहण किए हुए किसी वर्ग के विषय मे जो वात सत्य है, वह उस वर्ग के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति के विषय में भी सत्य हो सकती है और जो कुछ एक निर्देश में ग्रहण किए हुए वर्ग के विषय में असत्य है, वह उस वर्ग के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति के विषय मे भी असत्य होगा।

उदाहरणार्थ, जो कुछ भी सव मनुष्यो के लिए सत्य होगा वह सुकरात, प्लैटो अथवा अन्य किसी व्यक्ति के वारे मे भी सत्य होगा। और जो कुछ 'सव मनुष्यो' के वारे मे सत्य नही होगा, वह सुकरात, प्लैटो अथवा अन्य किसी व्यक्ति के बारे मे भी सत्य नही होगा। यदि 'मरणशीलता' का गुण सव मनुष्यो के वारे मे सत्य है तो अवश्य ही व्यक्ति विशेपो के वारे मे भी सत्य होगा। और यदि 'पूर्णता' का गुण मनुष्य-वर्ग के वारे मे सत्य नही होगा, तो वह व्यक्ति-विशेष के वारे मे भी सत्य नही होगा।

यह सिद्धान्त केवल प्रथम आकार पर लागू होता है।

यह सिद्धान्त **प्रथम आकार** के **न्यायवाक्यो पर सरलता से लागू हो जाता है** और अन्य आकारो (figures) के न्यायवाक्य पर लागू नही होता। अत अरस्तू (Aristotle) ने प्रथम आकार (First Figure) को ही **पूर्ण आकार**

(Perfect Figure) माना है तथा अन्य आकारो को **अपूर्ण आकार** (Imperfect figures) माना है। अरस्तू ने केवल प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय आकारो को मान्यता दी थी; चतुर्थ आकार बाद मे गैलन (Galen) (सन् १३०-२०० ई०) नामक न्यायशास्त्री ने जोड दिया था। अरस्तू के दृष्टिकोण से द्वितीय, तृतीय एव चतुर्थ आकारो को अपूर्ण समझना चाहिए, क्योकि उसका सिद्धान्त उनपर लागू नही होता।

§ ६. लैम्बर्ट का सिद्धान्त (Lambert's Canons)

अरस्तू ने प्रथम आकार को ही पूर्ण आकार माना था, क्योकि उसका **सिद्धान्त** सरलता से उस पर लागू हो जाता था। अन्य आकारो को उसने अपूर्ण माना था, क्योकि उसका सिद्धान्त उन पर लागू नही होता था। परन्तु कुछ तर्कशास्त्री, यथा—लैम्वर्ट (Lambert) का मत है कि चारो आकार उतने ही पूर्ण एव मौलिक है और उनमे से प्रत्येक एक विशेष सिद्धान्त पर आधारित है। अरस्तू के सिद्धान्त के अतिरिक्त लैम्बर्ट ने निम्नलिखित तीन सिद्धान्त प्रतिपादित किए है, जो कि क्रमश. द्वितीय, तृतीय एव चतुर्थ आकारो के आधार है .—

(क) 'भेद का सिद्धान्त' (Dictum de Diverso)

"यदि एक पद किसी तीसरे के अन्तर्भूत है, तथा दूसरा तीसरे से पृथक या बहिर्भूत, तो पहला तथा दूसरा पद परस्पर पृथक या बहिर्भूत होगे।"

(ख) 'निदर्शन का सिद्धान्त' (Dictum de Exemplo)

"यदि दो पदो मे कोई अश उभयनिष्ठ हो, तो वे आशिक रूप मे अनुकूल होते है, अथवा यदि एक मे ऐसा अश हो, जो दूसरे मे न हो, तो वे आशिक रूप मे प्रतिकूल होते है।"

(ग) 'परस्पर सम्बन्ध का सिद्धान्त' (Dictum de Reciproco)

वैल्टन (Welton) ने इस सिद्धान्त को इस प्रकार

व्यक्त किया है "जिस किसी प्रकार किसी पद के विपय मे किसी पद की स्वीकृति की गई है या सामान्य रूप से निपेध किया गया है, उसी प्रकार उसका विशेप रूप से भी उसी गुण के साथ किसी वस्तु का विधान किया जा सकता है, जिसकी स्वीकृति उस विधेय के साथ की गई है , तथा जिस किसी प्रकार उसके वारे मे सामान्य रूप से किसी विधेय की स्वीकृति की गई है उसका उसी प्रकार सामान्य रूप से, जिसका सामान्य रूप से उस विधेय का निपेध किया गया है, निपेध भी किया जा सकता है।"

§ ७. निरपेक्ष न्यायवाक्य के सामान्य नियम तथा उनके उल्लघन से उत्पन्न दोष

नियम (१) . **प्रत्येक न्यायवाक्य में तीन, और केवल तीन पद होने चाहिए।**

तीन पद

यह न्यायवाक्य द्वारा अनुमान का नियम न होकर केवल इस वात के निश्चय करने का नियम है कि क्या **हमारी युक्ति 'न्यायवाक्य' है भी अथवा नहीं।** न्यायवाक्य मे तीन पद होते है; यथा—साध्य (Major term), पक्ष (Minor term) तथा मध्यस्थ-पद या हेतु (Middle term) जिनमे से प्रत्येक दो वार प्रयुक्त होता है।

टिप्पणी—**चतुष्पदी-दोष** (Fallacy of Four Terms) **तथा अनेकार्थक-दोष** (Fallacy of Equivocation)।

चतुष्पदी दोष

इस नियम का उल्लघन करने से एक दोप या आभास (Fallacy) हो जाता है। इसे **चतुष्पदी-दोष** (Fallacy of Four Terms) कहते हैं। यथा—

(क) सव मनुष्य मर्त्य है।
सव घोडे चतुष्पद है।

स्पष्ट है कि उपर्युक्त दोनो आश्रयवाक्यो से कोई निष्कर्ष नही निकलता।

(ख) मेरा हाथ मेज़ को स्पर्श करता है।
मेज जमीन को स्पर्श करता है।
∴ मेरा हाथ ज़मीन को स्पर्श करता है।

इस युक्ति मे चार पद है, यथा—'मेरा हाथ', 'वह जो मेज को स्पर्श करता है,' 'जमीन', 'वह जो जमीन को स्पर्श करता है।' अत कोई निष्कर्ष नही निकलता।

(ग) सोहन मेरा मित्र है।
राम सोहन का मित्र है।
∴ राम मेरा मित्र है।

स्पष्ट है कि इस युक्ति मे भी **चतुष्पदी दोष** है।

अनेकार्थक दोष

इस नियम की मुख्य सार्थकता इस बात मे है कि यह तीनो पदो के विषय मे किसी प्रकार के अनेकार्थक शब्दो के प्रयोग को रोकता है। यदि कोई पद एक से अधिक अर्थ मे प्रयोग किया जायगा, तो वहाँ, **अनेकार्थक दोष** (Fallacy of Equivocation) हो जाएगा। वास्तव मे अनेकार्थक शब्द उतने ही पदो के बराबर होगा जितने अर्थो मे उसका प्रयोग किया गया है। साध्य भी अनेकार्थक हो सकता है, पक्ष भी अनेकार्थक हो सकता है और मध्यस्थ-पद अथवा हेतु भी अनेकार्थक हो सकता है। अत तीन प्रकार के अनेकार्थक दोष हो सकते है, यथा, **अनेकार्थक साध्य** (Ambiguous Major), अनेकार्थक पक्ष (Ambiguous Minor) तथा अनेकार्थक हेतु (Ambiguous Middle)।

उदाहरण —

(क) अनेकार्थक साध्य (Ambiguous Major)

अनेकार्थक साध्य

(१) धोबी की पत्नी **स्त्री** (Iron) नही है।
धोबिन धोबी की पत्नी है।
∴ धोबिन **स्त्री** (औरत) नही है।

इस युक्ति मे **अनेकार्थक** साध्य का दोष है, क्योकि स्त्री साध्य है, जिसका अर्थ साध्यवाक्य मे तो कपड़ा कढ़ा करने का 'आयरन' है और निष्कर्ष मे 'औरत' है।

(ख) अनेकार्थक पक्ष (Ambiguous Minor)

अनेकार्थक पक्ष

(१) जलाशय मछलियो का घर है।
चश्मा (जलस्रोत) जलाशय है।
∴ **चश्मा** (ऐनक) मछलियो का घर है।

यहाँ पक्ष 'चश्मा' दो अर्थो, यथा जलस्रोत' तथा 'ऐनक', मे प्रयुक्त हुआ है, अत इस युक्ति मे **अनेकार्थक पक्ष का दोष है।**

(२) कोई मनुष्य उडनेवाला नही है।
सब **'द्विज'** मनुष्य है।
∴ कोई **'द्विज'** उडनेवाला नही है।

इस युक्ति मे अनेकार्थक पक्ष का दोप है, क्योकि 'द्विज' शब्द दो अर्थो मे प्रयुक्त किया गया है—पक्षवाक्य मे 'द्विज' का अर्थ 'ब्राह्मण' तथा निष्कर्ष मे 'पक्षी' है।

अनेकार्थक हेतु

(ग) अनेकार्थक हेतु (Ambiguous Middle)

(१) **द्विज** (ब्राह्मण) जनेऊधारी है।
पक्षी **द्विज** (दो बार जन्म लेनेवाले) है।
∴ पक्षी जनेऊधारी है।

यहाँ मध्यस्थ पद अथवा हेतु दो अर्थवाला है—'ब्राह्मण' तथा 'दो बार जन्म लेनेवाले'। अत **अनेकार्थक-हेतु का दोष** हुआ।

(२) सब **आचार्य** पडित होते है।
यह ब्राह्मण **आचार्य** है।
∴ यह ब्राह्मण पडित है।

इस युक्ति मे भी अनेकार्थक-हेतु का दोष है, क्योकि मध्यस्थ-पद अथवा हेतु 'आचार्य' दो अर्थो मे प्रयुक्त हुआ है। साध्यवाक्य मे तो 'आचार्य' का अर्थ है 'आचार्य-परीक्षा पास' तथा पक्षवाक्य मे आचार्य का अर्थ है 'कर्म करानेवाला।'

तीन तर्क-वाक्य

नियम (२) : **न्यायवाक्य में तीन और केवल तीन तर्क-वाक्य होने चाहिए।**

यह भी न्यायवाक्य सम्बन्धी अनुमान का नियम न होकर **यह निश्चय करने का नियम है कि दी हुई युक्ति वास्तव में न्याय-वाक्य है भी अथवा नही।** न्यायवाक्य की परिभाषा से ही यह नियम प्राप्त हो जाता है, अत इस सम्बन्ध मे और कुछ कहना व्यर्थ ही होगा।

नियम (३) मध्यस्थ-पद या हेतु (Middle term) कम से कम एक बार आश्रयवाक्यो मे व्याप्त होना चाहिए।

मध्यस्थ पद (हेतु) कम से कम एक बार व्याप्त होना चाहिए।

यह नितान्त आवश्यक है कि मध्यस्थ-पद अर्थात् हेतु दोनो आश्रयवाक्यो मे से कम से कम एक मे व्याप्त हो, अन्यथा हम यह कैसे जान सकते है कि एक ऐसा उभयनिष्ट तत्व है, जो साध्य और पक्ष के बीच सम्बन्ध स्थापित कर सके? जबतक साध्य तथा पक्ष हेतु के एक ही तथा अनन्य अश से सम्बन्धित नही होगे, तबतक उनमे पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित नही किया जा सकता। हेतु उस सम्बन्ध का बन्धक है, परन्तु यदि हेतु के एक अश की तो साध्य से तुलना की जाय और उसके किसी दूसरे अश की पक्ष से तुलना की जाय, तो कोई भी निष्कर्ष सम्भव नही हो सकेगा। उदाहरणार्थ —

सब मनुष्य मर्त्य है।
सब कुत्ते मर्त्य है।

इन तर्कवाक्यो से कोई भी निष्कर्ष प्राप्त नही हो सकता।

टिप्पणी—अव्याप्त-हेतु का दोष।

अव्याप्त हेतु का दोष

इस नियम का उल्लघन करने से अव्याप्त-हेतु का दोष उत्पन्न हो जाता है, जिसके निम्नांकित उदाहरण देखिए —

(१) प्रवेश पानेवाले सब व्यक्ति पुरस्कार-विजेता है।
मोहन पुरस्कार-विजेता है।
∴ मोहन प्रवेश पानेवाला व्यक्ति है।

इस युक्ति मे अव्याप्त-हेतु का दोष है, क्योकि हेतु 'पुरस्कार-विजेता' एक बार भी आश्रयवाक्यो मे व्याप्त नही है।

(२) सब मनुष्य मर्त्य है।
सब जानवर मर्त्य है।
∴ सब जानवर मनुष्य है।

(३) सब घोडे चतुष्पद है।
सब कुत्ते चतुष्पद है।
∴ सब कुत्ते घोडे है।

(४) कुछ मनुष्य नरेश है।
सब खाना पका कर खानेवाले प्राणी मनुष्य हैं।
∴ सब खाना पकाकर खानेवाले प्राणी नरेश है।

(५) सब ईमानदार व्यक्ति कर्तव्यनिष्ठ हैं।
यह व्यक्ति कर्तव्यनिष्ठ है।
∴ यह व्यक्ति ईमानदार है।

(६) सब धर्मात्मा व्यक्ति सुखी हैं।
सब धनी व्यक्ति सुखी हैं।
∴ सब धनी व्यक्ति धर्मात्मा है।

(७) सब ग्रह गोल है।
एक पहिया गोल है।
∴ एक पहिया एक ग्रह है।

पदो की अनियमित व्याप्ति नहीं होनी चाहिए।

नियम (४) : **कोई भी पद आश्रयवाक्य में व्याप्त हुए बिना निष्कर्ष मे व्याप्त नही हो सकता।**

न्यायवाक्य निगमनमूलक (deductive) अनुमान है, अत. निष्कर्ष आश्रय से अधिक व्यापक नही हो सकता। अत. यदि कोई पद अपने पूर्ण विस्तार मे आश्रय मे प्रयुक्त न हो, तो वह पूर्ण विस्तार मे निष्कर्ष मे भी प्रयुक्त न हो सकेगा।

दोष

टिप्पणी—अवैध-साध्य-दोष तथा अवैध-पक्ष-दोष।

अवैध-साध्य

इस नियम का उल्लघन करने से अवैध-प्रक्रिया (Illicit Process) का दोष हो जाता है। यदि साध्य आश्रय मे व्याप्त हुए बिना ही निष्कर्ष मे व्याप्त हो जाता है, तो अवैध-साध्य का दोष (Fallacy of Illicit Major) हो जाता है। और यदि पक्ष आश्रय मे व्याप्त हुए बिना निष्कर्ष मे व्याप्त हो जाता है, तो अवैध-पक्ष का दोष (Fallacy of Illicit Minor) हो जाता है। निम्नलिखित उदाहरण देखिए —

(क) अवैध-साध्य दोष।

(१) सब गाये चतुष्पद है।
कोई भी कुत्ता गाय नही है।
∴ कोई भी कुत्ता चतुष्पद नही है।

इस युक्ति मे अवैध-साध्य-दोष है, क्योकि साध्य 'चतुष्पद' निष्कर्ष मे तो व्याप्त है, परन्तु आश्रय मे व्याप्त नही है।

(२) सब हिन्दू आर्य है।
कोई भी पारसी हिन्दू नही है।
∴ कोई भी पारसी आर्य नही है।

(३) सब स्पष्टवक्ता व्यक्ति ईमानदार है।
राम स्पष्टवक्ता नही है।
∴ राम ईमानदार नही है।

(४) सब काग्रेसी देशभक्त है।
कोई समाजवादी काग्रेसी नही है।
∴ कोई समाजवादी देशभक्त नही है।

(ख) अवैध-पक्ष दोष। अवैध पक्ष

(१) कोई भी मनुष्य पूर्ण नही है।
सब मनुष्य जन्तु है।
∴ कोई भी जन्तु पूर्ण नही है।

इस युक्ति मे अवैध-पक्ष दोष है, क्योकि पक्ष 'जन्तु' निष्कर्ष मे तो व्याप्त है, परन्तु पक्षवाक्य मे व्याप्त नही है।

(२) सब हिन्दू भारतीय है।
सब भारतीय जीवधारी है।
∴ सब जीवधारी हिन्दू है।

(३) सब जापानी बौद्ध है।
सब बौद्ध निरीश्वरवादी है।
∴ सब निरीश्वरवादी जापानी है।

(४) सब मनुष्य मर्त्य है।
सब मनुष्य विचारशील है।
∴ सब विचारशील (व्यक्ति) मर्त्य है।

(५) सब धातुये ताप तथा विद्युत् की सुचालक है।
सब धातुये तत्व है।
∴ सब तत्व ताप तथा विद्युत् के सुचालक है।

दो निषेधात्मक आश्रयों से कोई निष्कर्ष नहीं निकलता।

नियम (५) : **दो निषेधात्मक आश्रयों से कोई निष्कर्ष नहीं निकलता।**

उपपत्ति—निपेधात्मक तर्कवाक्य से यह अर्थ निकलता है कि विधेय उद्देश्य के सम्वन्ध मे अस्वीकार किया गया है। और जव दोनो आश्रयवाक्य निपेधात्मक होगे, तो इसका अर्थ यह होगा, कि न तो साध्य और न पक्ष किसी भी प्रकार हेतु से सम्वन्धित है। जव हेतु का सम्वन्ध न तो साध्य से और न पक्ष से होगा तो इनमे कोई भी सम्वन्ध-वन्धक नही होगा। साध्य या पक्ष मे से कम से कम जव किसी एक का सम्वन्ध हेतु के साथ होगा, तभी हम उसका दूसरे पद से सम्वन्ध निर्धारित कर सकेगे। उदाहरणार्थ, निम्नलिखित दो तर्कवाक्यो को देखिए :—

कोई भी मनुष्य चतुष्पदी नही है।
कोई भी चतुष्पदी विचारशील नही है।

इनसे कोई भी निष्कर्प नही निकलता।

निषेधात्मक आश्रयो का दोष

टिप्पणी—निषेधात्मक आश्रयो का दोष।

इस नियम का उल्लघन करने से निषेधात्मक आश्रयो का दोप (Fallacy of Negative Premises) हो जाता है, जैसा कि उपर्युक्त उदाहरण मे दिखलाया गया है। निप्कर्प प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि कम से कम एक आश्रय स्वीकारात्मक हो। निम्नलिखित उदाहरण देखिए :—

कोई भी स्कॉटलैण्ड का निवासी इस व्यग को नही समझ सकता।
वह इस व्यग को नही समझ सकता।
∴ वह स्कॉटलैण्ड का निवासी है।

इस युक्ति मे निपेधात्मक आश्रयो का दोप है, क्योकि दोनो आश्रयवाक्य निपेधात्मक है।

एक निषेधात्मक आश्रय

नियम (६) : **यदि एक आश्रयवाक्य निषेधात्मक हो,**

तो निष्कर्ष भी निषेधात्मक होगा और निष्कर्ष को निषेधात्मक सिद्ध करने के लिए एक आश्रय निषेधात्मक होगा।

से निषेधात्मक निष्कर्ष प्राप्त होता है

उपपत्ति—नियम (५) के अनुसार दोनो आश्रयवाक्य निषेधात्मक नही हो सकते। अतः निष्कर्ष तभी प्राप्त हो सकता है जब कम से कम एक आश्रय स्वीकारात्मक हो। नियम (६) के अनुसार यदि एक आश्रयवाक्य निषेधात्मक हो, तो निष्कर्ष भी निषेधात्मक होगा। निषेधात्मक आश्रय से केवल यह ज्ञात होता है कि हेतु तथा अन्य पद (साध्य अथवा पक्ष) मे कोई सम्बन्ध नही है और दूसरे आश्रय से, जो स्वीकारात्मक है, यह ज्ञात होता है कि हेतु तथा दूसरे पद मे कोई सम्बन्ध है। इन दोनो से हम यह निष्कर्ष निकालते है कि दोनो पदो (साध्य तथा पक्ष) मे कोई सबंध नही है।

इस नियम का विलोम भी शुद्ध होता है, अर्थात् **यह सिद्ध करने के लिए कि निष्कर्ष निषेधात्मक है, एक आश्रय निषेधात्मक होना चाहिए।** यदि निष्कर्ष निषेधात्मक है, तो इसका यह अर्थ हुआ कि साध्य तथा पक्ष मे कोई सम्बन्ध नही है। यह तभी सिद्ध किया जा सकता है, जब एक आश्रय निषेधात्मक हो, जो यह प्रदर्शित करे कि हेतु तथा एक पद (साध्य अथवा पक्ष) मे कोई सम्बन्ध नही है, एव एक आश्रय स्वीकारात्मक हो, जो यह प्रदर्शित करे कि हेतु तथा दूसरे पद मे कोई सम्बन्ध है।

और इसका विलोम।

नियम (७) : **यदि दोनों आश्रयवाक्य स्वीकारात्मक हो, तो निष्कर्ष भी स्वीकारात्मक होता है, और यदि निष्कर्ष स्वीकारात्मक हो तो दोनों आश्रयवाक्य स्वीकारात्मक होते हैं।**

दो स्वीकारात्मक आश्रय वाक्यो से स्वीकारात्मक निष्कर्ष प्राप्त होता है

उपपत्ति—यदि दोनो आश्रयवाक्य स्वीकारात्मक हो, तो इसका यह अर्थ होगा कि हेतु का साध्य तथा पक्ष दोनो से सम्बन्ध है और इस वात से यह निष्कर्ष अनिवार्यत प्राप्त हो जाता है कि साध्य तथा पक्ष मे सम्बन्ध है।

यदि निष्कर्ष स्वीकारात्मक हो, तो दोनो आश्रयवाक्य भी स्वीकारात्मक होगे। यदि दोनो आश्रय स्वीकारात्मक नही होगे, तो या तो वे दोनो निषेधात्मक होगे अथवा उनमे से एक निषेधात्मक तथा दूसरा स्वीकारात्मक होगा। यदि दोनो आश्रय-

और इसका विलोम।

वाक्य निषेधात्मक होगे, तो कोई निष्कर्ष नही निकल सकेगा ; और यदि उनमे से कोई एक निषेधात्मक होगा, तो निष्कर्ष भी निषेधात्मक हो जायेगा। अत निष्कर्ष स्वीकारात्मक तभी हो सकता है, जब दोनो आश्रय स्वीकारात्मक हो।

दो विशेष आश्रयवाक्यो से कोई निष्कर्ष नहीं निकलता।

नियम (८) : यदि दोनो आश्रय विशेष हो, तो कोई निष्कर्ष नहीं निकलता।

उपपत्ति—इस नियम को निम्न प्रकार से सिद्ध किया जा सकता है :—

यदि दोनो आश्रयवाक्य विशेष हो, तो उनके संभावित युग्म 'ई-ई' (I-I), 'ई-ओ' (I-O), 'ओ-ई' (O-I) तथा 'ओ-ओ' (O-O) हो सकते है। अब हम इन चारो पर पृथक्-पृथक् विचार करेगे।

'ई-ई' (I-I) से कोई सिद्ध निष्कर्ष नही प्राप्त होता, क्योकि 'ई' (I) तर्कवाक्य मे न तो उद्देश्य और न विधेय व्याप्त होता है। अतः यदि दोनो आश्रयवाक्य 'ई' (I) तर्कवाक्य होगे, तो दोनो आश्रयो मे कोई भी पद व्याप्त नही होगा। परन्तु नियम (३) के अनुसार, मध्यस्थ-पद अर्थात् हेतु कम से कम एक बार आश्रय मे व्याप्त होना चाहिए। अतएव यदि दोनो आश्रयवाक्य 'ई' (I) होगे, तो कोई निष्कर्ष नही निकलेगा।

'ई-ओ' (I-O) तथा **'ओ-ई'** (O-I)

यदि एक आश्रय 'ई' (I) हो तथा दूसरा 'ओ' (O) हो, तो दोनो आश्रयो मे केवल एक ही पद व्याप्त हो सकेगा। यह पद मध्यस्थपद अर्थात् हेतु होना चाहिए, अन्यथा अव्याप्त-हेतु का दोष हो जाएगा। परन्तु एक आश्रय निषेधात्मक है; अत निष्कर्ष भी निषेधात्मक होगा, जिसमे साध्य अर्थात् निष्कर्ष का विधेय निष्कर्ष मे व्याप्त हो जायेगा, परन्तु वह साध्यवाक्य मे व्याप्त नही होगा। अत यदि हम कोई निष्कर्ष निकालने का प्रयत्न करेगे, तो या तो अव्याप्त-हेतु का दोष हो जायेगा अथवा अवैध-साध्य का दोष हो जायेगा।

'ओ-ओ' (O-O) .—दोनो आश्रयवाक्य निषेधात्मक होने

के कारण, नियम (५) के अनुसार कोई निष्कर्ष नही निकल सकता।

अत दोनो आश्रयवाक्यो के विशेष होने पर कोई निष्कर्ष नही निकलता।

नियम (९) **यदि एक आश्रयवाक्य विशेष हो, तो निष्कर्ष भी विशेष होगा।**

एक आश्रयवाक्य विशेष हो, तो निष्कर्ष भी विशेष होगा।

उपपत्ति—इस नियम को निम्नलिखित प्रकार से सिद्ध किया जा सकता है।

यदि एक आश्रयवाक्य विशेष हो, तो दूसरा आश्रयवाक्य सार्वलौकिक होगा। अतः सभावित युग्म निम्नलिखित हो सकते है 'आ-ई' (A-I), 'ई-आ' (I-A), 'आ-ओ' (A-O), 'ओ-आ' (O-A), 'ए-ई' (E-I), 'ई-ए' (I-E) 'ए-ओ' (E-O), तथा 'ओ-ए' (O-E)।

इन आठ सभावित युग्मो से हम **'ए-ओ'** (E-O) तथा **'ओ-ए'** (O-E) को तुरन्त छोड सकते है, क्योकि उनमे दोनो आश्रयवाक्य निषेधात्मक होने के कारण कोई निष्कर्ष नही निकलता। अब हम अन्य युग्मो का पृथक्-पृथक् परीक्षण करेगे।

'आ-ई' (A-I) तथा 'ई-आ' (I-A)

यदि एक आश्रयवाक्य 'आ' (A) हो तथा दूसरा आश्रयवाक्य 'ई' (I) हो, तो दोनो आश्रयो मे केवल एक ही पद व्याप्त होगा, जो मध्यस्थ-पद या हेतु होना चाहिए, अन्यथा अव्याप्त-हेतु का दोष हो जायेगा। अत निष्कर्ष मे कोई भी पद व्याप्त नही हो सकता। अत निष्कर्ष यदि कोई होगा, तो वह 'ई' (I) तर्कवाक्य होगा; क्योकि उसमे ही कोई पद व्याप्त नही होता। अत निष्कर्ष विशेष होता है।

'आ-ओ' (A-O) और 'ओ-आ' (O-A)

यदि एक आश्रय 'आ' (A) हो, तथा दूसरा 'ओ' (O) हो, तो उनमे केवल दो पद व्याप्त होते है—यथा, 'आ' (A) का उद्देश्य तथा 'ओ' (O) का विधेय। इन दोनो पदो मे एक हेतु होगा। अत निष्कर्ष मे केवल एक ही पद व्याप्त हो सकता है। परन्तु

एक आश्रय निषेधात्मक होने के कारण निष्कर्ष भी निषेधात्मक होगा, जिसका विधेय व्याप्त होगा, अर्थात् साध्य व्याप्त होगा। हम ऊपर कह चुके हैं कि निष्कर्ष में केवल एक ही पद व्याप्त हो सकता है, और वह पद साध्य होगा। अत पक्ष निष्कर्ष में अव्याप्त होगा। इसलिए निष्कर्ष 'ओ' (O) होगा, जो विशेष है।

'ए-ई' (E-I) और 'ई-ए' (I-E)

इनके आश्रयवाक्यो मे केवल दो पद व्याप्त होते है—यथा, 'ए' (E) तर्कवाक्य के उद्देश्य तथा विधेय। इनमें से एक हेतु होगा और दूसरा साध्य होगा क्योंकि निष्कर्ष निषेधात्मक होने के कारण अपने विधेय अर्थात् साध्य को व्याप्त करेगा। अत निष्कर्ष मे उद्देश्य व्याप्त नही होता। दूसरे शब्दो में, यदि कोई निष्कर्ष निकल सकता है, तो वह 'ओ' (O) होगा, जो विशेष है। [नियम (१०) मे हम देखेगे कि 'ई-ए' से कोई निष्कर्ष नहीं निकल सकता।]

इस नियम से यह स्पष्ट हो जाता है कि **यदि निष्कर्ष सार्वलौकिक हो, तो दोनो आश्रय भी सार्वलौकिक होने चाहिए।** क्योकि यदि एक आश्रय विशेष होगा तो निष्कर्ष भी विशेष होगा। अत सार्वलौकिक निष्कर्ष तभी प्राप्त होता है, जब आश्रय स्वीकारात्मक हो।

इस नियम का विलोम शुद्ध नहीं होता, अर्थात् यह बात शुद्ध नही होती कि यदि निष्कर्ष विशेष हो तो आश्रय भी विशेष होगे। ऐसा भी हो सकता है कि दोनो आश्रयवाक्य सार्वलौकिक हो, परन्तु तो भी उनसे विशेष निष्कर्ष निकले।

यदि साध्य-वाक्य विशेष तथा पक्ष-वाक्य निषेधात्मक हो तो कोई निष्कर्ष नहीं निकलता।

नियम (१०) **यदि साध्यवाक्य विशेष हो, तथा पक्षवाक्य निषेधात्मक हो, तो कोई निष्कर्ष नहीं निकलता।**

उपपत्ति—यदि पक्षवाक्य निषेधात्मक हो, तो साध्यवाक्य स्वीकारात्मक होगा तथा निष्कर्ष निषेधात्मक होगा। निष्कर्ष के निषेधात्मक होने के कारण उसमे साध्य व्याप्त होगा। परन्तु साध्यवाक्य मे, उसके विशेष स्वीकारात्मक होने के कारण, कोई भी पद व्याप्त नही है। अत यदि कोई निष्कर्ष निकालने का

प्रयत्न किया जाय, तो अवैध-साध्य (Illicit Major) का दोष हो जाता है।

यह बात द्रष्टव्य है कि अन्तिम चार नियम पहले चार नियमो के द्वारा ही प्राप्त हो जाते है। अन्तिम चार नियमो मे से किसी एक का उल्लघन पहले के किन्ही नियमो के उल्लघन का परिणाम होता है। अत पहले छ नियमो को **प्रधान नियम**, तथा अन्तिम चार नियमो को **अप्रधान नियम** मानते है।

सारांश: पहले दो नियमो का सम्बन्ध न्यायवाक्य की **रचना** से है ; तीसरे और चौथे नियमो का सम्बन्ध **पद व्याप्ति** के प्रश्न से है, पाँचवाँ, छठा और सातवाँ नियम घटक-तर्कवाक्यो के **गुण** से सम्वन्ध रखता है, आठवे और नवे नियमो का सम्वन्ध घटक-तर्कवाक्यो के **परिमाण** से है और दसवाँ नियम **परिमाण तथा गुण** दोनो के मिश्रित-प्रश्न से सम्वन्धित है।

§ ८. न्यायवाक्य के "आकार" (Figures)

न्यायवाक्य का आकार हेतु के स्थान से निश्चित होता है।

'**आकार**' (Figure) **न्यायवाक्य का वह रूप है, जिसका निर्णय साध्य और पक्ष के सम्बन्ध में हेतु के आश्रयवाक्यो मे स्थान से किया जाता है।**

हेतु साध्यवाक्य तथा पक्षवाक्य दोनो मे उपस्थित होता है, परन्तु प्रत्येक न्यायवाक्य मे हेतु का स्थान एक-सा नही होता। दोनो आश्रयवाक्यो मे हेतु का स्थान चार प्रकार से भिन्न होता है। अत न्यायवाक्य के **चार आकार** होते है —

(१) **प्रथम आकार** (First Figure)

प्रथम आकार मे हेतु साध्यवाक्य का उद्देश्य तथा पक्षवाक्य का विधेय होता है। अत

'म' 'वि'
'उ' 'म'
. 'उ' 'वि'।

(२) द्वितीय आकार (Second Figure) :

द्वितीय आकार मे, हेतु दोनो आश्रयवाक्यो मे विधेय होता है। इस प्रकार,

'वि' 'म'
'उ' 'म'
∴ 'उ' 'वि'।

(३) तृतीय आकार (Third Figure) .

तृतीय आकार मे, हेतु दोनो आश्रयवाक्यो मे उद्देश्य होता है। इस प्रकार,

'म' 'वि'
'म' 'उ'
∴ 'उ' 'वि'।

(४) चतुर्थ आकार (Fourth Figure)

चतुर्थ आकार में, हेतु साध्यवाक्य का विधेय तथा पक्षवाक्य का उद्देश्य होता है। इस प्रकार,

'वि' 'म'
'म' 'उ'
∴ 'उ' 'वि'।

§ ९. न्यायवाक्य के "संयोग" (Moods)

'सयोग' शब्द का उपयोग भिन्न-भिन्न अर्थो मे किया जाता है।

(१) केवल आश्रयवाक्यो के आधार पर ६४ संयोग

(१) न्यायवाक्य का संयोग (Mood) उस रूप को कहते हैं, जिसका निर्णय घटक आश्रयवाक्यो के गुण तथा परिमाण के आधार पर किया जाता है।

हमे ज्ञात है कि तर्कवाक्य चार प्रकार के होते है, यथा—'आ' (A), 'ए' (E), 'ई' (I) और 'ओ' (O)। और प्रत्येक न्यायवाक्य मे दो आश्रयवाक्य होते है। अत प्रत्येक आकार मे सोलह सभावित संयोग होते है। यथा—

आ-आ	ए-आ	ई-आ	ओ-आ
आ-ए	ए-ए	ई-ए	ओ-ए
आ-ई	ए-ई	ई-ई	ओ-ई
आ-ओ	ए-ओ	ई-ओ	ओ-ओ

आकार चार होते है, इसलिए कुल मिलाकर १६×४=६४ सयोग सभव है।

अत यदि हम आश्रयवाक्यो के गुण तथा परिमाण के आधार पर ही सयोग बनाये, तो प्रत्येक आकार मे १६ सयोग हो सकते है, तथा चारो आकारो मे मिलाकर ६४ सयोग सभव है।

(२) तीनो तर्कवाक्यो के आधार पर २५६ संयोग

(२) अधिक व्यापक अर्थ में, 'संयोग' से तात्पर्य न्यायवाक्य के उस रूप से होता है, जिसका निर्णय न्यायवाक्य के घटक-अवयवो (दोनो आश्रयवाक्य तथा निष्कर्ष) के गुण तथा परिमाण के आधार पर किया जाता है।

इस दृष्टिकोण से उपर्युक्त ६४ सयोगो मे से प्रत्येक के चार रूप हो सकते है। उदाहरणार्थ, प्रथम आकार मे 'आ-आ' का सयोग निम्नलिखित चार रूप ले सकता है —

आ-आ-आ
आ-आ-ए
आ-आ-ई
आ-आ-ओ।

अत इस दृष्टिकोण से ६४×४=२५६ सयोग चारो आकारो मे हो सकते है।

यदि केवल आश्रयो पर विचार करें तो ६४ में से केवल १९ संयोग सिद्ध है।

(३) कुछ तर्कशास्त्री 'सयोग' शब्द को बडे सकीर्ण अर्थ मे प्रयुक्त करते है और उससे उनका तात्पर्य **सिद्ध संयोग** (valid moods) **होता है, अर्थात् वे संयोग जिनसे विशुद्ध निष्कर्ष निकले।** हम आगे चलकर देखेगे कि **चारों आकारो में, केवल आश्रयवाक्यो के आधार पर कुल मिलाकर केवल १९ सिद्ध-संयोग है।** यथा—

आ-आ; ए-आ, आ-ई; ए-ई, — प्रथम आकार।
ए-आ, आ-ए, ए-ई; आ-ओ; — द्वितीय आकार।
आ-आ; ई-आ; आ-ई; ए-आ, ओ-आ, ए-ई, — तृतीय आकार।
आ-आ, आ-ए, ई-आ; ए-आ; ए-ई; — चतुर्थ आकार ।

यह वात द्रष्टव्य है कि इन उन्नीस सिद्ध सयोगो मे से 'ए-आ' तथा 'ए-ई' चारो आकारो मे उपस्थित है। अर्थात् **'ए-आ' तथा 'ए-ई' से चारों आकारों में विशुद्ध निष्कर्ष निकलता है।**

परन्तु यदि हम तीनों घटक तर्कवाक्यों के अनुसार देखें तो २४ सिद्ध-संयोग होंगे।

आ-आ-आ, आ-आ-ई, ए-आ-ए, ए-आ-ओ; आ-ई-ई; ए-ई-ओ, —प्रथम आकार।
ए-आ-ए; ए-आ-ओ; आ-ए-ए, आ-ए-ओ, ए-ई-ओ, आ-ओ-ओ, —द्वितीय आकार।
आ-आ-ई, ई-आ-ई, आ-ई-ई, ए-आ-ओ; ओ-आ-ओ, ए-ई-ओ; —तृतीय आकार।
आ-आ-ई, आ-ए-ए; आ-ए-ओ; ई-आ-ई; ए-आ-ओ; ए-ई-ओ, —चतुर्थ आकार।

यह वात द्रष्टव्य है कि 'ए-आ-ओ' तथा 'ए-ई-ओ' चारो आकारों मे सिद्ध है।

अव हम इस वात पर विचार करेगे कि सयोगो की सिद्धि किस प्रकार ज्ञात की जाती है।

§ १०. सिद्ध-सयोगों को ज्ञात करना

यदि हम केवल आश्रय वाक्यो पर ही विचार करें, तो १६ संभावित संयोग होते हैं जिनमेंसे ८ से किसी भी आकार

यदि 'सयोग' से तात्पर्य न्यायवाक्य के उन रूपो को समझा जाय जिनका निर्णय **आश्रयवाक्यो** के गुण तथा परिमाण के आधार पर किया जाय, तो **प्रत्येक आकार में १६ संयोग** होते है। यथा—

'आ'-'आ'	'ए'-'आ'	'ई'-'आ'	'ओ'-'आ'
'आ'-'ए'	'ए'-'ए'	'ई'-'ए'	'ओ'-'ए'
'आ'-'ई'	'ए'-'ई'	'ई'-'ई'	'ओ'-'ई'
'आ'-'ओ'	'ए'-'ओ'	'ई'-'ओ'	'ओ'-'ओ'

इन सोलह सभावित सयोगो मे से 'ए-ए' (E-E), 'ए-ओ' (E-O) 'ओ-'ए' (O-E), तथा 'ओ-'ओ' (O-O) से किसी भी आकार मे निष्कर्ष नही निकलता, क्योकि दोनो आश्रयवाक्य निषेधात्मक है। और 'ई'-'ई', (I-I), 'ई'-'ओ' तथा 'ओ'-'ई' (O-I) से भी किसी आकार मे विशुद्ध निष्कर्ष नही निकलता, क्योकि दोनो आश्रयवाक्य विशेष है। 'ई'-'ए' (I-E) से भी कोई निष्कर्ष नही निकल सकता, क्योकि साध्य-वाक्य विशेष है, तथा पक्षवाक्य निषेधात्मक है, (नियम १०)। **अतः सोलह संभावित संयोगो मे से आठ से किसी भी आकार से निष्कर्ष नही निकलता।**

मे निष्कर्ष नही निक-लता।

अब हम यह देखेगे कि शेष आठ सयोगो यथा—'आ'-'आ' (A-A),'आ'-'ए' (A-E), 'आ'-'ई' (A-I), 'आ'-'ओ' (A-O), 'ए'-'आ' (E-A), 'ए'-'ई' (E-I), 'ई'-'आ' (I-A), तथा 'ओ'-'आ' (O-A) से कौन-कौन से निष्कर्ष निकलते है और उनमे से कौन से निष्कर्ष विशुद्ध अथवा सिद्ध है।

प्रथम आकार

(एक) प्रथम आकार के सिद्ध-संयोग :

प्रथम आकार मे, हेतु साध्यवाक्य मे उद्देश्य तथा पक्षवाक्य मे विधेय होता है।

(१) 'आ'-'आ'.

'आ-आ-आ' (बार्बारा)

'आ' सब 'म' 'वि' है। सब मनुष्य मर्त्य है।
'आ' सब 'उ' 'म' है। सब नरेश मनुष्य है।
∴ 'आ'. सब 'उ' 'वि' है। ∴ सब नरेश मर्त्य है।

इसमे दोनो आश्रय स्वीकारात्मक है, अत यदि कोई निष्कर्ष निकलेगा, तो वह स्वीकारात्मक होगा। हेतु साध्यवाक्य मे व्याप्त है। निष्कर्ष मे 'आ'—तर्कवाक्य रखने से न्यायवाक्य के किसी नियम का उल्लघन नही होता, क्योकि पक्ष, जो कि निष्कर्ष मे व्याप्त है, वह पक्षवाक्य मे भी व्याप्त है। अत 'आ-आ' से

प्रथम आकार मे 'आ'-निष्कर्ष निकलता है। इस सिद्ध-सयोग को **'बार्बारा'** (Barbara) कहते है।

'आ' - 'ए' (कोई निष्कर्ष नही)

(२) **'आ'-'ए'** :

'आ' : सब 'म' 'वि' है।
'ए' . कोई भी 'उ' 'म' नही है।

इनसे कोई निष्कर्ष नही निकलता, क्योकि यदि कोई निष्कर्ष निकलेगा, तो वह निषेधात्मक होगा, इसलिए साध्य 'वि', जो कि साध्यवाक्य मे व्याप्त नही है, निष्कर्षमे व्याप्त हो जायेगा। अत. 'आ'-'ए' प्रथम आकारमे सिद्ध-सयोग नही है।

'आ-ई - ई' (दारीई)

(३) **'आ'-'ई'** :

'आ' सब 'म' 'वि' है। सब मनुष्य विचारशील है।
'ई' : कुछ 'उ' 'म' है। कुछ जीव मनुष्य है।
∴ 'ई' · कुछ 'उ' 'वि' है। ∴ कुछ जीव विचारशील है।

इसमे दोनो आश्रय स्वीकारात्मक है, और एक आश्रय विशेष है, अत: निष्कर्ष विशेष स्वीकारात्मक होगा अर्थात 'ई' (I) होगा। हेतु साध्यवाक्य मे व्याप्त है और निष्कर्ष मे कोई भी पद व्याप्त नही है। अत. 'आ'-'ई' से प्रथम आकार मे 'ई' निष्कर्ष निकलता है। इस सिद्ध-सयोग को **'दारीई'** (Darii) कहते है।

'आ - ओ' (कोई निष्कर्ष नहीं)

(४) **'आ'-'ओ'** :

'आ' सब 'म' 'वि' है।
'ओ' · कुछ 'उ' 'म' नही है।

इनसे प्रथम आकार मे कोई निष्कर्ष नही निकलता। एक आश्रयवाक्य के निषेधात्मक होने के कारण यदि कोई निष्कर्ष निकलेगा तो वह निषेधात्मक होगा, जिसका विधेय अर्थात् साध्य व्याप्त होगा। परन्तु साध्य साध्यवाक्य मे व्याप्त नही है। अत: प्रथम आकार मे 'आ'-'ओ' सिद्ध-सयोग नही है।

'ए-आ-ए' (केलारेंट)

(५) **'ए'-'आ'** ·

'ए' : कोई भी 'म' 'वि' नही है कोई भी जीव अमर नही है।

'आ' . सब 'उ' 'म' है। सब मनुष्य जीव है ।
∴'ए' . कोई भी 'उ' 'वि' नही है ∴कोई भी मनुष्य अमर नही है।

इसमे एक आश्रयवाक्य निषेधात्मक होने के कारण, निष्कर्ष भी निषेधात्मक होगा। यदि निष्कर्ष 'ए' (E) आकार मे निकाले, तो न्यायवाक्य के किसी भी नियम का उल्लघन नही होता, क्योकि हेतु साध्यवाक्य मे व्याप्त है और साध्य तथा पक्ष, जो कि निष्कर्ष मे व्याप्त है, वे आश्रयो मे भी व्याप्त है। अत. 'ए-आ' से प्रथम आकार मे 'ए' निष्कर्ष निकलता है । इस सिद्ध-सयोग को **'केलारेन्ट'** (Celarent) कहते है।

'ए-ई - ओ' (फेरीओ)

(६) 'ए'-'ई' :

'ए' : कोई भी 'म' 'वि' नही है। कोई भी चतुष्पद मनुष्य नही है।
'ई' . कुछ 'उ' 'म' है। कुछ जन्तु चतुष्पद है।
∴ 'ओ' : कुछ 'उ' 'वि' नही है। ∴ कुछ जन्तु मनुष्य नही है।

एक आश्रयवाक्य निषेधात्मक तथा दूसरा विशेष होने के कारण यदि कोई निष्कर्ष निकलेगा तो वह विशेष-निषेधात्मक अर्थात् 'ओ' (O) हो सकता है। निष्कर्ष मे 'ओ' तर्कवाक्य रखने से न्यायवाक्य के किसी भी नियम का उल्लघन नही होता, क्योकि हेतु साध्यवाक्य मे व्याप्त है और साध्य, जो कि निष्कर्ष मे व्याप्त है, वह साध्यवाक्य मे भी व्याप्त है। अत 'ए'-'ई' (E-I) से प्रथम आकार मे 'ओ' (O) निष्कर्ष निकलता है। इस सिद्ध-सयोग को **'फेरीओ'** (Ferio) कहते है।

'ई'-'आ' से कोई निष्कर्ष नही निकलता ।

(७) 'ई'-'आ' .

'ई' कुछ 'म' 'वि' है।
'आ' सब 'उ' 'म' है।

इससे कोई निष्कर्ष नही निकलता, क्योकि हेतु किसी भी आश्रय में व्याप्त नही है । अत 'ई'-'आ' प्रथम आकार मे सिद्ध-सयोग नही है।

'ओ'-'आ' से कोई निष्कर्ष नही निकलता।

(८) 'ओ-'आ' .

'ओ' · कुछ 'म' 'वि' नही है।
∴ 'आ' सब 'उ' 'म' है।

इससे कोई निष्कर्ष नही निकलता, क्योकि हेतु एक बार भी आश्रय मे व्याप्त नही है। अत 'ओ-आ' प्रथम आकार मे सिद्ध-सयोग नही है।

अत· प्रथम आकार मे केवल चार सयोगो से विशुद्ध निष्कर्ष निकलता है। यथा—**'आ-आ'** (**बार्बारा**), **'ए-आ'** (**केलारेन्ट**), **'आ-ई'** (**दारीई**) तथा **'ए-ई'** (**फेरीओ**)।

टिप्पणी १ : **प्रथम आकार के विशेष नियम।**

प्रथम आकार के विशेष नियम निम्नलिखित है :—

(१) साध्यवाक्य सार्वलौकिक होना चाहिए।
(२) पक्षवाक्य स्वीकारात्मक होना चाहिए।

नियम (१) **साध्यवाक्य सार्वलौकिक होना चाहिए।**

उपपत्ति—यदि साध्यवाक्य सार्वलौकिक न हो तो वह विशेष होगा। प्रथम आकार मे, हेतु साध्यवाक्य का उद्देश्य होता है। साध्यवाक्य विशेष होने के कारण, वह उसमे व्याप्त नही होगा। परन्तु हेतु आश्रयवाक्यो मे एक वार व्याप्त अवश्य होना चाहिए। यदि वह साध्यवाक्य मे व्याप्त नही है, तो वह पक्षवाक्य मे व्याप्त होगा। प्रथम आकार मे हेतु पक्षवाक्य का विधेय होता है। वह उसमे तभी व्याप्त हो सकता है, जब पक्षवाक्य निषेधात्मक हो, क्योकि केवल निषेधात्मक तर्कवाक्यो मे ही विधेय व्याप्त होता है। यदि पक्षवाक्य निषेधात्मक होगा, तो निष्कर्ष भी निषेधात्मक होगा तथा साध्यवाक्य स्वीकारात्मक होगा।

हम यह मानकर चले थे कि साध्यवाक्य विशेष है। अब हमे ज्ञात हुआ कि वह स्वीकारात्मक भी है। साध्यवाक्य, विशेष-स्वीकारात्मक होने के कारण, साध्य को व्याप्त नही करता। परन्तु साध्य निष्कर्ष मे व्याप्त है। अत यदि हम यह मानकर चलते है कि साध्यवाक्य विशेष है, तो अन्त मे अवैध-साध्य का

दोष हो जाता है। इसलिए साध्यवाक्य विशेष नही हो सकता, वह सार्वलौकिक (सामान्य) ही होगा।

नियम (२) . पक्षवाक्य स्वीकारात्मक होना चाहिए।

यदि पक्षवाक्य स्वीकारात्मक न हो, तो वह निषेधात्मक होगा। यदि पक्षवाक्य निषेधात्मक होगा, तो निष्कर्ष भी निषेधात्मक होगा तथा साध्यवाक्य स्वीकारात्मक होगा। प्रथम आकार मे साध्य साध्यवाक्य का विधेय होता है। साध्यवाक्य के स्वीकारात्मक होने के कारण उससे साध्य व्याप्त नही होगा। परन्तु निष्कर्ष मे, उसके निषेधात्मक होने के कारण, साध्य व्याप्त होगा। अत यह मानकर चलने से कि पक्षवाक्य निषेधात्मक होगा, अव्याप्तसाध्य (Illicit Major) का दोष हो जाता है। अत पक्षवाक्य स्वीकारात्मक होना चाहिए।

टिप्पणी २ : प्रथम आकार की विशेषताये।

प्रथम आकार मे निम्नलिखित विशेषताएँ है —

(१) **अरस्तू का सिद्धान्त** (Dictum de omni et nullo) प्रथम आकार मे सरलता से लागू होता है। यह सिद्धान्त यह मानकर चलता है कि अपने पूर्ण निर्देश मे किसी पद का विधान किया जाता है। दूसरे शब्दो मे, साध्यवाक्य सार्वलौकिक होना चाहिए। दूसरा आश्रय यह बतलाता है कि व्याप्त पद मे कुछ वस्तुएँ सम्मिलित है। दूसरे शब्दो मे, पक्षवाक्य स्वीकारात्मक होना चाहिए। ये दोनो शर्ते प्रथम आकार मे सरलता से चरितार्थ होती है।

(२) प्रथम आकार ही ऐसा आकार है, जिसका निष्कर्ष **'आ' (A) तर्कवाक्य** हो सकता है।

(३) प्रथम आकार ही ऐसा आकार है, जो चारो प्रकार के **तर्कवाक्य**—यथा, 'आ' (A), 'ए' (E), 'ई' (I), तथा 'ओ' (O) सिद्ध करता है।

(४) प्रथम आकार मे न तो साध्य और न पक्ष के स्थानो **में परिवर्त्तन** होता है। क्योकि आश्रयवाक्यो मे तथा निष्कर्ष मे पक्ष तो उद्देश्य होता है, तथा साध्य विधेय होता है।

(दो) द्वितीय आकार के सिद्ध-सयोग–

द्वितीय आकार मे, हेतु दोनो आश्रयवाक्यो का विधेय होता है। अव हम आठो सयोगो का पृथक-पृथक अध्ययन करेगे।

'आ-आ' से कोई निष्कर्ष नहीं निकलता।

(१) 'आ-आ' :

'आ' सव 'वि' 'म' है।
'आ' सव 'उ' 'म' है।

इससे कोई निष्कर्प नही निकलता, क्योकि हेतु एक वार भी आश्रयवाक्यो मे व्याप्त नही है। अत द्वितीय आकार मे 'आ-आ' से विशुद्ध निष्कर्प नही प्राप्त होता।

'आ-ए-ए' (कामेस्ट्रेस्)

(२) 'आ-ए' :

'आ' :	सव 'वि' 'म' है।	सव धातुये तत्व है।
'ए'	कोई भी 'उ' 'म' नही है।	कोई भी यौगिक तत्व नही है।
∴ 'ए'	कोई भी 'उ' 'वि नही है।	∴ कोई भी यौगिक धातु नही है।

इसमे एक आश्रयवाक्य निपेधात्मक होने के कारण, निष्कर्ष भी निपेधात्मक होगा। यदि हम निष्कर्प 'ए' निकाले, तो न्याय-वाक्य के किसी नियम का उल्लघन नही होता, क्योकि हेतु पक्षवाक्य मे व्याप्त है और साध्य तथा पक्ष, जो कि निष्कर्प मे व्याप्त है, वे आश्रयो मे भी व्याप्त है। अत 'आ-ए' से द्वितीय आकार मे 'ए' निष्कर्प निकलता है। इस सिद्ध-सयोग को **कामेस्ट्रेस्** (Camestres) कहते है।

'आ-ई' से कोई निष्कर्ष नहीं निकलता।

(३) 'आ-ई'

'आ' . सव 'वि' 'म' है।
'ई' . कुछ 'उ' 'म' है।

इससे कोई कोई निष्कर्ष नही निकलता, क्योकि हेतु दोनो आश्रय वाक्यो मे अव्याप्त है। अत. द्वितीय आकार मे 'आ-ई' से विशुद्ध निष्कर्प नही प्राप्त होता।

(४) **'आ-ओ'** :

'आ' सब 'वि' 'म' है। सब घोड़े चतुष्पद है।
'ओ' कुछ 'उ' 'म' नही है कुछ जन्तु चतुष्पद नही है।
'ओ' कुछ 'उ' 'वि' नही है ∴ कुछ जन्तु घोड़े नही है।

'आ-ओ-ओ' (बारोको)

इसमे एक आश्रयवाक्य के विशेष निषेधात्मक होने के कारण निष्कर्ष भी विशेष तथा निषेधात्मक हो सकता है। अत निष्कर्ष 'ओ' निकालने से न्यायवाक्य के किसी नियम का उल्लघन नही होता, क्योकि हेतु पक्षवाक्य मे व्याप्त है और साध्य, जो कि निष्कर्ष मे व्याप्त है, वह साध्यवाक्य मे भी व्याप्त है। अत 'आ-ओ' से द्वितीय आकार मे 'ओ' निष्कर्ष निकलता है। इस सिद्ध-संयोग को 'बारोको' (Baroco) कहते है।

(५) **'ए-आ'** :

'ए' कोई भी 'वि' 'म' नही है। कोई भी पूर्ण व्यक्ति मर्त्य नही है।
'आ' सब 'उ' 'म' है। सब मनुष्य मर्त्य है।
∴ 'ए' कोई भी 'उ' 'वि' नही है। ∴ कोई भी मनुष्य पूर्ण व्यक्ति नही है।

'ए-आ-ए' (केसारे)

इसका निष्कर्ष निषेधात्मक होगा, क्योकि एक आश्रयवाक्य निषेधात्मक है। निष्कर्ष को 'ए' निकालने से न्यायवाक्य के किसी भी नियम का उल्लघन नही होता। क्योकि हेतु साध्य-वाक्य मे व्याप्त है, और साध्य तथा पक्ष जो कि निष्कर्ष मे व्याप्त है, वे अपने आश्रयवाक्यो मे भी व्याप्त है। अत 'ए-आ' से द्वितीय आकार मे 'ए' निष्कर्ष निकलता है। इस सिद्ध-संयोग को 'केसारे' (Cesare) कहते है।

(६) 'ए-ई'

'ए' कोई भी 'वि' 'म' नही है। कोई भी मनुष्य पूर्ण नही है।
'ई' कुछ 'उ' 'म' है। कुछ व्यक्ति पूर्ण है।
'ओ' कुछ 'उ' 'वि' नही है। ∴ कुछ व्यक्ति मनुष्य नही है।

'ए-ई-ओ' (फेस्तीनो)

इसमे एक आश्रय निपेधात्मक है, तथा दूसरा आश्रय विशेष है। अत यदि कोई निष्कर्प निकल सकता है, तो वह 'ओ' होगा। 'ओ' निष्कर्प निकालने से न्यायवाक्य के किसी भी नियम का उल्लघन नही होता, क्योकि हेतु साध्यवाक्य मे व्याप्त है, तथा साध्य, जो कि निष्कर्ष मे व्याप्त है, वह साध्यवाक्यमे भी व्याप्त है। अत 'ए-ई' से द्वितीय आकार मे ओ' 'निष्कर्प निकलता है। इस सिद्ध-सयोग को **'फेस्तीनो'** (Festino) कहते है।

'ई-आ' मे कोई निष्कर्ष नही निकलता।

(७) **'ई-आ'** ·

'ई' : कुछ 'वि' 'म' है।
'आ' सव 'उ' 'म' है।

इसमे हेतु एक भी आश्रय मे व्याप्त नही है, अत कोई निष्कर्ष नही निकलता।

'ओ-आ' से कोई निष्कर्प नही निकलता।

(८) **'ओ-आ'** :

'ओ' कुछ 'वि' 'म' नही है।
'आ'. सव 'उ' 'म' है।

इसमे यदि कोई निष्कर्ष निकलेगा तो वह विशेप निषेधात्मक होगा क्योकि एक आश्रयवाक्य विशेप और निषेधात्मक है। निषेधात्मक निष्कर्ष का विधेय अर्थात् साध्य व्याप्त होगा, परन्तु वह साध्यवाक्य मे व्याप्त नही है। अत. द्वितीय आकार मे, 'ओ-आ' से कोई निष्कर्प नही निकलता।

इस प्रकार द्वितीय आकार मे केवल चार सयोगो से विशुद्ध निष्कर्प प्राप्त होते है। यथा—**'ए-आ'** (**केसारे**) **'आ-ए'** (**कामेस्ट्रेस**), **'ए-ई'** (**फेस्तीनो**) तथा **'आ-ओ'** (**बारोको**)।

टिप्पणी—द्वितीय आकार के विशेष नियम।

द्वितीय आकार के विशेष नियम निम्नलिखित है :—

(१) साध्यवाक्य सार्वलौकिक होना चाहिए।
(२) एक आश्रयवाक्य निषेधात्मक होना चाहिए।

नियम (१) : साध्यवाक्य सार्वलौकिक होना चाहिए।

उपपत्ति—यदि साध्यवाक्य सार्वलौकिक नही होगा, तो वह विशेष होगा। द्वितीय आकार मे, साध्य साध्यवाक्य का उद्देश्य होता है। साध्यवाक्य, विशेष होने के कारण, उसमे साध्य अव्याप्त होता है। अत साध्य निष्कर्ष म भी व्याप्त नही हो सकता, जहाँ वह विधेय के स्थान पर है। अत निष्कर्ष स्वीकारात्मक होना चाहिए, क्योकि केवल स्वीकारात्मक तर्कवाक्योके विधेय ही अव्याप्त होते है। निष्कर्ष तभी स्वीकारात्मक होता है, जब दोनो आश्रयवाक्य स्वीकारात्मक हो। अत आश्रयवाक्यो के विधेय अव्याप्त होगे। द्वितीय आकार मे हेतु दोनो आश्रयवाक्यो मे विधेय होता है, अत वह एक बार भी व्याप्त न हो सकेगा।

अत साध्यवाक्य को विशेष मान लेने से, 'अव्याप्त-हेतु का दोष' (Fallacy of Undistributed Middle) हो जाता है। अत साध्यवाक्य सार्वलौकिक होना चाहिए।

नियम (२) : एक आश्रयवाक्य निषेधात्मक होना चाहिए।

उपपत्ति—द्वितीय आकार मे हेतु दोनो आश्रयवाक्यो मे विधेय होता है। परन्तु स्वीकारात्मक तर्कवाक्यो के विधेय व्याप्त नही होते, पर हेतु कम से कम एक बार अवश्य व्याप्त होना चाहिए। अत एक आश्रयवाक्य का निषेधात्मक होना अनिवार्य है।

(तीन) तृतीय आकार के सिद्ध-न्याय।

तृतीय आकार मे, हेतु दोनो आश्रयवाक्यो मे उद्देश्य होता है।

(१) 'आ-आ' :

'आ' सब 'म' 'वि' है। सब मनुष्य विचारशील है।
'आ' सब 'म' 'उ' है। सब मनुष्य मर्त्य है।
'ई' कुछ 'उ' 'वि' है। कुछ मर्त्य (व्यक्ति) मनुष्य है।

इसमे दोनो आश्रयवाक्य स्वीकारात्मक है, अत निष्कर्ष भी स्वीकारात्मक होगा। यदि हम निष्कर्ष मे 'आ'-तर्कवाक्य निका-

लने का प्रयत्न करे, तो उसमे पक्ष व्याप्त हो जायेगा, यद्यपि वह पक्ष-वाक्य मे व्याप्त नही होगा। अत. निष्कर्ष 'आ' नही हो सकता। परन्तु यदि निष्कर्ष 'ई' निकाला जाय, तो न्यायवाक्य के किसी भी नियम का उल्लघन नही होता, क्योकि हेतु दोनो आश्रयो मे व्याप्त होता है तथा निष्कर्ष मे किसी भी पद की अनियमित-व्याप्ति नही होती। अत तृतीय आकार मे 'आ-आ' का निष्कर्ष 'ई' होता है। इस सिद्ध-संयोग को **'दाराप्ती'** (Darapti) कहते है।

'आ-ए' से कोई निष्कर्ष नहीं निकलता।

(२) **'आ-ए'** :

'आ' सब 'म' 'वि' है।
'ए' : कोई भी 'म' 'उ' नही है।

इससे कोई निष्कर्ष नही निकलता, क्योकि यदि कोई निष्कर्ष निकलेगा, तो वह निषेधात्मक होगा। और उसका विधेय अर्थात् साध्य व्याप्त होगा, परन्तु साध्य साध्यवाक्य मे व्याप्त नही है।

'आ-ई-ई' (दातीसी)

(३) **'आ-ई'**

'आ' : सब 'म' 'वि' है।	कुछ रोग कष्टदायक है।
'ई' · कुछ 'म' 'उ' है।	कुछ रोग उपचारयोग्य है।
. 'ई' कुछ 'उ' 'वि' है।	∴ कुछ उपचारयोग्य वस्तुये कष्टदायक है।

इसमे एक आश्रय विशेष है, तथा दोनों आश्रयवाक्यो के स्वीकारात्मक होने के कारण, निष्कर्ष, यदि कोई हो, तो 'ई' हो सकता है। 'ई' निष्कर्ष निकालने से न्यायवाक्य का कोई नियम नही टूटता, क्योकि हेतु साध्यवाक्य मे व्याप्त है तथा निष्कर्ष मे पदो की अनियमित-व्याप्ति नही है। अतः 'आ-ई' से तृतीय आकार मे 'ई' निष्कर्ष निकलता है। इस सिद्ध-सयोग को 'दातीसी' (Datisi) कहते है।

'आ-ओ' से कोई निष्कर्ष नहीं निकलता।

(४) **'आ-ओ'** ·

'आ' सब 'म' 'वि' है।
'ओ' : कुछ 'म' 'उ' नही है।

इससे कोई निष्कर्ष नही निकलता, क्योकि यदि कोई निष्कर्ष निकलेगा तो वह निषेधात्मक होगा। जिसका विधेय, अर्थात् साध्य व्याप्त हो जाएगा, परन्तु वह साध्यवाक्य मे व्याप्त नही है।

'ए-आ-ओ' (फेलाप्तोन)

(५) 'ए-आ' :

'ए'	कोई भी 'म' 'वि' नही है।	कोई भी मनुष्य पूर्ण नही है।
'आ'	सब 'म' 'उ' है।	सब मनुष्य विचारशील है।
∴ 'ओ'	कुछ 'उ' 'वि' नही है।	∴ कुछ विचारशील (व्यक्ति) पूर्ण नही है।

इसमे एक आश्रयवाक्य निषेधात्मक होने के कारण निष्कर्ष भी निषेधात्मक होगा। यदि हम निष्कर्ष 'ए' निकाले, तो उससे पक्ष व्याप्त हो जायगा, परन्तु वह पक्षवाक्य मे व्याप्त नही है, लेकिन यदि निष्कर्ष 'ओ' निकाले, तो न्यायवाक्य के किसी भी नियम का उल्लघन नही होता, क्योकि हेतु दोनो आश्रयवाक्यो मे व्याप्त है और साध्य, जो कि निष्कर्ष मे व्याप्त है, वह साध्यवाक्य मे भी व्याप्त है। अत. 'ए-आ' मे तृतीय आकार मे 'ओ' निष्कर्ष निकलता है। इस सिद्ध-संयोग को फेलाप्तोन (Felapton) कहते है।

'ए-ई-ओ' (फेरीसोन)

(६) 'ए-ई' :

'ए'	कोई भी 'म' 'वि' नही है।	कोई भी आक्रमण न्यायसंगत नही है।
'ई'	कुछ 'म' 'उ' है।	कुछ आक्रमण सफल होते है।
∴ 'ओ'	कुछ 'उ' 'वि' नही है।	∴ कुछ वस्तुये न्याययुक्त नही है।

इसमे एक आश्रयवाक्य निषेधात्मक, तथा दूसरा आश्रयवाक्य विशेष होने के कारण, यदि कोई निष्कर्ष निकलेगा तो वह विशेष निषेधात्मक ही हो सकता है। निष्कर्ष को 'ओ' निकालने से न्यायवाक्य के किसी भी नियम का उल्लघन नही होता, क्योंकि

हेतु साध्यवाक्य मे व्याप्त है और साध्य, जो कि निष्कर्ष मे व्याप्त है, वह साध्यवाक्य मे भी व्याप्त है। अत 'ए-ई' से तृतीय आकार मे 'ओ' निष्कर्ष प्राप्त होता है। इस सिद्ध-सयोग को **'फेरीसोन'** (Ferison) कहते है।

'ई-आ-ई' **(दीसामीस)**

(७) **'ई-आ'** :

'ई'	कुछ 'म' 'वि' है।	कुछ मनुष्य चतुर है।
'आ'	सब 'म' 'उ' है।	सब मनुष्य मर्त्य है।
∴ 'ई'	कुछ 'उ' 'वि' है।	∴ कुछ मर्त्य (व्यक्ति) चतुर है।

इसमे एक आश्रयवाक्य विशेष है, तथा दोनो आश्रयवाक्य स्वीकारात्मक है, अत यदि कोई निष्कर्ष निकल सकता है, तो वह 'ई' होगा। निष्कर्ष 'ई' निकालने से न्यायवाक्य के किसी भी नियम का उल्लघन नही होता। अत. तृतीय आकार मे 'ई-आ' से 'ई' निष्कर्ष निकलता है। इस सिद्ध-सयोग को **'दीसामीस'** (Disamis) कहते है।

'ओ आ ओ' **(बोकार्दो)**

(८) **'ओ-आ'** :

'ओ'	कुछ 'म' 'वि' नही है।	कुछ मनुष्य चतुर नही है।
'आ'	सब 'म' 'उ' है।	सब मनुष्य मर्त्य है।
∴ 'ओ'	कुछ 'उ' 'वि' नही है।	∴ कुछ मर्त्य (व्यक्ति) चतुर नही है।

इसमे एक आश्रयवाक्य विशेष निषेधात्मक है, अत निष्कर्ष 'ओ' हो सकता है। 'ओ' निष्कर्ष निकालने से न्यायवाक्य के किसी भी नियम का उल्लघन नही होता। अत 'ओ-आ' से तृतीय आकार मे 'ओ' निष्कर्ष प्राप्त होता है। इस सिद्ध-संयोग को **'बोकार्दो'** (Bocardo) कहते है।

अत. तृतीय आकार मे छ सयोगो से विशुद्ध निष्कर्ष प्राप्त होता है, यथा—**'आ-आ'** (**दाराप्ती**), **'ई-आ** (**दीसामीस्**), **'आ-ई'** (**दातीसी**), **'ए-आ'** (**फेलाप्तोन्**), **'ओ-आ'** (**बोकार्दो**) तथा **'ए-ई'** (**फेरीसोन्**)।

टिप्पणी—तृतीय आकार के विशेष नियम ।

तृतीय आकार के विशेष नियम निम्नलिखित है :—

(१) पक्षवाक्य स्वीकारात्मक होना चाहिए।
(२) निष्कर्ष विशेष होना चाहिए ।

नियम (१) : पक्षवाक्य स्वीकारात्मक होना चाहिए।

उपपत्ति—यदि पक्षवाक्य स्वीकारात्मक न हो तो वह निषेधात्मक होगा। यदि पक्षवाक्य निषेधात्मक हो, तो साध्यवाक्य स्वीकारात्मक होना चाहिए तथा निष्कर्ष निषेधात्मक होना चाहिए। तृतीय आकार मे, साध्य साध्यवाक्य का विधेय होता है। साध्यवाक्य स्वीकारात्मक होने के कारण, उसमे साध्य व्याप्त नही हो सकता। परन्तु निष्कर्ष के निषेधात्मक होने के कारण साध्य उसमे व्याप्त है। अत पक्षवाक्य को निषेधात्मक मान लेने से अवैध-साध्य (Illicit Major) का दोष हो जाता है। अत पक्षवाक्य स्वीकारात्मक होना चाहिए।

नियम (२) : निष्कर्ष विशेष होना चाहिए।

उपपत्ति—तृतीय आकार मे पक्ष पक्षवाक्य का विधेय है। नियम (१) के अनुसार, पक्षवाक्य स्वीकारात्मक होना चाहिए। स्वीकारात्मक तर्कवाक्य का विधेय व्याप्त नही होता। अत. पक्ष आश्रय मे व्याप्त नही है, अत. वह निष्कर्ष मे भी व्याप्त नही हो सकता। पक्ष निष्कर्ष का उद्देश्य होता है और केवल विशेष तर्कवाक्यो के उद्देश्य ही अव्याप्त होते है। अतएव निष्कर्ष विशेष होना चाहिए, अन्यथा हम अव्याप्त-हेतु' का दोष कर बैठेगे।

(चार) चतुर्थ आकार के सिद्ध-संयोग ।

चतुर्थ आकार मे हेतु साध्यवाक्य का विधेय तथा पक्षवाक्य का उद्देश्य होता है।

(१) 'आ-आ' 'आ-आ-ई' (ब्रामान्तीप)

'आ' सब 'वि' 'म' है। सब मनुष्य जन्तु है।
'आ' सब 'म' 'उ' है। सब जन्तु मर्त्य है।
∴ 'ई' कुछ 'उ' 'वि' है। ∴ कुछ मर्त्य (व्यक्ति) मनुष्य है।

इसमे दोनो आश्रयवाक्य स्वीकारात्मक होने के कारण, निष्कर्प भी स्वीकारात्मक होगा। यदि हम निष्कर्प 'आ' निकाले, तो पक्ष बिना पक्षवाक्य मे व्याप्त हुए ही निष्कर्प मे व्याप्त हो जायगा। परन्तु यदि निष्कर्प 'ई' निकाले तो न्यायवाक्य के किसी भी नियम का उल्लघन नही होता। अत 'आ-आ' से चतुर्थ आकार मे 'ई' निष्कर्ष निकलता है। इस सिद्ध-सयोग को **'ब्रामान्तीप्'** (Bramantip) कहते है।

'आ-ए-ए' (कामेनेस्)

(२) **'आ-ए'** :

'आ'	सब 'वि' 'म' है।	सब मनुष्य मर्त्य है।
'ए'	कोई भी 'म' 'उ' नही है।	कोई भी मर्त्य (व्यक्ति) पूर्ण नही है।
∴ 'ए'	कोई भी 'उ' वि' नही है।	∴ कोई भी पूर्ण (व्यक्ति) मनुष्य नही है।

इसमे एक आश्रयवाक्य निपेधात्मक होने के कारण, निष्कर्ष भी निपेधात्मक होगा। निष्कर्प 'ए' निकालने से न्यायवाक्य का कोई भी नियम नही टूटता। अत 'आ-ए' का चतुर्थ आकार मे 'ए' निष्कर्प निकलता है। इस सिद्ध-सयोग को **'कामेनेस'** (Camenes) कहते है।

'आ-ई' से कोई निष्कर्ष नहीं निकलता।

(३) **'आ-ई'** .

'आ' . सब 'वि' 'म' है।
'ई' . कुछ 'म' 'उ' है।

हेतु दोनो आश्रयवाक्यो मे अव्याप्त है, अत इससे कोई निष्कर्ष नही निकल सकता।

'आ-ओ' से कोई निष्कर्ष नहीं निकलता।

(४) **'आ-ओ'**

'आ' सब 'वि' 'म' है।
'ओ' कुछ 'म' 'उ' नही है।

इसमे भी हेतु किसी भी आश्रय मे व्याप्त नही है, अत कोई निष्कर्प नही निकल सकता।

(५) 'ए-आ' :

'ए-आ-ओ' (फेसापो)

'ए' : कोई भी 'वि' 'म' नही है। — कोई भी चतुष्पद मनुष्य नही है।
'आ' सब 'म' 'उ' है। — सब मनुष्य जन्तु है।
∴ 'ओ' कुछ 'उ' 'वि' नही है। — ∴ कुछ जन्तु चतुष्पद नही है।

इसमे एक आश्रय निषेधात्मक होने के कारण, निष्कर्ष निषेधात्मक हो सकता है। परन्तु यदि हम 'ए' निष्कर्ष निकाले, तो निष्कर्ष मे पक्ष व्याप्त हो जायेगा, परन्तु वह आश्रय मे व्याप्त नही होगा। परन्तु यदि निष्कर्ष 'ओ' निकाले तो न्यायवाक्य के किसी भी नियम का उल्लंघन नही होता। अत 'ए-आ' से चतुर्थ आकार मे 'ओ' निष्कर्ष निकलता है। इस सिद्ध-सयोग को **'फेसापो'** (Fesapo) कहते है।

(६) 'ए-ई'

'ए-ई-ओ' (फ्रेसीसोन्)

'ए' कोई भी 'वि' 'म' नही है। — कोई भी मनुष्य पूर्ण नही है।
'ई' कुछ 'म' 'उ' है। — कुछ पूर्ण (व्यक्ति) विचारशील है।
∴ 'ओ' कुछ 'उ' 'वि' नही है। — ∴ कुछ विचारशील (व्यक्ति) मनुष्य नही है।

इसमे एक आश्रय निषेधात्मक तथा दूसरा विशेष होने के कारण, यदि कोई निष्कर्ष निकलेगा, तो वह 'ओ' होगा। निष्कर्ष 'ओ' निकालने से न्यायवाक्य के किसी भी नियम का उल्लघन नही होता। अत चतुर्थ आकार मे 'ए-ई' का 'ओ' निष्कर्ष निकलता है। इस सिद्ध-सयोग को **फ्रेसीसोन्** (Fresison) कहते है।

(७) 'ई-आ'.

'ई-आ-ई' (दीमारीस्)

'ई' कुछ 'वि' 'म' है। — कुछ जीव मनुष्य है।
'आ' सब 'म' 'उ' है। — सब मनुष्य मर्त्य है।
∴ 'ई' कुछ 'उ' 'वि' है। — ∴ कुछ मर्त्य (व्यक्ति) जीव है।

इसमे एक आश्रय विशेप तथा दोनो आश्रय स्वीकारात्मक होने के कारण, निष्कर्प 'ई' हो सकता है। निष्कर्प को 'ई' रखने से न्यायवाक्य के किसी भी नियम का उल्लघन नही होता। अत 'ई-आ' से चतुर्थ आकार मे 'ई' निष्कर्प निकलता है। इस सिद्ध-सयोग को **'दीमारीस्'** (Dimaris) कहते है।

'ओ-आ' से कोई निष्कर्ष नहीं निकलता।

(८) **'ओ-आ'** .

'ओ' कुछ 'वि' 'म' नही है।
'आ' सव 'म' 'उ' हैं।

इससे कोई निष्कर्प नही निकलता, क्योकि एक आश्रयवाक्य निपेधात्मक होने से यदि कोई निष्कर्प प्राप्त होगा, वह निपेधात्मक ही होगा, जिसमे साध्य व्याप्त होगा, परन्तु साध्य आश्रय मे व्याप्त नही है।

अत चतुर्थ आकार मे, पॉच सयोगो से विशुद्ध निष्कर्प प्राप्त होता है, यथा—**'आ-आ'** (**व्रामान्तीप्**), तथा **'आ-ए'** (**कामेनेस्**), **'ई-आ'** (**दीमारीस्**), **'ए-आ'** (**फेसापो**) **'ए-ई'** (**फ्रेसीसोन्**)।

टिप्पणी—चतुर्थ आकार के विशेष नियम।

चतुर्थ आकार के विशेप नियम निम्नलिखित है :—

(१) यदि साध्यवाक्य स्वीकारात्मक हो, तो पक्षवाक्य सार्वलौकिक (सामान्य) होगा।

(२) यदि पक्षवाक्य स्वीकारात्मक हो, तो निष्कर्ष विशेष होगा।

(३) यदि कोई भी आश्रय निपेधात्मक हो, तो साध्यवाक्य सार्वलौकिक होगा।

नियम (१) : **यदि साध्यवाक्य स्वीकारात्मक हो, तो पक्षवाक्य सार्वलौकिक होगा।**

चतुर्थ आकार मे, हेतु साध्यवाक्य का विधेय है। अत यदि साध्यवाक्य स्वीकारात्मक हो, तो उसमे हेतु व्याप्त नही होगा। अत हेतु पक्षवाक्य मे व्याप्त होना चाहिए। विशेप तर्कवाक्यो के

उद्देश्य व्याप्त नही होते। अत हेतु को पक्षवाक्य मे व्याप्त होने के लिए यह आवश्यक है कि पक्षवाक्य सार्वलौकिक हो।

नियम (२) : **यदि पक्षवाक्य स्वीकारात्मक हो, तो निष्कर्ष विशेष होगा।**

चतुर्थ आकार मे, पक्ष पक्षवाक्य मे विधेय होता है। यदि पक्षवाक्य स्वीकारात्मक हो, तो उसमे पक्ष अव्याप्त रहेगा, और इस कारण निष्कर्ष मे भी व्याप्त न हो सकेगा। निष्कर्ष मे पक्ष उद्देश्य होता है और केवल विशेष तर्कवाक्यो के उद्देश्य ही अव्याप्त होते है। अत निष्कर्ष विशेष होगा।

नियम (३) : **यदि कोई एक आश्रयवाक्य निषेधात्मक हो, तो साध्यवाक्य सार्वलौकिक होना चाहिए।**

यदि कोई सा भी आश्रयवाक्य निषेधात्मक होगा, तो निष्कर्ष निषेधात्मक होगा, जिसका विधेय अर्थात् साध्य व्याप्त होगा। अत साध्यवाक्य मे साध्य व्याप्त होगा। चतुर्थ आकार मे साध्य साध्यवाक्य का उद्देश्य होता है, और केवल सार्वलौकिक तर्कवाक्यो के ही उद्देश्य व्याप्त होते है। अत साध्यवाक्य सार्वलौकिक होना चाहिए।

सारांश

सक्षेप मे यदि 'सयोग' से तात्पर्य न्यायवाक्य के आश्रयो के गुण तथा परिमाण से निर्धारित रूप हो, तो प्रत्येक आकार मे १६ सभावित सयोग होते है और चारो आकारो मे कुल मिलाकर ६४ सयोग होते है। **इन ६४ संयोगों में से केवल १९ संयोगो से ही विशुद्ध निष्कर्ष प्राप्त होता है—चार प्रथम आकार में, चार द्वितीय आकार में, छः तृतीय आकार मे और पाँच चतुर्थ आकार में।**

§ ११ आकारान्तरण (Reduction).

—अनुलोम (Direct) तथा प्रतिलोम (Indirect)

आकारान्तरण से तात्पर्य अपूर्ण आकारों के

आकारान्तरण (Reduction) का शाब्दिक अर्थ होता है 'आकार मे परिवर्तन करना।' कुछ तर्कशास्त्री 'आकारान्तरण' शब्द का उपयोग बडे व्यापक अर्थ मे करते है। उनके

संयोगो को पूर्ण आकार के संयोगो में बदलना है, ताकि उनकी विशुद्धि का प्रदर्शन हो सके।

विचार मे 'आकारान्तरण' किसी भी आकार के सयोगो (moods) को किसी अन्य आकार के सयोगो मे वदलने को कहते है। इस प्रकार, प्रथम आकार के सयोग द्वितीय आकार के सयोगो मे आकारान्तरित किये जा सकते है। द्वितीय आकार के सयोग तृतीय आकार के सयोगो मे आकारान्तरित किये जा सकते है, तृतीय आकार के सयोग चतुर्थ आकार के सयोगो मे आकारान्तरित किए जा सकते है। यही नही, वरन किसी भी आकार के सयोगो को किसी अन्य आकार के सयोगो मे वदला जा सकता है।

'आकारान्तरण' शव्द का उपयोग सकीर्ण अर्थ मे भी किया जाता है। **इससे तात्पर्य द्वितीय, तृतीय** तथा **चतुर्थ आकार के संयोगों को प्रथम आकार के संयोगों में बदलना होता है।**

अरस्तू (Aristotle) ने प्रथम आकार को 'पूर्ण आकार' (perfect figure) माना था, क्योकि उसका **न्यायवाक्य संबंधी सिद्धान्त** (Dictum de omni et nullo) उस पर सरलता से लागू हो जाता था। यह सिद्धान्त द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ आकार के सयोगो पर सरलता से लागू नही होता। अत. उन आकारो को उसने 'अपूर्ण आकार' (imperfect figure) कहा है। परन्तु यदि अपूर्ण आकारो के सयोगो को पूर्ण आकार के सयोगो मे आकारान्तरित कर दिया जाय तो अरस्तू का सिद्धान्त उन पर भी लागू किया जा सकता है। अत आकारान्तरण के द्वारा यथाकथित अपूर्ण आकारो की **अपूर्णता** दूर की जा सकती है। दूसरे शव्दो मे यह सिद्ध हो जाता है कि यद्यपि यह सिद्धात यथाकथित अपूर्ण आकारो पर लागू नही होता, परन्तु तो भी यह तथ्य कि ये सयोग पूर्ण आकार के सयोगो मे बदले जा सकते है, यह वतलाता है कि इन सयोगो के निष्कर्ष भी, प्रथम आकार के सयोगो की भाँति, विशुद्ध है। अत **आकारान्तरण** (Reduc-

tion) का उद्देश्य द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ आकार के संयोगों की विशुद्धि को सिद्ध करना है।

अतएव आकारान्तरण (Reduction) उस क्रिया को कहते हैं जिससे अपूर्ण आकारों (imperfect figures) के संयोग (moods) पूर्ण आकारों (perfect figures) के संयोगों में बदले जा सके, ताकि यथाकथित अपूर्ण आकारो के संयोगो की विशुद्धि सिद्ध की जा सके।

आकारान्तरण (Reduction) दो प्रकार का होता है :

(क) अनुलोम—(Direct या Ostensive Reduction), जिसमे अपूर्ण आकारो का सयोग, परिवर्तन (Conversion), प्रतिवर्तन (Obversion), परिवर्तित-प्रतिवर्तन (Contraposition) अथवा आश्रय-स्थानान्तरण (Transposition of Premises) के द्वारा अनुलोम रीति से प्राप्त किया जाता है। उसे 'अनुलोम' (direct) इसलिए कहते हैं, कि दिए हुए न्यायवाक्य के आश्रयो के द्वारा दिया हुआ निष्कर्ष तुरन्त प्राप्त हो जाता है।

अनुलोम आकारान्तरण

(ख) प्रतिलोम आकारान्तरण (Indirect Reduction) मे पूर्ण आकार की सहायता से यह सिद्ध किया जाता है कि अपूर्ण आकारो के निष्कर्ष का विरुद्ध (contradictories) असत्य है, अत वह निष्कर्ष सत्य होना चाहिए।

प्रतिलोम आकारान्तरण

टिप्पणी—क्या आकारान्तरण आवश्यक है ?

अरस्तू के समय मे आकारान्तरण (Reduction) ही एक ऐसी क्रिया ज्ञात थी, जिसके द्वारा यथाकथित अपूर्ण आकारो के सयोगो को विशुद्ध सिद्ध किया जा सकता था। अत यह क्रिया नितान्त रूप से अनिवार्य समझी जाती थी। परन्तु वर्तमान काल मे अन्य विधियाँ भी ज्ञात है, जिनकी सहायता से न्यायवाक्य की विशुद्धता जाँची जा सकती है, यथा न्यायवाक्य के सामान्य नियम तथा विशेष नियमो का उपयोग। अत अब आकारान्तरण

क्या आकारान्तरण आवश्यक है ?

का उतना महत्व नही रहा, जितना कि अरस्तू के समय मे था। अव यह अपूर्ण आकारो के सयोगो की विशुद्धि की जाँच की एकमात्र विधि न होकर **अनेकों विधियो मे से एक** है। यह वात मानते हुए भी, कि आकारान्तरण की क्रिया का महत्व कम हो गया है, यह नही सोचना चाहिए कि आकारान्तरण पूर्णरूपेण व्यर्थ है। आकारान्तरण से, एक आकार के सयोगो को दूसरे आकार के सयोगो मे वदल सकने के कारण, यह सिद्ध हो जाता है कि विभिन्न आकार यद्यपि भिन्न प्रतीत होते हैं, परन्तु वे मूलरूप मे अनन्य हैं। अत **आकारान्तरण सब प्रकार के न्यायवाक्य द्वारा अनुमान की क्रियाओं की एकता प्रदर्शित करता है।**

§ १२. स्मृति-सहायक छन्द (The Mnemonic Verses)

चारो आकार के सिद्ध संयोग

तेरहवी शताब्दी के लैटिन-स्कूलमैनो (Latin schoolmen) ने सिद्ध-सयोगो (valid moods) को याद रखने के लिए कुछ स्मृति-सहायक छन्दो (the Mnemonic Lines) की रचना की थी। इन स्मृति-सहायक छन्दो का निर्माण काल्पनिक शब्दो से किया गया था, जिनमे ये आदेश छिपे हुए थे कि द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ आकार के सयोगो को प्रथम आकार के सयोगो मे किस प्रकार अनुलोम-रीति से आकारान्तरित किया जा सकता है। प्रथम आकार मे चार, द्वितीय आकार मे चार, तृतीय आकार मे छ तथा चतुर्थ आकार मे पाँच सिद्ध-सयोग होते हैं। निम्नलिखित छन्द की प्रथम, द्वितीय, तृतीय, तथा चतुर्थ पक्तियाँ क्रमश. प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ आकार के सिद्ध-सयोगो के नाम व्यक्त करती हैं।

वार्बारा, केलारेन्ट, दारीई, फेरीओ,
BARBARA, CELARENT, DARII, FERIO,
केसारे, कामेस्ट्रेस, फेस्तीनो, वारोको ,
CESARE, CAMESTRES, FESTINO, BAROCO,
दाराप्ती, दीसामीस, दातीसी, फेलाप्तोन्, बोकार्दो, फेरीसोन्,
DARAPTI, DISAMIS, DATISI, FELAPTON, BOCARDO, FERISON;
ब्रामान्तीप, कामेनेस्, दीमारीस, फेसापो, फ्रेसीसोन्।
BRAMANTIP CAMENES, DIMARIS, FESAPO, FRESISON.

इनमे से प्रत्येक शब्द मे तीन स्वरो का उपयोग है। पहला स्वर साध्यवाक्य के लिए, दूसरा पक्षवाक्य के लिए और तीसरा निष्कर्ष के लिए प्रयुक्त है। अर्थात् इन शब्दो मे जो स्वर है, वे 'सयोग' का सकेत करते है। यथा—'बार्बारा' प्रथम आकार मे 'आ-आ-आ' सयोग को व्यक्त करता है। इसी प्रकार केलारेंट प्रथम आकार मे 'ए-आ-ए' सयोग को व्यक्त करता है।

सार्थक अक्षर

प्रथम आकार के सयोगो के नाम के प्रथम अक्षर अग्रेजी वर्ण-माला के प्रथम चार व्यजन है :—यथा, 'ब' (B), 'क' (C), 'द' (D) तथा 'फ' (F)। 'बारोको' (Baroco) तथा 'बोकार्दो' (Bocardo) के अतिरिक्त, अपूर्ण आकारो के सयोगो के प्रथम अक्षर से यह सकेत मिलता है कि उस सयोग का आकारान्तरण प्रथम आकार के उस सयोग मे होगा, जिसका प्रारम्भिक अक्षर भी वही व्यजन हो।' इस प्रकार 'ब्रामान्तीप' (Bramantip) का प्रथम अक्षर 'ब' (B) यह सकेत करता है कि उसका आकारान्तरण (Reduction) बार्बारा (Barbara) मे होगा। 'केसारे' (Cesare) का 'क' (C) यह सकेत करता है कि उसका आकारान्तरण 'केलारेन्ट' (Celarent) मे होगा। 'दाराप्ती' (Darapti) का 'द' (D) यह सकेत करता है कि उसका आकारान्तरण, 'दारीई' (Darii) मे होगा। 'फेस्तीनो' (Festino) का 'फ' (F) यह सकेत करता है कि उसका आकारान्तरण 'फेरीओ' (Ferio) मे होगा। इसी प्रकार अन्य सयोगो के आकारान्तरण की बात समझी जा सकती है।

[इस सम्बन्ध मे यह बात ध्यान रखनी चाहिए कि अग्रेजी भाषा मे तो स्वर (vowels) अलग-अलग स्पष्ट दिखलाई देते है, परन्तु हिन्दी मे वे पिछले व्यजनो मे मात्रा के रूप मे लगे रहते है।]

'स' (s), पहले आये हुए स्वर द्वारा वतलाये गये तर्कवाक्य के सरल परिवर्तन (Simple Conversion) करने का सकेत देता है।

'प' (p), पहले आये हुए स्वर द्वारा वतलाए गये तर्कवाक्य के असरल परिवर्तन (Conversion per accidens) करने का सकेत देता है।

जव 'स' (s) तथा 'प' (p) तीसरे स्वर के वाद आते हैं, तो उसका अर्थ यह होता है कि नवीन न्यायवाक्य के निष्कर्ष का, अवस्थानुसार, सरल परिवर्तन अथवा असरल परिवर्तन करना है।

'म' (m) से तात्पर्य आश्रयवाक्यो का स्थानान्तरण है; अर्थात् दिए हुए न्यायवाक्य का साध्यवाक्य नये न्यायवाक्य का पक्ष-वाक्य वन जाता है और दिए हुए न्यायवाक्य का पक्षवाक्य नये न्याय-वाक्य का साध्यवाक्य वन जाता है। यह प्रथम आकार (First Figure) मे ही होता है।

'क' (k) से तात्पर्य इससे पूर्व के तर्कवाक्य का प्रतिवर्तन (obversion) होता है। अत 'क्स' (ks) से यह तात्पर्य है कि पहले प्रतिवर्तन, फिर परिवर्तन, अर्थात् परिवर्तित प्रतिवर्तन। 'स्क' (sk) से यह तात्पर्य है कि पहले सरल परिवर्तन, फिर प्रतिवर्तन। यदि 'स्क' (sk) तीसरे स्वर के वाद हो, तो इससे यह तात्पर्य होता है कि नये न्यायवाक्य के निष्कर्ष का सरल परिवर्तन होना है, फिर उसका प्रतिवर्तन करना है।

'क' (c) यह वतलाता है कि न्यायवाक्य का प्रतिलोम आका-रान्तरण होगा। **'वारोको'** (Baroco) तथा **'बोकार्दो'** (Bocardo) ही ऐसे दो सयोग है, जिनमे 'क' (c) अक्षर का प्रयोग होता है। प्राचीन न्यायशास्त्रियो ने उनका आका-रान्तरण प्रतिलोम-विधि से किया था। अव यह भी सभव है कि उनका आकारान्तरण अनुलोम विधि से भी हो सके। ऐसी दशा

मे उनको क्रमश. फाक्सोको (Faksoko) तथा 'दोक्सामोस्क' (Doksamosk) कहेगे।

अन्य अक्षर, यथा 'र' (r), 'त' (t), 'ल' (l), 'ब' (b), 'द' (d), तथा 'न' (n), अर्थहीन है। इनका उपयोग केवल इसलिए किया गया है, कि उच्चारण मे सुभीता हो जाय।

अर्थहीन अक्षर

§ १३. अपूर्ण आकारो का अनुलोम आकारान्तरण

(एक) द्वितीय आकार के संयोग।

केसारे

(१) केसारे (Cesare) केलारेन्ट (Celarent)

'ए' : कोई भी 'वि' 'म' नही है। (स) कोई भी 'म' 'वि' नही है। 'ए'
'आ' . सब 'उ' 'म' है। सब 'उ' 'म' है। 'आ'
∴ 'ए' . कोई भी 'उ' 'वि' नही है। ∴ कोई भी 'उ' 'वि' नही है। 'ए'

कामेस्ट्रेस

(२) कामेस्ट्रेस (Camestres) केलारेन्ट (Celarent)

'आ' . सब 'वि' 'म' है। कोई भी 'म' 'उ' नही है 'ए'
'ए' : कोई भी 'उ' 'म' नही है सब 'वि' 'म' है। 'आ'
∴ 'ए' : कोई भी 'उ' 'वि' नही है। ∴ कोई भी 'वि' 'उ' नही है 'ए'
∴ कोई भी 'उ' 'वि' नही है।
(परिवर्तन से)

फेस्तीनो

(३) फेस्तीनो (Festino) फेरीओ (Ferio)

'ए' · कोई भी 'वि' 'म' नही है। (स) कोई भी 'म' 'वि' नही है। 'ए'
'ई' : कुछ 'उ' 'म' है। कुछ 'उ' 'म' है। 'ई'
∴ 'ओ' : कुछ 'उ' 'वि' नही है। ∴ कुछ 'उ' 'वि' नही है। 'ओ'

बारोको

(४) बारोको (Baroco) फेरीओ (Ferio)
=फाक्सोको (Faksoko)

'आ' : सब 'वि' 'म' है। (क्स) कोई भी अ-'म' 'वि' नही है। 'ए'

'ओ' · कुछ 'उ' 'म' नही है (क) कुछ 'उ' अ-'म' है। 'ई'
∴ 'ओ' कुछ 'उ' 'वि' नही है ∴ कुछ 'उ' 'वि' नही है। 'ओ'

(दो) तृतीय आकार के संयोग

दाराप्ती

(१) दाराप्ती (Darapti) दारीई (Darii)
'आ' सब 'म' 'वि' है। सब 'म' 'वि' है। 'आ'
'आ' सब 'म' 'उ' है। (प) कुछ 'उ' 'म' है। 'ई'
∴ 'ई' . कुछ 'उ' 'वि' है। ∴ कुछ 'उ' 'वि' है। 'ई'

दीसामीस्

(२) दीसामीस् (Disamis) दारीई (Darii)
'ई' · कुछ 'म' 'वि' है। सब 'म' 'उ' है। 'आ'
'आ' . सब 'म' 'उ' है। कुछ 'वि' 'म' है। 'ई'
∴ 'ई' . कुछ 'उ' 'वि' है। ∴ कुछ 'वि' 'उ' है। 'ई'
∴ कुछ 'उ' 'वि' है।
(परिवर्तन से)

दातीसी

(३) दातीसी (Datisi) दारीई (Darii)
'आ' : सब 'म' 'वि' है। सब 'म' 'वि' है। 'आ'
'ई' : कुछ 'म' 'उ' है। (म) कुछ 'उ' 'म' है। 'ई'
∴ 'ई' : कुछ 'उ' 'वि' है। ∴ कुछ 'उ' 'वि' है। 'ई'

फेलाप्तोन्

(४) फेलाप्तोन् (Felapton) फेरीओ (Ferio)
'ए' . कोई भी 'म' 'वि' नही है। कोई भी 'म' 'वि' नही है। 'ए'
'आ' सब 'म' 'उ' है। (प) कुछ 'उ' 'म' है। 'ई'
∴ 'ओ' कुछ 'उ' 'वि' नही है। ∴ कुछ 'उ' 'वि' नही है। 'ओ'

बोकार्दो

(५) बोकार्दो (Bocardo) दारीई (Darii)
=दोक्सामोक्स (Doksamosk)
'ओ' : कुछ 'म' 'वि' नही है सब 'म' 'उ' है। 'आ'
'आ' . सब 'म' 'उ' है। कुछ अ-'वि' 'म' है। 'ई'
∴ 'ओ' : कुछ 'उ' 'वि' नही है। ∴ कुछ अ-'वि' 'उ' है। 'ई'

∴ कुछ 'उ' अ-'वि' है ।
(परिवर्तन से) ।
∴ कुछ 'उ' 'वि' नही है।
(प्रतिवर्तन से)

(६) फेरीसोन् (Ferison) फेरीओ (Ferio) फ़ेरीसोन्

	फेरीसोन् (Ferison)	फेरीओ (Ferio)	
'ए'	कोई भी 'म' 'वि' नही है।	कोई भी 'म' 'वि' नही है।	'ए'
'ई'	कुछ 'म' 'उ' है।	(स) कुछ 'उ' 'म' है।	'ई'
∴ 'ओ'	कुछ 'उ' 'वि' नही है	∴ कुछ 'उ' 'वि' नही है।	'ओ'

(तीन) चतुर्थ आकार के सयोग

(१) ब्रामान्तीप् (Bramantip) बार्बारा (Barbara) ब्रामान्तीप्

	ब्रामान्तीप् (Bramantip)	बार्बारा (Barbara)	
'आ'	सब 'वि' 'म' है।	सब 'म' 'उ' है।	'आ'
'आ'	सब 'म' 'उ' है।	सब 'वि' 'म' है।	'आ'
∴ 'ई'	कुछ 'उ' 'वि' है।	∴ सब 'वि' 'उ' है।	'आ'
		∴ कुछ 'उ' 'वि' है । (परिवर्तन से)	

(२) कामेनेस् (Camenes) केलारेन्ट (Celarent) कामेनेस्

	कामेनेस् (Camenes)	केलारेन्ट (Celarent)	
'आ'	सब 'वि' 'म' है।	कोई भी 'म' 'उ' नही है।	'ए'
'ए'	कोई भी 'म' 'उ' नही है।	सब 'वि' 'म' है।	'आ'
∴ 'ए'	कोई भी 'उ' 'वि' नही है।	∴ कोई भी 'वि' 'उ' नही है।	'ए'
		∴ कोई भी 'उ' 'वि' नही है। (परिवर्तन से)	

(३) दीमारीस् (Dimaris) दारीई (Darii) दीमारीस्

	दीमारीस् (Dimaris)	दारीई (Darii)	
'ई'	कुछ 'वि' 'म' है।	सब 'म' 'उ' है।	'आ'
'आ'	सब 'म' 'उ' है।	कुछ 'वि' 'म' है।	'ई'
∴ 'ई'	कुछ 'उ' 'वि' है।	∴ कुछ 'वि' 'उ' है।	'ई'
		∴ कुछ 'उ' 'वि' है। (परिवर्तन से)	

फेसापो

(४) फेसापो (Fesapo) फेरीओ (Ferio)

'ए' : कोई भी 'वि' 'म' नही है। (स) कोई भी 'म' 'वि' नही है। 'ए'

'आ' . सब 'म' 'उ' है। (प) कुछ 'उ' 'म' है। 'ई'

∴ 'ओ' . कुछ 'उ' 'वि' नही है ∴ कुछ 'उ' 'वि' नही है। 'ओ'

फ्रेसीसोन्

(५) फ्रेसीसोन् (Fresison) फेरीओ (Ferio)

'ए' . कोई भी 'वि' 'म' नही है। (स) कोई भी 'म' 'वि' नही है। 'ए'

'ई' . कुछ 'म' 'उ' है। (स) कुछ 'उ' 'म' है। 'ई'

∴ 'ओ' . कुछ 'उ' 'वि' नही है ∴ कुछ 'उ', 'वि' नही है। 'ओ'

§ १४. सब अपूर्ण आकारो का प्रतिलोम आकारान्तरण (Indirect Reduction)

प्रतिलोम आकारान्तरण में मूल निष्कर्ष के विरुद्ध को असत्य सिद्ध करके मूल निष्कर्ष को सिद्ध किया जाता है ।

उस आकारान्तरण को प्रतिलोम (Indirect) **कहते है, जिसमें प्रथम आकार का एक ऐसा न्यायवाक्य बना लिया जाता है जो कि मूल निष्कर्ष के सत्य को, उसके विरुद्ध को असत्य सिद्ध करके, सिद्ध किया जाता है।** जब मूल निष्कर्ष का विरुद्ध असत्य सिद्ध कर दिया जाता है, तो मूल निष्कर्ष सत्य सिद्ध हो जाता है। इस क्रिया को **मूर्खतापूर्ण आकारान्तरण** (Reductio ad absurdum) भी कहते है, क्योकि इसमे यह बात मान कर चलते है कि मूल निष्कर्ष का विरुद्ध (contradictory) सत्य है, परन्तु अन्त मे वह मूर्खतापूर्ण तथा असत्य विदित होता है। इसको **असंभाव्य आकारान्तरण** (Reductio per impossibile) भी कहते है।

प्रतिलोम आकारान्तरण (Indirect Reduction) किसी भी अपूर्ण सयोग पर लागू हो सकता है, यद्यपि प्रारम्भ मे उसका उपयोग केवल **'वारोको'** (Baroco) तथा **बोकार्दो** (Bocardo) के लिए ही किया जाता था, जैसा कि स्मृति-सहायक छन्द (Mnemonic lines) से विदित होता है।

अब हम एक-एक करके समस्त अपूर्ण आकारो के सयोगो का प्रतिलोम आकारान्तरण करेगे ।

(एक) द्वितीय आकार के संयोग .

द्वितीय आकार : केसारे

(१) केसारे (Cesare)।

'ए' : कोई भी 'वि' 'म' नही है।
'आ' सब 'उ' 'म' है।
∴ 'ए' कोई भी 'उ' 'वि' नही है।

यदि मूल-निष्कर्प सत्य नहीं है, तो उसका विरुद्ध (contradictory) यथा—"कुछ 'उ' 'वि' है" ('ई') सत्य होगा। इस तर्कवाक्य को पक्षवाक्य मानकर और मूल साध्यवाक्य को साध्यवाक्य मानकर, प्रथम आकार मे निम्नलिखित नया न्यायवाक्य बनता है :—

'ए' : कोई भी 'वि' 'म' नही है। (मूल साध्यवाक्य)
'ई' . कुछ 'उ' 'वि' है। (मूलनिष्कर्ष का विरुद्ध)
∴ 'ओ' . कुछ 'उ' 'म' नही है। (नया निष्कर्ष)

यह प्रथम आकार का सिद्ध-सयोग 'फेरीओ' (Ferio) है, क्योकि हेतु 'वि' साध्यवाक्य मे उद्देश्य तथा पक्षवाक्य मे विधेय है।

परन्तु हम देखते है कि नया निष्कर्प मूल पक्षवाक्य (अर्थात् "सब 'उ' 'म' है") का विरुद्ध (contradictory) है, जो कि न्यायवाक्य के नियमो के अनुसार सत्य माना जाना चाहिए। अत उसका विरुद्ध अर्थात् नया निष्कर्ष असत्य होना चाहिए। अब विचारणीय बात यह है कि यह क्यो असत्य है? यह असत्यता तर्क-क्रिया के दोपपूर्ण होने के कारण नही हो सकती, क्योकि वह 'फेरीओ' (Ferio) है, और न नये साध्यवाक्य के कारण हो सकती है, जो कि मूल-साध्यवाक्य के ही समान है। अत यह असत्यता नये पक्षवाक्य के कारण ही हो सकती है। अर्थात् नया पक्षवाक्य असत्य है। अत उसका विरुद्ध, अर्थात् मूल-निष्कर्ष असत्य होगा।

टिप्पणी :—इस दशा मे, मूल निष्कर्ष का विरुद्ध **पक्षवाक्य** बनाया गया है तथा साध्यवाक्य दिए हुए न्यायवाक्य से ही ले लिया

गया है। परन्तु यदि मूल निष्कर्प का विरुद्ध साध्यवाक्य वना लिया जाता तथा पक्षवाक्य दिए हुए न्यायवाक्य से ही प्राप्त किया जाता, तो हम प्रथम आकार के किसी सिद्ध-सयोग को प्राप्त नही कर सकते थे। प्रतिलोम आकारान्तरण मे, अनुलोम-आकारान्तरण की भॉति **दिया हुआ न्यायवाक्य प्रथम आकार के न्यायवाक्य में बदला जाता है।** अत प्रनिलोम आकारान्तरण मे, मूल निष्कर्प का विरुद्ध साध्यवाक्य अथवा पक्षवाक्य इस प्रकार वनाया जाता है **कि मूल-न्यायवाक्य से दूसरा आश्रय उसमें सम्मिलित करके प्रथम आकार के न्यायवाक्य का सिद्ध संयोग बन जाय।** कभी-कभी ऐसा भी हो सकता है कि मूल निप्कर्ष का विरुद्ध या तो साध्यवाक्य अथवा पक्षवाक्य अपनी इच्छानुसार वनाया जा सकता है, क्योकि दोनो दशाओ मे दूसरे आश्रय के साथ प्रथम आकार मे सिद्ध-सयोग प्राप्त हो जाता है।

कामेस्ट्रेस

(२) **कामेस्ट्रेस्** (Camestres)।

'आ' · सव 'वि' 'म' है।
'ए' · कोई भी 'उ' 'म' नही है।
∴ 'ए' : कोई भी 'उ' 'वि' नही है।

यदि मूल-निष्कर्ष सत्य नही होगा, तो उसका विरुद्ध "कुछ 'उ' 'वि' है" सत्य होना चाहिए। इस तर्कवाक्य को पक्षवाक्य तथा मूल-साध्यवाक्य को साध्यवाक्य मानकर प्रथम आकार मे निम्नलिखित न्यायवाक्य वनता है.—

'आ' सव 'वि' 'म' है।
'ई' कुछ 'उ' 'वि' है।
∴ 'ई' कुछ 'उ' 'म' है। दारीई (Darii) के अनुसार, क्योकि नये न्यायवाक्य मे 'वि' हेतु है।

नया निष्कर्प मूल पक्ष-वाक्य का विरुद्ध (contradictory) है। अत नया निष्कर्प असत्य है। इस असत्यता का कारण क्या है? तर्क-प्रक्रिया के कारण यह असत्यता नही हो मकती, क्योकि वह 'दारीई' (Darii) है। और न वह नये-साध्यवाक्य के कारण हो सकती है, क्योकि वह मूल साध्यवाक्य के ही तुल्य होने से सत्य है। अत निष्कर्प के असत्य होने का कारण नये पक्षवाक्य की असत्यता है। इस प्रकार नये पक्षवाक्य

को असत्य सिद्ध कर देने से यह सिद्ध हो जाता है कि उसका विरुद्ध अर्थात् मूल-निष्कर्ष, सत्य है।

(३) फेस्तीनो (Festino)। फेस्तीनो

'ए' . कोई भी 'वि' 'म' नही है।
'ई' कुछ 'उ' 'म' है।
. 'ओ' : कुछ 'उ' 'वि' नही हे।

यदि निष्कर्ष सत्य नही हो, तो उसका विरुद्ध (contradictory) "सब 'उ' 'वि' है" सत्य है। इस तर्कवाक्य को पक्षवाक्य बनाकर और मूल-साध्यवाक्य को साध्यवाक्य मानकर, प्रथम आकार मे निम्नलिखित न्यायवाक्य बन सकता है ·

'ए' . कोई भी 'वि' 'म' नहीं है।
'आ' सब 'उ' 'वि' है।
.· 'ए' कोई भी 'उ' 'म' नहीं है। केलारेन्ट (Celarent) के अनुसार, क्योकि 'वि' हेतु है।

नया निष्कर्ष मूल-पक्षवाक्य का विरुद्ध होने के कारण सत्य नही हो सकता। यह नया निष्कर्ष क्यो असत्य है ? यह असत्यता न तो तर्क-प्रक्रिया के कारण हो सकती है (क्योकि वह 'केलारेन्ट' है) और न नये साध्यवाक्य के कारण हो सकती है, क्योकि वह तो मूल साध्यवाक्य के ही समान है। अत. यह असत्यता नये पक्ष-वाक्य के कारण हो सकती है। इस प्रकार, पक्षवाक्य के असत्य होने से उसका विरुद्ध अर्थात् मूल निष्कर्ष सत्य होगा।

(४) बारोको (Baroco) बारोको

'आ' सब 'वि' 'म' है। सब घोडे चतुष्पद है।
'ओ' कुछ 'उ' 'म' नही है। कुछ जन्तु चतुष्पद नही है।
.·. 'ओ' कुछ 'उ' 'वि' नही ह। .·. कुछ जन्तु घोडे नही है।

यदि निष्कर्ष सत्य नही है, तो उसका विरुद्ध अर्थात् "सब 'उ' 'वि' है" या "सब जन्तु घोडे है" सत्य होगा। इस तर्क-वाक्य को पक्षवाक्य मानकर तथा मूल-साध्यवाक्य को साध्यवाक्य मानकर, प्रथम आकार मे निम्नलिखित न्यायवाक्य बन सकता है .

'आ' सब 'वि' 'म' है। सब घोडे चतुष्पद है।
'आ' सब 'उ' 'वि' है। सब जन्तु घोडे है।
· 'आ' सब 'उ' 'म' हे। .·. सब जन्तु चतुष्पद है।

यह युक्ति 'वार्बारा' (Barbara) है, जिसमे 'वि' (या घोड़े) हेतु है। नया निष्कर्ष मूल पक्षवाक्य का विरुद्ध होने के कारण असत्य है। यह असत्यता किस कारण हो सकती है? यह तर्क-प्रक्रिया के कारण नही होती, क्योकि वह तो 'वार्बारा' (Barbara) है और न वह साध्यवाक्य के कारण हो सकती है, क्योकि वह मूल साध्यवाक्य के समान है। अत. नवीन पक्षवाक्य असत्य है। इसलिए उसका विरुद्ध अर्थात् मूल निष्कर्ष सत्य होना चाहिए।

द्रष्टव्य—द्वितीय आकार का प्रतिलोम आकारान्तरण करते समय प्रथम आकार मे विशुद्ध न्यायवाक्य तभी प्राप्त होता है जबकि मूल निष्कर्ष का विरुद्ध नये न्यायवाक्य का पक्षवाक्य बनाया जाय।

तृतीय आकार : दाराप्ती

(दो) तृतीय आकार के संयोग :

(१) दाराप्ती (Darapti)

'आ' : सब 'म' 'वि' है।
'आ' . सब 'म' 'उ' है।
∴ 'ई' . कुछ 'उ' 'वि' है।

यदि मूलनिष्कर्ष सत्य नही है, तो उसका विरुद्ध अर्थात् "कोई भी 'उ' 'वि' नही है" सत्य होना चाहिए। इसे साध्यवाक्य मानकर तथा मूल पक्षवाक्य को पक्षवाक्य मानकर प्रथम आकार मे निम्नलिखित न्यायवाक्य बनाया जा सकता है —

'ए' : कोई भी 'उ' 'वि' नही है।
'आ' सब 'म' 'उ' है।
∴ 'ए' : कोई भी 'म' 'वि' नही है। (केलारेन्ट के अनुसार, जिसमे 'उ' हेतु है।)

नया निष्कर्ष मूल साध्यवाक्य का विपरीत (contrary) होने के कारण असत्य होना चाहिए। यह असत्यता किस कारण हो सकती है? यह असत्यता तर्क-प्रक्रिया के कारण नही हो सकती, क्योकि वह 'केलारेन्ट' (Celarent) है; और वह नये पक्षवाक्य के कारण भी नही हो सकती, क्योकि वह मूल पक्षवाक्य के समान है। अत उसका कारण नया साध्यवाक्य हो सकता है, जिसे इस प्रकार असत्य सिद्ध कर देने पर उसका विरुद्ध, अर्थात् मूल निष्कर्ष सत्य सिद्ध हो जाता है।

(२) 'दीसामीस्' (Disamis)

दीसामीस्

'ई' कुछ 'म' 'वि' है।
'आ'. सब 'म' 'उ' है।
∴ 'ई'. कुछ 'उ' 'वि' है।

यदि मूल निष्कर्ष असत्य है, तो उसका विरुद्ध, "कोई भी 'उ' 'वि' नही है" सत्य होगा। इस तर्कवाक्य को साध्यवाक्य मानकर तथा मूल पक्षवाक्य को पक्षवाक्य मानकर प्रथम आकार मे निम्नलिखित न्यायवाक्य बन सकता है —

'ए' : कोई भी 'उ' 'वि' नही है।
'आ'. सब 'म' 'उ' है।
∴ 'ए' कोई भी 'म' 'वि' नही है। [केलारेन्ट (Celarent) के अनुसार, जिसमे 'उ' हेतु है।]

इसमे नया निष्कर्ष मूल साध्यवाक्य का विरुद्ध होने के कारण असत्य होगा। यह असत्यता न तो तर्क-प्रक्रिया के कारण हो सकती है क्योकि वह 'केलारेन्ट' (Celarent) है, और न नये पक्षवाक्य के कारण हो सकती है, क्योकि वह मूल-पक्षवाक्य के समान है। इसलिए नया साध्यवाक्य असत्य होगा। अत उसका विरुद्ध अर्थात् मूल-निष्कर्ष सत्य है।

(३) दातीसी (Datisi)

दातीसी

'आ'. सब 'म' 'वि' है।
'ई'. कुछ 'म' 'उ' है।
∴ 'ई'. कुछ 'उ' 'वि' है।

यदि मूल-निष्कर्ष सत्य नही हो, तो उसका विरुद्ध अर्थात् "कोई भी 'उ' 'वि' नही है" सत्य होना चाहिए। इसे साध्यवाक्य मानकर तथा मूल पक्षवाक्य को पक्षवाक्य मानकर प्रथम आकार मे निम्नलिखित न्यायवाक्य बनता है —

'ए' : कोई भी 'उ' 'वि' नही है।
'ई' कुछ 'म' 'उ' है।
∴ 'ओ' कुछ 'म' 'वि' नही है। ['फेरीओ' (Ferio) के अनुसार, जिसमे 'उ' हेतु है।]

नया निष्कर्ष मूल-साध्यवाक्य का विरुद्ध होने के कारण असत्य होना चाहिए। यह असत्यता किस कारण हो सकती है ?

यह असत्यता तर्क-प्रक्रिया के कारण नही हो सकती, क्योकि वह 'फेरीओ' (Ferio) है, जो कि प्रथम आकार मे शुद्ध सयोग है। यह असत्यता पक्षवाक्य के कारण भी नही हो सकती, क्योकि वह मूल पक्षवाक्य के समान है। अत इस असत्यता का कारण नया साध्यवाक्य ही हो सकता है। उसके असत्य सिद्ध हो जाने से उसका विरुद्ध, अर्थात् मूल निष्कर्ष सत्य होगा।

फेलाप्तोन

(४) फेलाप्तोन् (Felapton)

'ए' : कोई भी 'म' 'वि' नही है।
'आ' : सब 'म' 'उ' है।
∴ 'ओ' : कुछ 'उ' 'वि' नही हैं।

यदि इसका निष्कर्ष सत्य नही है तो उसका विरुद्ध, "सब 'उ' 'वि' है" सत्य होगा। इसे साध्यवाक्य मानकर तथा मूल पक्षवाक्य को पक्षवाक्य मानकर निम्नलिखित नया न्यायवाक्य बन सकता है

'आ' : सब 'उ' 'वि' है।
'आ' . सब 'म' 'उ' है।
∴ 'आ' सब 'म' 'वि' है। [बार्बारा (Barbara) के अनुसार, जिसमे 'उ' हेतु है।]

नया निष्कर्ष मूल साध्यवाक्य का विपरीत (contrary) होने के कारण असत्य है। यह असत्यता तर्क-प्रक्रिया के कारण नही हो सकती क्योकि वह बार्बारा (Barbara) है। और न पक्षवाक्य के कारण हो सकती है क्योकि वह मूल-पक्षवाक्य के समान है। अत वह नये साध्यवाक्य के कारण है। इसलिए साध्यवाक्य के असत्य सिद्ध होने के कारण उसका विरुद्ध अर्थात् मूल-निष्कर्ष सत्य होना चाहिए।

बोकार्दो

(५) बोकार्दो (Bocardo) :

'ओ' : कुछ 'म' 'वि' नही है।	कुछ मनुष्य चतुर नही है।
'आ' . सब 'म' 'उ' है।	सब मनुष्य मर्त्य है।
∴ 'ओ' कुछ 'उ' 'वि' नही है।	∴ कुछ मर्त्य (व्यक्ति) चतुर नही है।

यदि मूल निष्कर्ष सत्य नही है, तो उसका विरुद्ध "सब 'उ' 'वि' है" या "सब मर्त्य (व्यक्ति) चतुर है" सत्य होगा।

इसे साध्यवाक्य मानकर तथा मूल पक्षवाक्य को पक्षवाक्य मानकर प्रथम आकार में निम्नलिखित न्यायवाक्य बन सकता है —

'आ' सब 'उ' 'वि' हैं। सब मर्त्य (व्यक्ति) चतुर हैं।
'आ' सब 'म' 'उ' हैं। सब मनुष्य मर्त्य हैं।
'आ' . सब 'म' 'वि' हैं। ∴ सब मनुष्य चतुर हैं।

यह नया निष्कर्ष मूल साध्यवाक्य का विरुद्ध होने के कारण असत्य है। यह असत्यता तर्क-प्रक्रिया के कारण नहीं है, क्योंकि वह 'बार्बारा' (Barbara) है। और न वह नये पक्षवाक्य के कारण ही हो सकती है क्योंकि वह मूल पक्षवाक्य के समान है। अत नया साध्यवाक्य असत्य है। अत उसका विरुद्ध अर्थात् मूल निष्कर्ष सत्य है।

(६) फेरीसोन् (Ferison) : फेरीसोन्

'ए' · कोई भी 'म' 'वि' नहीं है।
'ई' कुछ 'म' 'उ' हैं।
'ओ' कुछ 'उ' 'वि' नहीं हैं।

यदि मूल-निष्कर्ष सत्य नहीं है तो उसका विरुद्ध, अर्थात् "सब 'उ' 'वि' हैं" सत्य होगा। इसे साध्यवाक्य मानकर तथा मूल-पक्षवाक्य को पक्षवाक्य मानकर प्रथम आकार में निम्नलिखित न्यायवाक्य बनता है —

'आ' : सब 'उ' 'वि' है।
'ई' कुछ 'म' 'उ' है।
∴ 'ई' : कुछ 'म' 'वि' है। [दारीई (Darii) के अनुसार, जिसमें 'उ' हेतु है।]

यह नया निष्कर्ष असत्य है क्योंकि यह मूल साध्यवाक्य का विरुद्ध है। यह असत्यता तर्क-प्रक्रिया के कारण नहीं हो सकती क्योंकि वह 'दारीई' (Darii) है और न पक्षवाक्य के कारण हो सकती है क्योंकि वह मूल पक्षवाक्य के समान है। अत वह साध्यवाक्य के कारण है, जिसके असत्य सिद्ध किये जाने पर उसका विरुद्ध अर्थात् मूल-निष्कर्ष सत्य होगा।

द्रष्टव्य —तृतीय आकार के सयोगो का प्रतिलोम आकारान्तरण करते समय मूल निष्कर्ष का विरुद्ध नये न्यायवाक्य का साध्यवाक्य बनाने पर ही प्रथम आकार में विशुद्ध न्यायवाक्य प्राप्त होता है।

चतुर्थ आकार.

[तीन] चतुर्थ आकार के संयोग।

आआन्तीप्

(१) आआन्तीप्

'आ' : सब 'वि' 'म' है।
'आ' सब 'म' 'उ' है।
∴ 'ई' : कुछ 'उ' 'वि' है।

यदि निष्कर्ष सत्य नही है तो उसका विरुद्ध, अर्थात् कोई भी 'उ' 'वि' नही है" सत्य होगा। इसे साध्यवाक्य मानकर तथा मूल-पक्षवाक्य को पक्षवाक्य मानकर प्रथम आकार मे निम्न-लिखित न्यायवाक्य प्राप्त होता है.

'ए' : कोई भी 'उ' 'वि' नही है।
'आ' : सब 'म' 'उ' है।
∴ 'ए' : कोई भी 'म' 'वि' नही है। [केलारेन्ट (Celarent) के अनुसार, जिसमे 'उ' हेतु है।]
∴ कोई भी 'वि' 'म' नही है। (परिवर्तन के द्वारा)।

इसमे तर्कवाक्य "कोई भी 'वि' 'म' नही है" मूल साध्य-वाक्य का विपरीत (contrary) होने के कारण असत्य होगा। यह तर्कवाक्य, जो कि असत्य सिद्ध किया जा चुका है, नये निष्कर्ष का 'परिवर्तित' (Converse) है। अत उसकी असत्यता का कारण या तो परिवर्तन (Conversion) के नियमो का उल्लघन है अथवा परिवर्त्य (Convertend) की असत्यता है। परन्तु परिवर्तन के नियमो का पूर्ण रूप से पालन हुआ है। अत परिवर्त्य अर्थात् नया निष्कर्ष असत्य है।

यदि नया निष्कर्ष असत्य है, तो इस असत्यता का कारण क्या हो सकता है? तर्क-प्रक्रिया मे तो कोई अशुद्धि नही है क्योकि वह केलारेन्ट (Celarent) है और पक्षवाक्य भी मूल पक्षवाक्य के समान है। अतः वह असत्यता नये साध्यवाक्य के कारण ही हो सकती है। साध्यवाक्य को असत्य सिद्ध कर लेने पर, उसका विरुद्ध, अर्थात् मूल-निष्कर्ष, सत्य सिद्ध हो जाता है। अत. दिया हुआ न्यायवाक्य शुद्ध है।

कामेनेस्

(२) कामेनेस् (Camenes)

'आ' : सब 'वि' 'म' है।
'ए' : कोई भी 'म' 'उ' नही है?
∴ 'ए' : कोई भी 'उ' 'वि' नही है।

यदि निष्कर्ष सत्य नही है तो उसका विरुद्ध "कुछ 'उ' 'वि' है" सत्य होना चाहिए। इसे पक्षवाक्य मानकर तथा मूल साध्यवाक्य को साध्यवाक्य मानकर प्रथम आकार में निम्नलिखित न्यायवाक्य बन सकता है:

'आ' : सब 'वि' 'म' है।
'ई' : कुछ 'उ' 'वि' है।
∴ 'ई' : कुछ 'उ' 'म' है। [दारीई (Darii) के अनुसार, जिसमे 'वि' हेतु है।]

∴ कुछ 'म' 'उ' है। (परिवर्तन से)।

यह तर्कवाक्य कि "कुछ 'म' 'उ' है" असत्य है क्योकि वह मूल पक्षवाक्य का विरुद्ध है। उसकी असत्यता तर्क-प्रक्रिया अर्थात् 'परिवर्तन' (Conversion) के कारण नही हो सकती क्योकि उसके सभी नियमो का पालन किया गया है। अत वह इस आश्रयवाक्य "कुछ 'उ' 'म' है" के कारण है। अतः नये न्यायवाक्य का निष्कर्ष "कुछ 'उ' 'म' है" असत्य है।

यह असत्यता किस कारण है? यह साध्यवाक्य के कारण नही है क्योकि वह मूल साध्यवाक्य के समान है। और यह तर्क-प्रक्रिया के कारण भी नही हो सकती, क्योकि वह 'दारीई' (Darii) है। अतः यह असत्यता नये पक्षवाक्य के कारण होगी, जिसे असत्य सिद्ध कर देने पर, उसका विरुद्ध, अर्थात् मूल निष्कर्ष सत्य सिद्ध हो जाता है।

(३) दीमारीस् (Dimaris) दीमारीस्

'ई' : कुछ 'वि' 'म' है।
'आ' सब 'म' 'उ' है।
∴ 'ई' : कुछ 'उ' 'वि' है।

यदि निष्कर्ष सत्य नही हो, तो उसका विरुद्ध, अर्थात् "कोई भी 'उ' 'वि' नही है" सत्य होगा। इसे साध्यवाक्य मानकर तथा मूल पक्षवाक्य को पक्षवाक्य मानकर प्रथम आकार मे निम्न-लिखित न्यायवाक्य बनता है —

'ए' : कोई भी 'उ' 'वि' नही है।
'आ' सब 'म' 'उ' है।
∴ 'ए' : कोई भी 'म' 'वि' नही है। [केलारेट के अनुसार, जिसमे 'उ' हेतु है।]

∴ 'ए' : कोई भी 'वि' 'म' नही है। (परिवर्तन से)।

नये निष्कर्ष का परिवर्तित (Converse) असत्य है क्योकि वह मूल साध्यवाक्य का विरुद्ध है। अतः नया निष्कर्ष असत्य है। नये निष्कर्ष की असत्यता नये साध्यवाक्य की असत्यता के कारण होगी क्योकि तर्क-प्रक्रिया 'केलारेंट' (Celarent) होने के कारण विशुद्ध है और नया पक्षवाक्य मूल पक्षवाक्य के समान है। नया साध्यवाक्य असत्य होने के कारण, उसका विरुद्ध अर्थात् मूल निष्कर्ष सत्य होगा।

फेसापो

(४) फेसापो (Fesapo) :

'ए' : कोई भी 'वि' 'म' नही है।
'आ' : सव 'म' 'उ' हैं।
∴ 'ओ' : कुछ 'उ' 'वि' नही हैं।

यदि निष्कर्ष सत्य नही है, तो उसका विरुद्ध, "सव 'उ' 'वि' है" सत्य होगा। इसे साध्यवाक्य मानकर और मूल पक्षवाक्य को पक्षवाक्य मानकर प्रथम आकार मे निम्नलिखित न्यायवाक्य वन जाता है:

'आ' सव 'उ' 'वि' हैं।
'आ' सव 'म' 'उ' है।
∴ 'आ' : सव 'म' 'वि' हैं। [वार्वारा (Barbara) के अनुसार, क्योकि 'उ' हेतु है।]
∴ 'ई' : कुछ 'वि' 'म' हैं। (परिवर्तन से)।

अन्तिम तर्कवाक्य, मूल साध्यवाक्य का विरुद्ध होने के कारण, असत्य है। इस असत्यता का कारण दोषपूर्ण परिवर्तन (Conversion) नही है क्योकि परिवर्तन के सभी नियमो का पालन किया गया है। अत परिवर्त्य (Convertend) "सव 'म' 'वि' है" अर्थात् नया निष्कर्ष, असत्य है। यह असत्यता तर्क-प्रक्रिया के कारण नही हो सकती क्योकि वह वार्वारा (Barbara) है, और न पक्षवाक्य के कारण हो सकती है क्योकि वह मूल पक्षवाक्य के समान है। अत वह नये साध्यवाक्य के कारण होगी। अत. नया साध्यवाक्य असत्य है, इसलिए उसका विरुद्ध, अर्थात् मूल-निष्कर्ष सत्य है।

द्रष्टव्य —मूल निष्कर्ष का विरुद्ध पक्षवाक्य माना जाता है और उस दशा मे भी प्रथम आकार मे विशुद्ध न्यायवाक्य वन सकता है।

(५) 'फ्रेसीसोन्' (Fresison) :

फ्रेसीसोन्

'ए' कोई भी 'वि' 'म' नही है।
'ई' कुछ 'म' 'उ' है।
∴ 'ओ' कुछ 'उ' 'वि' नही है।

यदि यह निष्कर्ष सत्य नही है तो इसका विरुद्ध अर्थात् "सब 'उ' 'वि' है" सत्य होगा। इसको साध्यवाक्य मानकर और मूल पक्षवाक्य को पक्षवाक्य मानकर प्रथम आकार मे निम्नलिखित न्यायवाक्य वन सकता है.

'आ' सब 'उ' 'वि' है।
'ई' कुछ 'म' 'उ' है।
∴ 'ई' कुछ 'म' 'वि' है। [दारीई (Darii) के अनुसार, जिसमे 'उ' हेतु है।]
∴ 'ई' . कुछ 'वि' 'म' है। (परिवर्तन से)।

अन्तिम तर्कवाक्य मूल साध्यवाक्य का विरुद्ध होने के कारण असत्य है। उसकी असत्यता परिवर्त्य (Convertend) अर्थात् नये निष्कर्ष के कारण होगी क्योकि परिवर्तन के सभी नियमो का पालन किया गया है। अत नया निष्कर्ष असत्य है। नये निष्कर्ष की असत्यता तर्क-प्रक्रिया के कारण नही है, क्योकि वह 'दारीई' (Darii) है। और न वह नये पक्षवाक्य के कारण हो सकती है, क्योकि वह मूल-पक्षवाक्य के समान है। अत नया साध्यवाक्य असत्य है; इसलिए उसका विरुद्ध अर्थात् मूल निष्कर्ष सत्य है।

फ्रेसीसोन् (Fresison) का प्रतिलोम आकारान्तरण इस प्रकार भी हो सकता है कि मूल निष्कर्ष का विरुद्ध (अर्थात् "सव 'उ' 'वि' है") को नये न्यायवाक्य का पक्षवाक्य मान लिया जाय और मूल साध्यवाक्य ('ए'. कोई भी 'वि' 'म' नही है) को साध्यवाक्य मान लिया जाय। इस प्रकार निम्नलिखित न्यायवाक्य प्रथम आकार मे बनता है.—

दिए हुए निष्कर्ष का विरुद्ध प्रथम आकार के न्यायवाक्य का या तो साध्यवाक्य अथवा पक्षवाक्य हो सकता है।

'ए' . कोई भी 'वि' 'म' नही है। (मूल साध्यवाक्य)
'आ' . सव 'उ' 'वि' है। (मूल निष्कर्ष का विरुद्ध)
∴ 'ए' . कोई भी 'उ' 'म' नही है। [केलारेन्ट (Celarent) के अनुसार]
∴ 'ए' कोई भी 'म' 'उ' नही है। (परिवर्तन से)।

यह अन्तिम तर्कवाक्य "कोई भी 'म' 'उ' नही है" मूल पक्ष-वाक्य का विरुद्ध होने के कारण असत्य है। इस असत्यता का क्या कारण हो सकता है? यह दोषपूर्ण परिवर्तन (Conversion) के कारण नही हो सकती, अत. आश्रयवाक्य "कोई भी 'उ' 'म' नही है" असत्य है। यह असत्यता दोषपूर्ण तर्क-प्रक्रिया के कारण नही हो सकती क्योकि वह केलारेन्ट (Celarent) है। और न नये साध्यवाक्य के कारण हो सकती है क्योकि वह मूल साध्यवाक्य के समान है। अत मूल पक्षवाक्य असत्य है। अत. मूल निष्कर्ष सत्य है।

इस प्रकार हम देखते है कि मूल निष्कर्ष के विरुद्ध को इच्छानुसार नये न्यायवाक्य का या तो साध्यवाक्य अथवा पक्षवाक्य बनाया जा सकता है क्योकि दोनो दशाओ मे अन्य आश्रयवाक्य के साथ उसे सम्मिलित कर लेने पर प्रथम आकार मे विशुद्ध सयोग प्राप्त हो जाता है।

परिणामों का सारांश :—

(१) **द्वितीय आकार के संयोग तथा कामेनेस्** (Camenes) (चतुर्थ आकार) का प्रतिलोम आकारान्तरण मूल निष्कर्ष के विरुद्ध को **पक्षवाक्य** बनाकर हो सकता है।

(२) **तृतीय तथा चतुर्थ आकार के संयोग [कामेनेस्** (Camenes) **को छोड़कर]** का प्रतिलोम आकारान्तरण मूल निष्कर्ष के विरुद्ध को **साध्यवाक्य** बनाकर किया जा सकता है।

(३) **फेसापो** (Fesapo) तथा **फ्रेसीसोन्** (Fresison) का प्रतिलोम आकारान्तरण मूल-निष्कर्ष के विरुद्ध को **साध्यवाक्य अथवा पक्षवाक्य** बनाकर किया जा सकता है।

मूल न्यायवाक्य में कोई भी पद आश्रयों में अनावश्यक रीति से व्याप्त नहीं होता।

§१५ मूल (Fundamental), निर्बल (Weakened) तथा सबल (Strengthened) न्यायवाक्य

(क) मूल (Fundamental) **तथा अ-मूल** (Non-Fundamental) **न्यायवाक्य।**

मूल न्यायवाक्य उसे कहते है, जिसमे साध्य तथा पक्ष बिना निष्कर्ष मे व्याप्त हुए आश्रयवाक्यो मे व्याप्त नही होते तथा हेतु

केवल एक बार व्याप्त होता है। अर्थात् **कोई भी पद अनावश्यक रीति से व्याप्त नहीं होता।**

न्यायवाक्य के नियमो के अनुसार हेतु कम से कम एक बार आश्रयवाक्यो मे व्याप्त होना चाहिए और कोई भी पद निष्कर्ष मे तब तक व्याप्त (distributed) नही होना चाहिए जब तक वह आश्रयवाक्यो (premises) मे व्याप्त न हो। यदि हम उन्नीस सिद्ध-सयोगो का परीक्षण करे, तो विदित होगा कि तीन सयोगो, यथा—**दाराप्ती** (Darapti) (तृतीय आकार), **फेलाप्तोन** (Felapton) (तृतीय आकार) तथा **फेसापो** (Fesapo) (चतुर्थ आकार) मे हेतु दोनो आश्रयवाक्यो मे व्याप्त है। और एक सयोग यथा—'**ब्रामान्तीप**' (Bramantip) (चतुर्थ आकार) मे साध्य (major term) साध्यवाक्य मे तो व्याप्त है, परन्तु निष्कर्ष मे व्याप्त नही है। अत. हम कह सकते है कि **दाराप्ती** (Darapti), **फेलाप्तोन** (Felapton) तथा **फेसापो** (Fesapo) मे हेतु **एक बार अनावश्यक रीति से व्याप्त है** और **ब्रामान्तीप** (Bramantip) मे **साध्य आश्रय से अनावश्यक रीति से व्याप्त है।** अर्थात् इस प्रकार की व्याप्ति निष्कर्ष प्राप्त करने के लिए आवश्यक नही है। यदि **दाराप्ती** (Darapti), **फेलाप्तोन** (Felapton) और **फेसापो** (Fesapo) मे हेतु दोनो आश्रयो मे व्याप्त न होकर केवल एक बार व्याप्त होता और यदि **ब्रामान्तीप** (Bramantip) मे साध्य व्याप्त नही होता, तो भी वही निष्कर्ष निकल सकते थे।

दाराप्ती, फेलाप्तोन, ब्रामान्तीप और फेसापो मूल नहीं है।

अत १९ सिद्ध-सयोगो मे से **१५** तो मूल है और ४ (यथा—**दाराप्ती, फेलाप्तोन, ब्रामान्तीप और फेसापो**) अ-मूल (Non-Fundamental) है।

निर्बल न्याय-वाक्य में निष्कर्ष एक विशेष तर्क-वाक्य निकाला जाता है : यद्यपि उन आश्रय-वाक्यों की सहायता से एक सार्व-लौकिक निष्कर्ष निकाला जा सकता है।

(ख) निर्बल (Weakened) तथा अ-निर्बल (Non-Weakened) न्यायवाक्य।

निर्बल न्यायवाक्य (Weakened Syllogism or Subaltern Mood) उस न्यायवाक्य को कहते हैं जिसमें निष्कर्ष 'विशेष' (Particular) निकाला जाता है, यद्यपि उन्हीं आश्रयवाक्यों की सहायता से सार्वलौकिक (Universal) निष्कर्ष निकाला जा सकता था। उदाहरणार्थ 'आ-आ' से 'आ' निष्कर्ष निकलता है। [बार्बारा (Barbara) प्रथम आकार मे] अब यदि निष्कर्ष 'आ' हो, तो वह 'ई' (I) भी हो सकता है, क्योकि 'सार्वलौकिक' के सत्य मे 'विशेष' का सत्य निहित रहता है। इसी प्रकार, जहाँ निष्कर्ष 'ए' (E) होता है, वहाँ वह 'ओ' (O) भी हो सकता है। अत. जब कभी भी सार्वलौकिक निष्कर्ष निकाला जा सकता है, तो उसका सगत विशेष निष्कर्ष भी निकाला जा सकता है। अत. जब किसी न्यायवाक्य मे एक विशेष निष्कर्ष निकाला जाय, जब कि सार्वलौकिक निष्कर्ष निकल सकता हो, तो ऐसे न्यायवाक्य को निर्बल कहते है। **इनमें निष्कर्ष निर्बल होता है।**

पाँच निर्बल न्यायवाक्य

चारो आकारो के १९ सिद्ध सयोगो मे पाँच सयोगो के निष्कर्ष सार्वलौकिक (Universal) होते है; यथा—**बार्बारा** (Barbara), **केलारेन्ट** (Celarent), **केसारे** (Cesare), **कामेस्ट्रेस** (Camestres) और **कामेनेस्** (Camenes)। इन पाँचो न्याय-वाक्यो को निर्बल किया जा सकता है और उन निर्बल न्यायवाक्यो को **बार्बारी** (Barbari)—('आ-आ-ई') और **केलारोन्ट** (Celaront)—('ए-आ-ओ'), (प्रथम आकार मे), **केसारो** (Cesaro)—('ए-आ-ओ') तथा **कामेस्ट्रोस्** (Camestros)—('आ-ए-ओ'), (द्वितीय आकार मे), और **कामेनोस** (Camenos)—('आ-ए-ओ') (चतुर्थ आकार मे) कहा

जा सकता है। तृतीय आकार मे निष्कर्ष विशेष होते है, अत तृतीय आकार मे निर्बल न्यायवाक्य नही होते।

(ग) **सबल** (Strengthened) **तथा असबल** (Non-Strengthened) **न्यायवाक्य।**

सबल न्याय-वाक्य मे, एक आश्रय-वाक्य सार्व-लौकिक होता है, यद्यपि उसके विशेष होने पर भी वही निष्कर्ष निकलता है।

सबल (Strengthened) न्यायवाक्य उसे कहते है जिसमे एक आश्रयवाक्य अनावश्यक रीति से सबल हो। अर्थात् उसका एक सार्वलौकिक आश्रय विशेष हो सकता है और उस दशा मे भी वही निष्कर्ष निकलेगा। उदाहरणार्थ **दाराप्ती** (Darapti) को देखिए ·

दाराप्ती

'आ' . सब 'म' 'वि' है।
'आ' · सब 'म' 'उ' है।
∴ 'ई' कुछ 'उ' 'वि' हैं।

यदि मूल-साध्यवाक्य के स्थान पर 'आ' के बदले 'ई' (I) तर्कवाक्य रख दिया जाय, तो भी वही निष्कर्ष निकलेगा। यथा—

'ई' · कुछ 'म' 'वि' है।
'आ' . सब 'म' 'उ' हैं।
∴ 'ई' · कुछ 'उ' 'वि' है।

इस सयोग को एक विशेष नाम से सम्बोधित किया जाता है। यथा—**दीसामीस** (Disamis)।

इसी प्रकार, यदि मूल-पक्षवाक्य ('आ') के बदले सगत 'ई' (I) तर्कवाक्य ले लिया जाय, तो भी वही निष्कर्ष निकलेगा। उसे **दातीसी** (Datisı) कहेगे।

हम देखते है कि **वे न्यायवाक्य जो कि मूल** (Fundamental) **नहीं है (अर्थात् दाराप्ती, फेलाप्तोन, ब्रामान्तीप और फेसापो), वे सबल** है। हम **दाराप्ती** (Daıapti) का उदाहरण ऊपर देख चुके है। **फेलाप्तोन** (Felapton) (ए-आ-ओ · तृतीय आकार) मे साध्यवाक्य अनावश्यक रीति

से सबल है और यदि साध्यवाक्य (O) होता, तो भी वही निष्कर्ष निकलता। ('ओ-आ-ओ' : बोकार्दो) इसी प्रकार **ब्रामान्तीप** (Bramantip) ('आ-आ-ई' : चतुर्थ आकार) मे, साध्यवाक्य 'आ' के बदले 'ई' (I) रक्खा जा सकता है ('ई-आ-ई' · दीमारीस्) और **फेसापो** (Fesapo) में ('ए-आ-ओ' · चतुर्थ आकार) मे, पक्षवाक्य को आ (A) के वदले 'ई' (I) रक्खा जा सकता है ('ए-ई-ओ' : फ्रेसीसोन्) और निष्कर्ष वही प्राप्त होता है।

यह बात ज्ञातव्य है कि इन चार सयोगो के अतिरिक्त **कामेनोस (Camenos) ('आ-ए-ओ' : चतुर्थ आकार) को छोड़कर सब निर्बल न्यायवाक्य (Subaltern mood) भी सबल होते है।** जहाँ तक **कामेनोस** (Camenos) का सम्वन्ध है, हम यह नही कह सकते कि उसमे कोई आश्रयवाक्य आवश्यकता से अधिक सवल है, क्योकि यदि सार्वलौकिक आश्रयवाक्य के स्थान पर विशेष रक्खा जाय तो कोई निष्कर्ष नही प्राप्त होता। यथा—

कामेनोस (Camenos)

'आ' सव 'वि' 'म' है।
'ए' : कोई भी 'म' 'उ' नही है।
∴ 'ओ' . कुछ 'उ' 'वि' नही है ।

इसमें यदि हम साध्यवाक्य को 'ई' (I) रक्खे अथवा पक्षवाक्य को 'ए' (E) रक्खे, तो कोई निष्कर्ष नही निकलेगा, अत **कामेनोस** (Camenos) को सवल न्यायवाक्य नही कह सकते।

कामेनोस न तो मूल है और न सवल क्योकि यद्यपि एक

यह वात द्रष्टव्य है कि **कामेनोस** (Camenos) मे, पक्ष 'उ' अनावश्यक रीति से व्याप्त है अर्थात् वह पक्षवाक्य मे तो व्याप्त है, परन्तु निष्कर्ष मे अव्याप्त है। अत. वह मूल-न्यायवाक्य (Fundamental Syllogism) नही है, जिसमे कोई भी

पद अनावश्यक रीति से व्याप्त नही होना चाहिए। **अतः कामेनोस** (Camenos) **एक मूल न्यायवाक्य नहीं है, परन्तु उसे सबल न्यायवाक्य नही कहा जा सकता।**

पद अनावश्यक रीति से व्याप्त है, परन्तु किसी भी पक्ष को निर्बल नही किया जा सकता।

शेप चारो निर्बल न्यायवाक्य अर्थात् **बार्बारी** (Barbari: 'आ-आ-ई' प्रथम आकार), **केलारोन्ट** (Celaront 'ए-आ-ओ': प्रथम आकार), **केसारो** (Cesaro 'ए-आ-ओ' द्वितीय आकार) और **कामेस्ट्रोस** (Camestros 'आ-ए-ओ' द्वितीय आकार), सवल न्यायवाक्य (*Strengthened Syllogism*) है। **बार्बारी** (Barbari) मे पक्षवाक्य को निर्बल करके 'ई' (I) किया जा सकता है, और निष्कर्ष वही प्राप्त हो जाता है—'आ-ई-ई', प्रथम आकार दारीई (Darii)। **'केलारोन्ट'** (Celaront) मे पक्षवाक्य निर्बल करके 'ई' (I) किया जा सकता है, और वही निष्कर्ष प्राप्त हो जाता है—'ए-ई-ओ'—फेरीओ (Ferio)। **केसारो** (Cesaro) मे, पक्षवाक्य 'ई' (I) हो सकता है और वही निष्कर्ष अर्थात् 'ओ' (O) फलित होता है—'ए-ई-ओ'—फेस्तीनो। तथा **कामेस्ट्रोस** (Camestros) मे पक्षवाक्य 'ओ' (O) हो सकता है, और वही निष्कर्ष प्राप्त हो जाता है—'आ-ओ-ओ'—बारोको।

अत यदि हम निर्बल न्यायवाक्यो को भी सम्मिलित कर ले तो **आठ सवल न्यायवाक्य** प्राप्त होते है। यथा—

सवल न्यायवाक्य आठ है।

बार्बारी (Barbari), **केलारोन्ट** (Celaront) प्रथम आकार।

दाराप्ती (Darapti), **कामेस्ट्रोस** (Camestros) द्वितीय आकार।

केसारो (Cesaro), **फेलाप्तोन** (Felapton): तृतीय आकार।

ब्रामान्तीप (Bramantip), **फेसापो** (Fesapo) चतुर्थ आकार।

फिर, यदि हम निर्बल न्यायवाक्यो को भी सम्मिलित कर लें तो अ-मूल (Non-Fundamental) संयोगो की संख्या पॉच है। यथा—दारप्ती (Darapti), फेलाप्तोन् (Felapton), ब्रामान्तीप (Bramantip), फेसापो (Fesapo) तथा कामेनोस (Camenos)।

अन्त मे, यह बात द्रष्टव्य है कि एक न्यायवाक्य को 'सबल' तब कहा जाता है, जब उसका एक आश्रयवाक्य सबल हो। और न्यायवाक्य को 'निर्बल' तब कहा जाता है जब निष्कर्ष निर्बल हो। सबल न्यायवाक्य मे एक आश्रयवाक्य को निर्बल किया जा सकता है और निर्बल न्यायवाक्य मे निष्कर्ष सबल किया जा सकता है।

§१६. शुद्ध हेतुफलाश्रित (Pure Hypothetical) तथा शुद्ध वैकल्पिक (Pure Disjunctive) न्यायवाक्य

अब तक हमने अपना ध्यान निरपेक्ष न्यायवाक्यो (Categorical Syllogisms) तक ही केन्द्रित किया था, जिसमे तीनो घटक तर्कवाक्य निरपेक्ष होते हैं। इसी प्रकार सब घटक तर्कवाक्य हेतुफलाश्रित (Hypothetical) हो सकते हैं; तब उस न्यायवाक्य को **शुद्ध हेतुफलाश्रित** (Pure Hypothetical) कहते हैं। या फिर तीनो घटक तर्कवाक्य वैकल्पिक (Disjunctive) हो सकते है, तब उस न्यायवाक्य को **शुद्ध-वैकल्पिक** (Pure Disjunctive) कहते हैं।

शुद्ध हेतु-फलाश्रित

शुद्ध हेतुफलाश्रित न्यायवाक्य मे तीन हेतुफलाश्रित तर्कवाक्य होते है। हेतुफलाश्रित तर्कवाक्यों मे गुण तथा परिमाण का भेद निरपेक्ष तर्कवाक्यो की ही भॉति होता है। अत शुद्ध निरपेक्ष न्यायवाक्यो के अनुरूप ही शुद्ध हेतुफलाश्रित न्यायवाक्यो के रूप हो सकते है।

उदाहरणार्थ निम्नलिखित शुद्ध हेतुफलाश्रित न्यायवाक्य **'बार्बारा'** (Barbara) के सयोग (Mood) मे है —

यदि 'क' 'ख' है, तो 'ग' 'घ' है।
यदि 'घ' 'ङ' है, तो 'क' 'ख' है।
∴ यदि 'घ' 'ङ' है, तो 'ग' 'घ' है।

शुद्ध वैकल्पिक

शुद्ध-वैकल्पिक न्यायवाक्य मे तीनो घटक तर्कवाक्य वैकल्पिक (Disjunctive) होते है। यह बात स्मरणीय है कि सब वैकल्पिक तर्कवाक्य स्वीकारात्मक (Affirmative) होते है। अत: न्यायवाक्य के गुण-सम्बन्धी नियम उन पर चरितार्थ नही होते। शुद्ध वैकल्पिक न्यायवाक्यो की सख्या इतनी कम होती है कि उन पर विचार करना व्यर्थ ही है।

अनुमान तथा न्याय-वाक्य

§१७. भारतीय न्याय मे 'अनुमान'

यह कहा जाता है कि **भारतीय न्याय में जिसे 'अनुमान' कहते है, वह पाश्चात्य तर्कशास्त्र के निरपेक्ष न्यायवाक्य** (Categorical Syllogism) **के अनुरूप है**। अब हम अनुमान के स्वरूप पर सक्षेप मे विचार करेगे तथा उसकी न्यायवाक्य से तुलना करेगे।

अनुमान

अनुमान (अनु=पीछे, मान=ज्ञान) अनुमान का शाब्दिक अर्थ होता है "पीछे से प्राप्त ज्ञान", अर्थात् ऐसा ज्ञान जो किसी अन्य ज्ञान के बाद प्राप्त हो। न्याय-विचारधारा के अनुसार प्रत्यक्ष (Perception) ज्ञान का प्रथम साधन है। प्रत्यक्ष के बाद अनुमान (Inference) आता है। **अनुमान ज्ञान-प्राप्ति की उस क्रिया को कहते है, जिसमें ज्ञान, प्रत्यक्ष के द्वारा नही, अपितु एक चिह्न की मध्यस्थता के कारण प्राप्त होता है।** एक उदाहरण देखिए। पर्वत पर अग्नि है, क्योंकि वहाँ धूम्र है। यह अनुमान है, क्योकि 'अग्नि' का ज्ञान प्रत्यक्ष के द्वारा

प्राप्त नही हुआ है, वरन 'धूम्र' की मध्यस्थता के कारण हुआ है; 'धूम्र' 'अग्नि' का चिह्न है।

उसके तीन पद

'अनुमान' की परिभाषा से विदित होता है कि उसमे **'तीन पद'** होते है। इन तीनो पदो को (१) पक्ष, (२) साध्य तथा (३) लिङ्ग (हेतु अथवा साधन) कहते है। **'पक्ष उस विषय को कहते है जिसके बारे में अनुमान किया जाता है। 'साध्य' उस विधेय को कहते है जिसका सम्बन्ध 'पक्ष' से स्थापित करना होता है और लिङ्ग उस चिह्न को कहते है जो इस सम्बन्ध को स्थापित करने में सहायता देता है।** उपर्युक्त दृष्टांत मे, 'पर्वत' पक्ष है, क्योकि उसके बारे मे अनुमान किया गया है, 'अग्नि' साध्य है क्योकि उसका सम्बन्ध 'पर्वत' (पक्ष) से स्थापित करना है और धूम्र लिङ्ग है, क्योकि यह वह चिह्न है, जिसकी मध्यस्थता से अनुमिति (Inferential knowledge) प्राप्त होती है।

यदि हम उपर्युक्त दृष्टात को पाश्चात्य तर्कशास्त्र के न्यायवाक्य (Syllogism) का रूप दे, तो वह इस प्रकार होगा —

सब धूम्रवाली वस्तुओ मे अग्नि है।
पर्वत धूम्रवाली वस्तु है।
∴ पर्वत मे अग्नि है।

इसमे पर्वत पक्ष (Minor term) है, अग्नि साध्य (Major term) है तथा धूम्र हेतु (Middle term) है। इस प्रकार भारतीय न्याय के अनुमान के पदो तथा पाश्चात्य न्यायवाक्य के पदो में अनुरूपता है।

अतः 'अनुमान' में तीन पद होते है, यथा--साध्य, पक्ष और लिङ्ग, जो पाश्चात्य निरपेक्ष न्यायवाक्य के साध्य (Major term), पक्ष (Minor term) तथा हेतु (Middle term) के समान होते है।

'अनुमान' मे **तर्कवाक्यो** की सख्या के सम्बन्ध मे भारतीय

पाँच तर्कवाक्य (अवयव)

न्याय-विचारक अनुमान के दो विभाग मानते है--(१) **स्वार्थानुमान** तथा (२) **परार्थानुमान**। **स्वार्थानुमान** (=स्वय अपने लिए अनुमान) को तर्कवाक्य मे व्यक्त करने की कोई आवश्यकता नही होती। **परार्थानुमान** मे 'अनुमान' को निम्नलिखित पाँच **अवयवों** मे व्यक्त किया जाता है:—

पर्वत पर अग्नि है। (प्रतिज्ञा)
क्योकि वहाँ धूम्र है। (हेतु)
जहाँ धूम्र होता है, वहाँ अग्नि होती है, जैसे रसोई घर मे। (उदाहरण)
पर्वत पर भी ऐसा ही है। (उपनय)
∴ पर्वत पर अग्नि है। (निगमन)

'प्रतिज्ञा' उस तर्कवाक्य को कहते हैं, जिसमे कोई बात समर्थित की जाती है। **'हेतु'** उस तर्कवाक्य को कहते हैं, जिसमे उस समर्थन का कारण व्यक्त होता है। **'उदाहरण'** उस सार्वलौकिक सम्बन्ध (व्याप्ति) को व्यक्त करता है, जो कि हेतु तथा समर्थित वस्तु मे होता है, साथ मे एक दृष्टात भी दे दिया जाता है। **'उपनय'** मे उस सार्वलौकिक-सम्वन्ध का उपयोग अपने विशेष दृष्टान्त मे किया जाता है। और अन्त मे **'निगमन'** निष्कर्ष को सूचित करता है।

अतः **परार्थानुमान मे, जब दूसरो को किसी सत्य का प्रदर्शन कराना होता है, तो पूर्ण रूप से व्यक्त करने में पाँच तर्कवाक्य होते हैं; परन्तु न्यायवाक्य** (Syllogism) **मे केवल तीन तर्कवाक्य होते हैं।**

यह बात द्रष्टव्य है कि पक्ष, साध्य और लिङ्ग के अतिरिक्त भारतीय न्याय-विचारको ने व्याप्ति (अर्थात् लिङ्ग और साध्य का अनन्य सहचार) पर भी विचार किया है। उपर्युक्त उदाहरण मे 'धूम्र' तथा 'अग्नि' मे अनन्य-सहचार (invariable concomitance) है। और इस सबध को इस प्रकार

व्यक्त किया जाता है 'जहाँ कही भी 'धूम्र' है, वहाँ अग्नि है।' यह अनन्य-सहचार अथवा व्याप्ति ही अनुमान का आधार है। न्यायदर्शन की सबसे मुख्य समस्याये ये है —व्याप्ति किसे कहते है ? हम व्याप्ति का निर्माण किस प्रकार करते है ? पाश्चात्य तर्कशास्त्र मे न्यायवाक्य का वर्णन करते समय ऐसी समस्याओ पर विचार नही करते। इसका कारण यह है कि पाश्चात्य तर्कशास्त्री आकारगत तथा वस्तुगत तर्कशास्त्र मे भेद मानते है और वे न्यायवाक्य को 'आकारगत-तर्क' के रूप मे मानते है। भारतीय न्याय मे ऐसा कोई भेद मान्य नही है। अनुमान केवल आकारगत तर्क का रूप नही है। वरन वह वस्तुगत (Material) भी है। अत. न्याय विचारको की गवेषणा का विषय वास्तविक सत्य (Material truth) भी है। वास्तव मे 'अनुमान' का वर्णन करते समय न्याय विचारक उन प्रश्नो पर भी स्वतन्त्रता से विचार कर लेते है, जो अध्यात्म अथवा दर्शन (metaphysics) के क्षेत्र मे आते है। इतना ही नही, वरन वे सत्य की प्राप्ति जीवन का सर्वोच्च उद्देश्य अर्थात् मुक्ति-प्राप्ति का साधन मानते है।

कुछ हल किये हुए अभ्यास

(१) सिद्ध कीजिए कि यदि निष्कर्ष सार्वलौकिक (Universal) हो तो हेतु आश्रयवाक्यो में केवल एक बार व्याप्त हो सकता है।

उपपत्ति—यदि निष्कर्ष सार्वलौकिक हो, तो वह या तो 'आ' (A) होगा, या 'ए' (E)।

यदि निष्कर्ष 'आ' (A) हो, तो दोनो आश्रय 'आ' होगे। दोनो आश्रयवाक्य 'आ' होने के कारण आश्रयवाक्यो मे केवल दो पद व्याप्त होते है। निष्कर्ष 'आ' होने के कारण उसमे पक्ष व्याप्त होता है। अतः वह पक्षवाक्य मे भी व्याप्त होना चाहिए। आश्रयवाक्यो के दोनो व्याप्त पदो मे से एक पक्ष होगा। अत. हेतु केवल एक वार व्याप्त होता है।

यदि निष्कर्ष 'ए' (E) हो, तो एक आश्रयवाक्य 'ए' (E) तथा दूसरा आश्रयवाक्य 'आ' (A) होगा। यदि एक आश्रय-वाक्य 'ए' तथा दूसरा 'आ' होगा, तो उन दोनो मे तीन पद व्याप्त होगे। निष्कर्ष 'ए' होने के कारण पक्ष और साध्य दोनो ही निष्कर्ष मे व्याप्त होगे; अतः वे पहले से ही आश्रयो मे व्याप्त होगे। आश्रयो के तीनो व्याप्त पदो मे से एक तो पक्ष तथा दूसरा साध्य है। अत· हेतु केवल एक वार व्याप्त हो सकता है।

(२) सिद्ध कीजिए कि 'ओ' (O) प्रथम आकार में आश्रय-वाक्य नही हो सकता।

उपपत्ति .—प्रथम आकार मे हेतु साध्यवाक्य मे उद्देश्य तथा पक्षवाक्य मे विधेय होता है।

यदि साध्यवाक्य 'ओ' (O) हो, तो पक्षवाक्य 'आ' (A) होगा तथा निष्कर्ष 'ओ' (O) होगा। इस प्रकार, हेतु एक वार भी व्याप्त न हो सकेगा। अत. कोई निष्कर्ष नही निकलेगा।

यदि पक्षवाक्य 'ओ' (O) हो, तो साध्यवाक्य 'आ' (A) होगा और निष्कर्ष 'ओ' (O) होगा। निष्कर्ष के 'ओ' (O) होने के कारण उसमे साध्य व्याप्त होगा। साध्यवाक्य के 'आ' (A) होने के कारण, प्रथम आकार मे, उसमे साध्य व्याप्त नही होगा। अत. कोई निष्कर्ष नही निकलेगा।

इस प्रकार 'ओ' (O) प्रथम आकार मे न तो साध्यवाक्य और न पक्षवाक्य हो सकता है।

(३) सिद्ध कीजिए कि 'ओ' (O) द्वितीय आकार को छोड़कर किसी भी आकार में पक्षवाक्य नहीं हो सकता।

(क) प्रथम आकार मे 'ओ' (O) पक्षवाक्य नही हो सकता, क्योकि जैसा कि प्रश्न (२) मे प्रदर्शित कर दिया गया है, ऐसा करने से अवैध-साध्य (Illicit Major) का दोष हो जायगा।

(ख) तृतीय आकार मे यदि 'ओ' (O) पक्षवाक्य हो, तो साध्यवाक्य 'आ' (A) होगा, तथा निष्कर्ष 'ओ' (O) होगा। इस प्रकार निष्कर्ष मे साध्य व्याप्त हो जायेगा। अत. वह साध्य-वाक्य मे भी व्याप्त होना चाहिए। परन्तु साध्यवाक्य 'आ' है; इसलिए उसका विधेय अर्थात् साध्य व्याप्त नही है। अत: तृतीय आकार मे 'ओ' (O) को पक्षवाक्य मानने से अवैध-साध्य (Illicit Major) का दोष हो जाता है।

(ग) चतुर्थ आकार मे यदि 'ओ' (O) पक्षवाक्य हो, तो साध्यवाक्य 'आ' (A) होगा। अत उसमे पक्षवाक्य के 'ओ' (O) होने से, हेतु उसमे भी अव्याप्त रहेगा। अत· चतुर्थ आकार मे, 'ओ' को पक्षवाक्य मानने से 'अव्याप्त-हेतु' (Undistributed Middle) का दोष हो जायगा।

(घ) परन्तु यदि द्वितीय आकार मे 'ओ' (O) पक्षवाक्य हो, तो विशुद्ध निष्कर्ष निकल जाता है। पक्षवाक्य 'ओ' (O) होने पर, साध्यवाक्य 'आ' (A) होगा, तथा निष्कर्ष 'ओ' (O) होगा। निष्कर्ष मे साध्य व्याप्त होगा, जो कि 'आ' (A) साध्य-वाक्य का उद्देश्य होने के कारण उसमे भी व्याप्त होगा। हेतु पक्षवाक्य मे व्याप्त है। अत विशुद्ध निष्कर्ष निकल आता है।

अत 'ओ' (O) द्वितीय आकार को छोडकर किसी भी आकार मे पक्षवाक्य नही हो सकता।

(४) सिद्ध कीजिए कि 'ओ' (O) चतुर्थ आकार में कोई आश्रयवाक्य नही हो सकता।

उपपत्ति —चतुर्थ आकार मे हेतु साध्यवाक्य मे विधेय तथा पक्षवाक्य मे उद्देश्य होता है। यदि एक आश्रय 'ओ' (O) हो, तो दूसरा आश्रय 'आ' (A) होगा, तथा निष्कर्ष 'ओ' (O) होगा।

यदि 'ओ' (O) साध्यवाक्य हो, तो उसमे साध्य अव्याप्त रहेगा, अत वह निष्कर्ष मे भी व्याप्त नही हो सकता। परन्तु निष्कर्ष

'ओ' (O) होने के कारण अपने विधेय (अर्थात् साध्य) को व्याप्त रखता है। अत· अवैध-साध्य का दोष हो जायगा।

यदि 'ओ' (O) पक्षवाक्य हो, तो हेतु उसमे अव्याप्त रहेगा। विशुद्ध निष्कर्ष प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि वह साध्य-वाक्य मे व्याप्त हो। परन्तु ऐसा नही है। अत 'ओ' (O) चतुर्थ आकार मे कोई आश्रय नही हो सकता।

(५) सिद्ध कीजिए कि यदि निष्कर्ष 'आ' (A) हो तो न्याय-वाक्य प्रथम आकार मे होगा।

उपपत्ति·—यदि निष्कर्ष 'आ' (A) है, तो दोनो आश्रयवाक्य 'आ' (A) होगे और पक्ष निष्कर्ष मे व्याप्त होगा। पक्ष आश्रय मे तभी व्याप्त हो सकता है, जब पक्ष पक्षवाक्य का उद्देश्य हो। इस प्रकार हेतु पक्षवाक्य का विधेय होता है। अत हेतु पक्षवाक्य मे व्याप्त नही होता। इसलिए उसे साध्यवाक्य मे व्याप्त होना पडेगा। अत· वह साध्यवाक्य का उद्देश्य होगा।

अत: यदि निष्कर्ष 'आ' (A) हो, तो हेतु साध्यवाक्य का उद्देश्य तथा पक्षवाक्य का विधेय होगा। अर्थात् वह युक्ति प्रथम आकार मे होगी।

प्रश्नमाला ११

(१) न्यायवाक्य किसे कहते है? यह बतलाइए कि वह सान्तरानुमान का एक रूप है तथा निगमनमूलक अनुमान है।

(२) यदि किसी न्यायवाक्य के आश्रयवाक्य असत्य हो, तो क्या वह तर्क असत्य हो जाता है? उदाहरण सहित समझाइए।

(३) न्यायवाक्य की विशेषताओ का वर्णन कीजिए।

(४) न्यायवाक्य मे हेतु की क्या उपयोगिता है? हेतु का कमसे कम एक बार व्याप्त होना क्यो आवश्यक है?

(५) प्रथम आकार को 'पूर्ण आकार' क्यो कहते है? अरस्तू के न्यायवाक्य-सम्बन्धी सिद्धान्त (Dictum de omni et nullo) की व्याख्या कीजिए।

(६) न्यायवाक्य के नियमो का सक्षेप मे वर्णन कीजिए।

(७) आकारान्तरण किसे कहते है? अनुलोम तथा प्रतिलोम आकारान्तरण मे क्या भेद है?

(८) 'वारोको' तथा 'फेलाप्तोन' का अनुलोम तथा प्रतिलोम दोनो प्रकार से आकारान्तरण कीजिए।

(९) उदाहरण सहित निम्नलिखित की व्याख्या कीजिए —
(क) अवैध-साध्य (ख) सदिग्ध हेतु
(ग) आकार (घ) सयोग। (उ० प्र० १९५२)

(१०) सिद्ध कीजिए कि प्रथम आकार मे 'ओ' कोई भी आश्रयवाक्य नही हो सकता। (उ० प्र० १९५०)

(११) 'आ-ए-ए' किस आकार मे विशुद्ध संयोग है? (केवल न्यायवाक्य के सामान्य नियमो के आधार पर उत्तर दीजिए।)
(उ० प्र० १९४८)

(१२) स्वीकारात्मक साध्यवाक्य के साथ पक्षवाक्य का प्रथम आकार मे स्वीकारात्मक तथा द्वितीय आकार मे निपेधात्मक होना क्यो आवश्यक है? (उ० प्र० १९४८)

(१३) सिद्ध कीजिए कि 'ओ'-तर्कवाक्य प्रथम आकार मे आश्रय की भाँति, द्वितीय आकार मे साध्यवाक्य की भाँति, तृतीय आकार मे पक्षवाक्य की भाँति तथा चतुर्थ आकार मे आश्रय की भाँति प्रयुक्त नही हो सकता। (उ० प्र० १९४७)

(१४) सिद्ध कीजिए कि 'ई-ए' से किसी भी आकार मे विशुद्ध निष्कर्ष नही निकलता तथा 'ए-ई' से प्रत्येक आकार मे विशुद्ध निष्कर्ष निकलता है। (उ० प्र० १९४६)

(१५) आकारान्तरण से आप क्या समझते है? यह कितने प्रकार का होता है? प्रत्येक प्रकार के आकारान्तरण को उदाहरण सहित समझाइए। (उ० प्र० १९५१, १९४८)

(१६) भारतीय न्याय के अनुसार 'अनुमान' की आवश्यक शर्ते कौन-सी है? न्यायवाक्य तथा अनुमान का अन्तर स्पष्ट कीजिए। (उ० प्र० १९४६, १९५३)

(१७) 'परार्थानुमान' की व्याख्या कीजिए। उसकी अरस्तू के न्यायवाक्य से तुलना कीजिए। (उ० प्र० १९४८)

(१८) 'स्वार्थानुमान' तथा 'परार्थानुमान' का अन्तर स्पष्ट कीजिए। उदाहरण सहित 'परार्थानुमान' के अवयवों को समझाइए। (उ० प्र० १९५०, १९५१)

(१९) अनुमान के पाँच अवयव कौन-कौन से हैं? उनकी न्यायवाक्य के तीनों अवयवों से तुलना कीजिए। क्या अवयवों की संख्या कम की जा सकती है? (उ० प्र० १९५२)

(२०) निम्नलिखित से क्या तात्पर्य है —

पक्ष, साध्य, हेतु।

द्वादश प्रकरण

मिश्र न्यायवाक्य (Mixed Syllogisms)

मिश्र-न्यायवाक्य के तीन प्रकार

मिश्र-न्यायवाक्य उसे कहते हैं, जिसके घटक तर्कवाक्य एक से सम्बन्ध के न हो। उसके तीन उप-विभाग हैं यथा (१) हेतु-फलाश्रित निरपेक्ष (अथवा हेतुफलाश्रित) न्यायवाक्य (२) वैकल्पिक-निरपेक्ष (अथवा वैकल्पिक) न्यायवाक्य तथा (३) उभयतोपाश ।

§ १ हेतुफलाश्रित-निरपेक्ष न्यायवाक्य (Hypothetical Categorical Syllogism)

हेतुफलाश्रित निरपेक्ष

हेतुफलाश्रित-निरपेक्ष न्यायवाक्य उस मिश्र-न्यायवाक्य को कहते हैं जिसका साध्यवाक्य हेतुफलाश्रित हो, पक्षवाक्य निरपेक्ष हो तथा निष्कर्ष भी निरपेक्ष हो। इसे साधारणतया हेतुफलाश्रित न्यायवाक्य (Hypothetical Syllogism) भी कहते हैं।

(क) नियम · इस प्रकार के अनुमान के निम्नलिखित दो नियम है :—

नियम

(१) पूर्वाङ्ग को स्वीकार करने से उत्तराङ्ग को भी स्वीकार किया जा सकता है; परन्तु इसका विलोम सत्य नही होता, और,

(ख) उत्तराङ्ग को अस्वीकार करने से पूर्वाङ्ग को अस्वीकार किया जा सकता है; परन्तु इसका विलोम सत्य नही होता।

विधायक और विघातक

पहले प्रकार के न्यायवाक्य को **विधायक** या 'विधि-प्रकार' और दूसरे प्रकार के न्यायवाक्य को **विघातक** या 'निषेध-प्रकार' कहते है।

(१) विधि-प्रकार (Modus Ponens) या विधायक (Constructive) :—

विधायक

हेतुफलाश्रित-निरपेक्ष न्यायवाक्य को 'विधि प्रकार' का अथवा **विधायक** तब कहते है, जब साध्य-वाक्य के पूर्वाङ्ग को पक्षवाक्य मे स्वीकार करने से, साध्यवाक्य के उत्तराङ्ग को निष्कर्ष मे स्वीकार कर लेते है। यथा—

उदाहरण

(क) यदि 'क' 'ख' है, तो 'ग' 'घ' है।
'क' 'ख' है।
∴ 'ग' 'घ' है।

(क) यदि वह आता है, तो मै जाऊँगा।
वह आता है।
∴ मै जाऊँगा।

(ख) यदि 'क' 'ख' है, तो 'ग' 'घ' नही है।
'क' 'ख' है।
∴ 'ग' 'घ' नही है।

(ख) यदि वर्षा होगी तो वह नहीं आएगा।
वर्षा हुई।
∴ वह नही आएगा।

(ग) यदि 'क' 'ख' नही है, तो 'ग' 'घ' है।
'क' 'ख' नही है।
∴ 'ग' 'घ' है।

(ग) यदि वह नहीं आए, तो मैं जाऊँगा।
वह नही आया।
∴ मैं जाऊँगा।

(घ) यदि 'क' 'ख' नही है,
तो 'ग' 'घ' नही है।
'क' 'ख' नही है।
∴ 'ग' 'घ' नही है।

(घ) यदि वर्षा नही होगी, तो
फसल नही उगेगी।
वर्षा नही होगी।
∴ फसल नही उगेगी।

विघातक

(२) निषेध-प्रकार (Modus Tollens) या विघातक (Destructive) —

हेतुफलाश्रित-निरपेक्ष न्यायवाक्य को **निषेध-प्रकार** का या **विघातक** तब कहते है, जब कि साध्यवाक्य के उत्तराङ्ग को पक्षवाक्य मे अस्वीकार करने से साध्यवाक्य के पूर्वाङ्ग को निष्कर्ष मे अस्वीकार किया जा सकता है।

उदाहरण

इस प्रकार,

(क) यदि 'क' 'ख' है, तो
'ग' 'घ' है।
'ग' 'घ' नही है।
∴ 'क' 'ख' नही है।

(क) यदि वह आता है, तो
मैं जाऊंगा।
मैं नही जाऊँगा :
∴ वह नही आता है।

(ख) यदि 'क' 'ख' है, तो
'ग' 'घ' नही है।
'ग' 'घ' है।
∴ 'क' 'ख' नही है।

(ख) यदि वर्षा होती है, तो
वह नही आएगा।
वह आयेगा।
∴ वर्षा नही होगी।

(ग) यदि 'क' 'ख' नही है,
तो 'ग' 'घ' है।
'ग' 'घ' नही है।
∴ 'क' 'ख' है।

(ग) यदि वह नही आए,
तो मै जाऊँगा।
मै नही जाऊँगा।
∴ वह आयेगा।

(घ) यदि 'क' 'ख' नही है,
तो 'ग' 'घ' नही है।
'ग' 'घ' है।
∴ 'क' 'ख' है।

(घ) यदि वर्षा नही होती तो
फसल नही उगती।
फसल उगती है।
∴ वर्षा होती है।

यह बात ज्ञातव्य है कि 'विधि-प्रकार' या विधायक और 'निषेध-प्रकार' या विघातक रूप पक्षवाक्य या निष्कर्ष के गुण से

सम्वन्ध नही रखता, उसका सवध केवल इस बात मे है कि पक्षवाक्य में हम साध्यवाक्य के पूर्वाङ्ग को स्वीकार करते है, अथवा उसके उत्तराङ्ग को अस्वीकार करते है—पूर्वाङ्ग और उत्तराङ्ग चाहे कुछ भी क्यो न हो।

(ख) दोष (Fallacies)

दोष

यदि हम इन नियमो का उल्लघन कर देते है, तो या तो **'उत्तराङ्ग की स्वीकृति'** (Affirming the Consequent) का दोष हो जाता है अथवा **'पूर्वाङ्ग की अस्वीकृति'** (Denying the Antecedent) का दोष उत्पन्न हो जाता है। यथा—

यदि 'क' 'ख' है, तो 'ग' 'घ' है।	यदि वह आता है तो मैं जाऊँगा।
'क' 'ख' नही है।	वह नही आता है।
∴ 'ग' 'घ' नही है।	∴ मैं नही जाऊँगा।

यह उक्ति दोषपूर्ण है और इसमे **'पूर्वाङ्ग की अस्वीकृति का दोष'** है, क्योकि पक्षवाक्य मे हमने पूर्वाङ्ग को अस्वीकार कर लिया है और उसी के बल पर उत्तराङ्ग को निष्कर्ष मे अस्वीकार कर लिया है। यह नियम-विरुद्ध है।

१. पूर्वांग की अस्वीकृति का दोष

यदि हम दिए हुए हेतुफलाश्रित-निरपेक्ष न्यायवाक्य के साध्यवाक्य को निरपेक्ष रूप देकर निरपेक्ष न्यायवाक्य बना ले, तो वह इस प्रकार होगा :—

शुद्ध-निरपेक्ष

'आ' · 'क' के 'ख' होने की सब दशाएँ 'ग' के 'घ' होने की दशाएँ है।
'ए' यह दशा 'क' के 'ख' होने की दशा नही है।
∴ 'ए' . यह दशा 'ग' के 'घ' होने की दशा नही है।

यहाँ पर हम देखते है कि साध्य " 'ग' के 'घ' होने की दशा" साध्यवाक्य मे तो व्याप्त नही है, परन्तु निष्कर्ष मे व्याप्त है, अत यहाँ अवैध-साध्य (Illicit Major) का दोष उत्पन्न हो गया

है। इस प्रकार हम देखते है कि **'पूर्वाङ्ग की अस्वीकृति' का दोष शुद्ध निरपेक्ष न्यायवाक्य के अवैध-साध्य के दोष के अनुरूप है।**

अब निम्नलिखित युक्ति को देखिए —

यदि 'क' 'ख' है, तो 'ग' 'घ' है।	यदि वह आता है तो मैं जाऊँगा।
'ग' 'घ' है।	मैं जाऊँगा।
∴ 'क' 'ख' है।	∴ वह आता है।

२. उत्तराङ्ग की स्वीकृति

इस युक्ति मे **'उत्तराङ्ग की स्वीकृति' का दोष** है, क्योकि पक्ष-वाक्य मे हमने उत्तराङ्ग को स्वीकार किया है, तथा उसी के बल पर निष्कर्ष मे पूर्वाङ्ग को स्वीकार किया है। यह नियम-विरुद्ध है।

यदि हम दिए हुए हेतुफलाश्रित-निरपेक्ष न्यायवाक्य के साध्य-वाक्य को निरपेक्ष रूप देकर, उसे निरपेक्ष न्यायवाक्य मे परिवर्तित कर दे, तो वह इस प्रकार होगा —

शुद्ध-निरपेक्ष

'आ' 'क' के 'ख' होने की सब दशाये 'ग' के 'घ' होने की दशाये है।
'आ' यह दशा 'ग' के 'घ' होने की दशा है।
∴ 'आ' यह दशा 'क' के 'ख' होने की दशा है।

इसमे हम देखते है कि मध्यस्थ-पद " 'ग' के 'घ' होने की दशा" आश्रयवाक्यो मे एक वार भी व्याप्त नही है, अत "अव्याप्त-मध्य" (Undistributed Middle) का दोष उत्पन्न हो गया है। इस प्रकार, **'उत्तराङ्ग की स्वीकृति' का दोष शुद्ध-निरपेक्ष न्यायवाक्य के अव्याप्त-मध्य के दोष के अनुरूप है।**

(ग) निरपेक्ष-न्यायवाक्य मे परिवर्तन।

हेतुफलाश्रित-निरपेक्ष न्यायवाक्यो को, उनके साध्यवाक्य को निरपेक्ष तर्कवाक्य मे वदलकर, निरपेक्ष न्यायवाक्य का रूप दिया जा सकता है, यथा—

हेतुफलाश्रित-निरपेक्ष	शुद्ध-निरपेक्ष
(१) यदि 'क' 'ख' है, तो 'ग' 'घ' है।	'क' के 'ख' होने की सब दशाएँ 'ग' के 'घ' होने की दशाएँ है।
'क' 'ख' है।	यह 'क' के 'ख' होने की दशा है।
∴ 'ग' 'घ' है।	∴ यह 'ग' के 'घ' होने की दशा है।
(२) यदि वह आता है, तो मै जाऊँगा।	उसके आने की सब दशाये मेरे जाने की दशाये है।
वह आता है।	यह उसके आने की दशा है।
∴ मै जाऊँगा।	∴ यह मेरे जाने की दशा है।

§ २. वैकल्पिक-निरपेक्ष न्यायवाक्य (Disjunctive-Categorical Syllogism)

परिभाषा

वैकल्पिक-निरपेक्ष न्यायवाक्य उसे कहते है, जिसका साध्य-वाक्य वैकल्पिक होता है, पक्षवाक्य निरपेक्ष होता है तथा निष्कर्ष निरपेक्ष होता है। इसे सामान्यत वैकल्पिक न्यायवाक्य भी कहते है।

नियम : एक की अस्वीकृति ∴ दूसरे की स्वीकृति

नियम—इस प्रकार के अनुमान का नियम यह है वैकल्पिक साध्यवाक्य के किसी एक विकल्प को पक्षवाक्य मे अस्वीकार करने से दूसरे विकल्प को निष्कर्ष मे स्वीकार किया जा सकता है। एक विकल्प की असत्यता मे दूसरे की सत्यता निहित रहती है। यथा—

(१) या तो 'क' 'ख' है, या 'ग' 'घ' है।
'क' 'ख' नही है।
∴ 'ग' 'घ' है।

(२) या तो 'क' 'ख' है, या 'ग' 'घ' है।
'ग' 'घ' नही है।
∴ 'क' 'ख' है।

उपर्युक्त नियम का विलोम कुछ परिस्थितियों में सत्य होता है।

कुछ तर्कशास्त्री, यथा यूबरवेग (Ueberweg) ऐसे भी है, जिनके विचार मे उपर्युक्त नियम का विलोम भी सत्य होता है, अर्थात् साध्यवाक्य के एक विकल्प को पक्षवाक्य मे स्वीकार करने से दूसरे विकल्प को निष्कर्ष मे अस्वीकार किया जा सकता है। यथा—

(३) या तो 'क' 'ख' है या 'ग' 'घ' है।
'क' 'ख' है।
∴ 'ग' 'घ' नही है।

(४) या तो 'क' 'ख' है या 'ग' 'घ' है।
'ग' 'घ' है।
∴ 'क' 'ख' नही है।

यह स्पष्ट है कि दूसरा नियम केवल तब ही सत्य होता है जब कि दोनों विकल्प विरुद्ध-तर्कवाक्यों के समान परस्पर व्यावर्तक हो। अतः सामान्य नियम के रूप मे केवल पहले दो आकार ही (जिनमे किसी एक विकल्प को अस्वीकार करने से दूसरे विकल्प को स्वीकार किया जाय) सत्य होते है। तीसरे और चौथे आकार तो केवल विशुद्ध दशाओ मे ही सत्य होते है।

§ ३. उभयतोपाश (Dilemma)

परिभाषा

(क) उभयतोपाश उस मिश्र-अनुमान को कहते है, जिसमें साध्यवाक्य एक संयुक्त हेतुफलाश्रित तर्कवाक्य होता है, पक्षवाक्य एक वैकल्पिक तर्कवाक्य होता है (जिसके विकल्प साध्यवाक्य के या तो पूर्वाङ्गो को स्वीकार करते है, या उत्तराङ्गों को अस्वीकार करते हैं) और निष्कर्ष या तो निरपेक्ष होता है या वैकल्पिक होता है। अव हम उभयतोपाश को उसके अवयव तर्कवाक्यो मे विश्लेपित करते है :—

(क) साध्यवाक्य : संयुक्त हेतुफलाश्रित

(क) साध्यवाक्य एक संयुक्त हेतुफलाश्रित तर्कवाक्य होता है : अर्थात् उसमे दो हेतुफलाश्रित तर्कवाक्य होते है, जो कि परस्पर जुडे रहते है।

(ख) पक्ष-वाक्य वैक-ल्पिक

(ख) **पक्षवाक्य एक वैकल्पिक तर्कवाक्य होता है।** हेतुफलाश्रित निरपेक्ष न्यायवाक्य के नियमो के अनुसार, साध्यवाक्य के पूर्वाङ्ग को पक्षवाक्य मे स्वीकार करने से, उसके उत्तराङ्ग को निष्कर्ष मे स्वीकार किया जा सकता है और इसी प्रकार, साध्यवाक्य के उत्तराङ्ग को पक्षवाक्य मे अस्वीकार करने पर, उसके पूर्वाङ्ग को निष्कर्ष मे अस्वीकार किया जा सकता है। **उभयतोपाश तो केवल दो हेतुफलाश्रित-निरपेक्ष न्यायवाक्यो का योग होता है।** अत वैकल्पिक पक्षवाक्य के दोनो विकल्प साध्यवाक्य के पूर्वाङ्गो को स्वीकार करते है अथवा उत्तराङ्गो को अस्वीकार करते है, ताकि निष्कर्ष मे पहली दशा मे उत्तराङ्ग स्वीकार किये जा सके एव दूसरी दशा मे पूर्वाङ्ग अस्वीकार किये जा सके।

(ग) निष्कर्ष या तो निरपेक्ष या वैकल्पिक

(ग) **निष्कर्ष निरपेक्ष हो सकता है अथवा वैकल्पिक।**

साधारण बोलचाल मे उभयतोपाश को 'द्विविधा' कहते है, और इस शब्द से उसके तार्किक अर्थ का सकेत मिलता है। साधारणतया हम द्विविधा मे तब पड जाते है, जब कि हमारे सामने केवल दो ही मार्ग होते है और दोनो मे से किसी एक को ग्रहण करने से हम असुविधापूर्ण स्थिति मे फँस जाते है। वास्तव मे हमारी दशा 'इधर कुआँ तो उधर खाई' वाली होती है। तर्क मे भी इसी प्रकार दो विकल्पो मे से एक को ग्रहण करना पडता है और दोनो अवस्थाओ मे सिवाय फँसने के और कोई रक्षा का मार्ग नही दीखता।

विधायक तथा विघातक

(ख) उभयतोपाश के प्रकार

किसी उभयतोपाश मे यदि वैकल्पिक पक्षवाक्य हेतुफलाश्रित-साध्यवाक्य के पूर्वाङ्गो को वैकल्पिक रूप मे स्वीकार करता हो, तो उसे **विधायक** उभयतोपाश कहते है। यदि उभयतोपाश मे पक्षवाक्य साध्यवाक्य के उत्तराङ्गो को वैकल्पिक रूप मे अस्वीकार करते है तो उसे **विघातक** कहते है। अत **उभय-**

तोपाश का विधायक या विघातक होना पक्षवाक्य पर निर्भर होता है।

शुद्ध तथा मिश्र

विधायक तथा विघातक दोनो प्रकार के उभतोपाश या तो शुद्ध हो सकते है अथवा मिश्र हो सकते है। **शुद्ध उभयतोपाश** मे निष्कर्प निरपेक्ष होता है और **मिश्र उभयतोपाश** मे निष्कर्प वैकल्पिक होता है। अतः **उभयतोपाश का शुद्ध या मिश्र होना निष्कर्ष पर निर्भर रहता है।**

अत. उभयतोपाश के चार प्रकार होते है :—

चार प्रकार :

(१) **शुद्ध विधायक** (Simple Constructive)।
(२) **मिश्र विधायक** (Complex Constructive)।
(३) **शुद्ध विघातक** (Simple Destructive)।
(४) **मिश्र विघातक** (Complex Destructive)।

अब हम इन चारो प्रकार के उभयतोपाशो के दृष्टात देखेगे।

शुद्ध विधायक

(१) शुद्ध-विधायक उभयतोपाश

यदि 'क' 'ख' है, तो 'ग' 'घ' है, और यदि 'च' 'छ' है, तो 'ग' 'घ' है।
या तो 'क' 'ख' है या 'च' 'छ' है।
∴ 'ग' 'घ' है।

यदि मनुष्य अपनी इच्छानुसार कार्य करता है, तो उसकी आलोचना होती है, और यदि वह दूसरो की इच्छानुसार कार्य करता है, तो भी उसकी आलोचना होती है।

मनुष्य या तो अपनी इच्छानुसार कार्य करता है, या दूसरो की इच्छानुसार।

∴ प्रत्येक दशा मे उसकी समालोचना होती है।

यह उभयतोपाश **शुद्ध** (Simple) है, क्योकि इसका निष्कर्ष निरपेक्ष है, और यह **विधायक** (Constructive) है क्योकि इसके पक्षवाक्य मे साध्यवाक्य के पूर्वाङ्गो को स्वीकार किया गया है।

अन्य उदाहरण—शुद्ध-विधायक उभयतोपाश का एक सुन्दर उदाहरण इग्लैण्ड के राजा हेनरी सप्तम के अन्यायी कर्मचारी एम्पसन (Empson) का है, जिसके द्वारा वह अपराधियो को राजकोष मे अर्थ-दण्ड के रूप मे बडी-बडी रकमो को देने के लिए बाध्य किया करता था। वह कहता था—

यदि अपराधी मितव्ययिता से रहता है, तो उसने प्रचुर धन इकट्ठा किया होगा और यदि वह खुले हाथ खर्च करता है तो इससे सिद्ध होता है कि वह धनी है।

किन्तु वह या तो मितव्ययिता से रहता है या खुले हाथ खर्च करता है।

∴ प्रत्येक अवस्था मे उसके पास प्रचुर धन है (अर्थात् वह राजकोष मे अधिक मात्रा मे धन दे सकता है)।

इस तर्क को 'एम्पसन की दुधारी' (Empson's Fork) कहते है।

मिश्र विधायक

(२) मिश्र-विधायक उभयतोपाश

यदि 'क' 'ख' है तो 'ग' 'घ' है, और यदि 'च' 'छ' है, तो 'ज' 'झ' है।
या तो 'क' 'ख' है या 'च' 'छ' है।
∴ या तो 'ग' 'घ' है या 'ज' 'झ' है।

इस प्रकार के उभयतोपाश का एक प्रसिद्ध उदाहरण सेनापति उमर खलीफा का है, जो सन् ६४० ईस्वी मे अलक्जेन्द्रिया के पुस्तकालय के अधीक्षक के समक्ष इस प्रकार रखा गया था —

यदि पुस्तके कुरान के अनुकूल है तो वे अनावश्यक हैं, और यदि वे कुरान के अनुकूल नही है, तो अधर्म फैलानेवाली है।
या तो पुस्तके कुरान के अनुकूल है या उसके अनुकूल नही है।
∴ या तो वे अनावश्यक है, या अधर्म फैलानेवाली है।

शुद्ध विघातक

(३) शुद्ध-विघातक उभयतोपाश

यदि 'क' 'ख' है तो 'ग' 'घ' है, और यदि 'क' 'ख' है तो 'च' 'छ' है।

या तो 'ग' 'घ' नही है, या 'च' 'छ' नही है।
∴ 'क' 'ख' नही है।

(क) यदि मुझे अपनी योजना पूरी करनी है, तो मुझे अपने विद्यार्थियो को पढाना होगा, और यदि मुझे अपनी योजना पूरी करनी है, तो मुझे अपनी पुस्तक लिखनी है।

या तो मै अपने विद्यार्थियो को नही पढा सकता या मै अपनी पुस्तक नही लिख सकता।

∴ मै अपनी योजना पूरी नही कर सकता।

(ख) इसका एक ऐतिहासिक उदाहरण दार्शनिक जेनो (Zeno) का है, जो अपने उभयतोपाश के द्वारा गति की असम्भवना सिद्ध करना चाहता था। वह इस प्रकार है :—

यदि भौतिक पदार्थ गतिमान है तो उसे वही गतिमान होना चाहिए, जहाँ वह है अथवा जहाँ वह नही है।

किन्तु भौतिक पदार्थ जहाँ है, वहाँ गतिमान नही हो सकता और न वहाँ, जहाँ वह नही है।

∴ एक भौतिक पदार्थ गतिमान नही हो सकता। (अर्थात् गति असम्भव है)।

यहाँ यह बात द्रष्टव्य है कि पक्षवाक्य वैकल्पिक नही है। पक्षवाक्य साध्यवाक्य के उत्तराङ्गो को वैकल्पिक रूप मे नही, अपितु **एक साथ** अस्वीकार करता है। जो कुछ भी विकल्प यहाँ है, वह साध्यवाक्य के दूसरे भाग मे है।

कुछ तर्कशास्त्री यथा **ह्वैटली** (Whately), **मैन्सल** (Mansel), **जैवन्स** (Jevons) इत्यादि केवल तीन प्रकार के उभयतोपाश को ही मानते है। वे शुद्ध विधायक उभयतोपाश को नही मानते।

मिश्र विघातक (४) मिश्र-विघातक उभयतोपाश

यदि 'क' 'ख' है, तो 'ग' 'घ' है; और यदि 'च' 'छ' है, तो 'ज' 'झ' है।
या तो 'ग' 'घ' नही है, या 'ज' 'झ' नही है।
∴ या तो 'क' 'ख' नही है, या 'च' 'छ' नही है।

यदि मनुष्य कर्त्तव्यनिष्ठ है तो वह आदेश का पालन करेगा और यदि वह बुद्धिमान है, तो वह उसे समझेगा।

या तो वह आदेश का पालन नही करता है या उसे समझता नही है।

∴ या तो वह कर्त्तव्यनिष्ठ नही है या वह बुद्धिमान नही है।

अन्य उदाहरण :

यदि मनुष्य बुद्धिमान है, तो वह अपने तर्क की व्यर्थता समझ लेगा और यदि वह ईमानदार है, तो वह अपनी गलती मान लेगा।

या तो वह अपने तर्क की व्यर्थता नही समझता या समझते हुए भी अपनी गलती नही मानता।

∴ या तो वह बुद्धिमान नही है या वह ईमानदार नही है।

(ग) उभयतोपाश का प्रतिक्षेप

प्रतिक्षेप= विरुद्ध उभयतोपाश प्रस्तुत करना

किसी उभयतोपाश के सर्वथा विरुद्ध उसी प्रकार का उभयतोपाश रखकर ठीक उल्टा निष्कर्ष निकालने की प्रक्रिया को उभयतोपाश का प्रतिक्षेप (Rebutting a dilemma) **कहते है।** जब हम किसी उभयतोपाश का प्रतिक्षेप करते है, तो **हमें साध्यवाक्य के उत्तराङ्गों को परस्पर बदल देना चाहिए और उनका गुण भी बदल देना चाहिए।** यह नियम केवल मिश्र-विघातक उभयतोपाश पर लागू हो सकता है। यह बात ज्ञातव्य है कि केवल अशुद्ध उभयतोपाश का ही प्रतिक्षेप हो सकता है, क्योकि उसके आश्रयवाक्यो मे कुछ दोष होता है। विशुद्ध उभयतोपाश का प्रतिक्षेप नही होता।

नियम

साकेतिक उदाहरण

अब हम सर्वप्रथम मिश्र विघातक उभयतोपाश के उपर्युक्त साकेतिक उदाहरण का प्रतिक्षेप करेगें।

यदि 'क' 'ख' है तो 'ग' 'घ' है और यदि 'च' 'छ' है तो 'ज' 'झ' है।

या तो 'क' 'ख' है या 'च' 'छ' है।

∴ या तो 'ग' 'घ' है या 'ज' 'झ' है।

प्रतिक्षेप के बाद यह इस प्रकार का होगा :—

यदि 'क' 'ख' है, तो 'ज' 'झ' नही है और यदि 'च' 'छ' है, तो 'ग' 'घ' नही है।
या तो 'क' 'ख' है या 'च' 'छ' है।
∴ या तो 'ज' 'झ' नही है या 'ग' 'घ' नही है।

वास्तविक उदाहरण

अब हम कुछ वास्तविक उदाहरण देखेंगे :—

प्रस्तुत उभयतोपाश :

(१) यदि पुस्तकें कुरान के अनुकूल हैं तो वे निरर्थक हैं और यदि वे कुरान के अनुकूल नही हैं तो वे हानिकारक हैं।
या तो पुस्तकें कुरान के अनुकूल हैं या नहीं हैं।
∴ या तो वे निरर्थक हैं या हानिकारक हैं।

प्रतिक्षेप-रूप :

यदि पुस्तकें कुरान के अनुकूल है, तो वे हानिकारक नही हैं और यदि वे कुरान के अनुकूल नही हैं तो वे निरर्थक नही हैं।
या तो पुस्तकें कुरान के अनुकूल हैं या उसके अनुकूल नही हैं।
∴ या तो वे हानिकार नही हैं या निरर्थक नहीं हैं।

(२) **एथेन्सवासिनी माता का उभयतोपाश :**

यदि तुम न्यायपूर्वक कार्य करोगे तो मनुष्य तुमसे घृणा करेंगे और यदि तुम अन्याय से कार्य करोगे तो देवता तुमसे घृणा करेंगे।
या तो तुम न्यायपूर्वक कार्य करोगे या अन्यायपूर्वक कार्य करोगे।
∴ या तो मनुष्य तुमसे घृणा करेंगे या देवता तुमसे घृणा करेंगे।

पुत्र ने माता के उभयतोपाश का निम्नलिखित प्रकार से प्रतिक्षेप किया :—

यदि मैं न्यायपूर्वक कार्य करूँगा तो देवता मुझसे घृणा नही करेंगे और यदि मैं अन्यायपूर्वक कार्य करूँगा तो मनुष्य मुझसे घृणा नही करेंगे।

या तो मैं न्यायपूर्वक कार्य करूँगा या अन्याय पूर्वक कार्य करूँगा।
∴ या तो देवता मुझसे घृणा नही करेंगे या मनुष्य मुझसे घृणा नही करेंगे।

(३) प्रस्तुत उभयतोपाश :—

यदि मनुष्य अविवाहित है, तो उसकी परवाह करनेवाला कोई नही है (अत दु खी है) और यदि कोई मनुष्य विवाहित है तो उसे अपनी पत्नी की परवाह करनी होगी (अत दु खी है) ।

या तो मनुष्य अविवाहित है या विवाहित ।

∴ या तो उसकी कोई परवाह करनेवाला नही है, या उसे अपने पत्नी की परवाह करनी होगी । (अतः दोनो दशाओ म वह दु खी है ।)

प्रतिक्षेप-रूप :—

यदि मनुष्य अविवाहित है, तो उसे अपनी पत्नी की परवाह नही करनी होगी (अत सुखी है) , और यदि मनुष्य विवाहित है तो उसकी परवाह करनेवाली उसकी पत्नी है ही (अत वह सुखी है ।)

या तो मनुष्य अविवाहित है या विवाहित ।

∴ या तो उसे अपनी पत्नी की परवाह नही करनी है या उसकी परवाह करनेवाली उसकी पत्नी है । (अत दोनो दशाओ मे वह सुखी है ।)

(४) इतिहास मे एक प्रसिद्ध उभयतोपाश है, 'जिसे लिटिजिओस' (Litigious) कहते है । कहा जाता है कि प्रसिद्ध यूनानी दार्शनिक प्रोटेगोरस (Protagoras) ने यूअथलस (Euathlus) को न्याय की शिक्षा इस शर्त पर दी कि आधी फीस तो उसे उसी समय मिलनी चाहिए और आधी पहला मुकदमा जीतने पर । परन्तु यूअथलस ने बहुत दिनो तक कोई मुकदमा ही नही लिया और प्रोटेगोरस को उसकी आधी फीस न मिली । अत प्रोटेगोरस ने उस पर अभियोग चलाया और निम्नलिखित उभयतोपाश उसके सामने रक्खा —

"यदि तुम अभियोग मे हार गये तो न्यायालय की आज्ञा से तुम्हे फीस देनी होगी और यदि तुम जीत गये तो भी तुम्हे अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार फीस देनी होगी ।"

उसके योग्य शिष्य ने इस उभयतोपाश का प्रतिक्षेप निम्नलिखित उभयतोपाश से किया—

"यदि मैं अभियोग मे हार गया, तो अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार फीस नही दूँगा और यदि मैं जीत गया तो न्यायालय की आज्ञा से मुझे फीस नही देनी होगी।"

(घ) उभयतोपाश का परीक्षण।

तार्किक दृष्टि मे, उभयतोपाश को विशुद्ध तब माना जाता है, जब उसमे **आकारगत** एव **वस्तुगत** दोनो प्रकार का सत्य हो। इस प्रकार के नियमो का पालन करना ही पर्याप्त नही है, वरन उभयतोपाश के अवयव-तर्कवाक्यो मे वस्तुगत-सत्य भी होना चाहिए।

उभयतोपाश की आकारगत विशुद्धता हेतुफलाश्रित न्याय वाक्यो के नियमों को पालन करने में निर्भर है।

उभयतोपाश की आकारगत विशुद्धता

उभयतोपाश दो हेतुफलाश्रित-निरपेक्ष न्यायवाक्यो का सम्मिलित रूप होता है। अत. यह ज्ञात करने के लिए कि किसी उभयतोपाश मे **आकारगत सत्य** है या नही, हम उसको दो हेतुफलाश्रित-निरपेक्ष न्यायवाक्यो मे विश्लेषित कर देते है, और तब इस बात का परीक्षण करते है कि इस प्रकार के न्यायवाक्यो के नियमो का पालन किया गया है या नही। हेतुफलाश्रित-निरपेक्ष न्यायवाक्यो के नियम ये है कि यदि पक्षवाक्य मे हम हेतुफलाश्रित-साध्य के पूर्वाङ्ग को स्वीकार करते है, तो निष्कर्ष मे हम उसके उत्तराङ्ग को स्वीकार कर सकते हैं। परन्तु इसका विलोम सत्य नही होता। और यदि हम पक्षवाक्य मे हेतुफलाश्रित साध्य के उत्तराङ्ग को अस्वीकार करते है तो निष्कर्ष मे उसके पूर्वाङ्ग को अस्वीकार किया जा सकता है। परन्तु इसका विलोम भी सत्य नही होता। यदि उभयतोपाश का विश्लेषण करने पर पता चले कि इन नियमो का पालन कर लिया गया है, तो उभयतोपाश मे आकारगत सत्य है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित शुद्ध विधायक उभयतोपाश देखिए —

यदि 'क' 'ख' है तो 'ग' 'घ' है और यदि 'च' 'छ' है तो 'ग' 'घ' है।
या तो 'क' 'ख' है या 'च' 'छ' है।
∴ 'ग' 'घ' है।

जब हम इन उभयतोपाश का उसके अवयव हेतुफलाश्रित-निरपेक्ष न्यायवाक्यो मे विश्लेषण करते है, तो वह इस प्रकार होता है

(१) यदि 'क' 'ख' है, तो 'ग' 'घ' है।
'क' 'ख' है।
∴ 'ग' 'घ' है।

(२) यदि 'च' 'छ' है तो 'ग' 'घ' है।
'च' 'छ' है।
∴ 'ग' 'घ' है।

इन दोनो हेतुफलाश्रित न्यायवाक्यो मे हम देखते है कि पूर्वाङ्गो को पक्षवाक्य मे स्वीकार किया गया है और निष्कर्ष मे उत्तराङ्गो को स्वीकार किया गया है। अतः दिए हुए उभयतोपाश मे आकारगत सत्य है।

शुद्ध-विधायक उभयतोपाश का एक वास्तविक उदाहरण देखिए :—

यदि कोई मनुष्य अपनी इच्छानुसार कार्य करता है, तो उसकी आलोचना होती है, और—
यदि कोई मनुष्य दूसरो की इच्छानुसार कार्य करता है, तो उसकी आलोचना होती है।—साध्यवाक्य।
मनुष्य या तो अपनी इच्छानुसार कार्य करता है अथवा दूसरो की इच्छानुसार कार्य करता है।—पक्षवाक्य।
∴ प्रत्येक दशा मे उसकी आलोचना होती है।— **निष्कर्ष**।

यह उभयतोपाश निम्नलिखित शुद्ध हेतुफलाश्रित-निरपेक्ष न्यायवाक्यो मे विश्लेषित किया जा सकता है :—

(१) यदि कोई मनुष्य अपनी इच्छानुसार कार्य करता है, तो उसकी आलोचना होती है।
एक मनुष्य अपनी इच्छानुसार कार्य करता है।
∴ उसकी आलोचना होती है।

(२) यदि कोई मनुष्य दूसरो की इच्छानुसार कार्य करता है, तो उसकी आलोचना होती है।

एक मनुष्य दूसरो की इच्छानुसार कार्य करता है।
∴ उसकी आलोचना होती है।

अत उपर्युक्त उभयतोपाश मे आकारगत सत्य है, क्योकि हमने पक्षवाक्यो मे पूर्वाङ्गो को स्वीकार करके निष्कर्षो मे उत्तराङ्गो को स्वीकार किया है।

इसी प्रकार, यदि हम मिश्र-विधायक उभयतोपाश, सरल-विघातक उभयतोपाश तथा मिश्र - विघातक उभयतोपाश का विश्लेषण करे, तो ज्ञात होगा कि उन सब मे आकारगत सत्य है, क्योकि हेतुफलाश्रित-निरपेक्ष-न्यायवाक्य सम्वन्धी नियमो का पूर्ण पालन किया गया है। यदि इन नियमो का उल्लघन हो जाय तो उभयतोपाश मे आकारगत सत्य नही होगा। अत **उभयतोपाश के आकारगत सत्य का प्रदर्शन उसे उसके अवयव हेतुफलाश्रित-निरपेक्ष न्यायवाक्यों में विश्लेषित करने तथा यह बतलाने में है कि उसके किसी नियम का उल्लंघन नहीं हुआ है।**

उभयतोपाश का वस्तुगत सत्य

उभयतोपाश का वास्तविक सत्य (अथवा वस्तुगत विशुद्धि)

उभयतोपाश का शुद्ध होना केवल आकारगत सत्य पर ही निर्भर नही रहता, वरन **वास्तविक सत्य** का होना भी आवश्यक है। उभयतोपाश मे वास्तविक सत्य तब होता है, जबकि उसके दोनो आश्रयवाक्य वास्तव मे सत्य हो। जब साध्यवाक्य के पूर्वाङ्गो और उत्तराङ्गो का सम्बन्ध वास्तविक होता है, तो साध्यवाक्य मे वास्तविक सत्य होता है और पक्षवाक्य मे वास्तविक सत्य तब होता है जब उसके विकल्प परस्पर विरोधी होते है और उनके अतिरिक्त और कोई सभावना नही होती।

उभयतोपाश मे वास्तविक सत्य तभी हो सकता है जब वह इन सब शर्तो को पूरा करे।

जैवन्स (Jevons) का कहना है कि "**उभयतोपाश सत्य होने की अपेक्षा असत्य अधिक होते है।**" इसका कारण यह

है कि ऐसे उदाहरण बहुत कम मिलते हैं, जहाँ दोनो विकल्प (पक्षवाक्य मे) एक दूसरे के सर्वथा विरुद्ध हो। निम्नलिखित न्यायवाक्य को देखिए :—

एक शिष्य को पढने में रुचि है, तो उसे प्रोत्साहन की आवश्यकता नही; और यदि उसकी पढ़ने से घृणा है तो भी प्रोत्साहन उसके लिए लाभप्रद नही है।

या तो उसकी पढने मे रुचि है या पढने से घृणा है।
∴ प्रोत्साहन या तो उसके लिए अनावश्यक है या लाभप्रद नही है।

इस उभयतोपाश मे यह मानना शुद्ध नही है कि पक्षवाक्य के दोनो विकल्प, यथा (१) पढने मे रुचि तथा (२) पढने से घृणा ही सभावित विकल्प हैं। ऐसा भी हो सकता है कि कुछ शिष्य ऐसे हो, जो न तो पढने मे रुचि रखते हो और न पढने से घृणा करते हो और उनको पुरस्कार के रूप मे प्रोत्साहन देना लाभप्रद हो सकता हो। अत. दिया हुआ उभयतोपाश दोषपूर्ण है, क्योकि पक्षवाक्य वास्तव मे असत्य है। इसी प्रकार यह भी प्रदर्शित किया जा सकता है कि उभयतोपाश इस कारण दोषपूर्ण हो जाता है कि उसका साध्य-वाक्य वास्तव मे सत्य नही होता अर्थात् हेतुफलाश्रित न्यायवाक्यो के पूर्वाङ्ग और उत्तराङ्ग का सम्बन्ध वास्तविक नही होता।

दो प्रकार

उभयतोपाश की वस्तुगत असत्यता दो प्रकार से प्रदर्शित की जा सकती है —

(१) साध्य-वाक्य अशुद्ध हो; अर्थात् पूर्वाङ्ग से उत्तराङ्ग स्वतः फलित न हो।

(१) **साध्यवाक्य (Major Premise) अशुद्ध हो।**

उभयतोपाश के साध्यवाक्य मे दो हेतुफलाश्रित तर्कवाक्य होते है। यदि परीक्षण के बाद पता चले कि इन हेतुफलाश्रित तर्क-वाक्यो के उत्तराङ्ग पूर्वाङ्ग से स्वत फलित नही होते, तो स्पष्ट है कि साध्यवाक्य वास्तव मे अशुद्ध है। जब आश्रयवाक्य ही अशुद्ध है तो उससे निकाला गया निष्कर्ष भी असत्य होगा।

(§ ३ ख २) मे दिए गए मिश्र-विधायक उभयतोपाश के उदाहरण मे उत्तराङ्ग 'वे अनावश्यक हैं' पूर्वाङ्ग 'यदि वे कुरान के अनुकूल है' से स्वतः फलित नही होता क्योंकि इसका कोई कारण समझ मे नही आता कि कुरान के अनुकूल होने से ही पुस्तके अनावश्यक हो जायेगी। इसी प्रकार, दूसरा हेतुफलाश्रित तर्कवाक्य कि 'यदि पुस्तके कुरान के अनुकूल नही है तो वे अधर्म फैलानेवाली हैं' भी वास्तव मे असत्य है। यह भी तो संभव हो सकता है कि पुस्तके कुरान के अनुकूल न होते हुए भी अधर्म फैलानेवाली न हों। अत उभयतोपाश की असत्यता यह प्रदर्शित करके कि उसका साध्य-वाक्य असत्य है, स्पष्ट हो जाती है।

हम जानते हैं कि **मनुष्य उभयतोपाश के दो शृंगो के बीच में फँस जाता है।** उभयतोपाश की उपमा किसी क्रुद्ध बैल के दो शृङ्गो से दी जाती है और वह व्यक्ति जिसके समक्ष उभयतोपाश प्रस्तुत किया जाता है, उसके दोनो शृङ्गो के बीच मे फँसा हुआ-सा मनुष्य है। इस प्रकार से उभयतोपाश की असत्यता सिद्ध करने की क्रिया **'शृंग-निग्रह-विधि'** (taking the dilemma by the horns) कहलाती है। वह मनुष्य उभयतोपाश का मुकाबला बैल के सीग पकडकर करता है तथा यह सिद्ध कर देता है कि उसमें वह बल नही, जो कि प्रतीत होता है।

(२) पक्ष-वाक्य असत्य हो : अर्थात् दोनो विकल्प पूर्ण रूप से विरोधी न हों।

(२) पक्षवाक्य वास्तव में मिथ्या हो।

उभयतोपाश का पक्षवाक्य वैकल्पिक तर्कवाक्य होता है। दो विकल्प प्रस्तुत किये जाते हैं और यह मान लिया जाता है कि दोनो विकल्पो मे विरोध पूर्ण है, और बीच की कोई अन्य संभावना नही है। यदि ऐसा पता चले कि अन्य संभावनाये भी हो सकती हैं, जिनकी उपेक्षा कर दी गई है, तो पक्षवाक्य वास्तव में मिथ्या सिद्ध हो जाता है।

§ ३ (ख) मे वर्णित शुद्ध विधायक उभयतोपाश के उदाहरण मे, पक्षवाक्य मे दिए हुए विकल्प 'मनुष्य या तो अपनी इच्छानुसार कार्य करता है या दूसरो की इच्छानुसार कार्य करता है'—परस्पर पूर्ण विरोधी नही हैं। यह भी तो सभव हो सकता है कि वह कभी

तो अपनी इच्छानुसार कार्य करे और कभी दूसरो की इच्छानुसार। अत पक्षवाक्य मे दोनों विकल्पो मे जो पूर्ण विरोध मान लिया गया है, वह वास्तव मे है नही।

उभयतोपाश की असत्यता उसके पक्षवाक्य के विकल्पो के सम्बन्ध मे यह दिखलाकर कि वे परस्पर पूर्ण अथवा व्यावर्त्तक नही है, सिद्ध हो जाती है। इस विधि को **'शृगों के बीच से बच निकलना'** (escaping between the horns of a dilemma) कहते है।

प्रश्नमाला १२

(१) निम्नलिखित की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए –

(क) हेतुफलाश्रित न्यायवाक्य (ख) वैकल्पिक न्यायवाक्य। एक हेतुफलाश्रित न्यायवाक्य तथा एक वैकल्पिक को निरपेक्ष न्यायवाक्य मे परिवर्तित कीजिए।

(२) हेतुफलाश्रित न्यायवाक्य के नियमो का वर्णन कीजिए। इन नियमो का उल्लघन करने से जो दोष उत्पन्न होते है, वे निरपेक्ष न्यायवाक्यो के किन दोषो के तुल्य है ?

(३) मिश्र-न्यायवाक्य किसे कहते है ? उसके भिन्न-भिन्न प्रकार कौन-कौन से है ? उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।

(४) निम्नलिखित हेतुफलाश्रित न्यायवाक्यो को निरपेक्ष न्यायवाक्यो मे रूपान्तरित कीजिए और तब उन निरपेक्ष न्याय-वाक्यो की विशुद्धि का परीक्षण कीजिए।

(क) यदि कोई विद्यार्थी अध्ययनशील है, तो वह परीक्षा मे उत्तीर्ण हो जाता है।
वह परीक्षा मे उत्तीर्ण होता है।
∴ वह अध्ययनशील है।

(ख) यदि कोई व्यक्ति अपराधी है तो उसे दड मिलेगा।
परन्तु वह अपराधी नही है।
∴ उसको दण्ड नही मिलेगा।

(५) उभयतोपाश किसे कहते है ? उदाहरण देकर यह वतलाइए कि उभयतोपाश की सत्यता की जाँच कितने प्रकार से हो सकती है ? (उ० प्र० १९५२) ।

(६) निम्नलिखित युक्ति का परीक्षण कीजिए —

यदि स्त्रियो को मताधिकार दे दिया जाय तो वे घर की उपेक्षा करेगी । यदि उन्हे मताधिकार नही दिया जाय, तो वे पुरुषो को शान्ति से नही रहने देगी । अत प्रत्येक दशा मे स्त्रियाँ परेशानी पैदा करेगी । (उ० प्र० १९५१) ।

(७) यह प्रदर्शित करने के लिए कि "अच्छे शासन के लिए स्वतत्र प्रेस का होना आवश्यक है" एक उभयतोपाश का निर्माण कीजिए । फिर उसका प्रतिक्षेप कीजिए । यह भी वतलाइए कि अन्य किन विधियो से उसका प्रतिक्षेप हो सकता है ? अपने उत्तर की उदाहरणो से पुष्टि कीजिए । (उ० प्र० १९५०)

त्रयोदश प्रकरण

संक्षिप्त न्यायवाक्य (Enthymeme)

§१ संक्षिप्त न्यायवाक्य (Enthymeme)

यदि किसी न्यायवाक्य के कुछ अवयव व्यक्त न किये जायँ (अर्थात् लुप्त रहें) तो, उसे संक्षिप्त न्यायवाक्य कहते है।

संक्षिप्त न्यायवाक्य

पूर्णरूप से व्यक्त करने पर न्यायवाक्य मे तीन तर्कवाक्य होते है यथा—साध्यवाक्य, पक्षवाक्य तथा निष्कर्ष। साधारण युक्तियो मे न्यायवाक्य का प्रयोग कदाचित् ही उसके तार्किक रूप मे किया जाता है। वास्तव मे तर्कशास्त्र के ग्रन्थो के बाहर पूर्णरूप से व्यक्त न्यायवाक्य कही नही मिलता। मनुष्य की ऐसी प्रवृत्ति होती है कि वह स्पष्ट रूप से केवल उतना ही कहता है, जितना कि स्पष्टता के लिए नितान्त आवश्यक हो। पूर्णरूपेण व्यक्त न्यायवाक्य व्यर्थ का पाडित्य-प्रकाशन प्रतीत होता है। अत न्यायवाक्य प्राय. जिन साधारण रूपो मे पाया जाता है, उनमे सक्षिप्त न्यायवाक्य मुख्य है, इनमे न्यायवाक्य के कुछ स्पष्ट अवयव व्यक्त नही किये जाते। अत **संक्षिप्त न्यायवाक्य का अर्थ अपूर्ण न्यायवाक्य होता है।**

सक्षिप्त न्यायवाक्य **चार** श्रेणियो (orders) के होते है:

चार श्रेणी: प्रथम श्रेणी: साध्यवाक्य लुप्त

(क) **प्रथम श्रेणी का संक्षिप्त न्यायवाक्य** (Of the first order) **उसे कहते है जिसमें पक्षवाक्य तथा निष्कर्ष तो व्यक्त हो, परन्तु साध्यवाक्य लुप्त हो।** यथा—"सुकरात मर्त्य है क्योकि वह मनुष्य ही तो है।"

इसको पूर्ण रूप से न्यायवाक्य मे व्यक्त करने पर इस प्रकार कहेगे --

मब मनुष्य मर्त्य है।
सुकरात एक मनुष्य है।
∴ सुकरात मर्त्य है।

उपर्युक्त उदाहरण मे, साध्यवाक्य 'सब मनुष्य मर्त्य है।' लुप्त है। अत यह प्रथम श्रेणी का सक्षिप्त न्यायवाक्य हुआ।

द्वितीयश्रेणी: पक्षवाक्य लुप्त

(ख) **द्वितीय श्रेणी का संक्षिप्त न्यायवाक्य** (Of the second order) **उसे कहते है जिसमें** साध्यवाक्य और निष्कर्ष तो व्यक्त हो, परन्तु **पक्षवाक्य लुप्त हो।** यथा—'सुकरात मर्त्य है, क्योकि सब मनुष्य मर्त्य है।' इस उदाहरण मे पक्षवाक्य 'सुकरात मनुष्य है' लुप्त है।

तृतीय श्रेणी: निष्कर्ष लुप्त

(ग) **तृतीय श्रेणी का संक्षिप्त न्यायवाक्य** (Of the third order) **उसे कहते है जिसमें** दोनो आश्रयवाक्य तो व्यक्त हो, परन्तु **निष्कर्ष लुप्त हो।** यथा—'सब मनुष्य मर्त्य है' और 'सुकरात भी तो एक मनुष्य है।' स्पष्ट है कि इसमे निष्कर्ष 'सुकरात मर्त्य है' लुप्त हो गया है।

चतुर्थ श्रेणी: केवल एक ही तर्कवाक्य व्यक्त होता है।

(घ) **चतुर्थ श्रेणी का न्यायवाक्य** (Of the fourth order) **उसे कहते है जब कि एक ही तर्कवाक्य में सम्पूर्ण न्यायवाक्य का वल हो।** कभी-कभी वातचीत मे ऐसा होता है कि केवल एक ही वाक्य (कोई-सा आधार-वाक्य अथवा निष्कर्ष) व्यक्त किया जाता है और अन्य भाग लुप्त कर दिये जाते है, क्योकि वे इतने स्पष्ट होते है कि सन्दर्भ से स्वय ही जान लिये जाते है। उदाहरणार्थ, जव शेक्सपीयर ने कहा, "निर्बलता, तेरा नाम स्त्री है।" (Frailty, thy name is woman!), तो

यह वाक्य ही सम्पूर्ण न्यायवाक्य का बल रखता है। इसका पूर्ण रूप इस प्रकार होगा .

सब स्त्रियाँ निर्बल होती है।
जर्ट्रूद एक स्त्री है।
∴ जर्ट्रूद निर्बल है।

इस वाक्य को स्पष्ट करने पर यह प्रतीत होता है कि शेक्सपीयर हेमलेट की माँ (जर्ट्रूद) की ओर इशारा कर रहा था। प्राय यह देखा जाता है कि जब हम किसी व्यक्ति के निधन पर शोक प्रकट करने के लिए जाते हैं, तो कहते है, 'हा कष्ट, मनुष्य मर्त्य ही तो है!' इसका स्पष्ट अर्थ यही है कि अन्तत मनुष्य को मरना अवश्य है। इसी प्रकार यदि कोई न्यायाधीश गलती करता है, तो हम कहते हैं 'आखिरकार न्यायाधीश मनुष्य ही तो है!' अथवा गलती करना मनुष्य का स्वभाव है!' इत्यादि। इन सब वाक्यो को पूर्ण न्यायवाक्य के रूप मे रखकर इनकी अन्तर्निहित शक्ति को प्रकट किया जा सकता है।

प्रश्नमाला १३

(१) संक्षिप्त न्यायवाक्य मे आप क्या समझते है ? उसकी विभिन्न श्रेणियो को स्पष्ट कीजिए तथा प्रत्येक का एक उदाहरण दीजिए।

चतुर्दश प्रकरण

संयुक्त न्यायवाक्य अथवा युक्तिमाला

(Compound Syllogisms or Trains of Reasoning)

प्रगामी (Progressive) तथा प्रतीयगामी (Regressive)

१. प्रगामी (Progressive) तथा प्रतीयगामी (Regressive) युक्तिमाला

युक्तिमाला

युक्तिमाला दो या उससे अधिक न्यायवाक्यों की ऐसी शृंखला को कहते हैं, जिनका पारस्परिक सम्बन्ध इस प्रकार का होता है कि अन्त में उनसे एक ही निष्कर्ष प्राप्त होता है। उदाहरणार्थ,

(१) सब 'ख' 'ग' हैं।
सब 'क' 'ख' हैं।
∴ सब 'क' 'ग' हैं।

(२) सब 'ग' 'घ' हैं।
सब 'क' 'ग' हैं।
∴ सब 'क' 'घ' हैं।

(३) सब 'घ' 'ङ' हैं।
सब 'क' 'घ' हैं।
∴ सब 'क' 'ङ' हैं।

(४) सब 'ङ' 'च' हैं।
सब 'क' 'ङ' हैं।
∴ सब 'क' 'च' हैं।

इस उदाहरण में, चार न्यायवाक्य इस प्रकार सम्बन्धित हैं कि एक का निष्कर्ष दूसरे का आश्रय-वाक्य बन जाता है और अन्त

मे सब "'क' 'चं' हैं" निष्कर्ष बन जाता है। इसको **संयुक्त न्यायवाक्य** (Polysyllogism) अथवा **युक्तिमाला** कहते हैं।

सयुक्त न्यायवाक्य मे जिस न्यायवाक्य का निष्कर्ष दूसरे न्यायवाक्य का आश्रयवाक्य बन जाता है, वह दूसरे के सम्बन्ध मे **पूर्व-न्यायवाक्य** (Prosyllogism) कहलाता है, और वह न्यायवाक्य जिसका एक आश्रयवाक्य अन्य अनुमान का निष्कर्ष होता है, दूसरे के सम्बन्ध मे **उत्तर-न्यायवाक्य** (Episyllogism) कहलाता है।

पूर्व-न्यायवाक्य तथा उत्तर-न्यायवाक्य ये परस्पर सापेक्ष हैं।

यह बात स्पष्ट है कि **'पूर्व-न्यायवाक्य' तथा 'उत्तर-न्यायवाक्य' सापेक्ष पद हैं।** विभिन्न न्यायवाक्यो के सम्बन्ध मे एक ही न्यायवाक्य पूर्व-न्यायवाक्य तथा उत्तर-न्यायवाक्य दोनो हो सकता है। उपर्युक्त उदाहरण मे दूसरा न्यायवाक्य पहले न्यायवाक्य के सम्बन्ध मे उत्तर-न्यायवाक्य है, तथा तीसरे न्यायवाक्य के सम्बन्ध मे पूर्व-न्यायवाक्य है। इसी प्रकार तीसरा न्यायवाक्य दूसरे न्यायवाक्य के सम्बन्ध मे उत्तर-न्यायवाक्य है तथा चौथे न्यायवाक्य के सम्बन्ध मे पूर्व-न्यायवाक्य है।

उत्तरोन्मुखी युक्तिमाला (पूर्व-न्यायवाक्य से उत्तर-न्यायवाक्य की ओर)

उपर्युक्त न्यायवाक्य के उदाहरण मे, हम देखते है कि पहला न्यायवाक्य दूसरे न्यायवाक्य के सम्बन्ध मे पूर्व-न्यायवाक्य है, दूसरा न्यायवाक्य तीसरे न्यायवाक्य के सम्बन्ध मे पूर्व-न्यायवाक्य है, तीसरा न्यायवाक्य चौथे न्यायवाक्य के सम्बन्ध मे पूर्व-न्यायवाक्य है। इस प्रकार युक्तिमाला पूर्व-न्यायवाक्य से उत्तर-न्यायवाक्य की ओर अग्रसर हो रही है। ऐसी युक्तिमाला को **प्रगामी** (Progressive) अथवा **उत्तरोन्मुखी** (Episyllogistic) अथवा **संश्लेषणात्मक** (Synthetic) कहते है। अत **प्रगामी युक्तिमाला दो या अधिक न्यायवाक्यो के संयोग को कहते है, जिसमे हम पूर्व-न्यायवाक्य से उत्तर-न्यायवाक्य की ओर अग्रसर होते हैं।**

पूर्वोन्मुखी युक्तिमाला (उत्तर-न्यायवाक्य से पूर्व-न्यायवाक्य की ओर)

दूसरी ओर यदि युक्तिमाला उत्तर-न्यायवाक्य से प्रारम्भ होती है तथा पूर्व-न्यायवाक्य की ओर अग्रसर होती है, तो उसे प्रतीयगामी (Regressive), पूर्वोन्मुखी (Prosyllogistic) अथवा विश्लेषणात्मक (Analytic) युक्तिमाला कहते हैं। उपर्युक्त उदाहरण को यदि उल्टी दिशा में देखें तो प्रतीयगामी युक्तिमाला वन जायगी। इस प्रकार,

(१) सव 'क' 'च' है।
∴ सव 'ङ' 'च' है, तथा
सव 'क' 'ङ' है।

(२) सव 'क' 'ङ' है।
∴ सव 'घ' 'ङ' है, तथा
सव 'क' 'घ' है।

(३) सव 'क' 'घ' है।
∴ सव 'ग' 'घ' है, तथा
सव 'क' 'ग' है।

(४) सव 'क' 'ग' है।
∴ सव 'ख' 'ग' है, तथा
सव 'क' 'ख' है।

इस उदाहरण में पहला न्यायवाक्य दूसरे न्यायवाक्य के सम्बन्ध में उत्तर-न्यायवाक्य है क्योंकि पहले का एक आधारवाक्य यथा—"सव 'क' 'ङ' है" दूसरे का निष्कर्ष बन जाता है। इसी प्रकार दूसरा और तीसरा न्यायवाक्य क्रमश तीसरे और चौथे न्यायवाक्य के सम्वन्ध में उत्तर-न्यायवाक्य है। अत. यहाँ तर्कमाला उत्तर-न्यायवाक्य से पूर्व-न्यायवाक्य की दिशा में अग्रसर होती है, अत. प्रतीयगामी पूर्वोन्मुखी अथवा विश्लेषणात्मक कहलाती है।

प्रश्नमाला १४

(१) सरल न्यायवाक्य तथा सयुक्त न्यायवाक्य का. अन्तर स्पष्ट कीजिए।

(२) युक्तिमाला से क्या समझते है ? एक वास्तविक उदाहरण दीजिए। सूत्रात्मक उदाहरण देकर प्रगामी एव प्रतीयगामी युक्तिमाला का अन्तर स्पष्ट कीजिए।

(३) पूर्व-न्यायवाक्य तथा उत्तर-न्यायवाक्य से क्या तात्पर्य है ?

पञ्चदश प्रकरण

संक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला (Sorites) तथा संक्षिप्त प्रतीयगामी युक्तिमाला (Epicheirema)

§१. सक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला (Sorites)

संक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला

संक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला न्यायवाक्य का वह रूप है जिसमें पूर्व-न्यायवाक्यो के सब निष्कर्ष (तथा उत्तर-न्यायवाक्यों के संगत आश्रय) लुप्त होते है ।

सक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला पूर्व-न्यायवाक्य से उत्तर-न्यायवाक्य की ओर अग्रसर होती है । परन्तु पूर्व-न्यायवाक्य तथा उत्तर-न्यायवाक्य पूर्णरूपेण व्यक्त नही होते क्योकि इसमे पूर्व-न्यायवाक्यो के निष्कर्ष एव उत्तर-न्यायो के सगत आश्रय व्यक्त नही किये जाते । अत सक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला **संक्षिप्त-न्यायवाक्य-माला** होती है। यथा—

सूत्रात्मक उदाहरण

सब 'क' 'ख' है।
सब 'ख' 'ग' है।
सब 'ग' 'घ' है।
सब 'घ' 'ङ' है।
सब 'ङ' 'च' है।
∴ सब 'क' 'च' है।

इसे पूर्ण रूप से व्यक्त करने पर यह युक्तिमाला इस प्रकार होगी—

(१) सब 'ख' 'ग' है।
सब 'क' 'ख' है।
∴ सब 'क' 'ग' है।

(२) सब 'ग' 'घ' है।
सब 'क' 'ग' है।
∴ सब 'क' 'घ' है।

(३) सब 'घ' 'ङ' है।
सब 'क' 'घ' है।
∴ सब 'क' 'ङ' है।

(४) सब 'ङ' 'च' है।
सब 'क' 'ङ' है।
∴ सब 'क' 'च' है।

स्पष्ट है कि वे तर्कवाक्य (मोटे अक्षरो मे लिखे हुए) जो कि पूर्व-न्यायवाक्यो के निष्कर्ष तथा सगत उत्तर-न्यायवाक्यो के आश्रय है, लुप्त कर दिए गए है।

§२. सक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला के प्रकार

सक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला दो प्रकार की होती है—यथा, (१) अरस्तू की तथा (२) गोक्लिनिअस की।

अरस्तू की संक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला में, लुप्त निष्कर्ष अगले न्याय-वाक्य के पक्षवाक्य बनते है।

(१) **अरस्तू की संक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला** (Aristotelian Sorites) उस सक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला को कहते है जिसमे पूर्व-न्यायवाक्य के निष्कर्ष, जो कि लुप्त हो, सगत उत्तर-न्यायवाक्य के **पक्षवाक्य** बनते है। यथा,

सूत्रात्मक उदाहरण।	वास्तविक उदाहरण।
सब 'क' 'ख' है।	चेतक एक घोडा है।
सब 'ख' 'ग' है।	एक घोडा एक चतुष्पद है।
सब 'ग' 'घ' है।	एक चतुष्पद एक जन्तु है।

सब 'घ' 'ङ' है।	एक जन्तु एक पदार्थ है।
सब 'ङ' 'च' है।	∴ चेतक एक पदार्थ है।
∴ सब 'क' 'च' है।	

यदि हम उपर्युक्त सक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला को पूर्ण रूप से व्यक्त करे तो पता चलेगा कि पूर्व-न्यायवाक्य के लुप्त निष्कर्ष उत्तर-न्यायवाक्य के पक्षवाक्य बनते है। सूत्रात्मक उदाहरण को पिछले खण्ड मे पूर्णरूप से व्यक्त किया जा चुका है। वास्तविक उदाहरण का विस्तारित रूप निम्नलिखित होगा—

(१) सब घोडे चतुष्पद है।
चेतक एक घोडा है।
∴ **चेतक एक चतुष्पद है।**

(२) सब चतुष्पद जन्तु है।
चेतक एक चतुष्पद है।
∴ **चेतक एक जन्तु है।**

(३) सब जन्तु पदार्थ है।
चेतक एक जन्तु है।
∴ चेतक एक पदार्थ है।

गोक्लिनिअस की संक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला में लुप्त निष्कर्ष साध्यवाक्य बनते है।

(२) **गोक्लिनिअस की संक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला** (Goclenian Sorites) उस सक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला को कहते है जिसमे पूर्व-न्यायवाक्य का लुप्त निष्कर्ष उत्तर-न्यायवाक्य का **साध्यवाक्य** बनता है। यथा—

सूत्रात्मक उदाहरण	**वास्तविक उदाहरण**
सब 'ङ' 'च' है।	एक जन्तु एक पदार्थ है।
सब 'घ' 'ङ' है।	एक चतुष्पद एक जन्तु है।
सब 'ग' 'घ' है।	एक घोड़ा एक चतुष्पद है।
सब 'ख' 'क' है।	चेतक एक घोड़ा है।
∴ सब 'क' 'च' है।	∴ चेतक एक पदार्थ है।

यदि हम उपर्युक्त सक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला को पूर्ण रूप से व्यक्त करे तो पता चलेगा कि पूर्व-न्यायवाक्य के लुप्त निष्कर्ष

सगत उत्तर-न्यायवाक्य के साध्य-वाक्य बनते है। उपर्युक्त सूत्रात्मक उदाहरण को विस्तारित करके इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है :—

(१) सब 'ङ' 'च' है।
सब 'घ' 'ङ' है।
∴ सब 'घ' 'च' है।

(२) सब 'घ' 'च' है।
सब 'ग' 'घ' है।
∴ सब 'ग' 'च' है।

(३) सब 'ग' 'च' है।
सब 'ख' 'ग' है।
∴ सब 'ख' 'च' है।

(४) सब 'ख' 'च' है।
सब 'क' 'ख' है।
∴ सब 'क' 'च' है।

इसी प्रकार वास्तविक उदाहरण को इस रीति से पूर्ण रूप से व्यक्त किया जा सकता है—

(१) सब जन्तु पदार्थ है।
सब चतुष्पद जन्तु है।
∴ सब चतुष्पद पदार्थ है।

(२) सब चतुष्पद पदार्थ है।
सब घोडे चतुष्पद है।
∴ सब घोड़े पदार्थ है।

(३) सब घोड़े पदार्थ है।
चेतक एक घोडा है।
∴ चेतक एक पदार्थ है।

इस प्रकार हम देखते है कि गोक्लिनिअस की सक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला मे पूर्व-न्यायवाक्य के निष्कर्ष उत्तर-न्यायवाक्य के साध्य-वाक्य बनते है।

दोनों प्रकारों की तुलना

यदि हम सक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला के दोनो प्रकारो की तुलना करे, तो ज्ञात होता है कि दोनो के आश्रयवाक्य तथा निष्कर्ष समान होते है। परन्तु उनमे निम्नलिखित भेद होते है·

(क) **साध्य** ·—अरस्तू की सक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला मे अंतिम आश्रयवाक्य का विधेय साध्य (Major term) होता है, परन्तु गोक्लिनिअस की सक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला मे पहले आश्रयवाक्य का विधेय साध्य होता है।

(ख) **पक्ष** —अरस्तू की सक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला मे प्रथम आश्रयवाक्य का उद्देश्य पक्ष होता है तथा गोक्लिनिअस की सक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला मे अन्तिम आश्रयवाक्य का उद्देश्य पक्ष होता है।

(ग) **लुप्त निष्कर्ष** ·—अरस्तू की संक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला में पूर्व-न्यायवाक्यो के लुप्त निष्कर्ष सगत उत्तर-न्यायवाक्यो के पक्षवाक्य बनते है, तथा गोक्लिनिअस की सक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला में लुप्त निष्कर्ष उत्तर-न्यायवाक्य के साध्य-वाक्य बनते है।

(घ) **घटक-आश्रयवाक्य** ·—अरस्तू की सक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला मे, पहला आश्रयवाक्य पक्षवाक्य होता है तथा अन्य सब आश्रयवाक्य साध्य-वाक्य होते है। गोक्लिनिअस की संक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला मे, पहला आश्रयवाक्य साध्यवाक्य होता है तथा अन्य सब आश्रयवाक्य पक्षवाक्य होते है।

टिप्पणी—**दोनो प्रकार प्रथम आकार में है।**

कार्वेथ रीड (Carveth Read) का कहना है कि प्रथम दृष्टि मे अरस्तू की सक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला चतुर्थ आकार के क्रम मे अग्रसर होती हुई **प्रतीत** होती है। पूर्वकथित वास्तविक उदाहरण मे 'हेतु' 'घोडा' प्रथम आश्रयवाक्य का विधेय है तथा द्वितीय आश्रयवाक्य मे उद्देश्य है। परन्तु वास्तव मे ऐसा है नही क्योकि उस दशा मे निष्कर्ष एक विशेष

तर्कवाक्य (ब्रामान्तीप) होता और अन्तिम निष्कर्ष यह हो जाता : 'कुछ पदार्थ चेतक है।' परन्तु अन्तिम निष्कर्ष यह है . 'चेतक एक पदार्थ है।' इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि अरस्तू की सक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला के आश्रयवाक्य यद्यपि चतुर्थ आकार मे अग्रसर होते हुए प्रतीत होते है, परन्तु वास्तव मे उन्हे प्रथम आश्रयवाक्य को पक्षवाक्य बनाकर प्रथम आकार के क्रम मे रखना पडता है। गोक्लिनिअस की सक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला मे आश्रयवाक्य प्रथम आकार के क्रम मे ही व्यक्त होते है। **तार्किक दृष्टिकोण से इन दोनों प्रकारो में कोई भी अन्तर नही है ।** परन्तु गोक्लिनिअस का प्रकार अरस्तू के प्रकार से श्रेष्ठ है क्योकि उसमे आश्रयवाक्य प्रथम आकार के क्रम मे स्वय ही दिए हुए है। कारवेथ रीड का सुझाव है कि अरस्तू का प्रकार या तो तर्कशास्त्र की पाठ्यपुस्तको से निकाल दिया जाना चाहिए, अथवा वह चतुर्थ आकार का समझा जाना चाहिए, ताकि निष्कर्ष 'कुछ पदार्थ चेतक है' निकल सके।

§३. संक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला के नियम

जब संक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला पूर्णरूपेण प्रथम आकार में ही हो, अर्थात् यदि उसके घटक न्यायवाक्य प्रथम आकार मे हो, तो दोनो प्रकारो पर निम्नलिखित नियम चरितार्थ होते है :—

(१) **केवल एक ही आश्रयवाक्य निषेधात्मक हो सकता है, अर्थात् अरस्तू के प्रकार में अन्तिम तथा गोक्लिनिअस के प्रकार में प्रथम ।**

केवल एक आश्रयवाक्य निषेधात्मक हो सकता है।

उपपत्ति : (क) **केवल एक ही आश्रयवाक्य निषेधात्मक हो सकता है अर्थात् एक से अधिक आश्रयवाक्य निषेधात्मक नही होते ।**

निपेधात्मक आश्रयवाक्य से निषेधात्मक निष्कर्ष निकलता है। अत यदि एक से अधिक आश्रयवाक्य निषेधात्मक हो, तो अन्त मे एक न्यायवाक्य ऐसा हो जायेगा, जिसके दोनो आश्रयवाक्य निषेधात्मक हो जायँगे और उनसे कोई निष्कर्ष नही निकलेगा।

(ख) यदि कोई आश्रयवाक्य निषेधात्मक होगा, तो वह अरस्तू के प्रकार का अन्तिम तथा गोक्लिनिअस के प्रकार का प्रथम होगा।

यदि कोई आश्रयवाक्य निषेधात्मक हो, तो अन्तिम निष्कर्ष निषेधात्मक होगा। अत उसका विधेय व्याप्त होगा। अतः वह आश्रयवाक्य, जिसमे अन्तिम निष्कर्ष का विधेय, विधेय होगा, निषेधात्मक रहेगा। अत वह तर्कवाक्य जिसमे अतिम निष्कर्ष का विधेय, विधेय होता है, अरस्तू के प्रकार मे अन्तिम तथा गोक्लिनिअस के प्रकार मे प्रथम होता है।

यदि किसी अन्य आश्रयवाक्य को निषेधात्मक माना जाय, तो अवैध-साध्य का दोष हो जायगा।

केवल एक आश्रयवाक्य विशेष हो सकता है।

(२) केवल एक आश्रयवाक्य विशेष हो सकता है, अर्थात्— अरस्तू के प्रकार में पहला तथा गोक्लिनिअस के प्रकार में अन्तिम।

उपपत्ति :—(क) केवल एक आश्रयवाक्य विशेष हो सकता है अर्थात् एक से अधिक आश्रयवाक्य विशेष नहीं हो सकते।

यदि एक आश्रयवाक्य विशेष हो, तो निष्कर्ष भी विशेष होगा; अतः यदि एक से अधिक आश्रयवाक्य विशेष हो, तो एक घटक न्यायवाक्य ऐसा वन जायेगा जिसमे दो विशेष आश्रयवाक्य होगे और कोई निष्कर्ष नही निकलेगा।

(ख) यदि कोई एक आश्रयवाक्य विशेष हो, तो वह अरस्तू के प्रकार में प्रथम तथा गोक्लिनिअस के प्रकार में अन्तिम होगा।

अरस्तू के प्रकार मे, प्रथम को छोडकर अन्य सव आश्रयवाक्य साध्यवाक्य होते है। ये नियम सक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला मे तभी चरितार्थ होते है जव कि सव घटक न्यायवाक्य प्रथम आकार मे हो। प्रथम आकार के विशेष नियमो के अनुसार, साध्यवाक्य सार्वलौकिक (सामान्य) होना चाहिए। अत केवल प्रथम आश्रय-वाक्य, जो कि पक्षवाक्य होता है, विशेष हो सकता है।

गोक्लिनिअस के प्रकार मे, यदि अन्तिम को छोडकर अन्य कोई आश्रयवाक्य विशेष होगा तो उस न्यायवाक्य का निष्कर्ष, जिसमें यह विशेष आश्रय होगा, विशेष होगा। गोक्लिनिअस के

प्रकार मे, निष्कर्ष अगले न्यायवाक्य का साध्यवाक्य होता है। परन्तु प्रथम आकार मे साध्यवाक्य सार्वलौकिक होता है। अत गोक्लिनिअस के प्रकार मे, केवल अन्तिम आश्रयवाक्य ही विशेष होता है।

यदि कोई अन्य आश्रय विशेष माना जाय तो अव्याप्त-हेतु का दोप हो जाता है।

§४. संक्षिप्त प्रतीयगामी युक्तिमाला (Epicheirema)

संक्षिप्त प्रतीयगामी युक्तिमाला

संक्षिप्त प्रतीयगामी युक्तिमाला उस प्रतीयगामी युक्तिमाला को कहते है जिसमे प्रत्येक पूर्व-न्यायवाक्य का एक आश्रय लुप्त होता है।

सक्षिप्त प्रतीयगामी युक्तिमाला मे हम उत्तर-न्यायवाक्य से पूर्व-न्यायवाक्य की दिशा मे तर्क करते हैं। इसमे प्रत्येक पूर्व-न्यायवाक्य का एक आश्रय लुप्त होने के कारण इसे **संक्षिप्त** मानते हैं। परन्तु उत्तर-न्यायवाक्य पूर्णरूपेण व्यक्त रहता है। अत सक्षिप्त प्रतीयगामी युक्तिमाला मे, उत्तर-न्यायवाक्य तो पूर्णरूप से व्यक्त रहता है, परन्तु पूर्व-न्यायवाक्य सक्षिप्त न्यायवाक्य के रूप मे होते हैं।

प्रकार : शुद्ध तथा मिश्र

सक्षिप्त प्रतीयगामी युक्तिमाला या तो **शुद्ध** अथवा **मिश्र** होती है। शुद्ध सक्षिप्त प्रतीयगामी युक्तिमाला (Simple Epicheirema) मे उत्तर-न्यायवाक्य के आश्रयवाक्य सक्षिप्त-न्यायवाक्य के द्वारा सिद्ध किये जाते है। मिश्र-प्रतीयगामी युक्तिमाला (Complex Epicheirema) मे इन सक्षिप्त-न्यायवाक्योको पुन अन्य सक्षिप्त-न्यायवाक्यो से सिद्ध किया जाता है।

एकनिष्ठ तथा उभयनिष्ठ

सक्षिप्त प्रतीयगामी युक्तिमाला पुन **एकनिष्ठ** अथवा **उभय-निष्ठ** हो सकती है। **एकनिष्ठ संक्षिप्त प्रतीयगामी युक्तिमाला** (Single Epicheirema) मे उत्तर-न्यायवाक्य (Epi-syllogism) का एक आश्रयवाक्य एक सक्षिप्त-न्यायवाक्य से

सिद्ध किया जाता है। उभयनिष्ठ सक्षिप्त प्रतीयगामी युक्तिमाला (Double Epicheirema) मे उत्तर-न्यायवाक्य के दोनो आश्रयवाक्य सक्षिप्त न्यायवाक्य से सिद्ध होते है।

चार प्रकार

अत. सक्षिप्त प्रतीयगामी युक्तिमाला के चार प्रकार होते है –

(१) शुद्ध एकनिष्ठ (Simple Single)
(२) शुद्ध उभयनिष्ठ (Simple Double)
(३) मिश्र एकनिष्ठ (Complex Single)
तथा (४) मिश्र उभयनिष्ठ (Complex Double)

अब हम एक-एक करके प्रत्येक के उदाहरण देखेंगे।

शुद्ध-एकनिष्ठ

(१) शुद्ध-एकनिष्ठ (Simple Single) :

सब 'क' 'ख' है, क्योकि सब 'क्ष' 'ख' है तथा सब 'क' 'क्ष' है।

सब 'क्ष' 'ख' है, क्योकि सब 'म' 'ख' है।

पूर्ण रूप मे व्यक्त करने पर, निम्नलिखित प्रतीयगामी युक्तिमाला प्राप्त होती है

उत्तर-न्यायवाक्य	सब 'क्ष' 'ख' है।
	सब 'क' 'क्ष' है।
	∴ सब 'क' 'ख' है।
पूर्व-न्यायवाक्य	सब 'म' 'ख' है।
	सब 'क्ष' 'म' है।
	∴ सब 'क्ष' 'ख' है।

इसमे प्रथम न्यायवाक्य का आश्रयवाक्य "सब 'क्ष' 'ख' है" दूसरे न्यायवाक्य का निष्कर्ष बन जाता है। अत. युक्ति उत्तर-न्यायवाक्य से पूर्व-न्यायवाक्य की दिशा मे अग्रसर होती है। दूसरे शब्दो मे यह प्रतीयगामी युक्तिमाला है। पूर्व-न्यायवाक्य का एक आश्रयवाक्य लुप्त है, अत. यह सक्षिप्त प्रतीयगामी युक्तिमाला है।

यह सक्षिप्त प्रतीयगामी युक्तिमाला शुद्ध है क्योकि उत्तर-न्यायवाक्य का आश्रय "सब 'क्ष' 'ख' है" एक सक्षिप्त-न्यायवाक्य

के द्वारा सिद्ध हुआ है। यह एकनिष्ठ भी है क्योंकि इस प्रकार एक ही आश्रयवाक्य को सिद्ध किया गया है, दूसरे को नही ।

(२) **शुद्ध उभयनिष्ठ** (Simple Double)

शुद्ध उभय-निष्ठ

सब 'क' 'ख' है क्योकि, सब 'क्ष' 'ख' है तथा सब 'क' 'क्ष' है ।
सब 'क्ष' 'ख' है क्योकि, सब 'म' 'ख' है। और,
सब 'क' 'क्ष' है क्योकि, सब 'क' 'य' है।

यह **शुद्ध** है क्योकि उत्तर-न्यायवाक्य के आश्रयवाक्यो को संक्षिप्त-न्यायवाक्यो से सिद्ध किया गया है। यह **उभयनिष्ठ** भी है क्योकि दोनो आश्रयवाक्यो को इस प्रकार सिद्ध किया गया है। पहला संक्षिप्त-न्यायवाक्य साध्यवाक्य अर्थात् "सब 'क्ष' 'ख' है" को सिद्ध करता है और दूसरा संक्षिप्त-न्यायवाक्य पक्षवाक्य अर्थात् "सब 'क' 'क्ष' है" को सिद्ध करता है। यह भी निम्न प्रकार से पूर्णरूपेण व्यक्त होता है—

उत्तर-न्यायवाक्य : सब 'क्ष' 'ख' है।
सब 'क' 'क्ष' है।
∴ सब 'क' 'ख' है।

पूर्व-न्यायवाक्य : (१) सब 'म' 'ख' है।
सब 'क्ष' 'म' है।
∴ सब 'क्ष' 'ख' है।

(२) **सब 'य' 'क्ष' है।**
सब 'क' 'य' है।
∴ सब 'क' 'क्ष' है।

स्पष्ट है कि प्रथम पूर्व-न्यायवाक्य साध्यवाक्य को तथा दूसरा पूर्व-न्यायवाक्य पक्षवाक्य को सिद्ध करता है। मोटे अक्षरो मे लिखे आश्रयवाक्य लुप्त थे।

(३) **मिश्र एकनिष्ठ** (Complex Single) :

मिश्र-एकनिष्ठ

सब 'क' 'ख' है क्योकि सब 'क्ष' 'ख' है और सब 'क' 'क्ष' है।
सब 'क्ष' 'ख' है क्योकि सब 'म' 'ख' है, तथा—
सब 'म' 'ख' है क्योकि सब 'न' 'ख' है।

यह सक्षिप्त प्रतीयगामी युक्तिमाला **मिश्र** है क्योकि उत्तर-न्यायवाक्य का एक आश्रय एक सक्षिप्त-न्यायवाक्य से सिद्ध किया गया है। फिर सक्षिप्त न्यायवाक्य का एक आश्रय दूसरे संक्षिप्त न्यायवाक्य से सिद्ध किया गया है। यह **एकनिष्ठ** है, क्योकि उत्तर-न्यायवाक्य का केवल एक आश्रय ही सिद्ध किया गया है और दूसरा आश्रय "सब 'क' 'क्ष' है" सिद्ध नही किया गया है।

मिश्र-उभयनिष्ठ

(४) **मिश्र उभयनिष्ठ** (Complex Double) ·

सब 'क' 'ख' है, क्योकि सब 'क्ष' 'ख' है और सब 'क' 'क्ष' है।
सब 'क्ष' 'ख' है, क्योकि, सब 'म' 'ख' है। और,
सब 'म' 'ख' है, क्योकि, सब 'न' 'ख' है।
और पुन.
सब 'क' 'क्ष' है क्योकि सब 'ग' 'क्ष' है। और,
सब 'ग' 'क्ष' है क्योकि सब 'घ' 'क्ष' है।

यह **मिश्र उभयनिष्ठ** सक्षिप्त प्रतीयगामी युक्तिमाला का उदाहरण है क्योकि उत्तर-न्यायवाक्य के दोनो आश्रयवाक्यो को सक्षिप्त-न्यायवाक्यो के द्वारा सिद्ध किया गया है। और फिर इन सक्षिप्त-न्यायवाक्यों के आश्रयवाक्यो को अन्य सक्षिप्त-न्यायवाक्यो से सिद्ध किया गया है।

प्रश्नमाला १५

(१) अरस्तू की सक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला का एक सूत्रात्मक उदाहरण दीजिए। उसको उसके घटक न्यायवाक्यो मे विश्लेषित कीजिए। यह प्रदर्शित कीजिए कि इस प्रकार की युक्तिमाला मे पहले आश्रयवाक्य के सिवा अन्य सब सार्वलौकिक होते है।

(२) सक्षिप्त प्रतीयगामी युक्तिमाला किसे कहते है ? उसके विभिन्न प्रकारो का उदाहरण सहित उल्लेख कीजिए।

(३) निम्नलिखित का अन्तर स्पष्ट कीजिए .—

(क) सक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला तथा सक्षिप्त प्रतीयगामी युक्तिमाला।

(ख) गोक्लिनिअस की तथा अरस्तू की सक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला ।

(४) सक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला के नियमो की व्याख्या कीजिए ।

(५) सिद्ध कीजिए कि सक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला मे केवल एक आश्रयवाक्य निषेधात्मक हो सकता है—यथा अरस्तू की मे अन्तिम तथा गोक्लिनिअस की मे प्रथम ।

(६) निम्नलिखित का परीक्षण कीजिए —

धर्म एक निश्चित विज्ञान नही है, एक निश्चित विज्ञान का प्रदर्शन हो सकता है, प्रदर्शित विज्ञान सत्य होता है, जो सत्य होता है, वह लाभकारी होता है; अतएव धर्म लाभकारी नही है ।

[सकेत .—यह दोषपूर्ण (fallacious) अरस्तू की सक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला है क्योंकि इसका पहला आश्रयवाक्य निषेधात्मक है ।]

षोडश प्रकरण

मिल की न्यायवाक्य पर आपत्तियाँ

§१. मिल (Mill) की दो आपत्तियाँ

मिल की आपत्तियाँ :

मिल महोदय ने न्यायवाक्य को तर्क का रूपविषयक साधन मानने के विरुद्ध निम्नलिखित दो आपत्तियाँ की है :

प्रथम आपत्ति : न्यायवाक्य के अनुसार हम तर्क नहीं करते।

(१) प्रथम, मिल का कहना है कि **न्यायवाक्य की प्रक्रिया ऐसी नहीं है, जिसके अनुसार हम तर्क करते है।** उसके अनुसार "सब तर्क 'विशेष' से 'विशेष' का ज्ञान कराते है। सामान्य तर्क-वाक्य केवल इसी प्रकार किये हुए तर्कों के समूह होते है। हम इस प्रकार के साधारण सूत्र बना लेते है, जिनके द्वारा तर्क किया करते है। न्यायवाक्य का साध्यवाक्य इसी प्रकार का सूत्र होता है, तथा निष्कर्ष इस सूत्र से निकाला गया तर्क नही, वरन इस सूत्र **के अनुसार** निकाला हुआ अनुमान है।"

परन्तु मिल न्यायवाक्य को तर्क के लिए सर्वथा व्यर्थ नही समझता। उसके अनुसार, "न्यायवाक्य उस आकार का तो नही होता, जिसमे हमारे तर्क अनिवार्यत. होने चाहिए, या होते है, परन्तु उसका मूल्य एक ऐसी प्रक्रिया को प्रस्तुत करना है जिसके द्वारा उन तर्कों को सदा व्यक्त किया जा सकता है और जिसके द्वारा हम अपने तर्कों की जाँच कर सकते है, तथा यदि वे अनिश्चित हुए तो उन्हे प्रकाश मे ला सकते है।"

अत मिल के अनुसार न्यायवाक्य हमारे तर्क का सामान्य-आकार तो नही है, परन्तु उसकी उपयोगिता तर्क के सदिग्ध

उदाहरणों की विशुद्धता की जाँच करने में है। हरशैल (Herschel), व्हैवेल (Whewell), बेन (Bain) इत्यादि तर्कशास्त्री इसी दृष्टिकोण से सहमत हैं।

आलोचना —किन्तु कुछ तर्कशास्त्री यथा—मैन्सल (Mansel), डी० मोर्गन (De Morgan), मार्टिनो (Martineau), डाक्टर पी० के० रे (Dr. P. K. Ray), सर डब्लू० हेमिल्टन (Sir W. Hamilton) इत्यादि मिल के उपर्युक्त मत का विरोध करते हैं। इस प्रसग मे निम्नलिखित युक्तियाँ प्रस्तुत की जाती है —

मिल ने तर्कशास्त्र के क्षेत्र को मनोविज्ञान के क्षेत्र के साथ गड़बड़ा दिया है।

(क) मिल की यह आपत्ति सत्य है कि हम न्यायवाक्य की क्रिया के अनुसार तर्क नही करते। परन्तु यह भी सत्य है कि हमारे तर्क तब तक सत्य नही होते, जब तक कि उनमे न्यायवाक्य के आकार (अर्थात् नियमो) पर परिवर्तित हो सकने की क्षमता नही हो। ऐसा प्रतीत होता है कि मिल ने मनोविज्ञान तथा तर्कशास्त्र के कार्यो को परस्पर गड़बड़ा दिया है। तर्कशास्त्र का यह कार्य कदापि नही है कि वह उन प्रक्रियाओ का वर्णन करे, जिनके द्वारा लोग शुद्धतापूर्वक या अशुद्धतापूर्वक तर्क करते है, उसका उद्देश्य तो उन प्रक्रियाओ का वर्णन करना है, 'जिनसे लोगो को तर्क **करना चाहिए,** ताकि उनके विचार शुद्ध हो सके। मनोविज्ञान तर्क के उस रूप का अध्ययन करता है जैसा कि वह है, परन्तु तर्कशास्त्र उस रूप का अध्ययन करता है, जैसा कि उसको होना चाहिए। मिल ने इन दोनो मे सभ्रम उत्पन्न कर दिया है और इन दोनो का अध्ययन ही तर्कशास्त्र का क्षेत्र मान लिया है। अत. यह कहने से कि न्याय-वाक्य **तर्क करने की सामान्य प्रक्रिया नही है,** उसकी उपयोगिता किसी प्रकार भी कम नही होती, जब तक कि न्यायवाक्य को **विशुद्ध तर्क के प्रकार** की मान्यता रहेगी।

हम वास्तव में एक 'विशेष' से दूसरे 'विशेष' की दिशा में तर्क करते हैं क्योकि उनमें एक सामान्य तत्व होता है।

(ख) मिल की यह आपत्ति कि "सब तर्क विशेष से विशेष का ही ज्ञान कराते है—भी तर्क की कसौटी पर ठीक नही उतरती। यह सच है कि प्राय हम उपमान के द्वारा 'विशेष'से 'विशेष' का ज्ञान करते है, किन्तु यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण है कि यही सामान्य ज्ञान कराने का एकमात्र साधन है। उपमानजन्य ज्ञान प्राय अशुद्ध होता है; किन्तु जब वह सत्य भी होता है, तब वह 'विशेषो' के **सामान्य तत्व** पर ही तो अवलम्बित रहता है। हमारे लिए 'विशेष' से 'विशेष' का ज्ञान करना तभी ठीक होता है जब हम दोनो मे सादृश्य का भाव देखते है। यह सादृश्य का भाव उस सामान्य नियम का द्योतक होता है जो कि सब 'विशेषो' को एक साथ सगठित कर देता है। अत जब कभी भी हम सादृश्य से अनुमान करते हैं, तब हमारा अनुमान, विशेष पदार्थो के सामान्य-तत्व के आधार पर ही चलता है, जो स्वय विशेष नही होता। जैसा कि **वैल्टन** (Welton) ने कहा है, "उन उदाहरणो मे जहाँ अनुमान एक या अधिक विशेषो पर निर्भर रहता सा प्रतीत होता है, वास्तव मे उस सामान्य तत्व पर निर्भर रहता है, जो उनके सादृश्य का आधार हो। और इसी को एक सामान्य तर्कवाक्य के रूप मे व्यक्त किया जा सकता है, जो कि न्यायवाक्य का साध्यवाक्य होता है।"

दूसरी आपत्ति : आत्माश्रय का दोष

(२) **मिल** (Mill) की दूसरी आपत्ति यह है कि **प्रत्येक न्यायवाक्य में 'आत्माश्रय का दोष'** (petitio principii) होता है।

आत्माश्रय का दोष (Fallacy of petitio principii) तब उत्पन्न होता है, जब हम निष्कर्ष को आश्रयवाक्यो (Premises) मे ही निहित मान लेते है। इसको **प्रश्न-प्रार्थना** (Begging the Question) अथवा **चक्रक-दोष** (Arguing in a circle) भी कहते है। उदाहरणार्थ—'मनुष्य मर्त्य है, क्योकि उसकी मृत्यु होती है।

अत यह कहना कि प्रत्येक न्यायवाक्य मे **आत्माश्रय का दोष** होता है, उसकी सत्यता पर ही कुठाराघात करना है। इसका स्पष्ट अर्थ तो यह है कि प्रत्येक न्यायवाक्य का निष्कर्ष एक न एक आश्रयवाक्य मे ही सम्मिलित रहता है, परन्तु इसका साधारण अर्थ यह भी लिया जाता है कि आश्रयवाक्य (Premises) पहले ही निष्कर्ष को सत्य मान लेते है, अत उनका उपयोग निष्कर्ष को सिद्ध करने के लिए नही किया जा सकता। निम्नलिखित न्यायवाक्य को देखिए—

सब मनुष्य मर्त्य है, 'क' एक मनुष्य है, इसलिए 'क' मर्त्य है। इसका निष्कर्ष " 'क' मर्त्य है" आश्रय "सब मनुष्य मर्त्य है" मे पहले से ही समाविष्ट है।

आलोचना :
(क) सामान्य साध्यवाक्य केवल विशेष उदाहरणो का समूह-मात्र नही होता।

आलोचना :—(क) न्यायवाक्य सम्बन्धी इस तथ्य पर आधारित है कि सामान्य साध्यवाक्य (Universal Major Premise) विशेष उदाहरणो का केवल समूहमात्र होता है। यदि ऐसा होता, तो यह आपत्ति उचित हो सकती थी। परन्तु सब सामान्य तर्कवाक्यो का निर्माण केवल कुछ विशेष उदाहरणो के परीक्षण के पश्चात् प्रकृति की एकरूपता के सिद्धान्त (Law of Uniformity of Nature) तथा कारणता के सिद्धान्त (Law of Causation) के आधार पर किया जाता है। यदि समग्र विशेष उदाहरणो की परीक्षा के बाद सामान्य तर्कवाक्य बनाया जाता है तो उसे पूर्ण उद्गमन (Perfect Induction) कहते है। परन्तु इसके अतिरिक्त वैज्ञानिक उद्गमन (Scientific Induction) की क्रिया भी है जिसमे सब उदाहरणो की परीक्षा करने पर व्याप्ति नही बनाई जाती, किन्तु केवल थोडे से ही उदाहरणो की परीक्षा के बाद अनुमान किया जाता है। उदाहरणार्थ, 'सब मनुष्य मर्त्य है' इस सामान्य तर्कवाक्य को हम सब उदाहरणो की परीक्षा करने के बाद कभी नही बना सकते—क्योकि

कम से कम जीवित मनुष्यों को तो छोड ही देना पडेगा। अत यदि हम कहे कि 'भारतवर्ष का वर्तमान राष्ट्रपति मर्त्य है', तो इस सामान्य तर्कवाक्य मे निष्कर्ष आश्रय पर आधारित नही होगा।

(ख) निष्कर्ष दोनों आश्रय-वाक्यों को एक साथ रखने पर प्राप्त होता है।

(ख) न्यायवाक्य मे **दोनों आश्रयवाक्यो** की आवश्यकता होती है—साध्यवाक्य की भी और पक्षवाक्य की भी। परन्तु पूर्वोक्त आपत्ति के अनुसार तो पक्षवाक्य विल्कुल व्यर्थ सिद्ध होगा। स्थिति यह है कि निष्कर्ष दोनो आश्रयवाक्यो को एक साथ लेकर ही निकाला जाता है, किसी एक वाक्य से नही निकाला जाता। अत पक्षवाक्य की आवश्यकता ही इस वात को सिद्ध करती है कि न्यायवाक्य मे **आत्माश्रय का दोष** नही है।

(ग) न्याय-वाक्य में जो कुछ अन्त-निहित होता है, वह व्यक्त कर दिया जाता है। अतः उससे ज्ञान का विकास होता है।

(ग) यदि वास्तव मे न्यायवाक्य मे **आत्माश्रय का दोष** होता तो उसके द्वारा हमारे ज्ञान मे कोई वृद्धि न होती। न्यायवाक्य के वारे मे हम कह सकते है कि निष्कर्ष का सत्य आश्रयवाक्यो के सत्य मे निहित रहता है; परन्तु हमे निष्कर्ष का ज्ञान आश्रयवाक्यो के ज्ञान के पश्चात् ही प्राप्त होता है। दूसरे शब्दो मे, निष्कर्ष आश्रयवाक्य मे अन्तर्भूत हो सकता है, परन्तु इस वात का ज्ञान तो हमे तभी हो पाता है जव हम आश्रय-वाक्यो से स्पष्टतया निष्कर्ष निकाल लेते है। अत. **अन्तर्निहित या अव्यक्त से व्यक्त ज्ञान की ओर अग्रसर होना** वास्तव में ज्ञान मे वृद्धि है। अत निष्कर्ष पर पहुँचने पर ज्ञान मे विकास अवश्य होता है।

(घ) मिल की आपत्ति तार्किक आपत्ति नहीं है।

(घ) अन्त मे, यदि यह आपत्ति ठीक भी होती तो वह तार्किक न होकर मनोवैज्ञानिक आपत्ति होती। किसी तर्क को इसलिए असत्य नही माना जा सकता क्योकि 'इसको सव जानते है।' रेखागणित के सिद्धान्त इसलिए निरर्थक नही कहे जा सकते, क्योकि कोई व्यक्ति उन्हे अच्छी तरह जानता है और उसे वे सव सिद्धान्त याद है।

इस प्रकार, **आत्माश्रय** की आपत्ति निराधार सिद्ध हो

जाती है तथा न्यायवाक्य की तर्क-पद्धति की विशुद्धता स्थापित हो जाती है।

यह बात ज्ञातव्य है कि न्यायवाक्य की विशुद्धता स्थापित करते समय कुछ न्यायशास्त्री यहाँ तक कह डालते हैं कि 'न्यायवाक्य विशुद्ध तर्क का एकमात्र स्वरूप है।' यह दृष्टिकोण व्हैटली (Whately) का है। यह कथन स्पष्टतया अतिशयोक्तिपूर्ण है, क्योंकि न्यायवाक्य (Syllogism) में केवल उन्ही तर्कवाक्यों का उपयोग होता है जो कि उद्देश्य एवं गुणों का सम्बन्ध व्यक्त करते हैं और उद्देश्य और विधेय के अन्य सम्बन्धों से प्राप्त अनुमान न्यायवाक्य के रूप में भली भाँति व्यक्त नही किये जा सकते।

दूसरा सीमान्त दृष्टिकोण भी सत्य नहीं है।

प्रश्नमाला १६

(१) आत्माश्रय के दोष से क्या तात्पर्य है? एक उदाहरण देकर समझाइए।

(२) मिल की यह आपत्ति कि प्रत्येक न्यायवाक्य में आत्माश्रय का दोष होता है, कहाँ तक सच है?

(३) क्या प्रत्येक अनुमान विशेष से विशेष तक ही होता है?

(४) यह कहा जाता है कि न्यायवाक्य का निष्कर्ष साध्य-वाक्य से नहीं, वरन उसके अनुसार प्राप्त किया जाता है। इस कथन की विवेचना कीजिए।

सप्तदश प्रकरण

निगमन-मूलक तर्क के दोष या आभास

(Fallacies in Deductive Reasoning)

§१. 'आभास' या दोष की परिभाषा। उसका वर्गीकरण।
§२. निगमनमूलक आभास।
§३ अर्द्ध-तार्किक आभास।
- (क) वाक्य छल।
- (ख) भ्रामकोच्चारण दोष।
- (ग) अनेकार्थक दोष।
- (घ) अनुप्रास दोष।
- (ङ) उपाधि-भेद दोष।
  - (अ) अनुलोम उपाधि-भेद दोष।
  - (आ) प्रतिलोम उपाधि-भेद दोष।
- (च) तथा (छ) विभाग का दोष तथा रचना का दोष।

§४. भारतीय न्याय मे दोष।
- (क) हेत्वाभास की परिभाषा तथा प्रकार।
- (ख) सव्यभिचार हेत्वाभास।
- (ग) विरुद्ध हेत्वाभास।
- (घ) सत्प्रतिपक्ष।
- (ङ) असिद्ध हेतु।
- (च) बाधित हेत्वाभास।
- (छ) अन्य तर्क-दोष।

§५. अभ्यास हल करने के लिए सकेत।
कुछ हल किये हुए अभ्यास।
प्रश्नमाला १७।

§१. आभास या दोष (Fallacy) की परिभाषा . उसका वर्गीकरण

'दोष' या 'आभास' का साधारण अर्थ किसी प्रकार का भ्रम अथवा त्रुटि होता है और कुछ तर्कशास्त्री इस शब्द का उपयोग इसी व्यापक अर्थ मे करते है और सब प्रकार के भ्रम या त्रुटि को 'दोप' के अन्तर्गत मानते है। तथापि यहाँ दोप से हम यही अर्थ ग्रहण करते है कि दोष वह है **जो तार्किक नियमो के उल्लंघन करने से पैदा होता है।** तर्कशास्त्र उन नियमो का स्पष्ट वर्णन करता है जो विचारो को नियमित तथा सुसम्वद्ध बनाते है। अत जहाँ नियम है, वहाँ उनका उल्लघन भी सभव है। अत दोष हो जाते है। अत दोप या आभासो की सख्या नियमो की सख्या के समान ही असख्य है।

आभास का अर्थ तार्किक नियमों का उल्लंघन है।

दोषो का वर्गीकरण : विभिन्न तर्कशास्त्रियो ने दोषो का वर्गीकरण भिन्न-भिन्न प्रकार से किया है। अब हम सक्षेप मे **अरस्तू** (Aristotle), **व्हैटली** (Whately) तथा **मिल** (Mill) के दोषो के वर्गीकरण पर विचार करेंगे।

दोषों का वर्गीकरण

अरस्तू ने केवल उन दोषों का वर्णन किया है, जिन्हे वह **'सोफ़िज्म'** (Sophisms) कहता है। 'सोफिज्म' उस चातुर्यपूर्ण उक्ति को कहते है जिसका उद्देश्य विपक्षी को धोका देना है। 'सोफिज्म' दो प्रकार के होते है—(१) वे जो कि **भाषा के सदिग्ध प्रयोग** के कारण उत्पन्न होते है और (२) वे जिनका दोप युक्ति के **वस्तुविषय** के परीक्षण के बाद ही ज्ञात हो पाता है। पहिले प्रकार के 'सोफिज्म' के पॉच उपविभाग है, यथा—(१) अनेकार्थक दोप (Equivocation), (२) वाक्य-छल (Amphiboly), (३) रचना-छल (Composition), (४) विभाग का दोष (Division), (५) भ्रामकोच्चारण दोष (Accent) तथा (६) अनुप्रास-दोप (Figure of speech)। दूसरे प्रकार के सोफिज्म के सात उपविभाग है, यथा—(१) उपाधि-भेद दोप (Accident),

अरस्तू

(२) **अनुलोम-उपाधि-भेद दोष** (Fallacia a dicto secundum quid ad dictum simpliciter) तथा उसका प्रतिलोम। (३) **प्रतिवाद के अज्ञान का दोष** (Ignoratio Elenchi), (४) **समक्रमिक दोष** (Consequens), (५) **आत्माश्रय दोष** (Petitio principii), (६) **अ-कारण का दोष** (Non causa pro causa), (७) बहुप्रश्नात्मक दोष (Fallacy of many questions)।

ह्वैटली

ह्वैटली (Whately) ने आभास के दो विभाग माने है, यथा—(क) **तार्किक आभास** तथा (ख) **अ-तार्किक (अथवा वस्तुविषयक** (Non-logical or Material) **आभास**। **तार्किक आभास** के पुन दो भाग है· (१) **शुद्ध तार्किक** (Purely logical fallacies), जिसमे दोष केवल अभिव्यक्ति के **आकार** मे है, और उसमे पदो के अर्थ पर ध्यान नही दिया जाता, (२) **अर्द्ध तार्किक दोष** (Semi-logical fallacies), व्हेटली उन्हे मानता है जो कि शब्दो की सन्दिग्धता से उत्पन्न होते है। (ख) **अतार्किक दोष** उसे कहते है, जिसमे निष्कर्ष अनिवार्यत. आश्रयवाक्यो से फलित नही होता, यथा—आत्माश्रय का दोष (petitio principii), प्रतिवाद के अज्ञान का दोष (Ignoratio Elenchi)।

मिल

मिल (Mill) ने 'आभास' के पाँच उपविभाग माने है। यथा—(१) **शुद्ध निरीक्षण के दोष** (Fallacies of Simple Inspection) जो कि तर्कवाक्यो को स्वयसिद्धि की अनियमित मान्यता देने से उत्पन्न होते है। (२) **निरीक्षण के दोष** (Fallacies of Observation), (३) **सामान्यीकरण के दोष** (Fallacies of Generalisation), (४) **चिन्तन के दोष** (Fallacies of Ratiocination), अर्थात् वे दोष जो अनुमान के आकारगत नियमो के उल्लघन से उत्पन्न होते है तथा (५) **भ्रम के दोष** (Fallacies of Confusion)।

सुयोग्य न्यायशास्त्रियो ने इन सभी वर्गीकरणो की बडी कटु-आलोचना की है। **वैल्टन** (Welton) का कथन है कि 'आभासो का पूर्णरूपेण वैज्ञानिक वर्गीकरण' सभव नही है।

डी मॉर्गन (De Morgan) का कहना है कि "मनुष्य जिन विधियो से त्रुटियाँ करता है, उसका वर्गीकरण हो ही नही सकता।" चाहे आभासो का विधिवत् वर्गीकरण हो सके या नही, हम यहाँ पर उन आभासो का वर्णन करेगे जो कि विभिन्न वर्गीकरणो मे एकत्रित किये गए है, अर्थात्, वे आभास (१) जो, निगमनमूलक तर्क तथा तत्सम्बन्धी सहायक प्रक्रियाओ मे होते है (सक्षेप मे हम उन्हें **'निगमनमूलक आभास'** कहेगे), (२) जो उद्गमनमूलक तर्क तथा तत्सम्बन्धी सहायक-प्रक्रियाओ मे होते है (सक्षेप मे हम उन्हे **उद्गमनमूलक आभास** कहेगे), (३) जो भाषा की सन्दिग्धता से उत्पन्न होते है, जिन्हे व्हैटली ने **'अर्द्ध तार्किक आभास'** कहा है तथा (४) जो आश्रयवाक्यो को अनियमित मान्यता देने से उत्पन्न होते है, जिन्हे **अतार्किक आभास** (Extra-logical Fallacies) कहते है। अध्ययन की सुविधा के निमित्त हम आभासो को चार वर्गो म बाँट सकते है, जैसा कि निम्नलिखित **तालिका** मे प्रदर्शित है

तालिका
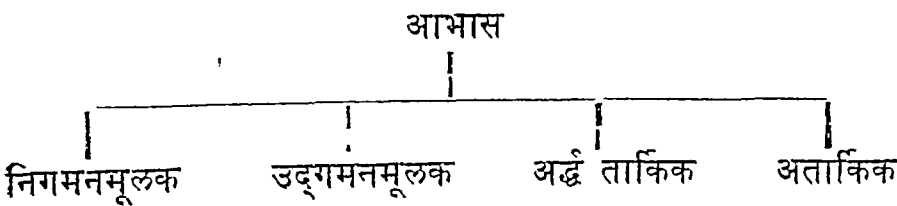
इस पुस्तक मे हम केवल निगमनमूलक आभास तथा अर्द्ध-तार्किक आभास पर ही विचार करेगे। उद्गमनमूलक आभास एव अतार्किक आभासो का वर्णन पुस्तक के द्वितीय भाग मे किया जायगा।

§२. निगमनमूलक आभास (Deductive Fallacies)

निगमन-मूलक आभास

निगमनमूलक आभास के दो उपविभाग है (१) **अनानुमानिक** (Non-inferential) तथा **आनुमानिक** (Inferen-

तालिका

tial)। इनका प्रदर्शन निम्नलिखित तालिका मे कर दिया गया है।

निगमनमूलक आभास

अनानुमानिक
(१) दोषपूर्ण परिभाषा।
(२) दोषपूर्ण विभाग।

आनुमानिक
(१) अनन्तरानुमान-संबधी
(२) सान्तरानुमान-सबधी

(क) अनानुमानिक निगमनमूलक आभास (Non-inferential Deductive fallacies)

अनानुमानिक निगमन-मूलक आभास

अनानुमानिक निगमनमूलक आभास उन्हे कहते है जो तार्किक परिभाषा तथा तार्किक विभाग के नियमो के उल्लघन करने मे उत्पन्न होते है। ये क्रियाये स्वय 'तर्क' के अन्तर्गत नही आती; अत इन दोषो को 'अनानुमानिक' कहते है।

दोषपूर्ण परिभाषा

तार्किक परिभाषा के दोष निम्नलिखित है :

(क) अतिरिक्त-परिभाषा ।
(ख) आकस्मिक परिभाषा ।
(ग) अतिव्याप्त तथा अव्याप्त परिभाषा ।
(घ) दुर्बोध तथा आलकारिक परिभाषा ।
(ङ) पर्यायोक्ति परिभाषा ।
(च) निषेधात्मक परिभाषा ।

दोषपूर्ण विभाग

तार्किक विभाग के दोष निम्नलिखित है :

(क) अतिभौतिक विभाग तथा भौतिक विभाग।
(ख) सकर-विभाग।
(ग) अपूर्ण या अतिसकीर्ण विभाग।
(घ) अतिविस्तीर्ण विभाग।
(ङ) परस्पर-व्याप्त विभाग।

इन सभी दोषो का सविस्तार विवेचन तत्सम्बन्धी प्रकरणो में कर दिया गया है। अत फिर उनका वर्णन करना व्यर्थ ही होगा।

(ख) आनुमानिक निगमनमूलक आभास (Inferential Deductive fallacies)

आनुमानिक निगमन-मूलक दोष

आनुमानिक निगमनमूलक आभासो में अनन्तरानुमान तथा सान्तरानुमान के दोष सम्मिलित हैं। ये दोष अनुमान-सम्बन्धी नियमो के उल्लघन से उत्पन्न होते हैं, अत 'आनुमानिक' कहलाते हैं। इन दोषो को 'आकारगत' भी कहते हैं क्योकि उनका सम्बन्ध तर्क के आकार से है, उसकी विषयवस्तु से नही, अर्थात् उनका सम्बन्ध उन तर्कवाक्यो के अर्थ से नही होता, जिनसे युक्ति बनी होती है। अव हम आनुमानिक निगमनमूलक आभास के दोनो विभागो पर सक्षेप मे विचार करेगे।

(१) अनन्तरानुमान के दोष।

अनन्तरानुमान के दोष

हमने नौ प्रकार के अनन्तरानुमानो का वर्णन किया है। यथा—परिवर्तन, प्रतिवर्तत, परिवर्तित-प्रतिवर्तन, विपर्यय, विरोध, सम्बन्ध-विलोमात्मक अनुमान, विध्याश्रित अनुमान, विशेषण-सयोगानुमान तथा मिश्र-धारणानमान। इनमें से प्रत्येक के अपने निश्चित नियम हैं, जिनके उल्लघन करने से दोष उत्पन्न हो सकते हैं। इन दोषो का वर्णन यथास्थान कर दिया गया है।

(२) सान्तरानुमान के दोष।

सान्तरानुमान के दोष

सान्तरानुमान मे शुद्ध तथा मिश्र न्यायवाक्य तथा युक्तिमालाये सम्मिलित हैं। इन सबके अपने-अपने विशेष नियम हैं, यथा—न्यायवाक्य के सामान्य नियम, हेतुफलाश्रित निरपेक्ष न्यायवाक्य के नियम, उभयतोपाश के नियम, प्रगामी तथा प्रतीयगामी युक्ति-मालाओ के नियम, सक्षिप्त प्रगामी तथा सक्षिप्त प्रतीयगामी युक्तिमालाओ के नियम। इन नियमो के उल्लघन से दोप उत्पन्न होते हैं।

इन सब आभासो का वर्णन यथास्थान कर दिया गया है, अत उनका पुन वर्णन करना निरर्थक ही होगा।

§३. अर्द्धतार्किक दोष (Semi-Logical Fallacies)

अर्द्धतार्किक दोष

अर्द्धतार्किक दोष उन आभासो को कहते है जिनमे त्रुटि

केवल युक्ति के आकार के परीक्षण से ही ज्ञात नहीं होती। वे भाषा की संदिग्धता से उत्पन्न होते हैं। अब हम सात प्रकार के आभासो का वर्णन करेंगे। यथा—(१) वाक्य-छल, (२) भ्रामकोच्चारण-छल, (३) अनेकार्थक दोष, (४) अनुप्रास-दोष, (५) उपाधि-भेद दोष, (६-७) विभाग-दोष और रचना-दोष।

सात प्रकार

(क) वाक्य-छल (Amphibology या Amphiboly):

वाक्य-छल

वाक्य-छल (Fallacy of Amphibology) उस आभास को कहते हैं जिसमें संदिग्धता वाक्य की बनावट के कारण होती है। यह वास्तव मे वाक्य की भ्रामक रचना का दोप है। सन्दिग्धता वाक्य के पदो मे नही अपितु उसकी बनावट मे होती है। वाक्य-छल तब होता है जब एक वाक्य का अर्थ दो रचनाओ मे लिया जा सके। और यह कहना असभव होता है कि उस वाक्य को किस अर्थ में लिया जाय।

उदाहरण

उदाहरण : (क) भागो मत जाने दो।

इस वाक्य के दो अर्थ निकल सकते है, यथा (१) भागो, मत जाने दो। तथा (२) भागो मत, जाने दो।

(ख) महेश इलाहाबाद को और फिर बनारस को मोटर कार से जायेगा।

(ग) दो और तीन का दूना बतलाइये।

(घ) दाँत बिना तकलीफ के निकाले जाते है।

इस वाक्य के तीन अर्थ हो सकते है—(१) दाँत निकालते समय तकलीफ नही होती। (२) दाँत निकाल दिए जाते है, परन्तु तकलीफ नही निकाली जाती और (३) ऐसे दाँत निकाले जाते है जिनमे तकलीफ नही होती।

यह बात स्मरणीय है कि वाक्य-छल आनुमानिक आभास नही है।

भ्रामकोच्चारण दोष

(ख) भ्रामकोच्चारण दोष (Fallacy of Accent):

यह दोष तब उत्पन्न होता है जब हम किसी गलत शब्द पर जोर देकर उसका उच्चारण करते है। यथा—'तुम अपने पड़ौसी के विरुद्ध गवाही नहीं दे सकते।'

इसमे 'पड़ौसी' और 'विरुद्ध' दोनो पदो पर जोर देने से इस पद के भिन्न-भिन्न अर्थ हो जाते है—

'पडौसी' पर जोर देने से इसका अर्थ होगा कि पडौसी के विरुद्ध तो नही, परन्तु अन्य के विरुद्ध गवाही दे सकते हो। 'विरुद्ध' पर जोर देने से यह अर्थ होगा कि उसके विरुद्ध नही, परन्तु पक्ष मे गवाही दे सकते हो। इस पकार भिन्न-भिन्न शब्दो पर जोर देने से यह दोप उत्पन्न हो जाता है।

एक अन्य उदाहरण देखिए। "मै तुम्हारे भाई को अपनी तर्कशास्त्र की पुस्तक न दूगा।"

इस वाक्य के विभिन्न पदो पर जोर देने से निम्नलिखित अर्थ निकल सकते है ·

(१) मै तुम्हारे भाई को अपनी तर्कशास्त्र की पुस्तक न दूगा। अर्थात् दूसरे व्यक्ति चाहे अपनी तर्कशास्त्र की पुस्तक तुम्हारे भाई को दे दे, मगर 'मै' न दूगा।

(२) मै **तुम्हारे** भाई को अपनी तर्कशास्त्र की पुस्तक न दूगा। अर्थात् अन्य व्यक्तियो के भाइयो को मै चाहे अपनी तर्क-शास्त्र की पुस्तक दे दूँ, मगर **तुम्हारे** भाई को न दूगा।

(३) मै तुम्हारे **भाई** को अपनी तर्कशास्त्र की पुस्तक न दूगा। अर्थात् मै तुम्हारे अन्य सम्बन्धियो को चाहे अपनी तर्क-शास्त्र की पुस्तक दे दूँ किन्तु तुम्हारे **भाई** को न दूगा।

(४) मै तुम्हारे भाई को **अपनी** तर्कशास्त्र की पुस्तक न दूगा। अर्थात् तुम्हारे भाई के लिए चाहे मै किसी अन्य व्यक्ति की तर्कशास्त्र की पुस्तक मँगवा दूँ किन्तु **अपनी** तर्कशास्त्र की पुस्तक न दूगा।

(५) मै तुम्हारे भाई को अपनी **तर्कशास्त्र** की पुस्तक न दूंगा। अर्थात् तुम्हारे भाई को चाहे मै अपनी अन्य विपय की पुस्तक दे दूँ किन्तु **तर्कशास्त्र** की पुस्तक न दूगा।

(ग) अनेकार्थक दोष (Fallacy of Equivocation).

अनेकार्थक दोष

जब एक से अधिक अर्थवाले शब्द का उपयोग किसी तर्क में किया जाय तो अनेकार्थक दोष हो जाता है। जब कि ऐसे शब्द का उपयोग न्यायवाक्य से किया जाता है तो अनेकार्थक साध्य, अनेकार्थक पक्ष तथा अनेकार्थक हेतु का दोप हो जाता है। यह दोप चतुष्पदी आभास के समान है।

(घ) अनुप्रास-दोष (Fallacy of Figure of Speech या Fallacy of Paronymous Terms)

अनुप्रास-दोष

अनुप्रास-दोष उसे कहते है, जो शब्दो के समान रूप होने से उत्पन्न होता है। कभी-कभी एक ही धातु से बने हुए शब्द, समान रूप होते हुए या संज्ञा विशेषण आदि से भेद रखते हुए प्रयोग कर दिए जाते है, तो इस प्रकार का दोप उत्पन्न हो जाता है। अत. यह दोप तब उत्पन्न होता है जब भिन्नार्थक शब्दो को एकार्थ मे ही ग्रहण कर लेते है। जैसे—

उदाहरण

दर्शको मे बच्चो की सी उत्सुकता होती है।
कणाद दर्शनकर्त्ता थे।
∴ उनमे बच्चो की सी उत्सुकता रही होगी।

यहाँ 'दर्शक' और 'दर्शनकर्त्ता' एक ही धातु से निकले हुए होने से एक ही अर्थ मे ले लिए गए है।

अन्य उदाहरण देखिए :—

(१) अभिमानी मनुष्य को कोई भी प्रेम नही करता, महाराणा प्रताप बडे स्वाभिमानी थे, अत. उन्हे कोई भी प्रेम नही करता था।

(२) तराई के राजा के पास बडे जगल है। अतः वह बडा जगली है।

(३) चित्रकार वह व्यक्ति है, जो चित्र बनाये, और कुम्भकार वह जो कुम्भ या घडे बनाये। इसी प्रकार पत्रकार वह है, जो पत्र या कागज़ बनाये।

(ङ) उपाधि-भेद दोष (Fallacy of Accident)

उपाधि-भेद दोष

उपाधि-भेद दोष के दो रूप हो सकते हैं। यथा—(१) अनुलोम उपाधि-भेद दोष तथा (२) प्रतिलोम उपाधि-भेद दोष। उपाधि-भेद दोष तब होते हे, जब हम किसी वस्तु के आकस्मिक गुणो या सम्बन्धों में सत्य बात को उस वस्तु के विषय में सत्य मान लेते हैं।

दो प्रकार

(१) अनुलोम-उपाधि-भेद दोष (Direct Fallacy of Accident) तब होता है जब हम इस प्रकार तर्क करने लगें कि जो बात सामान्यतया सत्य होती है, वह कुछ विशेष या आकस्मिक परिस्थितियो में भी सत्य होगी। प्राचीन तर्कशास्त्रियो ने इसको 'Fallacia a dicto simpliciter ad dictum secundum quid' का नाम दिया था।

अनुलोम-उपाधि-भेद दोष

उदाहरण—

उदाहरण

(१) मनुष्य विचारशील जीव है।
क्रोधित अवस्था मे मनुष्य विचारशीलता से काम करता है।

इस युक्ति मे अनुलोम उपाधि-भेद दोप है क्योकि निष्कर्ष मे 'मनुष्य' के साथ 'क्रोधित अवस्था' मे होने का आकस्मिक गुण जोड दिया गया है, जब कि आश्रय मे उस पद के साथ कोई आकस्मिक गुण नही जुडा है।

(२) व्यायाम करना स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त लाभप्रद है। अत ज्वरग्रस्त मनुष्य को व्यायाम अवश्य करना चाहिए।

(३) पानी एक द्रव पदार्थ है।
वर्फ पानी है।
∴ वर्फ एक द्रव पदार्थ है।

(४) कोई भी मनुष्य दुख सहन नही करना चाहता। अत. तुम्हारा भाई अपना फोडा नही चिरवायेगा।

(५) तुम्हे जीवधारी कहना सच है।
तुम्हे गधा कहना तुम्हे जीवधारी कहना है।
∴ तुम्हे गधा कहना सच है।

(६) जो दूसरे मनुष्य कर चुके है, उसे कोई भी मनुष्य कर सकता है।

(७) जो दूसरो की हत्या करता है वह फॉसी की सजा पाता है।
सैनिक अपने दुश्मन की हत्या करता है।
∴ सैनिक को फॉसी की सजा मिलनी चाहिए।

प्रतिलोभ उपाधि-भेद दोष

(२) **प्रतिलोभ उपाधि-भेद दोष** (The Converse Fallacy of Accident) **तब उत्पन्न होता है जब हम किसी आकस्मिक परिस्थितियो के सत्य के आश्रय पर यह तर्क करने लगें कि वह बात सामान्यतया सच होती है।** प्राचीन तर्कशास्त्रियो ने इस दोप को 'Fallacia a dicto secundum quid ad dictum simpliciter' का नाम दिया था।

उदाहरण

उदाहरण—

(१) यदि मदिरा का वहुत अधिक सेवन किया जाय, तो वह विष होती है।
∴ मदिरा एक विष है।

(२) कभी-कभी रोगी व्यक्ति से छिपाने के लिए अथवा दुश्मन को धोखा देन के लिए सत्य वात नही कहते।
∴ दूसरे को धोखा देना ठीक है।

(३) भिखारियो को भीख देने से भिखारीपन मे वृद्धि होती है, अत. वह बुरा है।
∴ जिन लोगो को आवश्यकता हो उन्हे सहायता कभी नही देनी चाहिए।

(४) गार्ड चलती गाडी पर चढ़ता है। अत. सव यात्रियो के लिए चलती गाडी मे चढना ठीक है।

(५) वहुत से वेईमान मनुष्य भले प्रकार फल फूल रहे हैं। अत वेईमानी करना वुरा नही।

(६) शराव पीना बुरा नही कहा जा सकता क्योकि सर्दी लग जाने पर डॉक्टर ने मेरे भाई को शराव पीना वतलाया था।

इसी से मिलता-जुलता एक अन्य दोष भी है जिसे प्राचीन तर्कशास्त्रियो ने 'Fallacia a dicto secundum quid ad dictum secundum alterum quid' का नाम दिया था। यह दोप तब होता है जब हम एक उपाधिवाले वर्णनसे किसी अन्य उपाधिवाले वर्णन की दिशा में तर्क करने लगे। **यथा—**

दूसरे के शरीर मे (वैमनस्य से) घाव करना बुराई है। डॉक्टर चीरफाड करते समय दूसरे के शरीर मे (अच्छा करने के इरादे से) घाव करता है। अएतव डॉक्टर बुराई करता है।

अन्त मे, यह वात द्रष्टव्य है कि 'अर्द्ध-तार्किक-आभास' जिसका वर्णन ऊपर किया गया है, भाषा की सदिग्धता से उत्पन्न होते है। जितने प्रकार से भाषा मे सन्दिग्धता हो सकती है उतने ही प्रकार के आभास माने गये है। ऐसा भी सभव हो सकता है कि एक दिए हुए उदाहरण मे भापा की सदिग्धता इस प्रकार की हो कि उसमे एक से अधिक आभास उत्पन्न हो जायँ। ऐसी दशा मे उन सभी आभासो का वर्णन करना पड जाता है।

(च) तथा (छ) विभाग का दोष (Fallacy of Division) **तथा रचना का दोष** (Fallacy of Composition)।

विभाग तथा रचना के दोप

जो बात किसी समुदाय के विपय मे **सामूहिक** रूप से सत्य हो, उसे उस समुदाय के भिन्न-भिन्न व्यक्तियो या पदार्थो के विपय मे **अलग-अलग** सत्य मान लेने मे **विभाग का दोष** हो जाता है। इसकी उल्टी क्रिया को **रचना का दोष** कहते है। यह दोप तब उत्पन्न होता है जब **अ-समूहवाचक** पदो का **समूहवाचक पदो** के रूप मे प्रयोग कर दिया जाय।

विभाग के दोष के उदाहरण।

उदाहरण

(१) कालिदास की सब रचनाये एकदिन मे नही पढी जा सकती।

'अभिज्ञान शाकुन्तल' कालिदास की एक रचना है।
∴ 'अभिज्ञान शाकुन्तल' एक दिन में नही पढी जा सकती।

(२) इस देश के व्यक्ति अकालपीडित है।
तुम इस देश के एक व्यक्ति हो।
∴ तुम अकालपीडित हो।

(३) भारतीय एक सुसस्कृत जाति है।
'क' भारतीय है।
∴ 'क' एक सुसस्कृत व्यक्ति है।

(४) इस नगरके निवासी पुरुष, स्त्री तथा बालक है।
मै टाउनहॉल मे जिनसे मिला, वे इस नगर के निवासी थे।
∴ मै टाउनहॉल मे जिनसे मिला वे पुरुष, स्त्री तथा बालक थे।

(५) मै पुस्तक तथा कॉपी नही खरीद सकता।
∴ मै पुस्तक या कॉपी नही खरीद सकता।

(६) तेरह एक सख्या है।
छ और सात तेरह होते है।
∴ छ और सात एक सख्या है।

(७) इस बाग की छाया बडी घनी है।
∴ इस बाग का यह बबूल का वृक्ष भी घनी छाया-वाला है।

(८) पानी से प्यास बुझती है और पानी हाइड्रोजन और ऑक्सीजन नामक गैसो के मिलने से बनता है। अत: हाइड्रोजन और ऑक्सीजन प्यास बुझानेवाले पदार्थ है।

रचना के दोष के उदाहरण :

(१) प्रत्येक व्यक्ति अपना सुख चाहता है।
∴ सब व्यक्ति सबका सुख चाहते है।

(२) पाँच और आठ विषम और सम सख्याये है।
तेरह पॉच और आठ होता है।
∴ तेरह विषम और सम सख्या है।

(३) इन बीस व्यक्तियो मे से प्रत्येक एक सेर अन्न का भोजन करता है, अत ये बीसो मनुष्य एक सेर अन्न खाते है।

(४) दर्जी —इस कपडे मे आपका कोट बन सकता है। यदि कमीज की इच्छा हो तो कमीज बना दूगा और यदि आप चाहे तो पतलून बनवा ले।
ग्राहक —अच्छा, एक कोट, एक कमीज और एक पतलून बना देना।

§४. भारतीय न्याय मे दोष

भारतीय न्याय में दोष

(क) हेत्वाभास की परिभाषा तथा प्रकार।

परिभाषा

'हेत्वाभास' के **दो अर्थ** हो सकते है। इसका एक अर्थ यह हो सकता है कि जो हेतु की तरह दिखलाई दे पर वास्तव मे हेतु न हो। अर्थात् भ्रम-पूर्ण हेतु दोषरहित हेतु की तरह जान पडे। हेत्वाभास का यह अर्थ भी हो सकता है कि यह उस भ्रम या दोष को कहते है, जो किसी हेतु मे रहता है, और उसे भ्रमपूर्ण या दोषयुक्त बना देता है। हम यहाँ 'हेत्वाभास' का उपयोग इसी दूसरे अर्थ मे ही करेगे। अत. **दोषपूर्ण हेतु को हेत्वाभास कहते है।**

पाँच प्रकार के हेत्वाभास

नैयायिको के अनुसार हेत्वाभास **पाँच** होते है, यथा—(१) **सव्यभिचार,** (२) **विरुद्ध,** (३) **सत्प्रतिपक्ष,** (४) **असिद्धि** और (५) **बाधित**। ये हेतु पाँच मुख्य दोष बतलाते है जो क्रमश **व्यभिचार, विरोध, प्रतिपक्ष, असिद्धि** तथा **बाधा** है। अब हम इन पाँचो हेत्वाभासो का पृथक-पृथक विवेचन करेगे।

(ख) सव्यभिचार हेत्वाभास।

सव्यभिचार

निर्दोष अनुमिति तभी हो सकती है जब लिङ्ग अथवा हेतु साध्य के साथ अनिवार्यत सम्बद्ध हो। उन दोनो मे नियत-साहचर्य आवश्यक है। नियम से भ्रष्ट होने को व्यभिचार कहते है। **यदि हेतु इस प्रकार का हो कि वह उपर्युक्त नियम से भ्रष्ट हो गया हो अर्थात् उसका साध्य के साथ नियत-साहचर्य न हो, तो ऐसे हेतु को सव्यभिचार हेतु कहते है।** ऐसा हेतु कभी तो

साध्य के साथ उपस्थित रहता है और कभी साध्य की अनुपस्थिति मे भी उपस्थित रहता है। इस प्रकार के हेतु से साध्य को भी स्थापित किया जा सकता है तथा उसके विलोम को भी। ऐसा हेतु साध्य के साथ सदा उपस्थित नही रहता। निम्नलिखित उदाहरण देखिए --

"ध्वनि नित्य है क्योकि उसका स्पर्श नही किया जा सकता।" इस उदाहरण मे व्याप्ति विपक्ष की वस्तुओ के लिए तो सच है क्योकि मेज, पुस्तक, मकान इत्यादि, जिनका स्पर्श किया जा सकता है, वे सब अनित्य है। सपक्ष के कुछ उदाहरणो के लिए भी यह व्याप्ति सच है क्योकि आत्मा का स्पर्श नही किया जा सकता और वह नित्य है। परन्तु निम्नलिखित सपक्ष उदाहरण मे व्याप्ति सत्य नही है। ज्ञान का स्पर्श नही किया जा सकता और वह अनित्य है। अत 'अस्पर्शता' केवल 'नित्यता' मे ही व्याप्त नही है, वरन 'अनित्यता' मे भी व्याप्त है।

इस दोष को **'अनैकान्तिक आभास'** भी कहते है।

सव्यभिचार हेतु **तीन प्रकार** का हो सकता है। यथा (१) **साधारण**, (२) **असाधारण** तथा (३) **अनुपसंहारी**।

साधारण सव्यभिचार

(१) **साधारण सव्यभिचार हेतु--उसे कहते है जो सपक्ष तथा विपक्ष दोनो प्रकार के उदाहरणो में पाया जाय अर्थात् जो साध्य की उपस्थिति तथा उसकी अनुपस्थिति दोनो के साथ हो।** यथा--"पर्वत पर अग्नि है क्योकि वह ज्ञान का विषय है।" "ज्ञान का विषय होना" अग्नि के साथ पाया जाता है। जैसे रसोई घर, रेल का इजन इत्यादि ज्ञान के विषय है और इनमे अग्नि भी उपस्थित है। अत हेतु सपक्ष उदाहरणो मे पाया जाता है। परन्तु ज्ञान का विषय वे वस्तुये भी तो हो सकती है, जहाँ अग्नि नही है, जैसे--नदी, पुस्तक इत्यादि। अत हेतु विपक्ष

उदाहरणो मे भी उपस्थित है। इसलिए इस हेतु मे **साधारण** व्यभिचार का दोष है।

असाधारण सव्यभिचार

(२) **असाधारण सव्यभिचार हेतु**—उसे कहते है जो न तो सपक्ष और न विपक्ष उदाहरणो में पाया जाये। असाधारण हेतु पक्ष का निजी विशेष गुण होने के कारण वह पक्ष के सिवा अन्यत्र कही नही मिलता। यथा—"शब्द नित्य है क्योकि उसमे शब्दत्व है।" शब्दत्व तो केवल शब्द का निजी विशेष गुण है। वह शब्द के अतिरिक्त किसी भी नित्य अथवा अनित्य वस्तु मे नही होता। अत इस प्रकार के हेतु मे **असाधारण व्यभिचार** का दोष है।

अनुपसंहारी सव्यभिचार

(३) **अनुपसहारी सव्यभिचार हेतु**—उसे कहते है, जिसके पक्ष में एक जाति की समस्त वस्तुये निहित हो जाने के कारण, वह किसी अन्य सपक्ष या विपक्ष उदाहरण मे प्रस्तुत नही किया जा सकता। यथा—"सब वस्तुओ का अन्त होता है, क्योकि उनका प्रारम्भ भी हुआ था।" इसमे पक्ष 'सब वस्तुये' है। कोई भी अन्य वस्तु ऐसी नही हो सकती, जो 'सब वस्तुओं' के बाहर हो। अत उसके हेतु मे **अनुपसहारी व्यभिचार** का दोष है।

(ग) विरुद्ध हेत्वाभास।

विरुद्ध हेतु

विरुद्ध हेत्वाभास वहाँ होता है, जहाँ हेतु से जो बात सिद्ध करनी हो, उससे उल्टी बात सिद्ध हो। यह वह दोषपूर्ण हेतु है जो कि प्रयोग किया जाता है साध्य को सिद्ध करने के लिए, पर सिद्ध कर बैठता है साध्य के अभाव को। यथा—'शब्द नित्य है, बना हुआ होने के कारण।' 'बना हुआ होना' हेतु तो अनित्य पदार्थों मे पाया जाता है, न कि नित्य पदार्थों मे। अत इसके आधार पर शब्द को नित्य सिद्ध नही किया जा सकता। इससे तो यह सिद्ध होता है कि शब्द अनित्य है। अत उल्टी बात सिद्ध होती है। विरुद्ध हेतु सपक्ष दृष्टातो मे, जहाँ उसे होना

चाहिए, नही रहता, वलिक विपक्ष दृष्टातो मे रहता है, जहाँ उसे नही रहना चाहिए।

विरुद्ध तथा साधारण सव्यभिचार में भेद

विरुद्ध हेतु और **साधारण सव्यभिचार** हेतु मे यह **भेद** है कि विरुद्ध हेतु कभी भी सपक्ष दृष्टान्तो मे नही रहता, पर साधारण सव्यभिचार हेतु सपक्ष दृष्टान्तो मे रहता हे।

विरुद्ध तथा असाधारण सव्यभिचार में भेद

विरुद्ध हेतु और **असाधारण सव्यभिचार** हेतु मे यह **अन्तर** है कि वह विपक्ष दृष्टान्तो मे मिलता है पर असाधारण हेतु विपक्ष दृष्टान्तो मे कभी नही मिलता।

विरुद्ध तथा सव्यभिचार में भेद

विरुद्ध हेतु और **सव्यभिचार हेतु** मे यह **भेद** है कि सव्यभिचार मे व्याप्ति केवल अपूर्ण या दोपपूर्ण होती है, पर विरुद्ध मे व्याप्ति सर्वथा विरोधपूर्ण होती है।

(घ) **सत्प्रतिपक्ष हेतु।**

सत्प्रतिपक्ष हेतु

यदि किसी साध्य को सिद्ध करने के लिये हम कोई हेतु उपस्थित करें, और उसी के साथ हमारे सामने कोई दूसरा हेतु हो जो ठीक उसी साध्य के अभाव को सिद्ध करता हो, तो पहला हेतु सत्प्रतिपक्ष कहलाएगा। निम्नलिखित दो युक्तियाँ देखिए —

'शब्द नित्य है क्योकि वह सुना जा सकता है।'

'शब्द अनित्य है क्योकि वह कार्य है जैसे घडा।'

पहले उदाहरण का हेतु 'शब्द' की 'नित्यता' को स्थापित करता है, दूसरे उदाहरण का हेतु 'शब्द' की अनित्यता को स्थापित करता है। दोनो युक्तियो के निष्कर्ष परस्पर विरोधी हैं। पहला हेतु दूसरे के मुकाबले मे अधिक सवल नही है, अत उसे सत्प्रतिपक्ष कहेंगे। इस सम्बन्ध मे यह वात ज्ञातव्य है कि इसमे एक निष्कर्ष दूसरे का प्रतिकार होता है। यदि प्रतिपक्ष अधिक वलवान हो जाय, तो पहला हेतु **सत्प्रतिपक्ष** न कहला कर **'बाधित'** कहलाएगा।

सत्प्रतिपक्ष तथा वाधित

सत्प्रतिपक्ष तथा विरुद्ध

सत्प्रतिपक्ष तथा **विरुद्ध** हेत्वाभास मे यह **अन्तर** है कि विरुद्ध मे **वही एक हेतु** साध्य को नही, वरन उसके अभाव को

सिद्ध करता है; परन्तु सत्प्रतिपक्ष में दूसरा हेतु साध्य के अभाव को सिद्ध करता है।

में भेद

(ङ) असिद्ध हेतु ।

असिद्ध हेतु

साध्य की सिद्धि हेतु से होती है। जहाँ हेतु ही सिद्धि की अपेक्षा रखता हो, वहाँ साध्य की सिद्धि नही हो सकती। **ऐसे हेतु को, जो स्वयं सिद्धि की अपेक्षा रखता हो असिद्ध हेतु कहते हैं** तथा उससे उत्पन्न दोप को असिद्धि कहते है। यह तीन प्रकार का होता है, यथा—(१) आश्रयासिद्ध, (२) स्वरूपासिद्ध तथा (३) व्याप्यत्वासिद्ध । ये क्रमशः पक्षता, पक्षधर्मता (हेतुता) तथा व्याप्ति के दोष है ।

तीन प्रकार का असिद्ध :

आश्रयासिद्ध

(१) आश्रयासिद्ध : **आश्रयासिद्ध हेतु उस दोषपूर्ण हेतु को कहते हैं जो कि साध्य को ऐसे आश्रय या पक्ष में सिद्ध करना चाहता हो जो कि स्वयं ही असत् या काल्पनिक हो ।** जिस हेतु का आश्रय या पक्ष ही असिद्ध है, वह आश्रयासिद्ध कहलाता है। हेतु के लिए यह आवश्यक है कि वे हेतु मे विद्यमान रहे। परन्तु कोई हेतु ऐसे पक्ष मे कैसे विद्यमान रह सकता है, जो स्वय ही असत् या काल्पनिक हो। यथा—

"आकाश का कमल सुगन्धवाला होता है, कमल होने के कारण, तालाब के कमल की भाँति।" यहाँ 'आकाश का कमल' पक्ष है। यह पक्ष स्वय असभव है। अत हेतु 'कमल होने के कारण' आश्रया-सिद्ध हेतु है। एक अन्य उदाहरण देखिए। "प्रेत साँस लेता है क्योकि उसमे प्राण होता है, और जिस किसी मे भी प्राण होता है, वह साँस लेता है, जैसे मनुष्य।" यहाँ पर 'प्रेत' पक्ष है। परन्तु 'प्रेत' है या नही, यह बडी सदिग्ध बात है। अत यहाँ पर आश्रय या पक्ष असिद्ध है। अत उसके साँस लेने का जो हेतु दिया है, वह आश्रयासिद्ध हेतु है।

स्वरूपासिद्ध

(२) स्वरूपासिद्ध :—स्वरूपासिद्ध हेत्वाभास वहाँ होता है जहाँ हेतु का स्वरूप ऐसा हो कि वह पक्ष में किसी भी प्रकार रह ही नही सकता; जैसे—तालाब मे आग है, क्योंकि उसमें धुँआ है और जहाँ-जहाँ धुँआ है, वहाँ-वहाँ आग होती है, जैसे रसोईघर में। इस उदाहरण मे स्वरूपासिद्ध हेत्वाभास है क्योंकि यह स्पष्ट है कि धुँए का स्वरूप ऐसा है कि वह तालाब मे रह नही सकता।

आश्रयासिद्ध तथा स्वरूपासिद्ध में भेद

आश्रयासिद्ध और स्वरूपासिद्ध मे यह भेद है कि आश्रयासिद्ध मे तो पक्ष ही असत् या काल्पनिक होता है, पर स्वरूपासिद्ध मे पक्ष तो सत् है, वर्तमान है, पर हेतु का स्वरूप ही ऐसा है कि वह उस पक्ष मे रह नही सकता। इसमे हेतु और पक्ष की असगतता होती है। इसमे हेतु भी सत् होता है और पक्ष भी सत् होता है, परन्तु इस प्रकार का हेतु होता है कि वह पक्ष मे नही रह सकता। दोनो मे सगति नही होती।

व्याप्यत्वासिद्ध

(३) **व्याप्यत्वासिद्ध :—यदि हेतु सोपाधिक हो और निरुपाधिक समझ लिया जाय तो उसे व्याप्यत्वासिद्ध हेतु कहते है।** इसमे पक्ष सत् होता है, हेतु भी पक्ष मे रहता है, पर व्याप्यत्व असिद्ध होता है। इसमे हेतु किसी विशेष स्थिति या उपाधि के होते हुए ठीक होता है, पर उस उपाधि के न होने पर भी सत्य मान लिया जाता है। यथा—'पर्वत धूम्रवान् है क्योकि वहाँ अग्नि है। जहाँ-जहाँ अग्नि होती है, वहाँ-वहाँ धुँआ होता है।' इस उदाहरण मे व्याप्ति अशुद्ध है। जहाँ-जहाँ आग होती है, वहाँ-वहाँ सदैव धुँआ नही होता। आग मे भले प्रकार तपाये हुए एक लोहे के गोले को लीजिए। उसमे आग है, पर धुँआ नही है। अतएव यह व्याप्ति कि 'जहाँ-जहाँ आग होती है, वहाँ-वहाँ धुँआ होता है' केवल एक विशेष **'उपाधि'** के रहते हुए ठीक होती है और वह उपाधि है 'गीली लकडी का सयोग' अत· इसमे **व्याप्यत्वासिद्ध** का दोष है।

(च) बाधित हेत्वाभास।

बाधित

जब हम प्रत्यक्ष या किसी प्रबल प्रमाण से जान लेते है कि जिस साधन को हेतु सिद्ध करना चाहता है, वह पक्ष में है ही नही, तो, वह हेतु बाधित कहलाता है, जैसे 'आग ठढी है, द्रव्य होने के कारण।' हम प्रत्यक्ष प्रमाण से जानते है कि आग मे ठढेपन का अभाव है, वह गरम है, अतएव इस उदाहरण मे आग के ठढेपन के लिए जो हेतु दिया गया है, वह **बाधित** है।

बाधित और सत्प्रतिपक्ष मे अन्तर

बाधित और **सत्प्रतिपक्ष** हेतु मे यह **अन्तर** है कि बाधित मे साध्य दूसरे प्रबलतर प्रमाण से असिद्ध हो जाता है, पर सत्प्रतिपक्ष मे किसी ऐसे प्रबलतर प्रमाण से साध्य का बाध नही होता। सत्प्रतिपक्ष मे दोनो युक्तियाँ समान बलवाली होती है।

तालिका

सारांश.—इन सभी हेत्वाभासो का प्रदर्शन निम्नाकित **तालिका** से हो जाता है:—

हेत्वाभास
- सव्यभिचार
  - साधारण
  - असाधारण
  - अनुपसहारी
- विरुद्ध
- सत्प्रतिपक्ष
- असिद्ध
  - आश्रयासिद्ध
  - स्वरूपासिद्ध
  - व्याप्यत्वासिद्ध
- बाधित
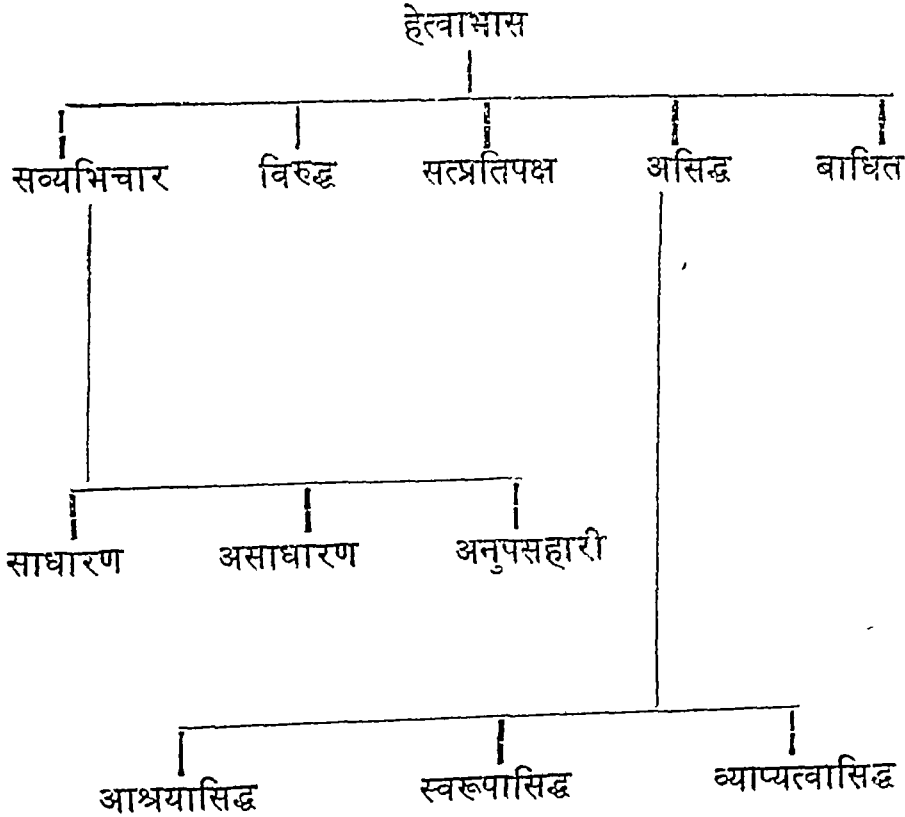
(६) अन्य तर्कदोष ।

जाति, निग्रहस्थान तथा छल

पाँच हेत्वाभासों के अतिरिक्त भारतीय विचारकों ने कुछ अन्य तर्कदोषो का भी वर्णन किया है। **पक्षाभास, प्रतिज्ञाभास** तथा **दृष्टान्ताभास** क्रमश पक्ष, प्रतिज्ञा एवं दृष्टान्त मे दोष उपस्थित होने के कारण होते है। वाद-विवाद मे अनेको युक्तियाँ दोषपूर्ण एव असगत होती है। उन्हे **'जाति'** तथा **'निग्रहस्थान'** का नाम दिया जाता है। जो दोष शब्द एव वाक्यों की रचना के कारण उत्पन्न होते है, उन्हे 'छल' कहते है। इनके अतिरिक्त और भी अनेक प्रकार के आभास है।

परन्तु अधिकाश ग्रन्थो मे प्रायः हेत्वाभासो का ही वर्णन मिलता है, तथा अन्य आभासो को छोड दिया जाता है। अधिकाश विचारको का मत ऐसा रहा है कि **प्रत्येक आभास को सरल करके किसी न किसी हेत्वाभास के अन्तर्गत लाया जा सकता है।**

५ आभास-सम्बन्धी अभ्यास हल करने के लिए सकेत

युक्तियो के दोषो की पकड करने के लिए जब उनका परीक्षण किया जाता है, तो प्रारंभ मे इस कार्य मे विद्यार्थियो को बडी कठिनाई होती है। अत इस स्थान पर इस सम्बन्ध मे कुछ सकेत दे देना उपयोगी होगा।

प्रारभ मे जो कठिनाई होती है, उसका विशेष कारण यह है, कि तर्कशास्त्र के ग्रन्थो के बाहर कोई भी युक्ति पूर्ण तार्किक आकार मे नही प्राप्त होती। अत युक्तियो का परीक्षण करने से पूर्व पहला काम यह होता है कि उनमे यथोचित परिवर्तन करके उन्हे शुद्ध-तार्किक आकार मे रक्खा जाय। इस बात का ध्यान रक्खा जाता है कि उसके अर्थ मे कोई अन्तर न आने पावे। यहाँ पर हम केवल न्यायवाक्य (Syllogism) के दोषो पर ही विचार करेगे।

न्यायवाक्य को तार्किक आकार मे बदलते समय निम्नलिखित नियमो का पालन किया जाता है —

(१) सर्वप्रथम न्यायवाक्य का निष्कर्ष खोजा जाता है।

न्यायवाक्य में निष्कर्ष तीसरा तर्कवाक्य होता है, परन्तु दी हुई युक्ति मे वह अपने निश्चित स्थान मे नही भी हो सकता है। निष्कर्ष 'अत', 'इसलिए', 'अतएव' इत्यादि शब्दो से प्रारभ होता है, और आश्रयवाक्य (Premise) का प्रारभ 'क्योकि' इत्यादि शब्दो से होता है। निष्कर्ष का पता चल जाने पर उसे शुद्ध तार्किक आकार मे रखते है, तथा सयोजक को रेखाकित कर देते है ताकि उद्देश्य और विधेय का ठीक-ठीक स्थान हो सके।

(२) इसके बाद साध्यवाक्य तथा पक्षवाक्य का पता लगाते है।

जब निष्कर्ष तार्किक आकार मे होता है, तो उसका विधेय साध्य होता है, अत वह तर्कवाक्य जिसमे निष्कर्ष का विधेय होता है, साध्यवाक्य है। निष्कर्ष का उद्देश्य पक्ष होता है। अत निष्कर्ष के उद्देश्य को रखने वाला तर्कवाक्य पक्षवाक्य होता है। साध्यवाक्य तथा पक्षवाक्य दोनो को तार्किक आकार मे बदलते है।

(३) अन्त मे, तर्कवाक्य को नियमित क्रम मे रखते है।

प्रायः न्यायवाक्य सक्षिप्त-न्यायवाक्य के रूप मे होता है, जिसके कुछ भाग लुप्त होते है। अत उन लुप्त भागो को अपनी ओर से फिट कर लेते है।

इस प्रकार न्यायवाक्य को तार्किक आकार मे वदल लेने पर हम इस बात की जाच करते है कि न्यायवाक्य-सम्बन्धी नियमो का पालन किया गया है, अथवा नही। यह भी देखते है कि पदो के अर्थ मे सन्दिग्धता तो नही है। जहां तक न्यायवाक्य सम्बन्धी नियमो की बात है, उनमे पदो की व्याप्ति सम्बन्धी नियम अधिक आवश्यक है [न्यायवाक्य के सामान्य नियम (३) तथा (४)।] अर्द्धतार्किक-आभासो के सम्बन्ध मे न्यायवाक्य का प्रथम सामान्य नियम (जिसके अनुसार न्यायवाक्य मे तीन और केवल तीन पद होने चाहिए) वडा आवश्यक है।

यह वात स्मरण रखनी चाहिए कि किसी दी हुई युक्ति मे आभास का होना अनिवार्य नही है। वह युक्ति शुद्ध भी हो सकती है।

अब हम कुछ युक्तियो को हल करेगे। विद्यार्थी को स्मरण रखना चाहिए कि आभास का केवल नाम लिख देना ही पर्याप्त

नही है। उसके साथ मे यह बतलाना भी आवश्यक है कि उस युक्ति मे वह आभास क्यो है ? आभास होने का कारण स्पष्ट तथा व्यक्त होना चाहिए।

कुछ हल किये हुए अभ्यास

(१) हरि परीक्षा में उत्तीर्ण हो सकता है, क्योंकि वह बुद्धिमान लड़का है और केवल बुद्धिमान लड़के ही परीक्षा में उत्तीर्ण होते हैं।

उत्तर—इसमे 'हरि परीक्षा मे उत्तीर्ण हो सकता है,' यह निष्कर्ष है। इसे तार्किक आकार मे व्यक्त करने पर इस प्रकार कहेगे—हरि एक लडका है, जो परीक्षा मे उत्तीर्ण हो सकता है। यह 'आ'-तर्कवाक्य है क्योकि यह स्वीकारात्मक है और इसका उद्देश्य निश्चित पद है, जो कि अपने पूर्ण निर्देश मे प्रयुक्त हुआ है।

अब यह स्पष्ट है कि निष्कर्ष का उद्देश्य अर्थात् 'हरि' पक्ष है, अत. वह आश्रयवाक्य जिसमे यह पक्ष होगा, पक्षवाक्य वनेगा। अत "वह (अर्थात् हरि) बुद्धिमान लडका है" पक्ष-वाक्य होगा। दूसरा तर्कवाक्य जिसमे निष्कर्ष का विधेय (अर्थात् 'जो परीक्षा मे उत्तीर्ण हो सकता है') पद आता है, वह साध्यवाक्य होगा। अत "केवल बुद्धिमान लडके ही परीक्षा मे उत्तीर्ण हो सकते है" यह साध्यवाक्य हुआ। परन्तु यह तर्कवाक्य शुद्ध तार्किक आकार मे नही है। इसका तार्किक-रूप यह होगा—"सब लड़के जो परीक्षा मे उत्तीर्ण होते है, बुद्धिमान है।" यह 'आ'-तर्कवाक्य है।

अत दी हुई युक्ति को तार्किक आकार मे इस प्रकार लिखेगे
सब लडके जो परीक्षा मे उत्तीर्ण होते है, बुद्धिमान लडके है।
हरि बुद्धिमान लड़का है।
∴ हरि एक लडका है, जो परीक्षा मे उत्तीर्ण होता है।

इसमे हम देखते है कि हेतु 'बुद्धिमान लडका' (जो दोनों आश्रय वाक्यो मे विद्यमान है) एक बार भी आश्रयवाक्यो मे व्याप्त नही है। न्यायवाक्य के नियमो के अनुसार हेतु कम से कम एक वार न्यायवाक्य में व्याप्त होना चाहिए। यहाँ इस नियम का उल्लघन हुआ है, अतः इस युक्ति मे **अव्याप्त-हेतु** का आभास है।

(२) यह पदार्थ स्वर्ण नहीं हो सकता क्योंकि यह बहुमूल्य नहीं है।

यह एक संक्षिप्त न्यायवाक्य है, क्योंकि इसमे तीन के स्थान पर केवल दो तर्कवाक्य है। इसका निष्कर्ष 'यह पदार्थ स्वर्ण नही हो सकता', तार्किक आकार मे इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है 'यह पदार्थ वह नही है जो स्वर्ण हो सकता हो।' यह 'ए' तर्कवाक्य है क्योकि इसमे निषेध का चिह्न है तथा इसका उद्देश्य निश्चित विशिष्ट पद है।

दिया हुआ आश्रय 'यह बहुमूल्य नही है' पक्षवाक्य है, क्योकि निष्कर्ष का उद्देश्य 'पदार्थ' इसमे 'यह' सर्वनाम के रूप मे प्रयुक्त हुआ है। तार्किक आकार मे इसका स्वरूप निम्नलिखित होगा—

'यह पदार्थ स्वर्ण नही है।' यह 'ए' तर्कवाक्य है। अब हमे साध्यवाक्य निश्चित करना है। इस युक्ति का साध्य 'स्वर्ण' है, क्योकि वह निष्कर्ष का विधेय है। हेतु 'बहुमूल्य' है क्योकि वह पक्षवाक्य मे विद्यमान है, परन्तु 'पक्ष' नही है। अत हम साध्यवाक्य इस प्रकार बना सकते है 'स्वर्ण बहुमूल्य है।' इसलिए निम्नलिखित न्यायवाक्य बनता है·

स्वर्ण बहुमूल्य है।
यह पदार्थ बहुमूल्य नही है।
यह पदार्थ स्वर्ण नही है।

यह युक्ति शुद्ध है क्योकि यह 'कामेस्ट्रेस्' (Camestres) है, जो कि द्वितीय आकार मे सिद्ध सयोग है।

(३) बिल्ली अवश्य ही दूर होनी चाहिए क्योंकि चूहे खेल रहे हैं और जब बिल्ली दूर होती है, तो चूहे खेलते हैं।

उत्तर —स्पष्ट है कि "बिल्ली अवश्य ही दूर होनी चाहिए" निष्कर्ष है। 'क्योकि' से प्रारभ होने वाले शेष दोनो तर्कवाक्य आश्रय है। जब हम आश्रय का परीक्षण करते है तो विदित होता है कि "जब बिल्ली दूर होती है तो चूहे खेलते है" एक हेतुफलाश्रित तर्कवाक्य है, जिसमे 'जब' 'यदि' का समानार्थी है। दूसरा तर्कवाक्य निरपेक्ष है। अत दी हुई युक्ति हेतुफलाश्रित-निरपेक्ष न्यायवाक्य के रूप मे है। यथा—

यदि बिल्ली दूर होती है, तो चूहे खेलते हैं।

चूहे खेलते है।
∴ बिल्ली दूर है।

यह दोषपूर्ण है क्योकि इसमे **'उत्तरांग की स्वीकृति'** (Affirming the Consequent) का दोष है। पक्षवाक्य साध्यवाक्य के उत्तराग को स्वीकार करता है, तथा निष्कर्ष साध्य-वाक्य के पूर्वाग को स्वीकार कर रहा है। यह नियम-विरुद्ध बात है।

(४) **जनरल सेना पर शासन करता है; उसकी पत्नी जनरल पर शासन करती है। अतएव जनरल की पत्नी सेना पर शासन करती है।**

उत्तर—तार्किक आकार मे रखने से यह युक्ति इस प्रकार होगी—

जनरल वह व्यक्ति है, जो सेना पर शासन करता है।
जनरल की पत्नी वह व्यक्ति है जो जनरल पर शासन करती है।
∴ जनरल की पत्नी वह व्यक्ति है, जो सेना पर शासन करती है।

इस युक्ति मे **चतुष्पदी-दोष** (Fallacy of Four Terms) है क्योकि इस न्यायवाक्य मे निम्नलिखित चार पद है। यथा—(१) जनरल (२) वह व्यक्ति जो सेना पर शासन करे (३) जनरल की पत्नी तथा (४) वह व्यक्ति जो जनरल पर शासन करे।

(५) **यदि गुण ज्ञान है तो उसकी शिक्षा दी जा सकती है। परन्तु गुण के शिक्षक कहाँ है ?**

इस युक्ति को तार्किक आकार मे बदल कर इस प्रकार लिखेगे :—
यदि गुण ज्ञान है, तो उसके शिक्षक होगे।
गुण के शिक्षक नही है।
∴ गुण ज्ञान नही है।

यह एक हेतुफलाश्रित-निरपेक्ष न्यायवाक्य है जिसमे उत्तराग को अस्वीकार करने पर पूर्वाग को अस्वीकार किया गया है। अत यह युक्ति शुद्ध है।

(६) **वह एक मधुमक्खी है; उसे मत छूओ; वह काट लेगी।**

इसका तार्किक आकार निम्नलिखित है :—

यदि तुम मधुमक्खी को छूओगे, तो वह काट लेगी।

तुम मधुमक्खी को छूते हो।

∴ वह काट लेगी।

यह हेतुफलाश्रित-निरपेक्ष न्यायवाक्य शुद्ध है क्योकि इसमे पूर्वांग को स्वीकार कर के उत्तरांग को स्वीकार किया गया है।

(६) **चतुर व्यक्तियों को छोड़कर कोई भी भला नहीं और भले व्यक्तियों को छोड़कर कोई भी सुखी नहीं।**

तार्किक आकार मे व्यक्त करने पर यह न्यायवाक्य इस प्रकार होगा—

सब भले व्यक्ति चतुर व्यक्ति है।
सब सुखी व्यक्ति भले व्यक्ति है।
∴ सब सुखी व्यक्ति चतुर व्यक्ति है।

यह युक्ति **'बार्बारा'** (Barbara) प्रथम आकार के सिद्ध सयोग मे है, अत शुद्ध है।

(७) **पढ़ेलिखे व्यक्ति कभी-कभी पागल हो जाते हैं; परन्तु क्योंकि वह पढ़ालिखा नहीं है, अतः उसके पागल होने का खतरा नहीं है।**

शुद्ध तार्किक आकार मे रखने से निम्नलिखित न्यायवाक्य बनेगा—

'ई' कुछ पढेलिखे व्यक्ति पागल है।
'ए' वह पढालिखा व्यक्ति नही है।
∴ 'ए' वह पागल नही है।

इस युक्ति मे **अवैध-साध्य का दोष** है क्योकि निष्कर्ष का विधेय अर्थात् साध्य व्याप्त है परन्तु वह साध्यवाक्य मे व्याप्त नही है।

(८) **क्या दुखी व्यक्तियों की सहायता करना पुण्य नही है? सचमुच है। पुलिस की हिरासत में जो व्यक्ति है, क्या वे दुखी**

नहीं है? सचमुच है। तब सचमुच ही मुझे उनको पुलिस की हिरासत से छुड़ाना चाहिए।

इस युक्ति का तार्किक आकार निम्नलिखित है

सब दुखी व्यक्ति वे व्यक्ति है, जिनकी सहायता करनी चाहिए।

पुलिस की हिरासत मे ये अपराधी दुखी हैं।

∴ पुलिस की हिरासत मे ये अपराधी वे व्यक्ति है, जिनकी सहायता करनी चाहिए।

साध्यवाक्य मे 'हेतु' 'दुखी व्यक्ति' सामान्य अर्थ मे लिया गया है परन्तु पक्षवाक्य मे उसका अर्थ है 'किसी अपराध को करने के कारण दुखी' अत इस युक्ति मे **उपाधि-भेद दोष** है।

(९) उसको ज्वर है क्योंकि उसका शरीर गर्म है।

इस युक्ति को पूर्ण रूप से व्यक्त करने पर निम्नलिखित न्याय-वाक्य बनता है .

यदि ज्वर हो, तो शरीर गर्म हो जाता है।

शरीर गर्म हो जाता है।

∴ ज्वर है।

इसमे **उत्तरांग की स्वीकृति** का दोप है।

(१०) यदि वह कहता है कि उसने चोरी नही की, तो मैं पूछता हूँ कि उसने अपना सामान छिपाने का प्रयत्न क्यों किया, जैसा कि कोई चोर करने में नहीं चूकता ?

इस युक्ति का तार्किक आकार निम्नलिखित होगा :

सब चोर वे व्यक्ति है, जो अपना सामान छिपाने का प्रयत्न करते हैं।

वह एक व्यक्ति है, जो अपना सामान छिपाने का प्रयत्न करता है।

∴ वह चोर है।

स्पष्ट है कि इस युक्ति मे **अव्याप्त-हेतु** का दोष है क्योकि हेतु एक भी आश्रय मे व्याप्त नही है।

(११) तुम वह नही हो, जो मैं हूँ। मै एक मनुष्य हूँ। अतः तुम मनुष्य नहीं हो।

इस युक्ति का तार्किक आकार निम्नलिखित होगा—
तुम वह नही हो, जो मैं हूँ।
मैं मनुष्य हूँ।
∴ तुम मनुष्य नही हो।

इस युक्ति में **उपाधि-भेद दोष** है क्योकि हम ऐसी बात से जो किसी एक विशेष परिस्थिति मे सत्य हो, एक ऐसी बात पर तर्क करते है, जो किसी अन्य परिस्थिति मे सत्य हो।

(१२) नौ, 'चार और पॉच' है। परन्तु 'चार' और 'पॉच' दो सख्याये है। अतः 'नौ' दो संख्याये है।

इस युक्ति का तार्किक आकार निम्नलिखित होगा—
'चार' और 'पाच' दो सख्याये है।
'नौ', 'चार और पॉच' है।
∴ 'नौ' दो सख्याये है।

इस युक्ति मे 'चार' और 'पॉच' अलग-अलग दो सख्याये है परन्तु 'चार और पॉच' सामूहिक रूप मे 'नौ' होते है। अत यहाँ हम व्यष्ट्यर्थ मे समष्ट्यर्थ की ओर तर्क कर रहे है। इसलिए **रचना का दोष** है।

प्रश्नमाला १७

(क) भारतीय न्याय :

(१) हेतु किसे कहते है ? हेतु तथा हेत्वाभास मे भेद बतलाइए। विभिन्न हेत्वाभासो के नाम लिखिए और प्रत्येक का उदाहरण दीजिए। (उ० प्र० १९४६)

(२) तीनो प्रकार के सव्यभिचार हेतु को समझाइए। पाश्चात्य तर्कशास्त्र मे उनके अनुरूप कौन से आभास है ? (उ० प्र० १९४८)

(३) हेत्वाभास किसे कहते है ? बाधित तथा विरुद्ध हेत्वाभास की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए। (उ० प्र० १९४६)

(४) निम्नलिखित हेत्वाभासो मे से किन्ही दो की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए :—

(क) सव्यभिचार हेतु । (उ० प्र० १९५०, १९५१)
(ख) असिद्ध हेतु । (उ० प्र० १९५०, १९५१)
(ग) विरुद्ध हेतु । (उ० प्र० १९५०)
(घ) सत्प्रतिपक्ष हेतु । (उ० प्र० १९५०)

(ख) युक्तियो का परीक्षण

निम्नलिखित युक्तियो को न्यायवाक्य के रूप मे रखिए तथा उनकी विशुद्धि का परीक्षण कीजिए और यदि उनमे कोई आभास हो, तो उनका उल्लेख कीजिए ।

चतुष्पदी आभास
(Fallacy of Four Terms)

(१) जनरल सेना का शासन करता है; जनरल की पत्नी जनरल का शासन करती है, अत. जनरल की पत्नी सेना का शासन करती है।

(२) भारतवर्ष मे बगाल निहित है, वगाल मे वम्वई निहित नही है। अत भारतवर्ष मे बम्बई निहित नही है।

(३) थैमिस्टोक्लीज का पुत्र अपनी माँ पर शासन करता था, वह अपने पति पर शासन करती थी, वह एथेन्स पर शासन करता था और एथेन्स ग्रीस पर शासन करता था। अतः थैमिस्टोक्लीज का पुत्र ग्रीस पर शासन करता था।

(४) परमात्मा ने मनुष्य का सृजन किया, मनुष्य ने पाप का सृजन किया। अत परमात्मा ने पाप का सृजन किया।

(५) प्रत्येक मुर्गी अण्डे से निकलती है, प्रत्येक अण्डा एक मुर्गी से निकलता है। इसलिए प्रत्येक अण्डा एक अण्डे से निकलता है।

अव्याप्त-हेतु का दोष
(Fallacy of Undistributed Middle)

(६) मै प्रवेश पा सकूँगा क्योकि मै प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण हुआ हूँ और केवल प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण व्यक्ति ही प्रवेश पा सकते है।

(७) यह व्यक्ति ईमानदार है, क्योंकि यह अपना कर्त्तव्य पालन करता है और सब ईमानदार व्यक्ति अपना कर्त्तव्य पालन करते हैं।

(८) यह तुम कैसे कह सकते हो कि वह सावधान परीक्षक नही है, जबकि वह प्रश्न-पत्रो को जाँचने मे बडा कठोर है, जैसे कि सब सावधान परीक्षक होते है ?

(९) अरस्तू एक महान् नैयायिक था क्योंकि वह एक दार्शनिक था और सब महान् नैयायिक दार्शनिक होते है।

(१०) भारतीय होने के कारण वह हिन्दू होगा क्योंकि केवल भारतीय ही हिन्दू होते है।

(११) महान् व्यक्ति सामान्यतया सनकी होते है, तुम सनकी हो, अत तुम महान् व्यक्ति हो।

(१२) सुकरात चतुर था और केवल चतुर मनुष्य ही सुखी होते है। अत सुकरात सुखी था।

(१३) यदि वह कहता है कि उसने सामान नही चुराया तो मै पूछता हूँ कि उसने सामान छिपाने का प्रयत्न क्यो किया, जैसा करने मे कोई चोर नही चूकता ?

(१४) यदि वह कहता है कि वह झूठा नही है, तो मै पूछता हूँ कि वह झेप क्यो गया, जैसा कि सब झूठे करते हैं ?

(१५) केवल गर्म देशो मे ही शराब बनती है। स्पेन एक गर्म देश है; अत स्पेन में शराब बनती है।

अनेकार्थक साध्य का दोष

(Fallacy of Ambiguous Major)

(१६) कन्नौज के रहनेवाले कन्नौजिया है।
रामसिह क्षत्री कन्नौज का रहनेवाला है।
∴ रामसिह क्षत्री कन्नौजिया है।

[यहाँ साध्यवाक्य में 'कन्नौजिया' का अर्थ कन्नौज मे रहने वाले तथा निष्कर्ष मे 'कन्नौजिया (कान्यकुब्ज) ब्राह्मण' के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है।]

अनेकार्थक पक्ष का दोष

(Fallacy of Ambiguous Minor)

(१७) उत्तम खाद्यपदार्थ स्वास्थ्यवर्धक है। सेधव (=नमक) उत्तम खाद्यपदार्थ है। अत सेधव (=घोडा) स्वास्थ्यवर्धक है

अनेकार्थक हेतु का दोष

(Fallacy of Ambiguous Middle)

(१८) सब आचार्य पडित होते है। यह ब्राह्मण आचार्य है। अतएव यह ब्राह्मण पडित है। [इसमे 'आचार्य' का अर्थ साध्य-वाक्य मे तो 'आचार्य-परीक्षा-पास' तथा निष्कर्ष मे 'कर्म करानेवाला' है।]

अवैध-साध्य का दोष

(Fallacy of Illicit Major)

(१९) सब हिन्दू आर्य है, कोई भी पारसी हिन्दू नही है। अत. कोई भी पारसी आर्य नही है।

(२०) वह अन्धविश्वासी नही है क्योकि सब अज्ञानी व्यक्ति अन्धविश्वासी होते है और वह अज्ञानी नही है।

(२१) चमगीदडो के पर नही होते क्योकि वे पक्षी नही है और सब पक्षियो के पर होते है।

(२२) सब मनुष्य मेहनती नही होते। परन्तु मोहन मेहनती है, अत. वह मनुष्य नही हो सकता।

(२३) प्रत्येक सैनिक अपने देश की सेवा करता है। स्त्रियाँ सैनिक नही है। अत. स्त्रियाँ अपने देश की सेवा नही करती।

अवैध-पक्ष का दोष

(Fallacy of Illicit Minor)

(२४) सब अपराधियो को दण्ड मिलना चाहिए। कुछ अग्रेज अपराधी है। अत सब अग्रेजो को दण्ड मिलना चाहिए।

(२५) कुछ जर्मन यहूदी है। सब जर्मन चतुर है। अत सब यहूदी चतुर है।

(२६) सब मनुष्य विचारशील है; सब विचारशील व्यक्ति प्रगतिशील व्यक्ति है। इसलिए सब प्रगतिशील व्यक्ति मनुष्य है।

उपाधि-भेद-दोष
(Fallacy of Accident)

(२७) जो कोई भी जान-बूझ कर दूसरे व्यक्ति के शरीर पर छुरा चलाता है उसे कानूनन् दण्ड मिलता है। चीरफाड करते समय डाक्टर ऐसा करता है, अत उसे कानूनन् दण्ड मिलना चाहिए।

(२८) भोजन जीवन के लिए आवश्यक है। चावल भोजन है, अत चावल जीवन के लिए आवश्यक है।

(२९) जो एक व्यक्ति करता है, वह दूसरा व्यक्ति भी कर सकता है, क्या महात्मा गाधी मनुष्य नही थे? तो जो कुछ उन्होने किया, वह मै क्यो नही कर सकता?

(३०) प्रत्येक मनुष्य के अधिकार समान है, अत 'क' को एक हजार वार्षिक पाने का अधिकार होना चाहिए, क्योकि 'ख' को वह अधिकार प्राप्त है।

(३१) तुम वह नही हो, जो मै हूँ। मै मनुष्य हूँ। अत तुम मनुष्य नही हो।

विभाग का दोष
(Fallacy of Division)

(३२) कालिदास की सब रचनाये एक दिन मे नही पढी जा सकती। 'अभिज्ञान शाकुन्तल' कालिदास की रचना है। अत. उसे एक दिन मे नही पढा जा सकता।

(३३) इस देश के सब व्यक्ति अकालपीडित है, तुम इस देश के व्यक्ति हो। अत. तुम अकालपीडित हो।

(३४) तेरह एक सख्या है। छ और सात तेरह है। अत 'छ: और सात' एक संख्या है।

(३५) वे सब व्यक्ति इस कार्य के लिए पर्याप्त है। तुम उनमे से एक हो। अत. तुम इस कार्य के लिए पर्याप्त हो।

रचना का दोष
(Fallacy of Composition)

(३६) काशी का प्रत्येक नागरिक कुछ सात छटाक राशन पाता है। यहाँ के विश्वविद्यालय के सब अध्यापक काशी के नागरिक है। अत यहाँ के सब अध्यापक कुल सात छटाक राशन पाते है।

(३७) पाँच और आठ विषम और सम है। तेरह पाँच और आठ है। अत तेरह विषम और सम है।

(३८) मै 'क' या 'ख' या 'ग' खरीद सकता हूँ अतएव मै 'क' और 'ख' और 'ग' खरीद सकता हूँ।

पूर्वाङ्ग की अस्वीकृति का दोष
(Fallacy of Denying the Antecedent)

(३९) यदि मनुष्यो की आत्मा स्वतन्त्र है तो वे अपने कार्यो के लिए उत्तरदायी है। परन्तु मनुष्यो की आत्मा स्वतन्त्र नही है, अत. वे अपने कार्यों के लिए उत्तरदायी नही है।

(४०) यहाँ अग्नि नही हो सकती क्योकि यहाँ धूम्र नही है और जहाँ धूम्र होता है वही अग्नि होती है।

उत्तराङ्ग की स्वीकृति का दोष
(Fallacy of Affirming the Consequent)

(४१) यदि कोई व्यक्ति अपराधी है तो उसे दण्ड मिलता है, परन्तु उसे दण्ड मिला, अत वह अपराधी है।

(४२) यदि कोई विद्यार्थी मेहनत करता है तो वह परीक्षा मे उत्तीर्ण हो जाता है। वह परीक्षा मे उत्तीर्ण हुआ; अत. उसने मेहनत की।

(४३) बिल्ली दूर होनी चाहिए क्योकि चूहे खेल रहे है और जब बिल्ली दूर होती है, तभी चूहे खेलते है।

(४४) यदि तुम मेहनत करते हो, तो तुमको पुरस्कार मिलता है। अत. तुमने मेहनत की होगी क्योकि तुमको पुरस्कार मिला।

(४५) रात को वर्षा हुई होगी क्योकि धरती गीली है।

वस्तुगत-अशुद्धि युक्त उभयतोपाश
(Materially fallacious Dilemma)

(४६) यदि मनुष्य पवित्र है तो नियम बेकार है, और जब मनुष्य अपवित्र है, तो वे नियमो का उल्लघन करेंगे ही। अत. नियम बेकार है।

(४७) नैतिक शिक्षाये व्यर्थ है क्योकि भले व्यक्तियो को उनकी आवश्यकता नही होती और बुरे व्यक्ति उनकी परवाह नही करते।

(४८) अपने बारे मे न तो अच्छी और न बुरी बात कहो। यदि अच्छी बात कहोगे तो मनुष्य विश्वास नही करेंगे, यदि बुरी बात कहोगे तो वे उसमे नमक-मिर्च मिलाकर और अधिक बुरी बात का प्रसार करेंगे।

(४९) कविता या तो सत्य होगी अथवा असत्य। यदि वह असत्य है तो वह भ्रामक होती है, यदि वह सत्य होती है तो वह इतिहास का छद्मवेष ही होती है। यही कारण है कि विचारवान व्यक्ति कविता का अध्ययन नही करते।

(५०) यदि मेरे भाग्य मे मृत्यु है तो कोई चिकित्सक मुझे नही बचा सकता, यदि मेरे भाग्य मे जीना बदा है तो चिकित्सक अनावश्यक है। फिर चिकित्सक को बुलाने का व्यय क्यो किया जाय?

सक्षिप्त न्यायवाक्य
(Enthymeme)

(५१) अफ्रीका मे उत्पन्न होने के कारण वह स्वभावत काला है।

(५२) ये सब व्यक्ति भले नागरिक है क्योकि केवल भले नागरिक ही नियमो का पालन करते है।

(५३) नारी! तेरा नाम दुर्बलता है!

हेतुफलाश्रित-निरपेक्ष न्यायवाक्य

(Hypothetical-Categorical Syllogism)

(५४) यदि कोई व्यक्ति वृत्त को चौकोर वना सके तो वह वहुत वडा गणितज्ञ होगा। परन्तु ऐसा कोई नही कर सकता।

(५५) यदि ओस न गिरे तो मौसम बुरा होता है। परन्तु ओस गिरी है अत मौसम अच्छा होगा।

वैकल्पिक-निरपेक्ष न्यायवाक्य

(Disjunctive-Categorical Syllogism)

(५६) उसने एम० ए० की परीक्षा मे पाली का पर्चा नही दिया क्योकि परीक्षार्थी या तो सस्कृत का पर्चा दे सकते थे, या पाली का और उसने सस्कृत का पर्चा दिया।

परिशिष्ट

U. P. Board : Intermediate Examination 1954.

Deductive Logic.

टिप्पणी —केवल पाँच प्रश्नो के उत्तर लिखिए।
इनमे प्रश्न ८ और ९ अनिवार्य है।

(१) विज्ञान (Science) किसे कहते है ? विज्ञान और कला (Art) मे क्या अन्तर है ? तर्कशास्त्र कला है, अथवा विज्ञान, इस विषय पर अपना मत प्रकट कीजिए।

(२) पद (term) और शब्द (word) मे क्या अन्तर है ? पदो का वर्गीकरण कीजिए और प्रत्येक वर्ग की उदाहरणपूर्वक व्याख्या कीजिए।

(३) तार्किक विभाग (Division) किसे कहते है ? उदाहरण देकर तार्किक विभाग और अन्य प्रकार के विभागो मे भेद बतलाइए।

(४) परिमाण (Quantity) और गुण (Quality) की दृष्टि से वाक्यो (Propositions) के भेद करके उनके उदाहरण देकर समझाइए।

(५) निम्नलिखित वाक्यो को तार्किक वाक्यो मे परिवर्तित कीजिए और उनके गुण (Quality) तथा परिमाण (Quantity) भी लिखिए—

(१) सभी चोर बदमाश नही होते ।
(२) केवल स्नातक ही वोट देने के अधिकारी है।
(३) थोडे ही मनुष्य ख्याति प्राप्त कर सकते है।
(४) प्रत्येक चोर डाकू नही होता।
(५) प्राय सभी लडके कक्षा मे उपस्थित थे।

(६) निम्नलिखित वाक्यों मे विरुद्ध-भाव (Contraposition), व्यत्यय (Inversion) और परिवर्तन (Conversion) द्वारा अनुमान निकालिए :—

(१) कोई मनुष्य पूर्ण नही है।

(२) कुछ ही मनुष्य उपस्थित न थे।

(७) सिद्ध कीजिए कि "Syllogism (पाश्चात्य अनुमान) की प्रथम आकृति (First Figure) मे मन्य वाक्य अवश्य सामान्य होना चाहिए। द्वितीय आकृति मे दोनों वाक्यो मे से एक वाक्य निषेधात्मक होना चाहिए।"

(८) भारतीय तर्कशास्त्र के अनुसार अनुमान का क्या स्वरूप है, उसे लिखिए और उसकी तुलना पाश्चात्य अनुमान (Syllogism) से कीजिए।

अथवा

हेत्वाभास किसे कहते है ? मुख्य हेत्वाभासो के नाम उदाहरण सहित लिखिए।

(९) निम्नलिखित तर्को मे से किन्ही चार की परीक्षा कीजिए और उनके दोषो को प्रकट कीजिए —

(क) सुरेश सज्जन है क्योकि वह धर्मात्मा है, और धर्मात्मा ही सज्जन होते है।

(ख) पैसेजर गाडियो के सिवाय इस स्टेशन पर कोई गाडी नही ठहरती। यह जो गाडी गई है, पैसेजर नही हो सकती क्योकि वह इस स्टेशन पर नही ठहरी।

(ग) मेरे हाथ मेज को छूता है और मेज पृथ्वी को छूती है। अतएव मेरा हाथ पृथ्वी को छूता है।

(घ) वह अवश्य ही हिन्दू है क्योकि वह भारतीय है। केवल भारतीय ही हिन्दू होते है।

(ङ) चम्पा फूल है, फूल वनस्पति (Vegetable) है, वनस्पति प्राणी है। अतएव चम्पा प्राणी है।

(च) भारतीय शांतिप्रिय राष्ट्र है, श्री जयकर भारतीय है, इसलिए वह शांतिप्रिय है।

१९५५

इण्टरमीडिएट परीक्षा

तर्कशास्त्र

प्रथम प्रश्नपत्र

(नैगमनिक तर्कशास्त्र)

समय—३ घंटे] [पूर्णांक ५०

सूचना—केवल पाँच प्रश्नो का उत्तर दीजिये। प्रश्न सख्या ७ तथा ९ अनिवार्य है।

१ विचार के नियमो को लिखिये तथा समझाइये।

२. पदो के निर्देश (denotation) तथा गुण (Connotation) से आप क्या समझते है ? यह कथन कहाँ तक सत्य है कि पद के निर्देश तथा गुण का प्रतिलोम अनुपात मे परिवर्त्तन होता है ?

३ वाच्य-धर्म (Predicables) क्या है ? उपयुक्त उदाहरण देकर उन वाच्य-धर्मों को समझाइए जिनके बारे मे आपने पढा है।

४ उदाहरण देकर निम्नलिखित विषयो के तात्पर्य को पूर्णत स्पष्ट समझाइए :—

(अ) विभाजक धर्म (Fundamental divisionis)

(ब) अत्य-जाति (Infima Species)

(स) विभाग-सकरता (Cross division)

५ वाक्य के किसी पद की व्याप्ति का क्या अभिप्राय है ? वाक्य (Propositions) के चारो विभाग मे से पत्येक मे कौन-से पद व्याप्त है और क्यो ?

६ तर्कशास्त्र मे प्रतिमुखता (Opposition) से आप क्या समझते है ? यदि यह वाक्य सत्य हो कि "कुछ मनुष्य सच्चे नही है", तो सभी तर्कशास्त्रीय

प्रतिमुखताएँ (logical opposites) बतलाइए और उनके लक्षण (Charateristics) दीजिये।

७. हेत्वाभास क्या है? उदाहरण-सहित हेत्वाभास के मुख्य भेद बतलाइये।

८. न्यायवाक्य (Syllogism) के आकार (Figure) और संयोग (Mood) का क्या अर्थ है? सिद्ध कीजिये कि सिद्ध-न्याय-वाक्य (Valid Syllogism) के प्रथम आकार मे (अ) पक्ष-वाक्य (Minor Premise)) अवश्य भावात्मक (affirmative) होना चाहिए तथा (ब) साध्य-वाक्य (Major Premise) अवश्य सामान्य (Universal) होना चाहिए।

९ निम्नलिखित अनुमानो मे से किन्ही चार की परीक्षा कीजिये और यदि कोई दोष हो तो उन्हे बतलाइये —

(क) दूध सफेद है, सफेद एक रंग है, अत दूध रंग है।

(ख) गधे के चार पैर होते है, इस मेज के चार पैर है, अत. यह मेज गधा है।

(ग) सभी मनुष्य मर्त्य है, सभी कुत्ते मर्त्य है, अत. कुछ कुत्ते मनुष्य है।

(घ) उसको निस्सदेह रुपये की आवश्यकता है; क्योकि यदि वह अमीर है, उसको रुपयों की आवश्यकता नही है, परन्तु वह अमीर नही है।

(ङ) यह कार्य अनैतिक है क्योकि यह सुदृढ नैतिक सिद्धान्तो के विरुद्ध है।

(च) उत्तर प्रदेश बिहार के बगल मे है, बिहार बंगाल के बगल में है, अत उत्तर प्रदेश बंगाल के बगल मे है।

(छ) चार तथा पाँच विषम तथा सम है, परन्तु चार और पाँच नौ होते है, अत. नौ विषम तथा सम है।

(ज) मुझे किसी डाक्टर की सलाह नही लेनी चाहिए क्योकि मैं जानता हूँ कि मेरे सभी मित्रो ने जिनकी गत वर्ष मृत्यु हुई थी डाक्टरो की सलाह ली थी।

———

OPINIONS.

Professor B. N. ROY'S LOGIC.

ENGLISH, BENGALI AND HINDI EDITION

Dr. SARVAPALLI RADHAKRISHNAN

"I have no doubt that these books are sui admirably for the needs of the Intermedi students in our Indian Universities".

ENGLISH EDITION

DEDUCTIVE		INDUCTIVE.
1st Edition	1930	1st Edition
2nd Edition	1932	2nd Edition
3rd Edition	1933	3rd Edition
4th Edition	1935	4th Edition
5th Edition	1937	5th Edition
6th Edition	1938	6th Edition
7th Edition	1940	7th Edition
8th Edition	1942	8th Edition
9th Edition	1944	9th Edition
10th Edition	1944	10th Edition
11th Edition	1945	11th Edition
12th Edition	1947	12th Edition
13th Edition	1948	13th Edition
14th Edition	1949	14th Edition
15th Edition	1950	15th Edition
16th Edition	1951	16th Edition
17th Edition	1953	
18th Edition	1954	

Professor Humayun Kabir, M.A. B.A (OXON), **Calcutta University:**

"I have read some portions of your books Need I say that a work by so experienced and well-known a teacher as you is sure to be of great use to students"

CONSTITUENT COLLEGES

(In alphabetical order)

Professor Bejoy Gopal Sarkar, M.A , **Asutosh College:**

"I have gone through your excellent works on Logic and am glad to tell you that they are *pre-eminently suitable for students* taking up Logic as one of their subjects for their Intermediate Examination is Arts The principles of the science have been dealt with in a comprehensive and methodical manner, and explained in clear and lucid style; what is better still is that elaborate hints have been given so that students may not find any difficulty in working out practical examples I have recommended the books to my students and have found that they use them with considerable profit to themselves."

Professor Katyayanidas Bhattacharya, M A , **Asutosr College:**

"I have carefully gone through the book and have found it to be just what the students need most at present. Professor Roy's English Logic is very popular to I A students, and I am sure Professor Roy's Bengali Logic will be in no way less popular."

Professor Mohitosh Ray Choudhuri, M A , **Bangabasi College:**

"The books have been always recommended by me."

Professor N. N. Sen Gupta, M A , **Bangabasi College:**

"I thank you verv much for sending me a copy of your Inductive Logic I can well recommend it to students as I did your book on Deductive Logic as a useful handbook for beginners"

Professor Sasanka Sekhar Banerjee, M A., **Bankura College:**

"The book really deserves strong recommendation to the new students of Logic and I am sure *it will supplant the other books* in course of two or three years"

Principal (Mrs.) Tatini Das, M A , **Bethune College:**

"A *concise but clear statement* of the problems of Logic is a special feature of the two volumes Professor Roy has a peculiar knack for anticipating the difficulties of novices and meeting them in a way which proves him to be a born teacher of Logic."

Professor Narendra Nath Hazra, M A , **Burdwan Raj College, Burdwan:**

"I am trying my best to push your book through"

Professor Promod Ranjan Bhar, M A , **Dupleix College, Chandernagore:**

"Your treatises on Logic mark a definite deviation from the common practice Clearly do they show that the writer has just grasped the subject as a whole and then held the pen I am quite sure that your valuable volumes will lead the students to the very heart of the subject although they will not feel the least strain on their part"

Principal Rani Ghosh, M A , **Gokhale Memorial Girls' College, Calcutta:**

"The TEXTBOOKS OF DEDUCTIVE AND INDUCTIVE LOGIC by Prof Roy are written in lucid style, and can be recommended for the Intermediate Arts students"

Professor Ranada Ranjan Chakravarti, M A , **Vice-Principal, Howrah Narasinha Dutta College:**

"I have already decided to adopt your books as text-books in my classes They are concise but not sketchy, and are admirably written in a style that is simple and easy-going I hope your 'TEXTBOOKS' have already made much headway in the field and *I am eagerly looking forward to the day when they will take their rightful places in the shelf of every student of Logic*"

Principal Dr. Nalini Kanta Brahma, M A., P R S , Ph D, **Principal, Hugli Moshin College, formerly, Senior Professor of Philosophy, Presidency College, Calcutta, and Krishnagar College, Lecturer, Calcutta University:**

"I have read the major portion of your books *The arrangement of the topics is systematic, and the discussions are clear and concise.* I think your books will very well suit the capacities of the average student You seem to be aware of the difficulties of the students, and I have not the least doubt that your books will be of great help to them"

Professor Haridas Chowdhury, M A , D.LITT., **Islamia College Calcutta, formerly, Eden Intermediate College for Girls, Dacca, and City College:**

(1) "I have recommended to my students Professor Roy's books *as among the best works on Logic for Intermediate students available* in the market The most remarkable feature of his works is, in my opinion, is that he has kept in his mind the needs and difficulties of the students for whom they are meant In handling the controversial issues, in explaining the fallacies, and other complicated points with a rich profussion of suitable illustrations, and in answering all model University Questions, the author has displayed admirable tact and wisdom I am perfectly sure that Professor Roy's works will serve their purpose exactly well"

(2) "I have been recommending to my students Professor Roy's TEXT-BOOKS ON LOGIC from the very beginning of my association with the City College I have no doubt that Professor Roy's books are *as invaluable for ambitious students as they are indispensable for average candidates* The author has always kept in mind the difficulties and requirements of those for whom he has written, and his treatment is throughout marked with perfect lucidity and system"

(3) "I have recommended Prof. Roy's books with emphasis to my students of Eden College"

Professor Tarak Bramha Chakravarti, M A , **K. C. College, Hetampur:**

"I have gone through your TEXT-BOOK OF LOGIC with delight *The books are decidedly advances* in the field to enable the students to get the subject more easily prepared The fundamentals of the subject-matter have been rendered *easy, being amply exemplified* The most useful and interesting feature of the books is the large number of arguments selected from University Papers and worked out with a view to helping the students to detect their errors"

Professor J. K. Sarkar, M A., **Krishna Chandra College, Hetampur:**

"We advised our students to follow your books as they are *really good books* on Logic."

Professor Nirode Behary Bhattacharya, M A , **K. C. College, Hetampur:**

"I am glad to find the TEXT-BOOKS suitable for our I.A. students I shall try to persuade my students to have these books, especially for their copious illustrations"

Professor Jatil Coomar Mookerjee, M A , **Krishnagar:**

"I already recommended the books to my students I read your books while I was a student, and I have been using them since the time when I began by career as a teacher of Logic."

Professor Bidhu Bhusan Sen Gupta, M A , **Krishnagar College:**

"The simple and lucid way in which the subject is introduced and the systematic procedure followed in presenting different topics, *not only solve the initial difficulties in the way of the beginners but render the whole field very easy of grasp* The various homely examples introduced in explaining things and the numerous solutions of questions and exercises inserted, add largely to the practical value of the treatise and render it more suitable than the ordinary Text-books

Professor Syama Prasad Banerjee, M A , B L , **Maharaja Manindra College, Calcutta:**

"The books were very useful to me when I was a student, and in course of my teaching the subject, I have judged it indispensable to the students The language is simple, the exposition clear and the method brilliant I have always recommended the books to my students who have secured very high marks by reading only those books"

Professor Aswini Kumar Dutt, M.A , **Midnapur College:**

"I generally recommend these books to my students and I have also done the same this year"

Professor Biraja Bandhaba Chatterjee, M A , **Midnapore College, Midnapore:**

"Professor Roy's Text-books on Logic are excellent beginners and the undersigned uses them as Text-books in the class room. Hints for working out exercises given at the end of each chapter and the marginal notes will prove very helpful to students preparing for the Intermediate Examination in Arts and the author style."

Professor R. C. Sen, M A , **P. K. College, Contai:**

"I have found your Text-books *very useful* and recommended them to my students"

Professor Aswini Kumar Nandi, M A , **Prafulla Chandra College, Bagerhat:**

"Both the volumes have been written in a clear, concise and

sensible manner and the different topics has been well-arranged You are an experienced and capable teacher and are thus familiar with the difficulties of young students Your endeavour to adapt your books to their requirements has, therefore, been creditably successful I have not the least doubt that your books will be of great use to the Intermediate students of our Universities I have recommended them to my students here and I have been told by them that they have really benefited by the publication of your books"

Rai Khagendra Nath Mitra Bahadur, M.A., **formerly, Head-Examiner and Paper Setter in Logic, Calcutta University; Professor of Philosophy, Presidency College, Calcutta; etc.:**

"I have much pleasure to note that Professor Bhola Nath Roy's DEDUCTIVE AND INDUCTIVE LOGIC has earned within a short time the recognition which it so well deserves He has been teaching the subject to thousands of students in a big Calcutta College and it can be expected from a man of his ripe scholarship and wide experience that his work will meet the requirements of the students who intend to master the subject thoroughly within the period of two years Mr Roy has written with the object of making Logic interesting and intelligible to those for whom it is intended—and if popularity is any proof of the success of a book the result must be surely gratifying to the author"

Dr. Mahendra Nath Sarkar, M A, Ph D, **formerly of Presidency and Sanskrit College, Lecturer, Calcutta University:**

"I have gone through Mr Roy's Logic, and am glad to be able to say that the book has been *written in an easy and graceful style* The subject has been explained in detail with close accuracy and the fine insight. The Chapters on Causation, Experimental Methods and Hypothesis in Induction, and Syllogism in Deduction, are really stimulating I am sure the book will be of real help to the students preparing for the Intermediate Examination"

Dr. Saroj Kumar Das, M A, Ph D, **Senior Professor of Philosophy, Presidency College, Stephanos, Nirmalendu Lecturer, Paper-setter and Examiner, Calcutta and other Universities:**

"It is a positive pleasure to testify to the excellence of the two volumes of Logic published by Professor Bholanath Roy, M.A Having gone through these two volumes carefully I am in a position to say that Prof Roy has in him the rare gift of sweet-reasonableness which entitles one to be a teacher of young minds What

particularly appeals to me is the *judicious sense of proportion and balance* which the author brings to the execution of his task"

Professor Amiya Kumar Mazumdar, M A., **Presidency College:**

"It will please you to learn that I used these books when I was a student of the Intermediate Classes and I can tell you that I derived immense help from hem Ever since I took teaching as a profession, I have been recommending Professor Roy's books to students, both mediocre and advanced I have no hesitation in saying that there are very few scholars so well-equipped for the task of writing a text-book on Logic as Professor Roy Professor Roy has the rare gift of presenting the abstract and difficult problems of Logic in a concise and lucid manner He is fully alive to the difficulties of the beginners and has arranged the topics so neatly that one can master the subject easily with the help of these volumes and without the guidance of a teacher
I am really delighted to go through them once again"

Swami Tejasananda, Principal, The Ramkrishna Mission Vidyamandira, Belur Math:

"I need hardly add that your book contains a very lucid presentation of the subject and meets in a beautiful way all the requirements of the Intermediate students of Logic I have been prescribing your book as a text-book in this college since 1941 and this year also it has been prescribed as a text-book for the I A. Students of this College. Your book which shows your masterly grasp of this difficult subject, has become very popular with the students and Professors of the Vidyamandira"

The Rev. Joseph Farassius, S C, **Salesian College, Sonada:**

"I have read them with interest I am sure the students will profit very much Their conciseness together with clarity of exposition will certainly be appreciated by both students and Professors who will have their work simplified Accept my best congratulations. I shall introduce the above text-books of Logic in our college."

Professor Nirmalendu Roy, M A, **Satkhira College:**

"I shall try my best to introduce your book to my students so that they may be benefited much by instructions from your book."

Professor Satyapriya Biswas, M A, **Scottish Church College:**

"I find that these TEXT-BOOKS *are of a high standard of merit* The chapters are well arranged, very clearly and completely dealt

with They are concise as well I am sure, these two volumes will prove a popular text-book The exercises with a sufficient hint to work them out will increase their value for students"

The Rev. John Heron, M A, B.D, S.T.M, **formerly of Scottish Church College:**

"It is my opinion that Professor B N Roy's TEXT-BOOK OF DEDUCTIVE LOGIC is well suited to meet the needs of the majority of I A students in Calcutta *Its conciseness* and *clarity of arrangement* make it easy for any conscientious student to master the elements of the subject without having to depend on much help from other sources As for Professor Roy's TEXT-BOOK OF INDUCTIVE LOGIC I find it useful for purposes of reference because of the ease with which what it has to say about any particular topic can be discovered"

Professor Subodh Kumar De, M.A., **Scottish Church College:**

"I have carefully gone through the two volumes of TEXT-BOOK OF LOGIC (DEDUCTIVE AND INDUCTIVE) by Professor Bhola Nath Roy. The books are written in a lucid style. The arrangement of topics is quite systematic The exposition of principles is illustrated by well chosen examples I have not doubt that the books will prove to be very useful to the Intermediate students of our University."

Professor Purna Chandra Sen, M A, **formerly of Scottish Church College, Calcutta:**

"As a successful and experienced teacher of the subject you have thorough insight into the capacities, requirements and difficulties of those for whom the above two volumes are meant, and this is quite evident everywhere in them The arrangement of subjects is quite logical The rules and principles of Deduction and Induction have been lucidly explained in clear and simple language, and illustrated by appropriate examples taken both from science and ordinary affairs of life To help the student a large number of problems have been worked out, while quite a good number of exercises given here and there will enable him to test his ability to apply practically the principles of Logic "The marginal notes will be very useful for a rapid revision of the subject at the time of examination In short, *the author has simplified and popularised the rather intricate subject of Logic* The book is eminently suited to the requirements of the I A students in Logic to whom it is strongly recommended"

Mr. Manindra Nath Banerjee, M.A, B.L, **Bar-at-Law, formerly of Scottish Church College:**

"I have gone through Professor Roy's TEXT-BOOK OF LOGIC

carefully and have adopted them as text-books for students in my college I have not the least hesitation in saying that *considered as text-books they are absolutely unrivalled* You have very properly emphasised the practical aspect of the science, which presents considerable difficulties to the beginner It is no wonder that your works have achived immense popularity with teachers and students alike within the comparatively short time of their publication"

Professor Sudhir Kumar Roy, M A, **Serampore College:**

"I shall recommend the book to my pupils as, I think, the book will prove useful to them for their examination"

Professor Giridhan Chatterjee, M A, **South Calcutta Girls' College:**

"I have carefully gone through the pages of the books and I am much impressed with the treatment of abstruse principles of Logic by tht author in such a way as to make it so easy for the students Copious illustrations and questions at the end of each chapter, with solutions where necessary, much enhance the value of the book. I have recommended the books to my students"

The Rev. Fr. H. Bampton, S J **Professor, St. Jeseph's College, Darjeeling, formerly, Professor, St. Xavier's College, Calcutta:**

"I think my opinion of the books can be sufficiently gauged from the fact that I have adopted it as the Text-book for St Joseph's College The book is excellent"

Professor N. C. Mitra, M A, **St. Xavier's College, Calcutta:**

"I have found them very useful to the students, so I at once took steps to introduce the same, as Text-books in our College, replacing The language, in Mr Bhola Nath Roy's texts, is quite definite and clear and the abstract and philosophical parts are so lucidly explained in simple English, that the students find them very easy and convenient for study I hope other sister Colleges will very soon introduce them and they will find them very useful to their students"

Principal Rabindra Narayan Ghosh, M A, **Surendranath College:**

"I have with great pleasure gone through Professor Bhola Nath Roy's TEXT-BOOK OF DEDUCTIVE and TEXTBOOK OF INDUCTIVE LOGIC I have no doubt that they will prove very useful to the students for whom they are intended. The language of the book is simple

and attractive The exposition is lucid throughout, and this is a point of great importance in a book dealing with an abstract subject. At the same time *the treatment is fresh and stimulating,* and in parts is marked by a distinct originality of presentation. I hope the author will soon utilise his remarkable talents in advanced original work in his subject, for which he appears to be so eminently fit"

Dr. Sushil Chandra Mitra, M A, D LITT **(Paris), formerly of Surendranath College, Presidency College:**

"I have read your recent publication on Logic—with considerable pleasure and have not the slightest hesitation in saying that *they are by far the best of their kind judged from all points of view.* The comprehensive treatment of the different topics, the lucid language in which the thoughts have been expressed and the emphasis you have laid on the practical aspect of the science leave nothing to be desired *The books have proved to be not a text-book but the text-book of Logic for Intermediate students in our Indian Universities*"

Professor Rabindra Nath Chakravarti, M A., **formerly of Burdwan Raj College, Sometime Principal Ramdia College; now Professor, Surendranath College:**

"These are the books which I can safely recommend to my students"

Professor Bejoy Kumar Ray, M A., **Surendranath College, Calcutta; formerly, Professor, B. B. College, Muzaffarpur, D. J. College, Monghyr, A. M. College, Mymensingh, etc.:**

"Students and teachers alike will welcome the publication of the 'TEXT-BOOK OF DEDUCTIVE LOGIC' and 'TEXT-BOOK OF INDUCTIVE LOGIC' by Professor Bhola Nath Roy. They are written on substantially new lines and present many new, interesting and instructive features and I have no doubt that *they are pre-eminently suitable as text-books* for the use of Intermediate students The reception which has been accorded to them within the comparatively short time of their publication has been fully deserved and I hope the time is not distant when *they will be universally used by the* students of the subject"

Professor Paresnath Bhattacharya, M A, **Victoria Institution and Women's College, Calcutta:**

"I have always recommended the books to my students in the Victoria Institution and Women's College"

Principal J. R. Banerjee, M.A., B.L, **formerly**

Principal, Vidyasagar College, Calcutta; Lecturer, Calcutta University, Paper-setter and Examiner, Calcutta University:

"TEXTBOOK OF DEDUCTIVE LOGIC and TEXTBOOK OF INDUCTIVE LOGIC by Bholanath Roy, Professor, Ripon College, Calcutta, are useful publications *The different topics that Intermediate Logic students have to study have been treated in these works thoroughly, yet concisely* There are certain features of them that make them specially adapted to the requirements of students of Intermediate Logic"

Principal K. C. Gupta, M A , **formerly of Vidyasagar College, Calcutta:**

"I was much favourably impressed by your clear and concise treatment *I really admire your sense of proportion which is, I am sorry to say, conspicuous by its absence from some books available in the market* I am sure your Text-book will be most useful to our I A candidates I sincerely wish your book a wide circulation which it highly deserves"

Professor Atul Chandra Das Gupta, M A , **Vidyasagar College, Calcutta:**

"I have gone through portions of your book and I have been quite *favourably impressed with many features* of your book. You seem to have *stated the problems with great lucidity and thoroughness* Your quotations also seem to be very appropriate. The book shall be welcomed by teacher and student alike"

Professor Sukumar Mukherjee, M A , **Vidyasagar College, Calcutta:**

"I have gone through your books with considerable interest and have found them to be publications of intrinsic merit Clear, concise and at once rich with illustrations, exercises and apt quotations, these volumes have well nigh attracted the attention of students and teachers alike I can confidently say that they will prove very useful to students of Intermediate Logic for whose requirements they are admirably suited"

Professor Benoy Gopal Ray, M A , **Vishva-Bharati:**

"B N Roy's DEDUCTIVE and INDUCTIVE LOGIC are amply suited for the requirements of Intermediate students of Indian Universities The essentials of Logic have been presented in a clear and concise manner. In the book examples are copious and the fallacies have been exhaustively dealt within"

DACCA UNIVERSITY.

Professor Haridas Bhattacharya, M A., B L , P.R.S , **Head of the Department of Philosophy, Dacca University; Paper-setter and Examiner, Dacca, Calcutta and other Universities; formerly, Lecturer, Calcutta University and Professor, Scottish Church College, Calcutta:**

"I have read your book with interest and with sufficient care to be able to tell you that I found it *very clearly and fairly illustrated* You have succeeded in producing a book that ought to have a good sale, for the method of arranging things is a new feature which ought to be attractive It does not fall short of the required standard in any way and *the examples and exercises ought to be greatly appreciated by the teachers and the students*"

Principal K. B. Chakravarti, M A , **Ananda Mohan College, Mymensingh:**

"I have a very high opinion of your book and believe that you have served a very useful purpose in bringing it out. I would specially admire the very *lucid presentation and excellent arrangement of topics and the happy discrimination with which the* essentials have been emphasised and worked out from the side issues The book will be of real use to those for whom it is intended"

Professor Benoy Charan Ray, M A , **A. M. College, Mymensingh:**

"I am in a position to say that *compared with the other recommended books it means a distinct improvement* for the requirements of Indian students"

Professor S. C. Chakravarty, M.A , **Ananda Mohan College, Mymensingh:**

"Very many thanks for your kindness in sending me two volumes of Professor B N Roy's Logic, which I find to be an excellent introduction to the subject, lucid, well-arranged, illustrated and well-suited for the capacities of the examinees"

Professor Shyama Kumar Chatterjee, M.A., **Sir Ashutosh College, Chittagong:**

"I dare say that the treatment as given here has been *exhaustive and masterly* I have the warmest admiration for the synthetic genius of the author as displayed in and through the second volume. The language used here is very simple and lucid And these two efficient volumes will, I think, figure as the most dependable *text-books on the subject for all time to come*"

Professor Naresh Chakraborty, M.A., **Sir Ashutosh College, Chittagong:**

"The book has come to occupy a unique place in its own field and for a major section of students—it is no exaggeration to say, the book is indispensable"

Professor Gopal Chandra Bhattacharya, M A, **formerly, Brojomohan College, Barisal:**

"Professor B N Roy's 'TEXT-BOOK OF LOGIC' is a *publication of first-rate importance* to our Intermediate students in Logic. It has made he task of the teacher of the subject so light and easy that when a student has read it there hardly remains anything for the teacher to explain The publication has removed a long-felt want for a text-book which is accurate in every detail and exhaustive in its scope, and yet written in such brilliant and lucid style that it would make the study of the subject delightful, pleasant and a highly paying proposition for the purpose of passing any examination in Logic"

Professor Jajneswar Acharjya, M A, **B. M. College, Barisal:**

"I am glad to inform you that these two books have already been recommended"

Professor Gour Gobinda Gupta, M A, **Carmichæl College, Rangpur:**

"I was highly pleased when I carefully went through your books looking for things which as a teacher of long standing I have always thought badly needed students but rarely found in other TEXT-BOOKS OF LOGIC I must say that *I am in love with your books* I shall recommend your books strongly to my students"

Professor Satyendra K. Kar, M A, **Chaumohani College:**

"I have prescribed them as text-books in my college."

Professor S. A. Bhuiya, M A, **Comilla Victoria College:**

"The commendable appreciation of the value of the 'TEXT-BOOKS OF LOGIC, both Deductive and Inductive, by Professor B N Roy,' by the Intermediate students, is due to the fact that, being an experienced teacher of Logic and Philosophy, the author has taken every care to present lucidly and clearly the essentials of the subject in a manner at once concise and yet analytical with a wealth of illustrations and examples picked out from facts of every day experiences, rendering them very interesting and easy of under-

standing by the beginners of the subject I have been accordingly following the books in course of my class lectures and recommending the same to my students as well"

Professor Nikhil Chandra Sen, M A., **Chittagong College, formerly, Dacca Intermediate College, Dacca:**

"I have carefully read both the volumes and am sure that *they surpass oll other books that are generally used by our students, in clear exposition of the subject-matter and lucidity of style They will remove the want that I strongly felt* and for which I had to refer to books of Welton and others occasionally. I am sure that a thorough study of these books will give the students a clear conception of the fundamental principles of Logic"

Professor Dwijapada Banerjee, M A, **Daulatpur Hindu Accademy:**

"Professor B N Roy's volumes on Deduction and Induction are excellent specimens of the success an erudite scholar and an able teacher of the writer's type is excepted to achieve My students have been following his INDUCTIVE LOGIC for some years past. I very much appreciated the *fine arrangements of the topics, the easy and expressive style and the masterly way of handling some of the hard problems*"

Professor Narendranath Das Gupta, M A., **Daulatpur Hindu Academy:**

"I had an occasion to go through certain portions of your book and I found them to be highly satisfactory I am thinking of introducing your book to my students, and of adopting it as a text-book in our class *Yours seems to be decidedly the best book in the market Your Inductive Logic seems to be really superior to all the other books recommended by the University.* We have long been in need of such a text-book"

Professor Bilas Chandra Mukherjee, M A (ENG.) M A (PHIL), **Daulatpur Hindu Academy:**

"Both the books have been adopted as a text-book in this college for last several years 'Roy's TEXT-BOOKS ON LOGIC' have been a decided improvement upon all other books of the same kind prevailing in the market and they are specially suited to the requirements of the students"

Professor Pasupatinath Mallik, M A., **formerly, Daulatpur Hindu Academy, now of Vidyasagar College, Calcutta:**

"I have perused Professor B N. Roy's TEXT-BOOK OF DEDUCTIVE LOGIC and TEXT-BOOK OF INDUCTIVE LOGIC, and have derived the

utmost satisfaction possible The books have been written in accordance with the syllabus of various Indian Universities The author is a renowned Professor, and these books could be written only by a man of his calibre He has incorporated in them all that is useful and studiously avoided useless materials The language, again, is simple and the exposition as lucid as possible The usefulness of these books has been enhanced all the more by the addition of Exercises at the end of each Chapter Students of all description will profit by studying them"

Professor Amar Nath Mukherjee, M A, **Edward College, Pabna:**

"Your book deserves the highest recommendation The answers to typical questions form an attractive feature of your treatise and the mode of presentation of the differest subjects appears to me to be *thoroughly systematical*"

Professor Jatindra Chandra Bhattacharya, M A, **Kamrunnessa Intermediate College, Dacca:**

"As regards the merits of these two books, I think I have nothing to add to what has already been said by so many eminent scholars These two books have certainly rounded the sharp edge of the subject and Logic, it seems, is no longer a scare-crow to the Intermediate students"

Professor Hem Chandra Das, M.A, B L, **Rajendra College, Faridpur:**

'The latest editions, enriched by new additions, modifications, apt illustrations and numerous exercises will serve fully the interests of I A Logic Students The exposition is very clear, and simple The author spared no pains in making the abstract subject very interesting The students of Logic are advised to read and follow these books"

Professor Kazemuddin Ahmed, M A, **Rajshahi College; formerly, Lecturer, Dacca University:**

"Amidst the plethora of publications on the subject which are multiplying every year, it is a relief and a pleasure to turn to Professor Bholanath Roy's works—the 'TEXT-BOOK OF DEDUCTIVE LOGIC' and the 'TEXT-BOOK OF INDUCTIVE LOGIC' They are *admirably designed and admirably executed in every detail and are decidedly superior to other books of their kind* The wealth of illustrations which exemplify the various logical principles constitutes one of their most attractive features I offer my hearty congratulations to the author upon his success in writing books which are so eminently suitable to the students for whom they are intended"

Professor Umes Chandra Bhattacharya, M A., **formerly, Professor, Presidency College, Calcutta; Rajshahi College; Lecturer, Post-Graduate Department, Calcutta University; Lecturer, Dacca University:**

"I have read the book with pleasure. You have given all the essentials of the subject within a small compass It is not only quite good as an introductory study but contains more than enough, I hope, for our Intermediate students"

Professor Basanta Kumar Ghosh, M A, **Rajshahi College:**

"Both the books have been introduced into my classes."

Professor Paresh Chandra Ganguly, M A, **Victoria College, Comilla:**

"Really your book is very suitable for I A students I shall recommend your book to my class"

Professor Bibhuranjan Guha, M A, **Victoria College, Comilla:**

"I have carefully examined Professor Roy's TEXT-BOOK OF INDUCTIVE LOGIC The book is carefully written with an eye to the difficulties of the students The language is simple and the author has succeeded in focussing the attention of the young learners to the most important problems The worked-out exercises at the end of each chapter are of great help to the students Well-chosen questions from each chapter with occasional hints for answering them constitute also a useful feature of the book The book ought to have a great sale"

Principal Gokul Chandra Banerjee, M.A, **Victoria College, Narail:**

"I found your Logic very suitable and so I adopted it as a text-book here Your elucidations of the various topics are concise and yet very clear Your language is so easy that even the ordinary student of an average merit will find but little difficulty in grasping the subject The exercises and the solutions of so many problems are also very helpful I hope the book will have a very wide circulation"

GAUHATI UNIVERSITY.

Professor Binodebihari Majumdar, M A., **Brindaban College, Habiganj:**

'I have great pleasure to say that the books are eminently

suited to the requirements of students preparing for the I A Examination of the Calcutta University The special features that commend the books for the every student are their *clear and lucid style*, concrete examples to explain the different topics and numerous worked-out exercises I have gladly recommended the books to my students"

Professor S. C. Dutt, M A, **Cotton College, Gauhati:**

"I am delighted to see the new editions of those highly popular volumes They are indeed *very helpful* to our students for passing the examination Kindly convey my congratulations to the author, Professor Roy"

Professor J. K. Bhattacharya, M A, **Gurucharan College, Silchar:**

"I find the works quite *serviceable* to students I have recommended them to my students."

Professor D. C. Bhuyan, M A, B L, **J. B. College, Jorhat:**

"The two volumes of Prof B N Roy's Logic are eminently suited to the needs of the Intermediate students It need not be emphasised that his simple, clear and lucid presentation of the subject-matter is responsible for the unique popularity his books enjoy amongst the students I could unhesitatingly recommend them to my students and found them highly useful"

Principal Usha Bhattacharya, M A, **Lady Keane Girls College, Shillong:**

"Really your book is very well-written and it is of great benefit for the students Last year one of my students could get a distinction in Logic with the help of your book alone Not only does it help the students but it helps the Professors also in explaining the logical principles clearly to the students"

Professor P. C. Sanyal, M A, **M. C. College, Sylhet:**

"I am very glad to tell you that Mr Roy's book has been recommended to the First Year students of this college I am actually following the book in my class lectures Please inform Mr Roy that I find his *arrangement very good* and my students appreciate his exposition, specially his examples"

Professor Surendralal Kundu, M A, **Murarichand College, Sylhet:**

"Both the volumes have appeared to me as good, eminently suited to the needs of Intermediate students. What appealed to

me most in your books are the *nice arrangement of topics and the worked-out Exercises*"

Professor Sudhir Kumar Nandi, M A , **M. C. College, Barapeta, Assam:**

"I have gone through the books and found them very helpful for the students"

Professor Bijoy Lal Majumdar, Govt. Women's College, Sylhet:

"Really his volumes are indispensable for students of Logic reading in the Intermediate classes His books are dear to us and will always remain so with the students I have already recommended his Text-books and am following them in my class lectures"

PATNA UNIVERSITY.

Professor A. L. Bahal, M A , **Head of the Department of Philosophy and Psychology, Ramdayal Singh College, Muzaffarpur:**

"I have gone through the books and found them very useful. The style and the mode of treatment of the details show a thorough mastery of the subject The elaborate examples and questions at the end of each chapter are particularly useful for the student in understanding the basic principles of Logic"

Professor N. K. Bose, M A , **B. N. College, Bankipore:**

"All the Professors of our College have spoken very approvingly of your books They will recmmend your books to the students of our college"

Professor S. N. Roy, M A , **Behar National College:**

"I have been able to go through your book and found it useful I have recommended it to my students I like to say that the topics have been well arranged and the exposition of the fundamental principles is clear and accurate."

Professor Priya Govind Dutt, M A , **Diamond Jubilee College, Monghyr:**

"I have already recommended your books to my students I will use your books both in the general and the tutorial classes to show the great usefulness of your book"

Professor Yaqub Masih, M A , **Rajendra College, Chapra:**

"They are excellent as text-books and my students are finding the subject *much easier to follow* It would be hard to *write a better book* for the students preparing for the Intermediate University Examination"

Professor K. V. Krishna Rao, M A , **Rajendra College, Patna:**

"They are indeed very useful to the students I have recommended them to my boys"

Professor Kshitish Chandra Chakravarti, M A , B L , **Bharata-Visharada, Darshan-Ratna, Vendanta-Shiromani, Tri-Chandra College, Nepal:**

"The Author and the Publisher have to be greatly congratulated on their success in bringing out such excellent volumes, which supersede popular Indian works on the subject hitherto in use The present two texts are characterised by a thorough and clear grasp of the entire subject-matter and an accurate, simple and happy presentation, the style used being no insignificant factor contributing to the *grand performance* The fallacies and the several canons of Inductive Reasoning, to cite only typical instances from a really abstruse branch of knowledge, have been very well treated The author shows manifest signs of possessing undoubted talents for original work which he should soon utilise in further and more advanced treatises on Philosophy"

Professor Anandi Hazari, M A , **T. N. J. College, Bhagalpur:**

"I have gone through the two volumes of Logic by Prof B N Roy They are extremely useful for students of Intermediate Classes The language is simple and the treatment of facts is direct and clear"

Professor Gaya Prasad Singh, M A . **Ganesh Dutt College, Begusarai:**

"The books are very popular here among my students"

BANARAS HINDU UNIVERSITY.

Dr. S. K. Maitra, M A , Ph D , **formerly, Head of the Department of Philosophy, Banaras Hindu University:**

"Your book is *very useful* to the class of students for which it is intended"

Dr. B. L. Atreya, M A , D LITT., **Head of the Dept. of Philosophy, Hindu University, Banaras:**

"I got it prescribed for the Intermediate Examination of our University simply because I consider it to be the *best manual on Logic for the beginner* I would have congratulated you, but I did not know your address Please accept my hearty congratulations now, although it is quite late"

Professor M. S. Rawani, M A , **Crosthwaite Girls' College, Banaras:**

"I have been using them ever since I received them They have fully discussed the subject-matter prescribed for the Intermediate course and I am sure *they will be of great help to the students and teachers concerned Language is delightfully simple and easy to follow*"

Professor T. R. V. Murti, M A , **Banaras Hindu University:**

"May I say at once that Prof Roy's two volumes have by now made for themselves a very enviable position as standard text-books on Logic That as many as ten editions of them have been called for in the course of fifteen years is a sure sign of their immense popularity And with each edition, the author has bettered the book and made it more helpful to the students"

Professor Tara Prasad Singh, M A , B L , **U. P. College, Banaras:**

"You should be glad to hear that your books are the ones I recommend for my boys Most of them have got them"

Professor P. Nagaraja Rao, M A , **Banaras Hindu University, Banaras:**

"Professor Bhola Nath Roy's books on DEDUCTIVE AND INDUCTIVE LOGIC are very useful to the student The exposition is exhaustive and complete. The treatment of the subject is masterly and particularly helpful to the students for their examinations It suits admirably as a text-book for the Intermediate Classes for our Universities The present edition is well got up and contains many examples worked out"

Professor N. C. Sanyal, M A , L T , **Queen's Intermediate College, Banaras:**

"To my mind Prof Bhola Nath Roy appears to be a consummate artist. He knows what to tell and how to tell His

'TEXTBOOK OF DEDUCTIVE LOGIC' and 'TEXTBOOK OF INDUCTIVE LOGIC' are admirably suited for Intermediate students

U. P. INTERMEDIATE BOARD.

Professor S. M. H. Naqui, M A , **Government Intermediate College, Allahabad:**

"I have already recommended your books to my students, as I find them quite useful to the beginners The language is *simple and easily intelligible* Another good feature of the books is that there are very many useful exercises appended to each chapter This enhances the value of the books considerably"

Professor Dhirendra Lal Pal, M A , **R. E. Institute, Dayalbagh, Agra:**

"Yours is just the book for those who want to avoid, on the ane hand, books crammed with all sorts of details and, on the other hand, books which do not pretend to give more than bare outlines Your have steered clear of both the extremes and this is saying a good deal about a text-book. Another good feature of the book is the stress you have laid on the pract cal side of the science'

Professor Jadu Nath Sinha, M A , P R S , Ph D **Meerut College, Meerut; Lecturer, Agra University; sometime, Professor, Ripon College Calcutta, Rajshahi College, Jagannath College, Dacca, etc., says:**

(1' "Your books are written in a simple and clear style and they will prove *immensely useful* to students of Logic.'

(2) "I have carefully read through Professor Bhola Nath Roy's 'TEXT-BOOK OF DEDUCTIVE LOGIC' and 'TEXT-BOOK OF INDUCTIVE LOGIC' and used them as text-books for Intermediate classes The language is simple, clear and lucid The author has always kept in views the difficulties experienced by young students in grasping the intricate problems of Logic The treatment of every topic is exhaustive and critical and yet not cumbrous The author has solved numerous University Questions and given exercises at the end of every chapter I strongly recommend these books to the students of the Intermediate classes specially of the United Provinces

Professor W. C. Banerjee, M A , **S. M. College, Chandausi:**

"I have gone through both the volumes carefully and am glad to tell you that I have found them eminently suited for class use and as such I have prescribed them as the TEXT-BOOKS for my Intermediate Logic students."

Professor M. P. Vaish, M.A, **S. M. College, Chandausi:**

"I have found the said book quite suited to the need of Logic students and I have been recommending the same to my students for the last six years The two text-books are not only simple, and lucid but also illustrative and the worked-out exercises are the special features and are of great utility"

Professor S. B. Roy, M A, **D. A. V. College, Dehra Dun;**

"Prof B N. Roy is an experienced teacher, as a master of the subject, he knows well the special needs and difficulties of young students The different topics have been methodically arranged and the fundamental rules and principles of Logic have been thoroughly expounded in a very lucid style and illustrated with well-selected examples from standard works He has been consistent, clear, and concise all through An avoidance of all subtle, abstruse and abstract analysis, of controversial, which repels young students, is a special feature of his works Profuse exercises and University questions with practical hints for solution at the end of each chapter will go a long way in giving a systematic drill to the intelligent learner enabling him to grasp thoroughly the essential principles of the subject The volumes cover the entire syllabus in Logic for the Intermediate Examination of all our Indian Universities The works will, I hope, prove an excellent compendium, useful to students and teachers alike I have been recommending Prof Roy's volumes to my classes for many years"

Professor Kh. Athar Hussain, M A., **Government Intermediate College, Lucknow:**

"I came across the work last year and having found it suitable and useful for Intermediate students recommended it to my class . I congratulate you on the very decent get-up of the two volumes and the author has succeeded well in making it very lucid and comprehensive."

Professor P. K. Banerji, M A, **Govt. Jubilee Intermediate College, Lucknow:,**

"I find the books very useful for my students who have been using them for the past several years with great profit to themselves"

Professor C. L. Malaviya, M A, **Kanyakubj College, Lucknow:**

"The books are no doubt good and useful, specially for the

Intermediate students I have recommended them to my students I am sure the books would become popular and replace "

Professor Ram Pratap Singh, M A , B L , **Maharaja's College, Jaipur:**

(1) "It was very recently (talks of 1936) that I learnt of your Logic at Benares University The Professor taking the Intermediate classes talked very highly of your books I have a mind to introduce your DEDUCTIVE and INDUCTIVE LOGIC from July next"

(2) "They are admirably suited for the Intermediate students"

Professor C. P. Brahmo, M A , **Indore Christian College:**

"These publications have been so useful that I always recommend them to my students, and I hope to do the same in future"

Professor Dinesh Chandra, M A , LL B , **Jasawant College, Jodhpur:**

"I have great pleasure in testifying that the TEXT-BOOKS OF INDUCTIVE and DEDUCTIVE LOGIC by Bhola Nath Roy have met admirably the needs of the students preparing for the Intermediate examination For clarity of thought and lucidity and cogency of expression untramelled by any elaborate discussion of certain topics (which is bound to confound the tyro) the books are second to none Mr Bhola Nath Roy has recognised that thought is made clear only through its practical application and consequently the books are marked for a wealth of well-chosen and apt examples which makes a special appeal to the student community I have not the least doubt that the books have captured the field and will long retain it I recommended them strongly to all prospective students and Professors"

Professor Rajendra Nath Roy, M A , **formerly, Professor, Jasawant College, Jodhpur:**

"Your book is a *decided improvement* on many in the market"

Rev. W. S. Taylor, M A , B D , Ph D , **Principal, Indore Christian College, Indore:**

"I have looked through the two books on Logic by Prof B N Roy and consider them to be good I have used Roy's books in teaching Logic and have found them very helpful"

Professor R. R. Agarwala, M A , **Dungar College, Bikaneer:**

"These are very useful books to Indian students of Intermediate

classes written as they are in a simple and lucid style I shall be happy to introduce them in my Logic classes The addition of a large number of solved exercises at the end of each chapter is a welcome novelty"

Professor A. B. Sindhi, M A, LL B, **Dungar Colege, Bikaneer:**

"I have gone through Prof Roy's DEDUCTIVE AND INDUCTIVE LOGIC I find it very useful to the Intermediate students The exercises at the end of each chapter are very ably selected"

Professor Mohan Lal Verma, M A, LL B, **Herbert College, Kotah:**

"These books by Prof B N Roy appear to be the result of long long experience of the learned writer in teaching the subject to college students, and it is hoped will prove very useful to my students of Logic'

Professor Balkrishna Haskar, M A, **Victoria College, Gwalior:**

"It is needless to add that I have been recommending these books to my pupils even since I received the first editions of these books as presentation copies several years ago"

Professor S. N. Mehrotra, M A, **Govt. Intermediate College, Jhansi:**

"I must assure you that I shall recommend these books to my students I must admit that they are the outstanding books for Intermediate students"

Professor Mohammed Ahsan, M A, **Shia Intermediate College, Lucknow:**

"I acknowledge with thanks receipt of your new edition of Prof Roy's invaluable books on Logic. I have always been considering Prof Roy's books to be the best in the market on the subject, being specially suitable for the requirements, curricular as well as psychological, of Indian students I have been using the books in preparing my lectures and have been recommending them to my pupils every one of whom possesses a copy of each of the two books The present edition is a great improvement on the one I possessed, and, I think, special care has been given to changes in the University Prospectuses with regard to the Logical Syllabus"

DELHI.

Professor Dr. Indra Sen, M A , LL B , Ph D , **Hindu College, Delhi, sometimes Lecturer, Koingsberg University, Germany:**

"I can say that they are *admirable books* The marginal notes and the bold-type writings clearly and conspicuously mark out the fundamental ideas That is particularly important for the average student who often loses himself in the wood of too many ideas and words The small type writings provide useful advanced teachings to the brilliant student Form the point of view of the teacher also, I find these small-type writings very useful"

Principal Basanti Das Gupta, M A , **Indraprastha Girls' Intermediate College, Delhi:**

"I like both the volumes immensely They will prove *highly useful* to Intermediate students I have recommended the books to the students in this college"

Professor M. P. Rudra, M A , **Ramjas Intermediate College, Delhi:**

"I find the books easy to understand Professor Roy has lucidly explained in these books the rules and principles of DEDUCTIVE and INDUCTIVE LOGIC and has amply illustrated them by well chosen examples The Exercises given at the ends of Chapters are very helpful in giving a good training to the students for answering questions in the University Examinations"

Professor W. Adiseshiah, M A , **St. Stephen's College, Delhi:**

"From what students tell me, Prof Roy's book is a popular guide to students doing Logic for the Intermediate Examination and I dare say it will continue to be so" I was greatly impressed by the wealth of detail and the simplicity of treatment which mark the volumes, and I have no doubt that students will find in it an easy and helpful treatment of the subject, adequate to meet their difficulties"

Professor Prem Chand, M A , **Hindu College, Delhi:**

"As books on Logic, they are as good as many other books on Logic, available in the market But they have a distinguishing feature Their practical bias is very pleasing and should be very helpful to the students Their language is clear, precise and simple"

EAST & WEST PUNJAB and JAMMU & KASHMIR UNIVERSITIES.

Professor M. D. Kapila, M A, **A. S. College, Ludhiana:**

"We have been using your TEXT-BOOKS OF DEDUCTIVE AND INDUCTIVE LOGIC in our classes for the last five years The treatment of the subject is so lucid and clear that the students do not find any difficulty in mastering Logic You deserve congratulations from both the teachers and the taught for bringing out the books"

Professor B. C. Harrington, M A **formerly, of Forman Christian College, Lahore:**

"The books are *admirably designed and very superior to other books which I have seen* I trust these books will come into general use in this University"

Professor R. Siraj-ud-din, Forman Christian College, Lahore:

"I am recommending your DEDUCTIVE LOGIC to my Intermediate students this year"

Professor Jagdish Singh, M A, **Forman Christian College, Lahore:**

"I have used the TEXT-BOOK OF DEDUCTIVE LOGIC for my class work and find it extremely useful and well-written"

Principal M. R. Qureishi, M A, B T, **Principal, Malerkotla College, Malerkotla:**

(1) "*The essentials of the subject are treated in a lucid manner showing insight into the requirements and difficulties of Intermediate students* I have no doubt that they will prove *immensely useful to them*"

(2) "Your Logic books have been in use in this College for many years past"

Professor Gobind Pershad, M A, **De Montmorency College, Shahpur:**

"The books are most admirably suited for the needs of Intermediate students who take up Logic as one of their subjects *They contain a comprehensive account of the subject and hence are very useful*"

Professor Radha Krishna, Gordan College, Rawalpindi:

"Even a hasty look through them shows that they are books of exceptional value I am sure my students will find these books very valuable"

Professor Sunder Das, M A , **Gordon College, Rawalpindi:**

"I found them extremely useful for the students of Logic, among the elementary books, they are best suited to needs of Indian students"

Professor Pratap Krishna, M.A , **D. A. V. College, Hoshiarpur:**

"Professor Roy's books are excellent TEXT-BOOKS as comprehensive in scope as they are lucid in expression The author has taken great pains in collecting the opinions of various authorities on controversal points and discussed them with the impartiality of a profound scholar The abstruse parts have been most skilfully handled so as to make them intelligible even to the beginners I think it is an indispensable book for Intermediate students Its lucidity and felicity of expression attract the average student while its wealth of useful data, the numerous worked-out exercises and typical questions set out at the end of each chapter all carefully marshalled is a boon to, not only a good student, but a teacher as well"

Professor Som Prakasha Adya, M A., **D. A. V. College, Hoshiarpur:**

"The treatment of the subject is excellent, and I am of the opinion that no other Indian author has dealt with the subject so remarkably as Professor Roy has done Professor Roy has really obliged the Indian students by giving them his TEXT-BOOK OF INDUCTIVE LOGIC and TEXT-BOOK OF DEDUCTIVE LOGIC Please convey my congratulations to him on his achievement. I wish if he could give us such books on Ethics and Psychology as well"

Professor Abdul Qadir, M A , **Government Intermediate College, Rohtak:**

"Both of them are excellent compilations and are well-adapted to the requirements of our I.A students The expositions are fairly full and accurate I have introduced Professor Roy's TEXT-BOOK OF DEDUCTIVE LOGIC in the first year of the I A class"

Professor Mohd. Afzal, M A , **Government College, Jhang:**

"I can say with confidence that the books are written in as admirably lucid style and are better than any other similar works intended for Intermediate students."

Professor Jagat Singh, M A , B T , **Khalsa College, Gujranwala:**

"I must congratulate you on producing such *excellent manuals* foi the junior students which are certainly the result of a very wide reading and mature judgment Your books are therefore specially suitable for brilliant students and young teachers"

Professor Faquir Chand Sud, M.A., **D. A. V. College, Jullunder City (Punjab):**

"Needless to say *I recommend your books every year* to my students, and they usefully go through them"

Professor Gursharan Das, M A , **D. A. V. College, Rawalpindi:**

"It gives me great satisfaction to note that these books cover the entire course of the Punjab University. Every topic has been dealt with most comprehensively and critically I always recommend these books for the best students of my class"

Dr. Mohammad Easanullah Khan, M A Ph D , **Prof-essor, Islamia College, Peshwar:**

"Regarding Prof B N Roy's 'DEDUCTIVE' and 'INDUCTIVE LOGIC' I must state that I have taught those TEXT-BOOKS to the Intermediate students for more than 5 years and have found them very useful and elightening on the subject I have therefore no hesitation in recommending them to any teacher of Logic"

Professor M. A. Ghani, M A **Emerson College, Mul-tan:**

"I looked through the contents of the books and find the treat-ment of the subject quite exhaustive. The author seems to have taken considerable pains over the work The two volumes are much superior to their rival books They are especially helpful to those students who wish to secure good position in the Intermediate examinations They cover the syllabus of the Punjab University and much more"

Professor S. K. Toskhani, M A , **Sri Pratap College, Srinagar:**

"Professor Roy seems to have an insight into the capacities and needs of Indian students which is very rare I do not know of any other book on Logic which is more suited to the peculiar needs of the young Indian students of Logic.

I have already introduced the book in my college in preference to the numerous other similar books sold in India"

Professor Des Raj Wadhawan, M A , **Ramsuk Das College, Ferozepur City:**

"I have been teaching these books for the last four years, and from my personal experience I can safely assert that I found them the most useful books for the students Mr Roy's books seem to be a wonderful improvement over the existing books"

Professor S. C. Mitra, M A , **Government College, Lyallpur:**

"I have carefully studied both the volumes and I have great pleasure in saying that the treatment of the subject is excellent and is marked by the originality of its presentation These two volumes are very suitable as text-books for the use of Intermediate students I have advised my students to use them as text-books"

ANDHRA UNIVERSITY.

Professor N. Swaminatha Aiyar, M A , **(Hon.), Hindu College, Masulipatam:**

"The two volumes are admirably suited to the requirements of the Intermediate standard of the Andhra University They can with profit be used as text-books I am including the volumes in the list for the Library this year"

The Principal, Venkatagiri Rajah's College, Nellore:

"I received specimen copies of your TEXT-BOOK OF DEDUCTIVE and INDUCTIVE LOGIC and I have gone through them I find the treatment is both clear and concise to the beginner It is bound to be very valuable. The large number of illustrations given (with some of them already worked out) is an additional happy feature of the book I have recommended the books to my students and they tell me the books are unlike other big TEXT-BOOKS on the subjects, readable and even enjoyable"

Professor A. R. Ponnuswami, M A , **Chief Lecturer, P. R. College, Cocanada:**

"I have perused the copies of Professor Bhola Nath Roy's TEXTBOOK OF DEDUCTIVE LOGIC and TEXTBOOK OF INDUCTIVE LOGIC I have found the books *extremely useful for students* preparing for the Intermediate examination The large number of simple illustrations that Professor Roy has used has made the subject clear I have been recommending the books to my students as very helpful handbooks and I am sure they are much appreciated by students"

MYSORE UNIVERSITY.

Professor P. Swamidas, M A , **Maharaja's College (Arts), Mysore:**

"I congratulate you and Dr Roy on the great work you have published, the fact that it has passed through so many editions since its first publication is a clear proof of its popularity and usefulness in Indian Universities"

Professor Y. J. Padmarajah, M A , **Maharaja's College, Mysore:**

"They are compact and exceedingly well-written The illustrative material is ample, impressive and lucid Besides being highly useful for our Intermediate students, they are an example in the art of clear exposition of a speculative subject"

Professor S. Thirumalai, M A , **Intermediate College, Bangalore:**

"I have gone through the books carefully I am glad to say that they amply meet the needs of the syllabus of our Universities The style is simple, examples are familiar, and the subject-matter is exhaustively treated The most notable features of the books are the nice arrangement of the topics and the exercises at the end of each chapter fully worked out They have already been recommended to my students I have no doubt that your books are admirably suited to the needs of the Intermediate students in our Indian Universities"

Professor N. A. Nikam, M A , **(CANTAB), Maharani's College for Women, Bangalore:**

"I have known these books They are clear and authoritative and useful both to the teacher as well as the students of Logic."

MADRAS & TRAVANCORE UNIVERSITIES.

The Rev. Fr. Varin, S.J., Professor, Loyola College, Madras:

"I have as usual recommended the book to my students"

The Rev. Fr. J. Arul, S J, **Professor, St. Joseph's College, Trichinopoly:**

(1) "Mr Roy's book does deserve the name *'The'* TEXT-BOOK OF LOGIC It is *completest text-book* that satisfies the syllabus of our universities fully The treatment of the subject is quite thorough, orderly and clear The exercises worked out are a boon to the students The get up of the book is excellent, two handy volumes neatly printed on very good paper The variety of types used renders the study of the book easy and pleasant"

(2) "I was so far using the sixth edition of DEDUCTIVE LOGIC and the fifth edition of INDUCTIVE LOGIC The new books are more copious in Exercises since the first volume is enriched by 26 arguments and 45 questions newly added and the second volumes possesses some 20 arguments more as models to be examined The two books are richer, hence more useful to the students"

Professor Rev. Fr. V. Allard, S J, **St. Joseph's College, Trichinopoly:**

"As soon as I got the books, I went rapidly, though critically, through both volumes, and *my impression has been very, very good The arrangement of the parts is excellent the matter is complete without superfluous erudition, and the exposition shows a thorough grasp of the subject As I read on, I often thought that's just my own idea about it, that's just the way I like the subject to be treated,* etc I have lent the books to my colleague, Fr Antonisami. He told me a few days ago that he too finds your books excellent in every way"

Professor A. Arivatham, M A, **St. Joseph's College, Trichinopoly:**

"These excellent manuals are the favourite books among the nearly 400 students of this college And they are extremely useful for me to prepare my class lectures"

The Rev. Fr. A. C. Eapen, S J, **Professor, St. Berchman's College, Changanacherry:**

(1) "The books are quite suitable for Intermediate students Their chief merit lies in their great clearness which makes it very

easy for students to read and understand them. Another very useful feature is the large number of examples given for the logical principles and especially for the various fallacies The exercises worked out at the ends of many chapters will be very useful for students while the questions given at the end of every chapter will enable them to practise answering for themselves"

(2) "These text-books are very useful for Intermediate Logic students They cover the whole portion prescribed for the students, and they are written in very clear and simple language Plenty of examples are given for the various logical principles and the fallacies. Numerous exercises are given at the end of each chapter, and miscellaneous questions with answers are given at the end of each volume."

Principal (Sister) M. Annunciata, A.C, **St. Agne's College, Travancore:**

"The Professor of Logic in our college is quite pleased with them. She finds them highly satisfactory as text-books for the use of students preparing for Intermediate examination, as they are both clear and concise"

Professor T. Jacob Poonen, M A., **C. M. S. College, Travancore:**

"I presume *they will be of great use* to Intermediate students"

Professor C. I. Mathunni, M A., **C. M. S. College, Kottayam, Travancore:**

"I am sure Prof Roy's TEXT-BOOK ON LOGIC will be very useful to the students of the Intermediate Classes"

Professor Rev. D. J. Albuquerque, S.J., **St. Aloysius' College, Mangalore:**

"Professor Bholanath Roy's books reached me about a fortnight ago *My acquaintance with them has been more than a happy one* It will please you to learn that when I incidentally asked my good friend, Rev Father Turmes, S J, St. Xavier's College, Calcutta, what he thought of the books, he straightaway sent me a copy—that means he recommends them. I have placed these books in the Library. I shall not fail to recommend them to students"

The Professor of Logic, St. Agnes' College, Mangalore:

"I have always found them useful and helpful and the latest edition has still more improvements I have been recommending

them to my students, to every set of them whom I have taught these past fifteen years, and I shall continue doing so"

Mother Sophie, Professor, Holy Cross College, Trichinopoly.

"Many thanks for the Logic specimen copies you sent me. I will bring them to the notice of our students"

Professor R. Subbiah, M.A, **Holy Cross College, Trichinopoly.**

"It is not too much to say that the excellent TEXT-BOOKS OF DEDUCTIVE AND INDUCTIVE LOGIC of the eminent Prof Roy are best fitted to be prescribed in every college as the *text-book of Logic.*"

Professor George Thomas, M A., **Malabar Christian College, Calicut:**

"I have already recommended Professor Bholanath Roy's books to my students"

Professor G. Herbert Samuel, B.A., (HONS), **Malabar Christian College, Calicut:**

"The books are well written to suit the requirements of the students They are of great help both for the teacher and the taught"

Professor K. Jacob, Union Christian College, Alwaye, Madras:

"With regard to your book I must say it is valuable."

Professor E. M. David, M A, **Findlay College, Mannargudi:**

"These two treatises deal with the subject-matter exhaustively and with *copious illustrations* They are well-written and can be understood even by an average student. I am sure these text-books *will prove immensely useful* to the beginners in Logic."

Professor K. R. Applachari, M.A, **Government College, Coimbatore:**

"Your text-books on DEDUCTIVE and INDUCTIVE LOGIC are exhaustive and will be *found very useful* by students appearing for the Intermediate examination of our Universities"

Sri N. Srinivasachariar, M A , L T , **Professor, Government College, Coimbatore:**

"Prof B N Roy's books are very popular with students of these parts The simplicity of style and the profuseness of examples are in no small measure responsible for their popularity Both as a teacher and examiner, I am glad that Mr. Roy has not descended to the 'Notes' level He has by his scholarly treatment justified the title of 'TEXT-BOOK' "

Professor T. V. Subbayya, M A , **Hindu College, Tinnevelly:**

"I glanced the pages here and there and I hope *both the volumes may be of immense help to students* appearing for Intermediate Examination in any University."

Professor D. G. Paul, M A . **American College, Madura:**

"I think these books are admirably suited to the Intermediate course, and though named text-books, they give rather a little more, than less, than what is required of the Intermediate students In addition *the subject is presented in an interesting and lucid manner.*"

The Rev. Fr. P. Parambil, Professor, St. Thomas College, Trichur:

"On a careful perusal I find that the books on both DEDUCTIVE and INDUCTIVE LOGIC are admirably suited for the Intermediate standard The very thoughtful arrangement of matter, and the clear and precise presentation of the subject with apt illustrations have rendered the work attractive and enhanced its usefulness I have with great pleasure recommended the book to my students."

Sister Teresita, M.A , **Professor, St. Teresa's College, Erankulam:**

"I find the books really helpful to Intermediate students Prof Roy has presented the essentials of the subject in a manner at once clear and precise A very welcome feature of the book is the wealth of illustrations and their value is further enhanced by the insertion in appropriate places of University questions and model erercises I pnd them highly satisfactory as text-books and will recommend them to my students"

Professor S. Santhanam, M A , **Government College, Kumbakonam:**

"Even while I was a student, I followed Roy's brilliant book and I may confidently say that no other text-book is so clear in its

exposition of logical principles and in no other book are so many logical exercises worked out"

Professor Abraham Joseph, M A , **Government College, Kumbakonam:**

"The simplicity of the language, coupled with the many lucid illustrations, makes the volumes digestible as well as relishing"

Professor N. Krishnaswami Ayyar, M A, LT., **Government College, Mangalore:**

"I find Professor Roy's books very useful and suitable as a text-book for the Intermediate students The style is simple, the treatment of topics clear and adequate and the subject ably and comprehensively dealt with The students who make use of them are sure to get a good grasp of the subject and find themselves well-equipped for the examination"

Rev. J. Alapatt, S J , **Professor, St. Xavier's College, Palamcottah:**

"You will be glad to know that I have always strongly recommended them to my students The matter is very systematically treated in a clear and simple style, and hence the students find no difficulty in grasping the subject"

Profesor G. Vaidyanatham, M A , **H. H. The Maharajah's College, Pudukkottai:**

"Prof Roy's TEXT-BOOKS ON LOGIC are easily 'A Class' text-books on the subject The simple style and clear presentation has its appeal on the average students, the wealth of detail and reference has its attraction for the ambitious student; the large number of questions and worked-out exercises catches the attention of the examination-minded student, while the typographical execution—topical and paragraph headings in the margins, bold type key—sentences, phrases, etc has its text-book charm on all alike It is no exaggeration to say that 'to know the books is to like them' Many of the students, to whom the books were lent from the college library, got their own books"

Professor P. V. Sitaraman, M A , **Madura College, Madura:**

"I am sure you will be immensely pleased to hear from me that most of the students of our College are using your Text-books Your books give the students of Logic the subject-matter in a clear and concise manner and as such they find them more helpful than

many other available books Further your books have made the teacher's work very easy"

Professor R. Mahadevan, M A, **Malabar Christian College, Calicut:**

"Your Text-books on Logic are admirably suited for the needs of the Intermediate students Their superiority to other books of their kind, lies in the fact, that they are equally helpful to the students who will not only pass their examination, but understand what Logic is"

Professor C. Ramachandraiah, M.A., **Voorhees College, Vellore:**

"The uniqueness of the works lies in their connected and comprehensive matter and logical and lucid method Prof. Roy has very well succeeded in teaching the world the great lesson that there is Logic in life and life in Logic"

Sri C. B. Thandanamurthi, M A, **Professor, Ceded Districts College, Anantapur:**

"The value and usefulness of the books need no other recommendation and I find many of my students of junior intermediate class possessing copies of the new print of these books, I wish every success to many more prints of the same books"

Professor A. Lakshmana Rao, M A, **Maharaja's College, Vizianagram:**

"I have gone through both the volumes The treatment is clear, simple and exhaustive and the exercises that are worked out at the end of each chapter will be of immense help to the examination-going student"

Professor M. K. Venkatarama Iyer, M A, **National College, Trichinopoly:**

"I happened to see the books some years ago when a student of the Delhi University was staying here temporarily Even then I was well impressed by the book The recent edition meets all the requirements of students preparing for Logic in the Intermediate Examination The practical problems given at the end are highly useful In many places the discussions are in the right philosophical strain and furnish glimpses into Epistemology and theory of knowledge. The books serve to awaken interest in the study of higher Logic and Metaphysics"

Professor S. Rajagopalam, M A, L.T., **The Theosophical College, Madanapalle:**

"It may probably surprise you to know that the book is being

used as a text-book by the Logic students of our College The book is a clear and comprehensive presentation of facts and abundantly general reader I must say that a happy feature of the books is the wealth of examples and carefully worked-out exercises"

BOMBAY, POONA & SIND UNIVERSITIES.

Professor P. B. Sathaye, M A, **Willingdon College, Bombay:**

(1) "With reference to your publication of Professor Roy's books on Logic, I have to say that I have found them sufficiently clear and useful and that I have been already using them even before you wrote to me about them I have also spoken to my students about the books"

(2) "I sent my opinion about both these books last year and since my experience has confirmed what I wrote to you. Both these books are very useful to Logic students to whom I have strongly recommended them Professor Roy has a method of his own in the treatment of Logic questions and is *neither too sketchy nor unnecessarily voluminous* in his exposition I am sure his books will be much appreciated by the student world"

Professor G. C. Das, M.A, B T., **S. T. T. College, Budaun:**

"I have gone through both the books 'Roy's DEDUCTIVE AND INDUCTIVE LOGIC, and can safely say that the books eminently suited to the needs of Intermediate students The notable features of the book are clear and precise exposition and methodical nature of presentation of the subject-matter From the examination point of view, the copious examples and marginal notes will prove greatly helpful to students I am positively recommending these books for use in this institution from the next session"

Professor U. D. Bhatt, M A, **Dharmendrasingh College, Rajkot:**

"I have gone through the book on Logic by Professor Roy, and it is not too much to say that I feel quite at home with the subject . the treatment is so simple, yet so scholarly."

Professor K. V. Gajendragadkar, M A., **S. H. P. Thackersey College, Nasik:**

"I find your book *very useful* to students, it fully covers the portion prescribed for the Intermediate students in Arts and all the problems have been discussed in such lucid and simple language that *even the dullest student is bound to be pleased with the book* You have taken the trouble to choose very happy examples that grip the mind and illustrate the theory completely The marginal

is bound to be useful as it summarises briefly all the important points of the subject."

Professor S. V. Pandit, M A , **Ismail College, Bombay:**

"I have gone through the book, and in my opinion the book meets the needs of our University students I have recommended the book to my students"

Professor V. H. Date, M A , **Lingraj College, Belgaum, Bombay:**

"I am persuaded to say that the books ought to be of great help to my stulents"

Professor D. D. Vadekar, M A , **Fergusson College, Poona:**

"I have looked into both the books on Intermediate Logic by B N Roy and I can say from experience that the books are a great help to the Intermediate students For clarity and preciseness of exposition and for the methodical character of presestation, the books have a speciality worth mentioning Examples and marginal notes, a special aid to memory, mean so much to the pupil's reading for examination"

Professor V. V. Akolkar, M A , **Karnatak College, Dharwar, Bombay:**

"I have always entertained a good opinion of Professor B N Roy's TEXT-BOOKS OF LOGIC As compared to other books of the kind available in the market at present, Professor Roy s books are superior in this that the arrangement of topics is more systematic and there is development of ideas in the true sense of the term The language is simple and the illustrations chosen are within the reach of students I must say that the books are *highly satisfactory* and the students of our University have reason to thank Professor B N Roy for that"

Professor P. M. Ashar, M A , S L D , **Arts College, Ahmedabad:**

"Professor Roy has succeeded in rendering the abstract subject of Logic easy of assimilation by the beginner The ample use made of the illustrations and of exercises stimulate the student to devote mental energies to the subject. I have recommended with great pleasure the same to my students"

Professor A. K. Jiandani, M A , **D. J. Sind College, Karachi City:**

"From what I have already seen of the books I can testify to

their usefulness as text-books for beginners, and I have been already recommending the books to my Intermediate students"

Professor S. Jalota, M A , **D. A. V. College, Sholapur, Bombay.**

"I find the latest editions are keeping up the reputation of the earlier ones and are become progressively more useful to the students The price is encouragingly low, and under the present war conditions it is also a recommendation in itself I have advised my students to look up the same, and do its exercises for a thorough mastery of the subject.'

Professor Angelo Moses, M.A., F.R.A.C., B.P. B.P.E., Chellasing and Sitaldas College, Shikarpur (Sind):

"I have no hesitation in assuring students of Logic, Professors and other interested in the subject that Prof Bholanath Roy's Text-books on Logic are undoubtedly the best on the subject, now available in the market

Prof Roy - experienced teacher and erudite scholar that he is—thoroughly understands the mind of the average Indian student, and his books are written in such a simple, precise and lucid manner that any boy of average intelligence can without much difficulty, after a careful perusal of the books, grasp the essentials of Logic

I find the books invaluable to me in my lectures I have recommended Prof Roy's books to all my students

I also recommend them to all Professors of Logic, as I am fully convinced that with the help of these books, lectures on such a dry and difficult subject as Logic admittedly is, may be made more interesting and palatable to students"

Professor Dr. P. Valavaikar, Ph D , LL B , B E S , **Gujarat College, Ahmedabad:**

'From what I have seen of Prof Roy's 'Text-books' I am able to say that they will admirably serve the purpose for which they are written, provided the student makes an intelligent use of them The arrangement of the various topics, executed with the assistance of suitable typography, is quite systematic and methodical Indeed, I should think that this arrangement is a specially noteworthy feature of the books in which, perhaps, they exceed any other texts

Both the books are written in a simple and clear language, and the copious examples are typical and ought to help the student to grasp the principles thoroughly The author has expounded the subject matter with a proper appreciation of the capacities and the difficulties of those for whom the books are meant"

Professor S. G. Hulyalkar, M.A, (LONDON), **Sir Parasurambhan College, Poona:**

"I have gone through both the books on Logic by Prof Roy, and I can say from my experience that they are admirable Text-books There are many excellent books on Logic but few treat the subject in a simple and attractive manner Prof. Roy evidently possesses the special gift of simplicity and attractive style. The interesting illustration from everyday life make the subject delightful and quite at home to the students The marginal notes are a sure aid to revision and the exercises worked out are a good practical guidance. Thus in my opinion the books will be of immense help to the Intermediate students preparing for the University Examination It is needless to say that I have recommended them to my students"

Professor U. Shankar, M.A, **D. A. V. College, Sholapur:**

"I can say that the books the meet the needs of Intermediate students adequately"

Professor S. V. Dandekar, Ramnarain Ruia College, Matunga, Bombay:

"Thank you for your copies of Roy's Logic I always recommend these books to my students I have found them as the most excellent among the Indian publications for Intermediate Arts students"

Professor H. L. Butani, D. G. National College, Hyderabad-Sind:

"I have been recommending Mr B N. Roy's Text-books of Logic to my students for the last seven years The students of this place take his books as naturally as the ducks take to water The books satisfy all their queries and requirements"

NAGPUR UNIVERSITY.

Professor Dr. C. D. Deshmukh, M.A, **Morris College, Nagpur:**

(1) "They are *extremely helpful* for the Intermediate students and I was glad to recommend them to my students for the purposes of examination The subject has been made easy by plenty of examples"

(2) "I have great pleasure in recommending these books on Logic to Intermediate Students, since the subject is made easy, through the copious examples, contained in them"

Professor P. S. Ramnathan, M A., **Morris College, Nagpur:**

"I find that the books are very popular among students over here"

Professor B. R. Deshpande, M A, **City College, Nagpur:**

(1) "I have great pleasure in going through your valuable books on Logic *The treatment of the subject is so clear and simple that the reader should find no difficulty in understanding such a difficult subject* I offer my hearty congratulations as well as my sincere thanks to you for the service you have done to the student world as well as to those who like me are interested in the subject"

(2) "I was very pleased to go through the latest edition of Roy's Text-book on Logic which you were so kind to send me. I am glad to see the books have been made still more useful to the student community than before especially in helping them to solve practical problems in Logic I congratulate the author for placing such valuable books in the hands of students"

Professor S. N. L. Shrivastava, M A, **Hitakarini City College, Jubbulpore:**

"I find these books admirably simple, systematic and exhaustive for the purposes of the Intermediate students of Logic The most delightful feature of these books is the plethora of suitable illustrations These books can be of great help to students preparing for the Intermediate Examination in Logic of any University in India"

CEYLON.

Principal S. Natesan, M A, **Parameshwara College, Jaffna:**

"I have read the books carefully and I finl them to be *extremely useful* I am recommending them to the students of this college"

Professor D. J. Anthony, O M.I, **St. Joseph's College, Colombo:**

"I have read them through and *I find them very interesting for my students in the London Matriculation and Intermediate classes From the time I started my lectures on Logic I found the need of a text-book that I could profitably place in the hands of my students Some of the books I found were inadequate for the purpose, others were too deep and profuse Thus I was obliged to prepare my own notes and dictate them to the class I am glad to say your books suit my purpose very well The style is simple and interesting, the examples are familiar, the subject-matter is exhaustive as far as the London Matriculation and Intermediate examinations are concerned. I wish your books a wide circulation*"

Professor Charles, O.M.I., St. Patrick's College, Jaffna (Ceylon):

(1) "I have read through these books and I find them *quite suitable for the London Matriculation and Intermediate students.* I am therefore strongly recommending them to my pupils"

(2) "My candid opinion is that these books are *very well adapted* to our students who are preparing for the London University examinations There are many excellent books on Logic, but few treat subject in a simple and attractive form and hence they are not suitable for our boys Professor Roy possesses a special gift of exceptional utility It is the gift of popularizing without cheapening Admirable is the way he deals with the subject-matter"

Professor C. Subramaniam, M A, **Hindu College, Jaffna:**

"I have recommended these books as suitable for examination,"

Mr. D. P. Devendra, B A (LOND.) **Nalanda Vidyalaya, Colombo (Ceylon):**

"I find the books quite adapted for our purpose Some of my students are already using these books"

Professor S. P. Shivapatham, "Kallady," Point Pedro, Ceylon:

"I have been very much impressed with the care you have taken to enlighten students of Logic *I am recommending these books for my students who are preparing for the London Matriculation and London Intermediate in Arts Examinations*"

OPINIONS ON BENGALI EDITION.

Professor R. R. Chakravarti, M A **Vice-Principal, N. S. D. College, Howrah:**

"I have read with interest Prof B N Roy's two volumes of TARKAVIDYA PRABESHIKA—the Bengali editions of his famous text-books of Deductive and Inductive Logic It is pleasing to find that the books retain the clarity of expression and simplicity of style that has made his original works so very popular and attractive. The retention of English terminology in the Bengali editions and the adoption of the spoken language are welcome features in this transitional stage of educatioal development in the province. An abrupt break with the past would lead to harmful consequences involving chaos and confusion in the field of education The author's brilliant Introductory Note should dispel all doubts as to the

efficacy of his method of treatment of the subject I am sure these books on Logic in Bengali will prove highly useful to Intermediate students and the Professors also to some extent"

Professor Sasanka S. Banerji, Bankura:

"I have gone through both the parts of "Tarka-vidya Prabeshika' and am very glad to find them as useful as his English books of Logic to both the teachers and students alike I am sure these Bengali volumes will be equally popular with them as his English books"

Professor Debi Prasad Sen, Cooch Behar:

"Professor Roy's works on Logic have all along enjoyed the best reputation in the country for their simplicity of treatment and lucidity of expression It gives me great pleasure to note that the author has been able to maintain this standard in the Bengali version of this works as well I have no doubt the book will enjoy wide popularity whether Logic is read and taught in Bengali"

Professor R. C. Sen, Contai:

"There is no doubt about the usefulness of the works The mix-up of Bengali and English is unavoidable in this transitional period"

Professor R. N. Chakravarti, Surendranath College:

"I have carefully gone through the Bengali version of Prof B N Roy's Logic (both Deductive and Inductive) These are just the books our students of Logic were eagerly waiting for I am sure these books will gain the same popularity as his English Logic"

Professor Katyayanidas Bhattacharya, Krishnagar College:

"I have been impressed with the simplicity of style and accuracy of presentation I am strongly of opinion that Professor Roy's Bengali Logic will be no less popular with the I A students as his English one I have recommended the book to my students of the Krishnagar College as I did to my students in the Ashutosh College."

Professor Ramesh Ch. Munshi, M A , **F. C. College, Diamond Harbad:**

"Both of your TEXT-BOOKS on LOGIC (Deductive and Inductive in Bengali) have already been recommended by me to my students"

অধ্যাপক শ্রীমহীতোষ রায় চৌধুরী, বঙ্গবাসী কলেজ ঃ

"অধ্যাপক শ্রীভোলানাথ রায়ের লজিকের বাংলা সংস্করণ দুইখানি

পুস্তক বিশেষ যত্নেব সহিত পড়িলাম। গ্রন্থকাবেব ইংবাজী লজিকেব আমি দীর্ঘকাল ধবিযা উচ্ছ্বসিত প্রশংসা কবিয়া আসিতেছি। বাংলা সংস্কবণ ইংবাজীব মতই অতি সুন্দব হইযাছে। ঠিক আমি যে ভাবে ছাত্রদেব গত ৩২ বৎসব ধবিযা পড়াইয়া আসিয়াছি—অধ্যাপক রায় তেমনিভবে পুস্তক দুইখানি লিখিযাছেন দেখিয়া আমাব অত্যন্ত আনন্দ হইয়াছে। ইংবাজী Terminology-ব কষ্টকল্পিত বাংলা পরিভাষা সর্ব্বক্ষেত্রে তৈয়াবী কবিতে যান নাই, পাণ্ডিত্য প্রকাশেব চেষ্টা কবিয়া কোমলমতি অপবিণতবুদ্ধি প্রথম বার্ষিক ছাত্রগণকে হতবুদ্ধি কবিয়া দেন নাই, সহজ, সবল ভাষায় দুরূহ বিবযগুলিব ব্যাখ্যা কবিয়াছেন—ইহাই তাঁহাব সর্ব্বপ্রধান কৃতিত্ব। আমাব দৃঢ় বিশ্বাস, দুইখানি পুস্তকই ছাত্রমহলে বিশেষভাবে আদৃত হইবে।"

অধ্যাপক শ্রীবিনয়গোপাল রায়, বিশ্বভারতী কলেজ ঃ

"অধ্যাপক শ্রীভোলানাথ বায় প্রণীত "তর্কবিদ্যা প্রবেশিকা" পড়িয়া সন্তুষ্ট হইয়াছি। পবিভাষা সম্পর্কে গ্রন্থকাবেব সঙ্গে আমাব মতেব মিল আছে। যতদিন পর্য্যন্ত সমস্ত ভাবতবর্ষে একটি সর্ব্বজনগ্রাহ্য পবিভাষাব সৃষ্টি না হইবে ততদিন ইংরাজী শব্দ ব্যবহাব কবিয়া মাতৃভাষাব মাধ্যমে আমাদেব শিক্ষা দিতে হইবে। হঠাৎ সংস্কৃত শব্দেব আমদানি কবিলে অনেক ক্ষেত্রে গোলযোগের সৃষ্টি হইতে পাবে। গ্রন্থকাব প্রাঞ্জল ভাষায় বিষয়বস্তু বুঝাইয়াছেন এবং আমি মনে করি আমাদেব ছাত্রছাত্রীরা এই বই পড়িয়া খুব উপকৃত হইবেন।"

"প্রথম ভাগ পড়িয়া মন্তব্য আগেই পাঠাইয়াছিলাম। বইখানি ছাত্রদেব পক্ষে খুবি উপযোগী হইয়াছে। বিষয়বস্তু সবলভাবে বোঝাবাব চেষ্টা কবিয়াছেন গ্রন্থকাব। তাঁব চেষ্টা সফল হয়েছে। পাবিভাষিক শব্দ নির্ব্বাচনও সুন্দব হয়েছে।"

অধ্যাপক শ্রীনরেন্দ্রনাথ হাজরা, রাজ কলেজ, বর্দ্ধমান ঃ

(১) "পুস্তকে চলতি ভাষাব ব্যবহাব সম্বন্ধে অধ্যাপক বায়েব সহিত আমি একমত। তর্কবিদ্যাব দুরূহ বিষয় সমূহ ছেলেদের বোধগম্য

করিতে হলে চলতি ভাষাই বিশেষ উপযোগী। দ্বিতীয়তঃ ইংরাজী পরিভাষা ব্যবহার সম্বন্ধেও আমি তাঁহার সহিত একমত। যখন এখনও সর্ব্বসম্মত কোন পরিভাষা স্থির হয় নাই তখন আপাততঃ কিছুদিন পর্য্যন্ত ইংরাজী পরিভাষা ব্যবহারই সঙ্গত। পুস্তকটি পাঠ করিয়া আমি বিশেষ আনন্দলাভ করলাম। সহজভাষায় পুস্তকের বিষয়বস্তু ছেলেদের নিকট বুঝাইবার চেষ্টা হইয়াছে। ইহা খুব সময়োপযোগী হইয়াছে এবং আশা করি পুস্তকটী ছেলেদের নিকট বিশেষ সমাদৃত হইবে। আমি পুস্তকের সাফল্য কামনা করি।"

(২) "অধ্যাপক রায়ের তর্কবিদ্যা প্রবেশিকা ১ম খণ্ড সম্বন্ধে আমার মতামত পূর্ব্বেই আপনাদিগের নিকট পাঠাইয়াছি। আশা করি পাইয়াছেন। তর্কবিদ্যা প্রবেশিকা ২য় খণ্ড পুস্তকখানিও পড়িয়া বিশেষ প্রীত ও আনন্দিত হইলাম। ইহা প্রথম খণ্ডেরই ন্যায় প্রাঞ্জল ও সরল ভাষায় লিখিত। ছাত্রদের নিকট ইহা বিশেষ সমাদৃত হইবে বলিয়াই আমি আশা করি। ইহার বিশেষত্ব এই যে ইহাতে বাহুল্য বর্জ্জিত হইয়াছে অথচ আবশ্যকীয় সব কিছু দেওয়া হইয়াছে। এরূপ পুস্তকের বহুল প্রচলন বাঞ্ছনীয়। আমি আমার ছাত্রদের পাঠের জন্য পুস্তকখানি বিশেষভাবে অনুমোদন করিয়াছি। আমি ইহার সাফল্য কামনা করি।"

অধ্যাপক শ্রীতারাশঙ্কর ভট্টাচার্য্য, হুগলী ঃ

"অধ্যাপক রায় মহাশয়ের "তর্কবিদ্যা প্রবেশিকা" পাঠ করিয়াছি। যাহারা বাংলায় লজিক পরীক্ষা দিতে চায় তাহারা এই বই দ্বারা বিশেষ উপকৃত হইবে।"

অধ্যাপক শ্রীইন্দ্রকুমার রায়, আগরতলা ঃ

"আপনি দুরূহ পারিভাষিক শব্দজাল বিস্তার না করিয়া ছাত্রদের উপকার করিয়াছেন। ভবিষ্যতে অমিশ্র বাংলায় তর্কবিজ্ঞান লিখিত হইলেও অগ্রগামী হিসাবে আপনি ভবিষ্যৎ গ্রন্থকারদের ধন্যবাদার্হ হইয়াছেন। লজিকের মত কঠিন বিষয়কে অনভ্যস্ত ভাষায় এমন সহজ-ভাবে প্রকাশ করিয়া আপনি প্রথমবারেই সফলতা লাভ করিয়াছেন।"

অধ্যাপক শ্রীরামনারায়ণ ভট্টাচার্য্য, মহিষাদল ঃ

"শ্রীযুক্ত বায়মহাশয়েব লিখনী ইংবাজী ও বাংলা দুই ভাষাতেই সমভাবে চলে। ভাষাব প্রাঞ্জলতা ও বিষয়েব যথাযথ বহস্য বর্ণনা শ্রীযুক্ত বায়মহাশয়েব সর্ব্বপ্রধান লক্ষ্য। শ্রীযুক্ত বায়মহাশয় যেরূপ সরল ও সাধাবণেব ভাষায় ইংবাজী তর্কবিদ্যাব বই লিখিয়াছেন তাহাতে ছাত্রবর্গ বিষয়েব মর্ম্ম উদ্ঘাটন কবিতে পাবিবে। পবিভাষা বিষয়ে তাঁহার আগ্রহাতিশয্য না থাকায় সবলমতি প্রথমশিক্ষার্থী সহজেই শাস্ত্রেব বহস্য বুঝিতে পাবিবে।"

অধ্যাপক শ্রীমনীন্দ্র দত্ত, উত্তরপাড়া ঃ

"বইখানি পড়ে খুব খুসি হয়েছি। দুরূহ তর্কশাস্ত্রেব এরূপ সবল, সাবলীল ও সহজবোধ্য পবিবেশন একান্তভাবেই প্রসংশার্হ। ইয়োবোপীয় লজিকেব মূল টেকনিক্যাল শব্দগুলি বজায় বেখে বাঙলা ভাষাব মাধ্যমে বচিত এই বইখানি পাঠ্যবস্তুব সহজবোধ্যতা, ভাষাব সাবলীলতা ও পবীক্ষাদান কার্য্যেব সৌকার্য্যব বিচাবে আমাদেব দেশেব তরুণ পবীক্ষার্থীদেব পক্ষে খুবই উপযোগী হয়েছে। বইখানিব বহুল প্রচাব কাবও প্রসংশাপত্রেব অপেক্ষা কবে না।"

শ্রীপরেশনাথ ভট্টাচার্য্য, সেণ্ট্রাল ক্যালকাটা কলেজ ঃ

"আপনাদেব প্রেরিত অধ্যাপক বাযেব "তর্কবিদ্যা প্রবেশিকা" পাঠ কবিয়া আনন্দিত হইলাম। দেখিলাম অধ্যাপক রায় তাঁহার ইংবাজী পুস্তক দুইখানিব সহজ সাবলীলতা এবং সরস প্রাঞ্জলতা পূরা-পূরিভাবে অক্ষুন্ন বাখিয়াছেন। জটিল বিষয়বস্তুকে সবল কবিতে তিনি সিদ্ধহস্ত। তদুপবি তর্কবিদ্যার পারিভাষিক কণ্টক উদ্ধার কবিতে পারিয়া তিনি ধন্যবাদভাজন হইযাছেন। তাঁহার "তর্কবিদ্যা প্রবেশিকাব" বহুল ব্যবহার বাসনা কবি।"